सत्साहित्य प्रकाशन

दशरथ-नंदन श्रीराम

—महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण के आधार पर रामकथा—

●

लेखक
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादिका
लक्ष्मी देवदास गांधी

१९६४
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

हिंदी के पाठक वाल्मीकि तथा तुलसीदास की रामायणो से सुपरिचित हैं, लेकिन दक्षिण भारत मे अनेक रामायणो की रचना हुई है। उनमे तमिळ के महान कवि कबन की रामायण से उत्तर भारत के पाठक भी कुछ कुछ परिचित है। उसका कथानक लगभग वही है, जो वाल्मीकि-अथवा तुलसीदास की रामायणो के है, किंतु वर्णनो मे यत्र-तत्र कुछ अतर हो गया है। कही-कही घटनाओ की व्याख्या मे कबन ने अपनी विशेषता दिखाई है।

राजाजी जैसे समर्थ लेखक द्वारा लिखित इस पुस्तक को पाठको के हाथो मे रखते हुए हमे बडा हर्ष हो रहा है। यह पुस्तक उन्होने रामायण के तीन सस्करणो अर्थात वाल्मीकि, तुलसी तथा कबन के अध्ययन के पश्चात प्रस्तुत की है। तभी तो अनेक घटना-स्थलो पर वह बता सके है कि तुलसीदास अथवा कबन ने उनका वर्णन किस प्रकार किया है और किसमे क्या विशेषता है। पाठको के लिए यह तुलनात्मक विवेचन बडे काम का है, कारण कि यह विविध घटनाओ को नये दृष्टिकोण से देखने तथा समझने मे सहायक होता है।

पुस्तक का अनुवाद मूल तमिळ से श्रीमती लक्ष्मी देवदास गाधी ने किया है। विद्वान लेखक की सुपुत्री होने के कारण इस कृति से उनकी आत्मीयता होना स्वाभाविक है, लेकिन इतनी बडी पुस्तक का इतना सदर अनुवाद बिना उसके रस मे लीन हुए सभव नही हो सकता था। लक्ष्मीबहन की मातृभाषा तमिळ है, पर हिंदी पर उनका विशेष अधिकार है। इस पुस्तक के अनुवाद मे उन्होने जो असाधारण परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके आभारी है।

हमे विश्वास है कि राजाजी की अन्य कृतियो की भाति इस रचना

का भी सर्वत्र स्वागत और अभिनदन होगा ।

दूसरा संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक का यह दूसरा सस्करण है । पहला सस्करण कुछ समय पहले समाप्त हो गया था और तब से बराबर नये सस्करण की माग हो रही थी । हमे आशा है कि इस सस्करण का पहले से भी अधिक और जल्दी प्रसार होगा ।

—मंत्री

प्रस्तावना

परमात्मा की लीला को कौन समझ सकता है ? हमारे जीवन की सभी घटनाए प्रभु की लीला का ही एक लघु अश है।

महर्षि वाल्मीकि की राम-कथा को सरल बोलचाल की भाषा मे लोगो तक पहुचाने की मेरी इच्छा हुई। विद्वान न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हू। कबन ने अपने काव्य के प्रारभ मे विनय की जो बात कही है, उसीको मै अपने लिए भी यहा दोहराना चाहता हू। वाल्मीकि-रामायण को तमिळ भाषा मे लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि जो श्रद्धा-भक्ति के साथ रामायण-कथा पढना चाहते है, उन सबकी सहायता, अनायास ही समुद्र लाघनेवाले मारुति करेगे।

बडो से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियो को क्षमा करे और मुझे प्रोत्साहित करे, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है।

समस्त जीव-जतु तथा पेड-पौधे दो प्रकार के होते है। कुछ के हड्डिया बाहर होती है और मास भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इस श्रेणी मे आते है। कुछ पानी के जतु भी इसी वर्ग के होते है। इनके विपरीत कुछ पौधो और हमारे जैसे प्राणियो का मास बाहर रहता है और हाड अदर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्वो को हम कही बाहर पाते है, कही अदर।

इसी प्रकार ग्रथो को भी हम दो वर्गो मे बाट सकते है। कुछ ग्रथो का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावो मे होता है, कुछ का जीवन उनके बाह्य रूप मे। रसायन, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि भौतिक शास्त्र के ग्रथ प्रथम श्रेणी के होते है। भाव का महत्व रखते है। उनके रूपातर से

विशेष हानि नही हो सकती। परन्तु काव्यो की बात दूसरी होती है। उनका प्राण अथवा महत्त्व उनके बाह्य रूप पर निर्भर रहता है। इसलिए पद्य का गद्य मे विश्लेषण करना खतरनाक है।

फिर भी कुछ ऐसे ग्रथ है, जो दोनो कोटियो मे रहकर लाभ पहुचाते है। जैसे तमिळ मे एक कहावत है कि 'हाथी मृत हो या जीवित, दोनो अवस्थाओ मे अपना मूल्य नही खोता।' वाल्मीकि-रामायण भी इसी प्रकार का ग्रथ है। उसे दूसरी भाषाओं मे गद्य मे कहे या पद्य मे, वह अपना मूल्य नही खोता।

पौराणिको का मत है कि वाल्मीकि ने रामायण उन्ही दिनो लिखी, जबकि श्रीरामचद्र पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव-जीवन व्यतीत कर रहे थे, किंतु सासारिक अनुभवो के आधार पर सोचने से ऐसा लगता है कि सीता और राम की कहानी महर्षि वाल्मीकि के बहुत समय पूर्व से भी लोगो मे प्रचलित थी, लिखी भले ही न गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लोगो मे परपरा से प्रचलित कथा को कवि वाल्मीकि ने काव्यबद्ध किया। इसी कारण रामायण-कथा मे कुछ उलझने, जैसे बाली का वध तथा सीताजी को वन मे छोड आना जैसी न्याय-विरुद्ध बाते घुस गई है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य मे राम को ईश्वर का अवतार नही माना। हा, स्थान-स्थान पर वाल्मीकि की रामायण मे हम रामचद्र को एक यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणो से विभूषित मनुष्य के रूप मे ही देखते है। ईश्वर के स्थान मे अपनेको मानकर राम ने कोई काम नही किया।

वाल्मीकि के समय मे ही लोग राम को भगवान मानने लग गये थे। वाल्मीकि के सैकडो वर्ष पश्चात हिंदी मे सत तुलसीदासजी ने और तमिळ मे कबन ने रामचरित गाया। तबतक तो लोगो के दिलो मे यह पक्की धारणा बन गई थी कि राम भगवान नारायण के अवतार थे। लोगो ने राम मे और कृष्ण मे या भगवान विष्णु मे भिन्नता देखना ही छोड दिया था। भक्ति-मार्ग का उदय हुआ। मदिर और पूजा-पद्धति भी स्थापित हुई।

ऐसे समय मे तुलसीदास अथवा कबन रामचद्र को केवल एक वीर मानव समझकर काव्य-रचना कैसे करते ? दोनो केवल कवि ही नही थे, वे पूर्णतया भगवद्भक्त भी थे। वे आजकल के उपन्यासकार अथवा अन्वेषक नही थे। श्रीराम को केवल मनुष्यत्व की सीमा मे बाध लेना भक्त तुलसीदास अथवा कबन के लिए अशक्य बात थी। इसी कारण अवतार-महिमा को इन दोनो ने सुदर रूप मे गद्गद् कठ से कई स्थानो पर गाया है।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कबन-रचित रामायण मे जो भिन्नताए है, वे इस प्रकार है वाल्मीकि-रामायण के छद समान गति से चलनेवाले है, कबन के काव्य-छदो को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते है, वाल्मीकि की शैली मे गाभीर्य है, उसे अतुकात कह सकते है, कबन की शैली मे जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि-माधुरी-सपन्न है, आभूषणो से अलकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है, किंतु कबन की रामायण तमिळ लोगो की ही समझ मे आ सकती है। कबन की रचना को इतर भाषा मे अनूदित करना अथवा तमिळ मे ही गद्य-रूप मे परिणत करना लाभप्रद नही हो सकता। कविताओ को सरल भाषा मे समझाकर फिर मूल कविताओ को गाकर बताये तो विशेष लाभ हो सकता है। किंतु यह काम तो केवल श्री टी के चिदबरनाथ मुदलियार ही कर सकते थे। अब तो वह रहे नही।

सियाराम, हनुमान और भरत को छोडकर हमारी और कोई गति नही। हमारे मन की शाति, हमारा सब-कुछ उन्हीके ध्यान मे निहित है। उनकी पुण्य-कथा हमारे पूर्वजो की धरोहर है। इसके आधार पर हम आज जीवित है।

जबतक हमारी भारत भूमि मे गगा और कावेरी प्रवहमान है, तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमे प्रचलित रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

मित्रो की मान्यता है कि मैंने देश की अनेक सेवाए की है, लेकिन मेरा

मत है कि भारतीय इतिहास के महान एव घटनापूर्ण काल मे अपने व्यस्त जीवन की साध्यवेला मे इन दो ग्रथो ('व्यासर् विरु दु'—महाभारत और 'चक्रवर्त्ति तिरुमगन्'—रामायण) की रचना, जिनमे मैने महाभारत तथा रामायण की कहानी कही है, मेरी राय मे, भारतवासियो के प्रति की गई मेरी सर्वोत्तम सेवा है और इसी कार्य से मुझे मन की शाति और तृप्ति प्राप्त हुई है। जो हो, मुझे जिस परम आनद की अनुभूति हुई है, वह इनमे मूर्त्तिमान है, कारण कि इन दो ग्रथो मे मैने अपने महान सतो द्वारा हमारे प्रियजनो, स्त्री और पुरुषो से, अपनी ही भाषा मे एक बार फिर बात करने—कुती, कौशल्या, द्रौपदी और सीता पर पडी विपदाओ के द्वारा लोगो के मस्तिष्को को परिष्कृत करने—मे सहायता की है। वर्तमान समय की वास्तविक आवश्यकता यह है कि हमारे और हमारी भूमि के सतो के बीच ऐक्य स्थापित हो, जिससे हमारे भविष्य का निर्माण मजबूत चट्टान पर हो सके, बालू पर नही।

हम सीता माता का ध्यान करे। दोष हम सभी मे विद्यमान है। मा सीता की शरण के अतिरिक्त हमारी दूसरी कोई गति ही नही। उन्होने स्वय कहा है, भूले किससे नही होती ? दयामय देवी हमारी अवश्य रक्षा करेंगी। दोषो और कमियो से भरपूर अपनी इस पुस्तक को देवी के चरणो मे समर्पित करके मैं नमस्कार करता हू। मेरी सेवा से लोगो को लाभ मिले।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

दशरथ-नंदन श्रीराम

दशरथ-नंदन श्रीराम

: १ :

छंद-दर्शन

एक दिन प्रात काल नारद मुनि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे पहुचे। वाल्मीकि ने नारदजी को प्रणाम किया और यथोचित आदर-सत्कार के बाद, हाथ जोडकर प्रश्न किया, "हे मुनिवर, आप सर्वज्ञ है। कृपया मुझे यह बताइये कि इस ससार के वीर पुरुषो मे ऐसा कौन है, जो विद्या मे, ज्ञान मे और सद्गुणो मे भी सर्वश्रेष्ठ हो? ऐसे पुरुष का नाम मैं जानना चाहता हू। मुझे कृतार्थ करे।"

मुनि नारद अपनी ज्ञान-दृष्टि से समझ गये कि वाल्मीकि यह प्रश्न क्यो कर रहे है। उन्होने उत्तर दिया, "इस ससार के वीर पुरुषो मे सर्व-, सद्गुणसपन्न पुरुष सूर्यवशी राम ही है, जो अयोध्या मे राज कर रहे है। उन्हीको मैं पुरुषश्रेष्ठ मानता हू।" इतना कहकर नारदजी ने वाल्मीकि को राम की सपूर्ण कथा सुनाई। ऋषि अतीव प्रसन्न हुए।

नारदजी के चले जाने पर भी वह राम की अद्भुत कथा का स्मरण करते रहे। जब स्नान का समय हुआ तो वह नदी-तट पर गये। स्नान-योग्य स्थान ढूढते हुए वह नदी-तट पर टहलने लगे। टहलते-टहलते उन्होने देखा कि क्रौच पक्षी की एक जोडी पेड की डाल पर मस्त होकर किलोल कर रही है। ऋषि के देखते-ही-देखते व्याध का बाण चला और उसमे से नर-पक्षी एकाएक आहत होकर पृथ्वी पर गिर पडा और तडपकर मर गया। उसकी

प्रेयसी अपने प्रियतम की यह करुण दशा देख, वियोग से दुखी हो विलाप करने लगी।

दयार्द्र नयनो से वाल्मीकि मुनि ने यह दु खद घटना देखी। उन्हे व्याध पर बडा क्रोध आया। उनके मुह से अपने-आप ये शाप-वचन निकल पडे—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम्,
अगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौन्चमिथुनादेक
अवधीः काममोहितम् ॥

"हे निषाद, तुमने यह क्या कर डाला ? केलि-सलग्न जोडी मे से एक को मार गिराया ! इस पाप-कृत्य के फलस्वरूप तुम्हे अनेक वर्ष जीने पर भी कही रहने को स्थान न मिलेगा और भटकते रहोगे।"

कहने को तो वह इन शाप-वचनो को कह गये, लेकिन दूसरे ही क्षण ऋषि को अपने वचनो पर गहरा पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगे कि शिकारी को शाप देने का उन्हे क्या अधिकार था ? क्रोध को मन मे क्यो जगह दी ? वह बहुत ही व्याकुल हुए।

शाप के वचन ऋषि के कानो मे गूजते रहे। अश्रुतछंद और स्वरबद्ध श्लोकरूप अपने वचनो पर उनको स्वय विस्मय हुआ ! पक्षियो के प्रति अनुकम्पा और शोक से उत्पन्न वाक्यो के ढग से उनको आश्चर्य होने लगा। उन्होने सोचा कि यह सब परमात्मा की कोई लीला है, जिसे मै समझ नही पा रहा हू। सोचते-सोचते वह ध्यानावस्थित हो गये।

तभी स्वयभू ब्रह्मा प्रकट हुए और कहने लगे, "मुनिवर, आप व्याकुल न हो। यह सब घटना इसीलिए हुई है कि आप श्रीरामचद्र की कथा लिखना प्रारभ करे। शोक-विह्वल होकर आपके मुह से जो छद निसृत हुआ है, उसीको उदाहरण-रूप सामने रखकर आप रामचरित का श्लोको मे गायन करे। इससे जगत का कल्याण होगा। इस महान कार्य को पूरा करने की शक्ति मैं आपको देता हू।" इतना कहकर चतुरानन वहा से लोप हो गये।

श्लोक के रूप को याद करने के लिए वाल्मीकि और उनके शिष्यगण बार-बार गाने लगे—

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम्,
अगमः शाश्वतीः समा ।
यत् क्रौन्चमिथुनादेकं
अवधीः काममोहितम् ॥"

अनतर वाल्मीकि ने सारी राम-कथा को उसी रूप मे गाकर अपने शिष्यो से भी गवाया । इस प्रकार पुण्य-ग्रथ रामायण का आरम्भ हुआ ।

भगवान् नारायण ने जगत् के उद्धार के लिए अपनी देवीसहित पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म लिया । उन्होने सामान्य मनुष्य की तरह ही ससार के सुख-दुखो का अनुभव किया । लोगो को धर्म का पालन करके दिखाया । अनेक कष्ट झेलकर ससार मे धर्म की स्थापना की और लोप हो गये । इस पुण्य-कथा को महर्षि वाल्मीकि ने अनुपम मधुर ढग से गाकर सासारिको के लिए प्रस्तुत किया है । स्वय ब्रह्मा का यह कथन कभी असत्य सिद्ध नही हो सकता कि "जबतक ससार मे नदिया और पर्वत विद्यमान रहेगे तबतक लोगो मे रामायण-कथा प्रचलित रहेगी और उसके कारण लोग पापो से मुक्त होगे ।"

: २ :

सूर्यवंशियों की अयोध्या

गगा के उत्तर मे सरयू नदी से सिंचित कोशल नामका धन-धान्यपूर्ण प्रदेश था । उसकी राजधानी अयोध्या थी । उस अति सुदर, सुविख्यात और विशाल नगरी का निर्माण प्रसिद्ध सूर्यवशी राजा मनु ने किया था । ऋषि वाल्मीकि ने अयोध्या का ऐसा वर्णन किया है, जिसे पढने से प्रतीत होता है कि अयोध्या किसी आधुनिक राजधानी से किसी प्रकार कम न थी । उसके पढने से हमे यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल मे भारत के नगर

कितनी उच्चकोटि के होते थे। उस वर्णन से नागरिको की सस्कृति और सभ्यता का भी भास होता है।

उन दिनो कोशल के राजा दशरथ थे। वह अपनी राजधानी अयोध्या मे वास करते थे। स्वर्ग के देव लोग भी महान पराक्रमी राजा दशरथ को युद्ध मे सहायता के लिए बुलाया करते थे। तीनो लोको मे दशरथ का नाम प्रसिद्ध था। राजा दशरथ की तुलना इद्र और कुबेर के साथ की जाती थी। कोशल की सभ्य प्रजा सदा प्रसन्न रहती थी। असख्य वीर तथा योद्धा नगर की रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे। दशरथ के कौशलपूर्ण प्रबध से शत्रु लोग अयोध्या के पास तक भी नही पहुच पाते थे। दुर्ग की प्राचीर को घेरती हुई नहरो और नाना प्रकार के शत्रुघातक यत्रो से अयोध्या सर्वदा अजेय थी। उसका 'अयोध्या' नाम यथार्थ था।

यश और ऐश्वर्य मे देवेंद्र-तुल्य राजा दशरथ के मत्री भी बडे योग्य थे। आठ मत्री थे। सब-के-सब अच्छे सलाहकार, राजाज्ञा का तुरत पालन करने-वाले और राजा की सेवा मे तत्पर। इन सचिवो के अतिरिक्त धर्मोपदेश देने तथा यज्ञ आदि विधियो को शास्त्रोक्त ढग से कराने के लिए वसिष्ठ, वामदेव आदि राजगुरु तथा अन्य उत्तम ब्राह्मण राजा के साथ रहा करते थे।

दशरथ के राज्य मे कभी बलपूर्वक कर वसूल नही किये जाते थे। जब कभी अपराधियो को दड दिया जाता तो अपराधी की परिस्थिति और शक्ति का भी विचार किया जाता था।

समर्थ सलाहकार और कर्मचारियो के बीच राजा दशरथ सूर्य की तरह प्रकाशमान थे।

दशरथ को राज करते हुए कई वर्ष बीत गये, किंतु उनकी एक मनो-कामना पूरी नही हुई थी। अबतक उन्हे पुत्रलाभ नही हुआ था।

एक बार वसत ऋतु मे चितातुर राजा के मन मे यह बात आई कि 'पुत्रकामेष्टि' और 'अश्वमेध यज्ञ' किया जाय। उन्होने गुरुजनो से राय ली। गुरुजनो ने समर्थन किया। सबने निर्णय किया कि ऋषि ऋष्यश्रृग को बुलाया जाय और उनकी देखरेख मे यज्ञ किया जाय।

यज्ञ की तैयारिया होने लगी। राजाओ को निमत्रण भेजे जाने लगे और यज्ञमडप का निर्माण आदि कार्य तेजी से शुरू हो गये।

उन दिनों यज्ञ करना कोई मामूली बात न थी। सबसे पहले वेदी का निर्माण ध्यानपूर्वक किया जाता था। इस कार्य के लिए निपुण लोग ही नियुक्त किये जाते थे। उनके नीचे कई कर्मचारी होते थे। विशेष-विशेष प्रकार के बर्तन बनवाने पडते थे। बढई, शिल्पी, कुए खोदनेवाले, चित्रकार, गायक, विविध वाद्यो को बजानेवाले और नर्तक एकत्र करने पडते थे। हजारो की सख्या मे आनेवाले अतिथियो को ठहराने के लिए एक नये नगर का ही निर्माण किया जाता था, जहा सबके लिए भोजन और मनोरजन की भी व्यवस्था होती थी। सभीको वस्त्र, धन, गौ आदि का दान देना भी आवश्यक माना जाता था।

ऐसे अवसर पर उन दिनो उसी प्रकार के प्रबध होते थे, जैसे आजकल के बडे-बडे सम्मेलनो के लिए हुआ करते है।

ये सब कार्य सम्यक् रूप मे हो जाने के उपरात चारो दिशाओ मे भ्रमण करके विजयी होकर लौटने के लिए यज्ञ के अश्व को बडी सेना के साथ भेजा गया। एक वर्ष बीत जाने के बाद यज्ञ का अश्व और सैनिक विजय-पताका फहराते हुए कौतुक तथा शोर-शराबे के साथ निर्विघ्न अयोध्या लौट आये। तत्पश्चात् शास्त्रो के आदेशो के अनुसार यज्ञ-क्रिया प्रारभ हुई।

अयोध्या मे जिस समय यह सब चल रहा था, देवलोक मे देवो की एक भारी बैठक हुई। वाल्मीकि कहते है कि ब्रह्मा को सबोधित करके देवो ने शिकायत की, "हे पभु, राक्षस रावण को आपसे वरदान मिल गया है। उसके बल से वह हम सबको बुरी तरह से सता रहा है। उसे दबाना, जीतना या मारना हमारी शक्ति के बाहर है। आपके वरदान से सुरक्षित होकर उसका दर्प बहुत बढ गया है। वह सबका अपमान करता रहता है। उसके अत्याचारो का अत नही। वह इद्र को भगाकर स्वर्ग पर कब्जा कर लेना चाहता है। उसे देखकर सूर्य, वायु और वरुण भी डर से कापते है।

उसके अहकार को दबाने और उसके अत्याचारो से बचने का आप ही कोई उपाय बता सकते है।"

ब्रह्मा ने देवो की शिकायत सुनी। उन्होने उत्तर दिया, "रावण ने अपने तपोबल से वरदान प्राप्त किया है। किंतु हमारे सद्भाग्य से वर मागते समय वह एक बात भूल गया। देव, गधर्व, राक्षसो से उसने अमरत्व मागा। मनुष्यो को या तो उसने अति तुच्छ समझा या भूल गया। इसलिए उसे मारने के लिए अभी भी मार्ग खुला हुआ है।"

यह सुनकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए। सबके-सब विष्णु के पास पहुचे। उनको प्रणाम करके सबने एक स्वर से कहा, "हे नाथ, पापी रावण ब्रह्मा से वरदान पाकर सारे जगत को पीडित कर रहा है। अब हमसे सहा नही जाता। उसने देव, गधर्व, राक्षसादि से अमरत्व माग लिया है। मनुष्यो का नाम उसने नही लिया। या तो भूल गया, या उसने मनुष्य-जाति को अति दुर्बल समझा। हमे आपकी कृपा चाहिए। मनुष्य-जन्म लेकर आपको हमारी रक्षा करनी होगी।"

नारायण ने देवो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होने सान्त्वना देते हुए कहा, "भूलोक मे राजा दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहा है। मैं उसके घर चार पुत्रो के रूप मे जन्म लूगा। रावण को मारकर आप लोगो को सकट से मुक्त करूगा।"

अपने वचन का पालन करने के लिए भगवान विष्णु ने दशरथ की रानियो के गर्भ मे वास करने का सकल्प कर लिया।

दशरथ के यज्ञ की विधिया चल रही थी। ऋष्यशृंग ने अग्नि मे घी की आहुति दी। अग्नि-देवता ने घी का पान किया। अग्नि से एक बडी भारी ज्वाला निकली। सूर्य के समान उसके प्रकाश से सबकी आखो मे चकाचौंध व्याप्त हो गई। उस ज्वाला के अदर दोनो हाथो मे सुवर्ण पात्र लिये एक मूर्ति खडी थी। गभीर दुदुभिनाद जैसे स्वर मे उसने महाराजा को सम्बोधित करके कहा, "राजन्, तुम्हारी प्रार्थना को सुनकर देवो ने तुम्हारी रानियो के लिए यह पायस भेजा है। तुम्हे पुत्रो की प्राप्ति होगी।

यह पायस ले जाकर अपनी पत्नियो को पिलाओ। तुम्हारा मगल हो।"

दशरथ के आनद का पार न था। जैसे मा-बाप बालक को वात्सल्य से उठाते है, वैसे ही उन्होने सुवर्ण पात्र अपने हाथो मे लिया और अग्नि से निकला हुआ यज्ञ-पुरुष अतर्धान हो गया।

यज्ञ की शेष विधिया पूरी हो जाने के बाद दशरथ पायस से पूर्ण पात्र को अपने अत पुर मे रानियो के पास ले गये और कहने लगे, "देवताओ का प्रसाद लाया हू। तुम तीनो इसे ग्रहण करो। इससे पुत्रो का जन्म होगा।"

इस बात को सुनते ही सारा अत पुर प्रसन्नता से खिल उठा। दशरथ के तीन रानिया थी। महारानी कौशल्या ने पायस का आधा भाग पिया। शेष आधा कौशल्या ने सुमित्रा को दिया। सुमित्रा ने उसका आधा स्वयं पिया और जो बचा वह कैकेयी को दे दिया। उसके आधे को कैकेयी ने पिया और बाकी को दशरथ ने पुन सुमित्रा को पीने के लिए दे दिया।

परम दरिद्र को कही से खजाना मिल जाय तो उसे जैसी खुशी होगी, वैसे ही दशरथ की तीनो रानिया फूली न समाई। उनकी आशा पूर्ण हुई। तीनो ने गर्भ धारण किया।

: ३ :

विश्वामित्र-वसिष्ठ-संघर्ष

यज्ञ से मिले पायस को पी जाने के फलस्वरूप तीनो रानियो ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कौशल्यादेवी ने राम को जन्म दिया। उसके बाद कैकेयी ने भरत को। सुमित्रादेवी के दो पुत्र हुए। ये लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि जिस प्रकार पायस का विभाजन हुआ, उसी क्रम से चारो शिशुओ मे भगवान विष्णु के अशो का समावेश हुआ। सबसे अधिक राम मे, फिर लक्ष्मण मे, तत्पश्चात भरत

और शत्रुघ्न मे शेष बचे अश का प्रवेश हुआ। यह बात कोई महत्व की नही है। भगवान को टुकडे करके नापा या गिना नही जा सकता। परब्रह्म को हम भौतिक शास्त्र मे नही बाध सकते। श्रुति मे गाया गया है—

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

चारो कुमारो को राजकुमारोचित सभी विद्याए सिखाई गई। उनके पालन-पोषण एव पढाई-लिखाई आदि की व्यवस्था बहुत ध्यानपूर्वक की गई। बचपन से ही राम और लक्ष्मण के बीच विशेष प्रीति थी तथा भरत और शत्रुघ्न एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। यो मान सकते है कि जिस क्रम से रानियो ने पायस पिया था, उसी प्रकार बच्चो मे परस्पर प्रेम रहा।

चारो पुत्रो के गुण, कार्य-कुशलता, प्रीति तथा तेज दिन-प्रतिदिन बढने लगे। इनको पाकर राजा दशरथ देवो से परिवृत स्वयभू ब्रह्मा की तरह आनदपूर्वक रहने लगे।

× × ×

एक दिन राजा दशरथ अपने सचिवो के साथ राजकुमारो के विवाहो की चर्चा कर रहे थे कि सहसा द्वारपाल अदर आये। वह घबराये हुए दिखाई दिये। उन्होने सूचना दी, "महामुनि विश्वामित्र महाराज के दर्शन के लिए द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे है।"

ऋषि विश्वामित्र के नाम लेने मात्र से ही लोग उस समय डर जाया करते थे।

सुप्रसिद्ध, प्रभावशाली महामुनि एकाएक इस प्रकार मिलने आये है, यह सुनकर राजा ने तत्काल आसन से उतरकर स्वय आगे जाकर मुनि का शास्त्रोचित विधि से सत्कार किया।

विश्वामित्र पहले एक क्षत्रिय वशज राजा थे। अपने तपोबल से बाद मे ऋषि बने थे। बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करने के बाद ही उन्हे अपने यत्न मे सफलता प्राप्त हुई। एक बार त्रिशकु शाप से पीडित था। उसके ऊपर विश्वामित्र को दया आई। उन्होने अलग से सृष्टि की रचना

करने की ठान ली। एक नई दुनिया तथा अन्य ग्रह-मडल रचने का उन्होने निश्चय किया और अपने तपोबल से आकाश के दक्षिण की ओर कुछ तारागणो को स्थापित भी कर दिया। जब देवो ने उनसे यह काम छोड देने की प्रार्थना की तो वह मान गये और अपनी नवीन सृष्टि-रचना का कार्य रोक लिया। ये बाते रामायण की घटनाओ से पहले की है।

ऋषि-पद पाने से पहले विश्वामित्र राजा कौशिक कहलाते थे। एक बार वह अपनी सेनाओ के साथ पर्यटन करते हुए वसिष्ठ ऋषि के आश्रम मे पहुचे। ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने भी विश्वामित्र का यथोचित सत्कार किया।

कुशल-समाचार के बाद ऋषि वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा,"राजन्, आप अपनी सेना और परिवारवालो के साथ मेरे आश्रम मे भोजन करने के लिए ठहर जाय। मै आप सबका समुचित सत्कार करना चाहता हू।"

विश्वामित्र ने वसिष्ठ से कहा,"मुनिवर, आपके इन वचनो एव अर्घ्य-जल से जो सत्कार मुझे प्राप्त हुआ है, उससे ही मै अत्यत सतुष्ट हू। मैं आपका कृतज्ञ हू। आप और कष्ट न करे। बस, हमे यहा से जाने के लिए अनुमति दे।"

किंतु वसिष्ठ ने बहुत आग्रह किया कि वह और सेनासहित उनके यहा भोजन करके ही जाय।

विश्वामित्र ने फिर कहा, "आप बुरा न माने। मै आपका अनादर नही कर रहा। आप तो आश्रमवासी ऋषि ठहरे। मेरी इतनी बडी सेना! सबके लिए एकाएक भोजन का प्रबध करना कैसे सभव हो सकेगा? इसी-लिए मुझे हिचकिचाहट है।"

ऋषि वसिष्ठ मुस्कराये। अपनी गाय शबला को वात्सल्य के साथ बुलाकर बोले,"बिटिया, देखो, राजा विश्वामित्र आये है। इन्हे तथा इनके परिवार को खिलाने का शीघ्र प्रबध कर दो।"

तब जो कुछ देखा, उससे विश्वामित्र विस्मय-विमुग्ध रह गये। उस राजकीय बृहत परिवार के लिए नाना प्रकार के पर्याप्त व्यजन अपने-आप

ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गये। खाने की तरह-तरह की सुस्वादु वस्तुए, नाना प्रकार के पेय, घी, दही, मक्खन, फूल और सुगध-लेप आदि सभी चीजे क्षणभर मे उपस्थित हो गई और सबको पहुच गई। राजा कौशिक की पत्निया, सचिव, बधुवर्ग, पुरोहित, सैनिक और अन्य कर्मचारी सभी ऋषि के आश्रम मे खा-पीकर सतुष्ट हुए। सबको वसिष्ठ के तपोबल पर बडा आश्चर्य हुआ।

विश्वामित्र ने वसिष्ठ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और अत मे उनसे याचना की, "मुनीश्वर, अपनी धेनु शबला को मुझे दे दीजिये। इसकी शक्ति को मैंने आज देखा। ऐसी वस्तु तो राजा के ही पास रहने योग्य है।"

ऋषि वसिष्ठ को यह सुनकर दु ख हुआ। उन्होने विश्वामित्र से कहा, "महाराज, मै शबला को कदापि नही छोड सकता। उसके बहुत-से कारण है। आप अपना हठ छोड दे।"

ज्यो-ज्यो वसिष्ठ इन्कार करते गये, विश्वामित्र की इच्छा बढती गई। उन्होने शबला के बदले मे अनेक बहुमूल्य वस्तुए देने का प्रलोभन दिया, किंतु वसिष्ठ अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होने स्पष्ट कह दिया कि आपकी सारी सपदा मेरी शबला के सामने कुछ भी नही है, किसी भी हालत मे मैं उसे आपको नही दे सकता।

तब क्रोध मे आकर विश्वामित्र ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि शबला को जबर्दस्ती ले चलो।

शबला आसू बहाकर रोने लगी। उसने सोचा, 'ऋषि वसिष्ठ का मैंने क्या बिगाडा? वह मुझे राजा के हाथो मे जाने से क्यो नही बचा रहे है? उसकी दुष्ट सेना मुझे खीचकर ले जा रही है। ऋषि यह देखकर भी चुप क्यो है?'

इसके बाद अपने सीगो से सैनिको को भगाकर वह स्वय वसिष्ठ के पास आकर खडी होगई।

ऋषि वसिष्ठ शबला को अपनी छोटी बहन की भाति प्यार करते थे।

उसका दु ख उनसे सहन न हुआ। उन्होने कहा, "शबले, तुझे सतानेवाले इन लोगो को हराने लायक सैनिक तो पैदा कर।"

बात-की-बात मे शबला की 'हुकार' से अनगनित सैनिक खडे हो गये और लडने लगे। विश्वामित्र की सेना हारकर भाग निकली। यह देखकर विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उनकी आखे लाल होगई। वह रथ पर चढे और चारो ओर बाणो की वर्षा करने लगे। लेकिन शबला के शरीर से नए-नए सैनिक उत्पन्न होते गये। विश्वामित्र की सेना बुरी तरह पराजित हुई।

युद्ध भयकर रूप मे छिड गया। विश्वामित्र के लडके वसिष्ठ के पुत्रो को मारने के लिए उद्यत हुए। लेकिन वसिष्ठ ने जब उन्हे जोर से डाटा तो वे वही जलकर राख होगये।

पराजय से विश्वामित्र का मुख-मडल निस्तेज होगया। वही उन्होने अपना राज्य एक पुत्र को सौप दिया। उनकी अब एक ही मनोकामना थी। किसी तरह भी हो, वसिष्ठ को पराजित करे। इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह हिमाचल की ओर चले गये। उन्होने उमापति महादेव का ध्यान लगाया और घोर तपस्या करने लगे।

: ४ :

विश्वामित्र की पराजय

विश्वामित्र के उग्र तप से प्रसन्न होकर महादेव उनके समक्ष प्रकट हुए और बोले, "राजन्, तुम्हारी मनोकामना क्या है ? किस उद्देश्य से तुम तप कर रहे हो ?"

विश्वामित्र ने हाथ जोडकर शिवजी से निवेदन किया, "प्रभो, यदि मेरी तपश्चर्या से आप प्रसन्न हुए हो, तो ऐसा आशीर्वाद दे कि मैं धनुर्वेद का सपूर्ण अधिकारी बन जाऊ। समस्त असुर मेरे अधीन हो जाय।"

महादेव मान गये। उन तमाम असुरो को, जो देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, यक्ष और राक्षसो के वश मे थे, शिवजी ने विश्वामित्र को सौप दिया।

शिवजी से वरदान प्राप्त कर विश्वामित्र लौटे। तपोबल से पाई शक्ति के कारण उनका अहकार बरसात की नदी की भाति उमड रहा था। उन्होने सोचा, 'बस, अब वसिष्ठ का अत आगया।'

वह सीधे वसिष्ठ के आश्रम मे गये। क्रुद्ध महाकाल की तरह आते हुए विश्वामित्र को देखकर वसिष्ठ के आश्रमवासी शिष्यगण डर के मारे इधर-उधर भागकर छिपने लगे।

विश्वामित्र ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से ऋषि वसिष्ठ का आश्रम जलकर राख होगया। वसिष्ठ ने अपने शिष्यों को बहुत समझाया कि वे घबराये नही, किन्तु उनके आश्रमवासियो का डर कम न हुआ। वे भागने लगे और छिपने की जगह खोजते रहे।

यह देखकर वसिष्ठ दुखी हुए। उन्होने सोचा कि अब इस विश्वामित्र के गर्व का खण्डन करना ही पडेगा। कालाग्नि की तरह प्रज्वलित अपने ब्रह्मदण्ड को उन्होने हाथ मे लिया और विश्वामित्र को ललकारा और कहा, "विश्वामित्र, यह क्या मूर्खता कर रहे हो ?"

विश्वामित्र का क्रोध और भी भडक उठा। उन्होने भी ललकारा, "अरे वसिष्ठ, जरा ठहर तो सही।" यह कहकर उन्होने वसिष्ठ के ऊपर नए-नए सीखे हुए अपने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया।

ऋषि वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "मै तो खडा ही हू। भाग नही रहा।" और यह कहते हुए अपने सामने ब्रह्मदण्ड रख लिया। विश्वामित्र का अस्त्र बेकार सिद्ध हुआ। पानी से जैसे आग बुझ जाती है, उसी प्रकार विश्वामित्र के अस्त्र की ज्वालाए अपने-आप बुझ गई।

इसके बाद विश्वामित्र ने एक-एक करके अपने तमाम अस्त्रो को आजमाया, मगर वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने वे सभी निष्फल सिद्ध हुए। विश्वामित्र को बडा विस्मय हुआ। लाचार होकर अत मे उन्होने वसिष्ठ के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड दिया।

देव और ऋषिगण भयभीत होगये। उन्होने सोचा कि अब अनर्थ हो गया। ब्रह्मास्त्र का सामना भला कौन कर सकता है ? किंतु ऋषि वसिष्ठ का ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र से भी अधिक बलवान सिद्ध हुआ। ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र को भी निगल गया। ब्रह्मदण्ड अग्नि के समान चमकने लगा। उसके चारो ओर चिनगारिया प्रज्वलित हो उठी। विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लबी सास लेकर उन्होने कहा, "मैं अब हार गया। मेरा क्षत्रिय-बल इस ऋषि के एक साधारण दण्ड के सामने निरर्थक रहा। महादेव ने मुझे धोखा दिया। मै भी वसिष्ठ की तरह ब्रह्मर्षि बनूगा। कोई दूसरा रास्ता नही।"

यह कहकर उन्होने युद्ध रोक दिया और दक्षिण दिशा की ओर जाकर कठोर तपश्चर्या करने लगे।

अब वह स्वयभू ब्रह्मा का ध्यान करके तप करने लगे। अनेक वर्षों की तपश्चर्या के पश्चात् ब्रह्मा प्रकट हुए और यह कहकर कि "हे कौशिक-पुत्र, अपने तप की महिमा से तुम राजर्षि वन गये," अतर्धान हो गये।

विश्वामित्र को बडा आघात पहुचा कि इतनी कठोर तपश्चर्या के बाद भी केवल राजर्षि पद मिला ! वह और भी घोर तप करने मे तत्पर होगये।

: ५ :

त्रिशंकु की कथा

जब विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या चल रही थी, उन दिनो सूर्यवश के राजा त्रिशकु राज्य कर रहे थे। वह बडे नामी और प्रतापी थे। अनेक वर्षो तक अच्छी तरह राज करने के पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि सदेह स्वर्ग पहुचा जाय। इस सबध मे विचार-विमर्श करने के लिए वह वसिष्ठ ऋषि के पास गये। वसिष्ठ उनके कुलगुरु थे।

वसिष्ठ ने राजा से कहा, "राजन्, ऐसी इच्छा न करे, यह सर्वथा असभव है।"

त्रिशकु को गुरु की सम्मति पसद न आई। वह वसिष्ठ के पुत्रो के पास पहुचे और कहने लगे, "देखिये, आपके पिता ने जिस काम को असभव कह दिया है, उसे आप लोग मेरे लिए कर दे। मै सदेह स्वर्ग पहुचने के लिए एक यज्ञ करना चाहता हू। आप लोग यह यज्ञ कराकर मुझे अनुग्रहीत करे।"

वसिष्ठ-पुत्रो को राजा की यह हठ पसद न आई। उन लोगो ने राजा से कहा, "आपने गलत रास्ता पकडा है। आपके गुरु और हमारे पिताजी ने जब आपको यह कार्य करने से रोका है, तो वही काम हमसे कराने की सोचना ठीक बात नही है। आप वापस चले जाय। हमसे यह काम कदापि न हो सकेगा।"

किंतु राजा गुरु-पुत्रो से अनुरोध करते ही रहे। वसिष्ठ के पुत्र राजा से तग आगये। उन लोगो ने चिढकर कहा, "आप हमसे हमारे पिता का अपमान कराना चाहते हैं, यह कभी नही हो सकता।"

लेकिन त्रिशकु ने इसपर भी अपना हठ नही छोडा। उन्होने कहा, "यदि आप लोग मेरा यज्ञ न करायेगे, तो मै कोई दूसरा ऋषि ढूढ लूगा। जैसे भी होगा, मै यह यज्ञ करके ही रहूगा।"

वसिष्ठ-पुत्रो को इस बात पर बडा क्रोध आया। उन्होने राजा को शाप दिया, "तुमने गुरु का अपमान किया है, तुम चाण्डाल हो जाओ।"

दूसरे दिन राजा जब निद्रा से उठे तो देखते क्या है कि उनके शरीर की काति नष्ट हो गई थी। उनका रूप कुरूप बन गया था और पीताबर के बदले उनका शरीर मलिन चिथडो से ढका हुआ था। शरीर के ऊपर के आभूषण पता नही कहा गायब होगये। मत्री, परिवार और प्रजाजन इस अप्रिय परिवर्तन को देखकर उन्हे छोडकर भाग गये। कोई भी उनका मुह नही देखना चाहता था। अपमान और क्लेश से पीडित राजा त्रिशकु ने अपना देश छोड दिया और वन मे चले गये। न उन्हे खाने की चिता थी, न सोने की। वह दिन-रात भटकते रहे।

चाण्डाल के रूप मे ही त्रिशकु एक दिन विश्वामित्र ऋषि के आश्रम मे जा पहुचे।

विश्वामित्र को राजा की दशा देखकर बडी दया आई। उन्होने पूछा, "तुम तो त्रिशकु हो न ? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? किसके शाप से यह हुआ, मुझे बताओ ?"

त्रिशकु ने विश्वामित्र को सारा हाल बता दिया और कहा, "मैने राज्य-धर्म का अच्छी तरह से पालन किया है। कभी अधर्म नही किया। सत्य के विरुद्ध मै कभी नही चला। कभी किसीको मैने दु ख नही पहुचाया। मेरे गुरु-पुत्रो ने मेरी सहायता करने से इन्कार कर दिया और ऐसा शाप दे दिया, जिससे मै चाण्डाल बन गया। अब आप ही मेरे रक्षक है।" यह कहकर त्रिशकु विश्वामित्र के चरणो मे गिर पडे।

शाप के कारण चाण्डाल बने त्रिशकु पर विश्वामित्र के दिल मे दया उमड आई। विश्वामित्र के साथ यही बडी कठिनाई थी कि उनकी अनु-कपा, प्रेम और क्रोध आदि आवेश बहुत प्रबल हुआ करते थे।

मीठी वाणी मे विश्वामित्र बोले, "हे मित्र, हे इक्ष्वाकु-कुल राजन्, मै तुम्हारा स्वागत करता हू। तुम्हारे धार्मिक जीवन से मै परिचित हू। तुम निर्भय रहो। ऋषि, मुनि तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगो को आमत्रण भेजकर मै तुम्हारा यज्ञ कराऊगा। गुरु-शाप से तुमने चाण्डाल का रूप पाया है। चिता न करो, तुम सदेह स्वर्ग पहुचोगे।" इस तरह विश्वामित्र ने राजा त्रिशकु को वचन दे दिया।

यज्ञ के लिए विश्वामित्र ने सब प्रबध कर दिया। त्रिशकु को उन्होने धैर्य दिलाया और बोले, "तुम मेरी शरण मे आये हो, समझ लो कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होगई। इसी शरीर से तुम स्वर्ग पहुचोगे।"

उसके वाद विश्वामित्र ने अपने शिष्यो को आदेश दिया कि सब ऋषि-मुनियो को यज्ञ के लिए बुला लाओ। उनसे कहो कि विश्वामित्र ने बुलाया है।

आदेश का पालन करते हुए विश्वामित्र के शिष्यो ने सभी वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियो के पास जाकर अपने गुरु का सदेश पहुचाया।

लगभग सभीने आमत्रण स्वीकार कर लिया। महातपस्वी विश्वामित्र की आज्ञा का तिरस्कार करने की हिम्मत भला किसमे थी !

किंतु वसिष्ठ के पुत्रो के पास जब निमत्रण पहुचा, तो उन लोगो ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, "विश्वामित्र चाहे कितने भी बडे तपस्वी क्यो न हो, आखिर वह क्षत्रिय है। उन्हे यज्ञ कराने काअधिकार नही। एक चाण्डाल को भी कही यज्ञ का अधिकार होता है !"

विश्वामित्र ने जब यह बात सुनी तो उनका क्रोध और भी भडक उठा। उन्होने शाप दिया, "मैने जो कार्य प्रारभ किया है, उसमे मै कोई दोष नही देखता। घमडी वसिष्ठ-कुमारो को मै शाप देता हूं कि वे जलकर भस्म हो जाय !"

ऐसा कहकर वह यज्ञ के काम मे लग गये।

उपस्थित बडे-बडे लोगो से विश्वामित्र ने कहा, "इस पुण्यात्मा धर्मशील इक्ष्वाकुवशी राजा को सशरीर स्वर्ग पहुचाने के लिए मैंने यह विधि प्रारभ की है। आप सब इस शुभ कार्य मे सम्मिलित होकर इसकी सिद्धि मे सहायक हो।"

सबने सोचा कि विश्वामित्र की आज्ञा मान लेना ही श्रेयस्कर है। ऐसे तपस्वी के क्रोध का सामना करना असभव है। इसलिए सब यज्ञ-कार्यों मे जुट गये। वे सब कौशिक के आदेशानुसार कार्य करने लगे।

यज्ञ के अत मे हवि स्वीकार करने के लिए देवताओ को बुलाया गया। मत्रोच्चार के साथ विश्वामित्र ने देवताओ का आह्वान किया। किंतु कोई न आया। जो ऋषि विश्वामित्र के डर के मारे चुप थे, वे भी अब उनपर हँसने लगे।

विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उन्होने उस श्रुवा को, जिससे वह होमाग्नि मे घी डाल रहे थे, ऊपर उठाया और राजा त्रिशकु को सबोधित करके कहा, "हे त्रिशकु, मेरे तप की महिमा तुम अब देखोगे। मेरा सारा प्रयत्न, तप और शक्ति तुम्हारे लिए ही काम आयगा। यदि मेरे वर्षों के तप मे जरा-सी भी शक्ति हो, तो तुम इसी क्षण स्वर्ग के लिए ऊपर की ओर

चलने लगोगे। देवता लोग हवि लेने न आये, इसकी मुझे चिता नही। राजन् अब स्वर्ग की ओर प्रस्थान करो।"

तभी एक बडी ही अद्भुत घटना घटी। ऋषि तथा ब्राह्मणो के देखते-देखते चाण्डाल राजा एकदम आकाश मे स्वर्ग की ओर उठकर जाने लगे। सारी दुनिया ने विश्वामित्र की शक्ति को उस समय पहचाना।

त्रिशकु स्वर्ग पहुचे। किंतु इद्र ने त्रिशकु की हालत देखी तो वह उसे स्वर्ग मे रखने को राजी न हुए। बोले, "यह चाण्डाल अपने इस रूप मे यहा कैसे आया ? गुरु के शाप से पीडित मूर्ख, हट, यहा से हट !" इतना कहकर इद्र ने त्रिशकु को स्वर्ग से नीचे की ओर धकेल दिया।

बेचारे त्रिशकु करुण स्वर मे चीखने लगे, "मुझपर दया करो ! मेरी रक्षा करो !" इस प्रकार चिल्लाते हुए वह नीचे गिरने लगे। उनका सिर नीचे की ओर था और पैर आकाश की ओर।

विश्वामित्र ने जब यह देखा तो वह गुस्से मे भर गये और कहने लगे, "अच्छा, मेरे तप का ऐसा अनादर ! देखता हू।" और उन्होने आज्ञा दी, "हे त्रिशकु, वही रुको।" यह कहकर उन्होने त्रिशकु को बीच आकाश मे ही रोक दिया। उस समय विश्वामित्र स्वय ब्रह्मा की तरह तेजोमय दिखाई दे रहे थे और त्रिशकु आकाश मे स्थित एक नक्षत्र की तरह स्थिर होकर चमक रहे थे।

विश्वामित्र ने अब दूसरा चमत्कार दिखाया। दक्षिण आकाश की ओर जहा त्रिशकु लटक रहे थे, वही एक नई सृष्टि (नये तारागण और सप्तर्षि मण्डल आदि) उत्पन्न करने को वह उद्यत होगये।

"मै नया इद्र पैदा करूगा। नये देव भी बन जायगे।" यह कहकर वह नई सृष्टि की रचना मे सलग्न होगये।

देव और ऋषिगण यह देखकर घबरा गये। उन्होने सोचा कि अब अनर्थ होने ही वाला है। जैसे भी हो, विश्वामित्र के क्रोध को शात करना चाहिए।

वे सब मिलकर ऋषि के पास पहुचे और नम्र भाव से कहने लगे, "अब आप शात हो। त्रिशकु और अन्य नक्षत्र, जिन्हे आपने अभी-अभी उत्पन्न

किया है, वे सब आकाश मे ऐसे ही स्थिर रहेगे । आप आगे और कुछ न कर शात हो जाय । हमारी रक्षा करे ।"

बडी मुश्किल से विश्वामित्र शात हो पाये ।

पर ऐसा करने मे विश्वामित्र की समस्त तापसिक शक्ति खर्च होगई ।

: ६ :

विश्वामित्र की सिद्धि

तपस्वी जन यदि काम-क्रोध के वश मे आ जाय, अथवा किसीको शाप दे दे तो उनका तपोबल क्षीण हो जाता है । ऋषि विश्वामित्र का भी तपोबल क्रोध करने तथा शाप देने के कारण बहुत-कुछ कम हो गया था । इसलिए वह फिर से उग्र तप करने पश्चिम दिशा की ओर पुष्कर तीर्थ चले गये ।

वहा उन्होने कई वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की । तप की सिद्धि जब सन्निकट थी, तभी एक घटना घटी और क्रोध ने फिर उनपर विजय पा ली । अपने पुत्रो को ही उन्होने शाप दे दिया । इसका उन्हे बडा पछतावा हुआ । उन्होने दृढ निश्चय कर लिया कि भविष्य मे वह कभी क्रोध को स्थान ही न देगे । ऐसा सकल्प करके वह फिर से घोर तपश्चर्या मे लीन हो गये । वर्षों बाद प्रजापति ब्रह्मा ने देवो के साथ उन्हे पुन दर्शन दिये । उन्होने विश्वामित्र से कहा, "हे कौशिक, अब तुम्हारी गणना राजाओ मे नही रही । तुम सपूर्ण रूप से ऋषि हो गये ।" यह कहकर ब्रह्माजी अतर्धान होगये ।

किंतु इससे विश्वामित्र सतुष्ट कैसे हो सकते थे ! उन्हे शिवजी से समस्त अस्त्र मिल गये थे । ब्रह्मा से ऋषिपद मिल गया । किंतु उनका ध्येय तो वसिष्ठ के समान शक्ति प्राप्त करना था । यह कार्य अभी भी शेष ही था । इसलिए उन्होने कठिन-से-कठिन तप करने का सकल्प किया ।

देवो को यह बात नही रुचि । विश्वामित्र को अपने निश्चय से हटाने के लिए उन्होने पुष्कर तीर्थ मे सुन्दरी अप्सरा मेनका को भेजा । विश्वामित्र

उसके मनमोहक रूप के शिकार होगये। उसके साथ उन्होने दस वर्ष आनद से विता दिये। ये दस वर्ष, एक दिन और एक रात की तरह, बडी जल्दी बीत गये।

तब ऋषि जागे और परिणाम जानकर घबरा गये। उन्हे अपनी करनी पर बडा खेद हुआ। मेनका डर से कापने लगी। उसे लगा कि बस, अब ऋषि शाप दे डालेगे। वह हाथ जोडकर खडी रही। किंतु इस बार ऋषि ने अपने क्रोध को वश मे रखा, उन्होने मेनका से कहा, "तुम्हारा कोई दोष नही, मेरी ही मूर्खता है। तुम वापस चली जाओ।" इस तरह मेनका को प्यार से विदा करके वह हिमालय की ओर चल पडे। वहा इद्रियो का दमन करके उन्होने एक हजार वर्ष तक पुन तप किया।

देवो के सहित ब्रह्मा फिर उनके सामने प्रकट हुए। उन्होने विश्वामित्र से कहा, "विश्वामित्र, मेनका को शाप न देकर तुम पुन तप मे प्रवृत्त हुए और उसे पूर्ण भी किया, इसलिए हम तुमसे अत्यत प्रसन्न है। आज से तुम महर्षि हुए।"

ब्रह्माजी के वचनो से विश्वामित्र प्रसन्न तो हुए, किंतु अभी उनकी मनोकामना पूरी नही हुई थी। उन्होने फिर से एक ऐसा कठिनतम तप आरभ कर दिया कि जिस प्रकार का तप न किसीने कभी किया था, न सुना था। ऐसा अद्भुत तप उन्होने एक हजार वर्ष और किया।

देवो की चिंता बढ गई। इस बार उन्होने अप्सरा रभा को विश्वामित्र के पास भेजना निश्चित किया। इद्र ने रभा से याचना की, "रभे, हमारे ऊपर दया करके किसी भी उपाय से विश्वामित्र का मन मोह लो। उनके तप को रोको।"

रभा की हिम्मत तो नही हुई। पर इद्र की आज्ञा भी वह कैसे टाल सकती थी? उसने विश्वामित्र के मन को चचल कर दिया। विश्वामित्र ने मन मे उठे काम को तो रोक लिया, किंतु उन्हे रभा पर क्रोध आगया। तप मे विघ्न डालने यह क्यो आई? उन्होने रभा को शाप दे दिया कि वह वही पत्थर की हो जाय। ऋषि जब अपने मन मे दूसरो के लिए बुरा सोचते है तो

वही उनके अपने लिए भी शाप-रूप ही बन जाता है। दूसरो के प्रति उनका शाप तो सफल हो जाता है, किंतु साथ ही उनका तप भी नष्ट हो जाता है। इस बार भी विश्वामित्र के साथ वही हुआ। अब विश्वामित्र ने एकदम दृढ सकल्प किया कि किसी हालत मे भी क्रोध न आने देगे। ऐसा निश्चय करके खान-पान, वाणी, श्वास आदि सपूर्ण इद्रियो को उन्होने रोक लिया और अत्यत कठिन तपश्चर्या मे बैठ गये। इस प्रकार एक हजार वर्ष का तप उन्होने पूरा किया। देवताओ ने उनके तप को भग करने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सफल न हुए। तपस्या से विश्वामित्र का शरीर काठ की तरह हो गया था। उसमे केवल प्राण ही बचे थे। इद्रियो की गतिया एकदम रुक गई थी।

विश्वामित्र के तप की उग्रता से देव-गण छटपटाने लगे। वे ब्रह्मा के पास गये और हाथ जोडकर कहने लगे, "हे नाथ, हमसे अब कौशिक के तप की उग्रता नही सही जाती। हमने उनके तप को भग कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किंतु सभी व्यर्थ गये। अब उनके तप के सामने हम नही टिक सकते। वह जो वर मागते हो, उन्हे दे दीजिये।"

देवो के सहित ब्रह्मा पुन विश्वामित्र के पास आये और उन्हे आशीर्वाद दिया, "आज से तुम ब्रह्मर्षि बन गये, तुम्हारा कल्याण हो।"

विश्वामित्र अत्यत प्रसन्न हुए। कितु उन्होने ब्रह्माजी से कहा, "मै तो पूर्णरूप से तभी सतुष्ट होऊगा, जब वसिष्ठ स्वय, अपने मुह से कहे कि विश्वामित्र, तुम ब्रह्मर्षि बन गये।"

यह सुनकर वसिष्ठजी किंचित् मुस्कराये। पुराने झगडे उनकी स्मृति मे उभर आये। उन्होने कहा, "विश्वामित्रजी, आपने अपने महा कठोर तपो का फल प्राप्त कर लिया। आप पूर्णत ब्रह्मर्षि है, इसमे कोई शका नही।" वसिष्ठजी की स्वीकारोक्ति से सब लोग प्रसन्न हुए।

इस प्रकार विश्वामित्र महा प्रयत्नशील एव शक्तिशाली ऋषि थे।

× × ×

एक दिन वह बिना किसी पूर्व-सूचना के राजा दशरथ के दरबार मे उपस्थित हुए।

जिस प्रकार इंद्र अपने दरबार मे ब्रह्मदेव का स्वागत-सत्कार करता है, उसी प्रकार राजा दशरथ ने विश्वामित्रजी का स्वागत-सत्कार किया। राजा दशरथ ने विनम्र शब्दो मे कहा, "मुनिवर, मै कृतार्थ हुआ। मेरे पूर्वजो के पुण्यफल से आपका शुभागमन मेरे यहा हुआ है। रात्रि के बाद सूर्योदय की तरह आपके दर्शन से मैं बहुत ही प्रसन्न हू। राजा होकर अपने तपोबल से ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त करनेवाले आप-जैसे पुण्यात्मा का यहा आना कैसे हुआ? मुझे आज्ञा दीजिये। आप जो भी कहेगे, उसे करने के लिए मै प्रस्तुत हू। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है।"

"राजन्, ऐसे प्रिय वचन तुम्हारे ही मुह से निकल सकते है। तुम इक्ष्वाकु-कुल मे उत्पन्न हो। तुम्हारे गुरु स्वय वसिष्ठ है। तुम्हारे मुख से दूसरे वचन कैसे निकल सकते है? मेरे मागने से पहले तुमने वचन दे दिया है। उससे मैं तुष्ट होगया। अब बताता हू कि मैं किस उद्देश्य से यहाँ आया हू।"

इतना कहकर वह राजा दशरथ को अपने आगमन का प्रयोजन बताने लगे।

: ७ :

दशरथ से याचना

विश्वामित्र दशरथ से कहने लगे, "मैने व्रत-नियमादि के साथ एक यज्ञ-विधि प्रारभ कर रखी है, लेकिन जब भी विधि समाप्त होने का समय आता है, तभी मारीच और सुबाहु नाम के दो दुष्ट राक्षस कुछ-न-कुछ करके उसे बिगाड देते है। दोनो राक्षस बली, वीर और युद्धशास्त्र मे निपुण है। उन्हे मै तथा अन्य ऋषि लोग शाप देकर नष्ट कर सकते है, किंतु ऐसा करना नियम-पालन के विरुद्ध है। इसलिए बडी समस्या पैदा होगई है। हम लोग

परेशान है। ये राक्षस हमारे यज्ञ को रक्त और मास की वर्षा करके अपवित्र किया करते है। अपने वीर पुत्रो मे ज्येष्ठ राम को यदि आप मेरे साथ भेज दे तो मेरा कष्ट दूर हो जायगा। मेरी देखभाल मे राम के वीर्य और दिव्य बल दोनों मे वृद्धि ही होगी। इन राक्षसो को परास्त करके वह विजय और यश भी पायगे, यह निश्चय है। बस, राजकुमार को थोडे समय के लिए मुझे सौप दीजिये। मेरी प्रार्थना को न ठुकराइये। मै मागू, उससे पहले ही आपने मुझे वचन तो दे ही दिया है। उसे अब न टाले। कुमार के कल्याण का मै जिम्मेदार हू। यदि आपने यह कार्य किया तो तीनो लोको मे शाश्वत प्रतिष्ठा पायगे। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि वसिष्ठ और आपके सचिवो से भी मुझे समर्थन मिलेगा।"

अपने दरबार मे मुनि के आगमन से राजा बडे प्रफुल्लित हुए थे, किंतु उनकी बातो से वह इतने डरे और चिंतित हुए कि उसका वर्णन करना कठिन है। उनका शरीर कापने लगा। बडी इच्छा के साथ, वर्षो की प्रार्थना के बाद, उन्हे पुत्र-योग प्राप्त हुआ था। राम-जैसे पुत्र को राक्षसो का शिकार कैसे बना दिया जाय? यदि वह ऐसा करने से इन्कार करे तो ऋषि के कोप से कैसे बचे?

वह थोडी देर किंकर्तव्यविमूढ रहे। जब होश मे आये तब उन्होने विश्वामित्र से कहा, "मुनिवर, राम तो अभी पूरे सोलह साल का भी नही हुआ। राक्षसो के साथ लडने की क्षमता उसमे अभी कहा है? आप उसे ले जाकर क्या करेगे? युद्ध के छल-कपट से वह बिल्कुल अनभिज्ञ है। राक्षसो के युद्ध तो छल-कपट से भरे होते है। उनका सामना करने के लिए छोटे-से बालक को भेजना उचित नही है। मैं बैठा हू। मेरी चतुरग सेना है। यह सब छोडकर बालक राम को आप क्यो माग रहे है? कहा वे महाबली राक्षस और कहा बालक राम! आपके यज्ञ की रक्षा बालक थोडे ही कर पायगा! मुझे पहले आप अपने विरोधियो के बल, और शक्ति के बारे मे विस्तार से बताये। मै आपके साथ स्वय चलूगा। अपनी सेना को साथ ले चलूगा। आपको जो कुछ भी चाहिए, वह सब होगा। पहले शत्रुओ की ताकत से मुझे परिचित कराये।"

चर्चा के विषय को राजा दशरथ दूसरी ओर ले जाना चाहते थे।

विश्वामित्र ने दशरथ को मारीच और सुबाहु तथा उनके स्वामी रावण के विषय मे सबकुछ विस्तार से कह सुनाया। उन्होने राजा से पुन आग्रह किया कि राम को ही उनके साथ भेजे।

लेकिन दशरथ ने फिर प्रार्थना की, "कठिन व्रतो के फलस्वरूप मैंने राम को पाया है। उसे मै कैसे अलग करू? उसके वियोग से तो मैं मर ही जाऊगा। आप मुझे ले चलिये। मै अपनी सारी सेना के साथ आपकी मदद के लिए चलूगा। आपके वर्णन से तो लगता है कि यह कार्य मेरे लिए भी आसान नही है। जब ऐसी बात है तो भला मै राम को कैसे भेजू? यह मुझसे नही होगा।"

राजा दशरथ की इन प्रतिकूल बातो से विश्वामित्र का क्रोध घी से प्रज्वलित होमाग्नि की भाति बढने लगा। उन्होने कहा, "आप ही ने कहा था कि मैं जो कुछ मागगा, वही मुझे मिलेगा। अब आप उलटी बाते करने लगे है। आपका यह व्यवहार इक्ष्वाकु-कुल की शोभा नही बढा रहा। आप अपने कुल से द्रोह कर रहे है। यदि आपका यही निर्णय है तो मैं वापस जाता हू। असत्य-आचरण के साथ अपने मित्रोसहित आप सुखी रहे।"

मुनि के क्रोध से पृथ्वी कापने लगी। देवता लोग भी डरे। तब वसिष्ठ ने दशरथ को धीरे-से समझाया, "राजन्, आपने रघुकुल मे जन्म लिया है। आप धर्म के अवतार है। आपकी कीर्त्ति दुनिया के कोने-कोने मे छाई हुई है। एक बार वचन देकर उससे हटना आपके लिए अच्छा नही है। आपके समस्त पुण्य-कार्य इससे एकदम क्षीण हो जायगे। आप राम को मुनि के साथ अवश्य भेज दे। साथ मे लक्ष्मण भी जाय। इस बात की चिता न करे कि राम को युद्ध का बहुत अभ्यास नही है। विश्वामित्र के सरक्षण मे जबतक राजकुमार रहेगे, राक्षस उनका कुछ भी न बिगाड सकेगे। वे उन्हे छूने भी न पायगे। जिस प्रकार अग्नि का चक्र अमृत की रक्षा करता है, उसी प्रकार विश्वामित्र राम की रक्षा करेगे। मुनि की शक्ति को शायद आप पूरी तरह नही समझते है। यह तो साक्षात् शरीरधारी तप

है । वीरो मे वीर है । इन्हे आप ज्ञान और तप की पराकाष्ठा ही समझिये। कोई ऐसा अस्त्र नही, जिसे यह न जानते हो । इस विषय मे इनके समान तीनो लोको मे न कोई है, न कभी था, न भविष्य मे हो सकता है । यह त्रिकालज्ञ है । ऐसे वीर और तेजस्वी ऋषि के साथ आप राजकुमार को नि सकोच भेज दीजिये । ऋषि स्वय अपनी रक्षा कर सकते है । अपने यज्ञ की भी रक्षा कर सकते है । किंतु वह तो राजकुमार के भले के लिए ही यहा आये है और आपसे इनकी माग कर रहे है । उनकी माग पूरी कीजिये ।"

वसिष्ठ के इस उपदेश को सुनकर राजा दशरथ का मोह दूर हुआ और उन्होने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने का निश्चय किया।

दोनो राजकुमार राजा से विदा लेने आये । राजा, राजमाताओ तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने दोनो को मत्रोच्चार के साथ आशीष दी। मस्तक चूमकर कहा, "मुनिवर विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी आज्ञा का पालन करना ।"

और दोनो कुमारो के साथ विश्वामित्र विदा हुए ।

उस समय सुखद और मद पवन बह रहा था । आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई । आकाशवाणी सुनाई दी । दोनो धनुर्धारी राजकुमार दशरथ से विदा लेकर विश्वामित्र के साथ गभीर गति से चल पडे ।

इसका बहुत सुदर वर्णन वाल्मीकि ने आठ श्लोको मे किया है । तमिल कवि कबन ने भी अपने सुदर ढग से इस दृश्य को गाया है । महा-मुनि विश्वामित्र अपने युग के सुप्रसिद्ध योद्धाओ मे से थे, जिनमे एक नई सृष्टि ही रच डालने की क्षमता थी । ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व मे दोनो राजकुमार उनके दाए-बाए चलने लगे । दोनो की कटि मे तलवारे लटकी हुई थी, और वे कधो पर धनुष चढाये हुए थे । राक्षस-कुल का नाश करने के लिए अवतरित दोनो कुमार विश्वामित्र के साथ चलते हुए उस समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तीन सिरवाले दो नाग अपने फन फैलाकर चल रहे हो ।

८ :

राम का पराक्रम

विश्वामित्र और दोनो राजकुमारो ने पहली रात सरयूतट पर बिताई। सोने के पूर्व ऋषि ने राजकुमारो को कुछ मत्र सिखाये। मत्रो के नाम थे 'बला' और 'अतिबला'। आशीर्वाद देते हुए उन्होने कहा कि इन मत्रो को जो जानता है और जपता है, वह सकटो मे नही फसता।

तीनो अगले दिन बहुत सबेरे जगे। नित्य-कर्म किये। उसके बाद वहा से प्रस्थान करके वे अग देश के कामाश्रम नामक स्थान पर पहुचे। वहा के तपस्वियो से विश्वामित्र ने दशरथ-पुत्रो का परिचय कराया। उसके बाद उन्होने राम और लक्ष्मण को कामाश्रम की कथा सुनाई। यह वह स्थान है, जहा शकर भगवान ने वर्षो तक अखड समाधि लगाई थी। बुद्धिभ्रष्ट कामदेव ने देवाधिदेव शकर पर अपने बाण चलाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप महादेव के क्रोध का लक्ष्य बना और जलकर भस्म होगया। तभी से यह स्थान 'कामाश्रम' कहा जाता है।

विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने तपस्वियो का आतिथ्य स्वीकार किया और वह रात उन्होने आश्रम मे बिताई।

दूसरे दिन नित्य-कर्मो से निवृत्त हो वे गगा नदी के तट पर पहुचे। तपस्वियो ने इनके लिए एक नाव का प्रबध कर दिया था। नदी पार करते हुए उन्हे एक विचित्र आवाज सुनाई दी। राजकुमारो को कौतुहल हुआ। विश्वामित्र ने उन्हे समझाया कि यहा सरयू नदी गगा मे मिल रही है। यह विचित्र स्वर उसीका है। नदियो के सगम को राजकुमारो ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। परब्रह्म की उपासना करने के लिए नदी, आकाश, वृक्ष, पर्वत आदि सभी रम्य वस्तुए बडे अच्छे साधन है।

गगा को पार करके वे आगे चलने लगे। मार्ग एक सघन वन के बीच

मे से था। उसमे प्रवेश सुगम नही था। भयानक जानवरो की आवाजे हृदय को कपा देती थी।

मुनि ने राजकुमारो को बताया, "इस वन को 'ताडका-वन' कहते है। यह प्रदेश, जो इस समय इतना भयकर दिखाई दे रहा है, एक समय बडा सुदर और उपजाऊ प्रदेश था। एक बार वृत्रासुर को मार डालने से इद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इसमे उसने बहुत दु ख पाया। देवराज इद्र की इस पीडा को दूर करने के लिए देवो ने कई उपाय किये। पवित्र नदियो का पानी वे बडे-बडे पात्रो मे लाये। मत्रो का उच्चार करके उस पानी से उन्होने इद्र को स्नान कराया। स्नान से उसके शरीर का मल पृथ्वी मे पहुचा। उसी मल ने खाद के रूप मे परिणत होकर इस स्थान को बहुत ही उपजाऊ बना दिया।"

कैसी भी गली-सडी वस्तु हो—जैसे प्राणियो के मृत शरीर या दुर्गध-युक्त मल—ये सब पृथ्वी के अदर पडकर, मिट्टी के साथ मिलकर, मिट्टी ही बन जाते है, और उस मिट्टी से अमृत-तुल्य फल-फूल कद उपजने लगते है। यह धरती माता की कृपा-शक्ति ही है।

ऋषि ने बताया कि बहुत समय तक यहा के लोग सुखपूर्वक रहे। बाद मे सुद नामक यक्ष की पत्नी 'ताडका' ने अपने लडके मारीच के साथ इस प्रदेश की यह दुर्दशा कर डाली है। वे दोनो इसी वन मे वास करते हैं। उनके डर के मारे यहा कोई नही आता। इसीलिए यह वन ऐसा निर्जन होगया है। ताडका हजार हाथियो के समान बलशालिनी है। उसके अत्याचारो का पार नही। उसीके विनाश के लिए मै तुम्हे यहा लाया हू। ऋषियो को सतानेवाली यह राक्षसी तुमसे मारी जायगी, इसमे मुझे कोई शक नही। तुम्हारा कल्याण हो!

जब कभी भय या दु ख पैदा करनेवाली बात की जाय तो सुननेवालो को धैर्य देने के लिए 'भद्र ते' (तुम्हारा कल्याण हो) कहने की एक प्रथा है। यह वाक्य हम रामायण मे बार-बार देख सकते है।

विश्वामित्र से ताडका की बात सुनकर राम बोले, "आपने बताया

कि ताडका यक्ष-स्त्री है और यक्षो मे ऐसा देह-बल मैने आज तक नही सुना। मैने सोचा था कि केवल राक्षसो मे ही ऐसा अमानुषिक शरीर-बल होता है, फिर एक स्त्री मे ऐसी शक्ति कहा से आई ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। पितामह ब्रह्मा के वरदान से ही ताडका ऐसी बलवती होगई है। सुकेतु नामक एक यक्ष था। उसके कोई सतान नही हुई। सतानोत्पत्ति के लिए उसने तप किया। उसके सदाचारो से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया, 'तुम्हारे यहा एक सुदर लडकी का जन्म होगा, जिसमे एक हजार हाथियो की शक्ति होगी। किंतु तुम्हारे कोई पुत्र नही हो सकता।'

"इस वरदान से सुकेतु के एक अत्यत सुदरी कन्या पैदा हुई। बडी होने पर उसका सुद नामक यक्ष के साथ विवाह हुआ। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम मारीच रखा गया।

"एक बार सुद ने ऋषि अगस्त्य को छेडा-छाडा और उनके शाप से मारा गया। इनसे रुष्ट होकर ताडका और मारीच दोनो अगस्त्य मुनि पर आक्रमण करने लगे। देह-बल के घमण्डी उन दोनो को अगस्त्य ऋषि ने शाप दे दिया कि वे मनुष्य का मास खानेवाले राक्षस बन जाय। तबसे उन दोनो का सुदर रूप नष्ट होगया। राक्षसो के रूप मे वे दोनो यहा विचर रहे है। जैसे हिंस्र पशुओ का वध करना उचित है, इसी प्रकार इस राक्षसी को मार डालना भी आवश्यक होगया है। रक्षा करनेवालो का यह धर्म है। दुराचारी स्त्री को भी कभी-कभी मारना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए तुम चिंता न करो।"

देखने मे आता है कि सभी देशो मे, जहा तक हो सके, स्त्रियो को मृत्यु-दण्ड से बचाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु सब नियमो मे अपवाद होते है। इनके बिना लोक-कल्याण स्थापित नही हो सकता।

विश्वामित्र के वचनो को सुनकर राम ने विनयपूर्वक कहा, "हे गुरु, दरबार मे हमारे पिताजी ने हमे आदेश दिया है कि आपकी आज्ञा का पालन करे। इसलिए जैसा आप कहेगे, वैसा ही हम करेंगे। लोक-कल्याण

के लिए आपकी आज्ञा से मै ताडका को अवश्य मारूगा ।"

राम ने अपने धनुष को चढाकर उसे कधे तक खीचा। इससे भयकर नाद हुआ। उसकी प्रतिध्वनि आठो दिशाओ मे गूज गई। उस ध्वनि से वन के सारे प्राणी भयभीत होकर कापने लगे।

ताडका को बडा विस्मय हुआ कि किसकी ऐसी हिम्मत हुई होगी। जहा से आवाज सुनाई दी उसी दिशा मे वह चल पडी और महाक्रोध के साथ राम के ऊपर टूट पडी।

राम ने पहले सोचा था कि ताडका के हाथ-पैर काट डालना ही काफी होगा! वह ऐसा ही करने लगे। किंतु ताडका के आक्रमण अधिक-से-अधिक भयकर होते गए। यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। इधर-उधर भागकर ताडका ने उन पर पत्थरो की वर्षा शुरू की। लेकिन राम-लक्ष्मण ने चतुराई से अपने बाणो द्वारा पत्थरो को रोक लिया।

युद्ध चलता रहा। बीच मे विश्वामित्र ने राजकुमारो को सचेत किया, "देखो, रात होने लगी है। रात्रि के समय राक्षसो का बल बहुत बढ जाता है। इन पर दया करने से कोई लाभ नही। देर न करो।"

तब राम ने एक घातक बाण राक्षसी की ओर लक्ष्य करके चलाया। उससे ताडका का विशालकाय शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पडा।

राम के इस पराक्रम से देवो मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। मुनिवर विश्वामित्र के आनद का ठिकाना न रहा। उन्होने राम को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

ताडका के मरते ही उस वन का रग-रूप बदल गया। वह पहले जैसा रमणीक दिखाई देने लगा। दोनो राजकुमारो ने रात वही बिताई। दूसरे दिन प्रात काल दैनिक क्रियाओ से छुट्टी पाकर वे विश्वामित्र के आश्रम की ओर रवाना हुए।

: ६ :

दानवों का दलन

विश्वामित्र ताडका-वध से बहुत ही प्रसन्न थे। दशरथ-नदन श्रीराम को उन्होने अपने पास बिठाया। उनके सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, "राम, तुम्हारा कल्याण हो! मै तुमसे अत्यत प्रसन्न हू। मैं आज तुम्हे कुछ अस्त्रो की शिक्षा और देना चाहता हू।"

यह कहकर उन्होने श्रीराम को कई अस्त्रो के प्रयोग करने की विधि, उन्हे रोकने तथा वापस लाने आदि की क्रियाए, और उस समय जो मत्र बोले जाते है, वह सब-कुछ सिखा दिया। जिन देवताओ के अधीन ये अस्त्र थे, वे श्रीरामचद्र के सम्मुख प्रकट हुए और यह कहकर कि "आप जब बुलायगे, हम आपकी सेवा मे उपस्थित हो जायगे" उनसे विदा हो गए। श्रीराम ने इन सब अस्त्रो की प्रयोग-विधि अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी सिखा दी।

विश्वामित्र ने फिर इस बात की परीक्षा कर ली कि राम ने अस्त्र-विद्या का ज्ञान ठीक तरह से प्राप्त कर लिया है या नही। सतुष्ट होकर वह राम से बोले "वत्स, तुम इन अस्त्रो के बल से देव, असुर, गधर्व, आदि सबको पराजित कर सकोगे।"

तीनो जने अब फिर आगे बढे। कुछ दूर आगे चलने पर राम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "सामने यह जो पहाड की सुदर तराई दिखाई दे रही है, क्या यही वह जगह है, जहा हमे पहुचना है? आपके यज्ञ मे बाधा डालनेवाले दुरात्मा लोग कौन है और कहा है? कृपया बताइये। उन्हे मारने के क्या उपाय है, यह भी मुझे समझा दीजिये?" श्रीराम उन दुष्टो का दलन करने के लिए आतुर हो रहे थे।

"हा वत्स, हम वही पहुच रहे है। वही पर एक समय श्रीमन्नारायण स्वय तप कर चके है। महाविष्णु ने इसी जगह पर वामन-रूप धारण किया

था। यह जगह तब से सिद्धाश्रम कही जाती है।" विश्वामित्र मुनि ने बताया।

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था। विरोचन का पुत्र था महाबली। असुर राजा बली का प्रताप सब जगह व्याप्त था। उसका राज्य सब जगह फैला हुआ था। यहा तक कि इद्र के राज्य तक भी उसका विस्तार हो गया था।

इद्र के माता-पिता कश्यप मुनि और अदिति देवी दोनो बली राजा के पराक्रमो से घबराने लगे। उन्होने महाविष्णु को लक्ष्य करके तप किया और याचना की, "हे लोकनाथ, आप हमारे पुत्र-रूप मे पैदा हो और इद्र के अनुज बनकर इद्र तथा दूसरे देवो की इस महाबली से रक्षा करे।" महाविष्णु ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और वामन-रूप मे अदिति के पुत्र-रूप मे पैदा हुए।

महाबली ने एक बार एक यज्ञ किया। उसमे छोटे-से ब्रह्मचारी वामन भी पहुच गए। असुरो के गुरु शुक्राचार्य ने ताड लिया कि यह नन्हे-से ब्रह्मचारी कौन है और उनके आने मे कोई-न-कोई विशेष बात होगी। उन्होने राजा बली को सचेत किया और कहा कि वामन ब्रह्मचारी कोई भी चीज मागे, उसे कुछ न दिया जाय। किंतु राजा बली ने अपने गुरु से कह दिया, "यदि भगवान विष्णु मेरे द्वार पर याचक बनकर आये हो, तो उससे बढकर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है? उन्हे याचना करने दीजिए।"

नन्हे-से वामन ने याचना की, "मै तीन डग चलूगा, उन तीन डगो मे जितना प्रदेश समायेगा, उतना प्रदेश मुझे दान कर दिया जाय। मुझे और कुछ नही चाहिये।

राजा ने कहा, "स्वीकार है।"

वामन ने त्रिविक्रम का बृहद् रूप धारण कर लिया। उनके पहले डग मे सारी पृथ्वी समा गई। दूसरे मे समस्त आकाश आगया। दानी महाबली नतमस्तक हाथ जोडकर बैठा था, भगवान ने अपना तीसरा डग उसके सिर पर रखा। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि भक्त का सिर इस ब्रह्माण्ड के विस्तार के समान है। तब से सात चिरजीवी पुरुषो मे महाबली भी एक होगया।

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को यह कथा सुनाई और कहने लगे,"इसी पुण्य प्रदेश मे, जहां श्रीमन्नारायण तप मे लीन रह चुके हैं, और जहा कश्यप मुनि ने देवो की रक्षा के लिए वामन को जन्म दिया, मै रहता हू। मेरा आश्रम यहीपर है। राक्षस लोग मेरे हवन-यज्ञादि कर्मो मे विघ्न डालकर मुझे परेशान करते रहते है। अब चूकि तुम आ गए हो, उनका अत अनिवार्य समझना चाहिए।"

जब तीनो आश्रम मे पहुचे तो वहा के तपस्वी लोग बहुत प्रसन्न हुए। सबने एक-एक करके मुनि को प्रणाम किया। राजकुमारो का भी खूब स्वागत-सत्कार हुआ।

लेकिन श्रीरामचद्र तो राक्षसो का दलन करने को आतुर हो रहे थे। उन्होने विश्वामित्रजी से विनयपूर्वक कहा, "आप आज ही यज्ञ-कार्य मे प्रवृत्त हो जाइये।"

विश्वामित्रजी ने श्रीराम का कहना स्वीकार कर लिया। यज्ञ-विधि से पूर्व जो दीक्षा ली जाती है, मुनि ने वह उसी रात ले ली।

दोनो कुमार दूसरे दिन बडी जल्दी ही उठ बैठे। यज्ञशाला मे ऋषि बैठे हुए थे। श्रीराम ने उनसे पूछा,"राक्षस लोग कब दिखाई देगे? हमसे कोई चूक न हो जाय, इसलिए हमे उनके सबध मे सब-कुछ बता देने की कृपा करे।"

वहा उपस्थित तपस्वी लोग युवा रामचद्र की बाते सुनकर बडे प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "हे राजकुमार, विश्वामित्रजी मौन धारण कर चुके है। इसलिए वह अभी छह दिन नही बोलेगे। छह दिन और छह रात तुम दोनो भाई एकदम जागृत रहकर यज्ञ की रक्षा करो।"

दोनो तरुण राजकुमार धनुष-बाण लिये छह दिन बिना विश्राम के यज्ञशाला की रखवाली करते रहे। छठे दिन सुबह राम ने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा, "आज हमे बहुत सावधान रहना चाहिए। मुझे लगता है कि आज राक्षस अवश्य आयेगे।"

राम ने जैसे ही यह कहा कि अग्निकुण्ड मे अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

अग्निदेवता को पता चल गया था कि राक्षस आकाश मे मडराने लगे है। यज्ञ-विधिया क्रम से चल रही थी। तभी एकाएक ऊपर से किसी के गर्जन-का-सा शोर हुआ। राम ने सिर उठाकर देखा। मारीच और सुबाहु अपने परिवार-सहित आकाश से अपवित्र मास और रुधिर यज्ञवेदी पर फेकने लगे थे। काले बादलो की तरह राक्षस लोग आकाश मे छाये हुए थे। राम ने मानवास्त्र उठाया और लक्ष्मण से बोले, "तुम देखते रहो कि क्या होता है।"

ज्योही वह अस्त्र मारीच के लगा, वह दुष्ट उसकी मार से वहा से सौ योजन दूर समुद्र-तट पर जीवित ही जा गिरा।

श्रीराम ने उसके बाद आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके लगते ही सुबाहु वही ढेर होगया। अन्य राक्षस भी राम के अस्त्रो से निर्मूल होगये।

आकाश फिर से उज्ज्वल हो गया। यज्ञ-विधि मे उत्पात करने वाले राक्षस मारे गये और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। विश्वामित्र बडे प्रसन्न थे। कहने लगे, 'मै राजा दशरथ का बहुत ही आभारी हू। तुम दोनो ने उनका काम कर दिया। तुम दोनो की शक्ति बडी सराहनीय है। यह आश्रम आज से फिर सिद्धाश्रम बना।" इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र ने राजकुमारो को आशीर्वाद दिया।

उस रात दोनो भाई सिद्धाश्रम मे खूब आराम से सोये और सात दिनो की अपनी थकान दूर की।

सवेरा हुआ। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण ने ऋषि के चरण छुये और पूछने लगे, "अब आगे क्या आज्ञा है?"

विश्वामित्र रामावतार के रहस्य को और उन दैवी अस्त्रो की शक्ति को जानते ही थे। फिर भी राम और लक्ष्मण के वहाँ आने से जो सफलता मिली उससे वह फूले न समाये। श्रीरामचद्र का और क्या सत्कार किया जाय, वह इसका विचार करने लगे। राजकुमार का सीताजी के साथ पाणिग्रहण कराने का काम अभी शेष था। यह सोच सभी तपस्वियो ने और विश्वामित्र ने रामचद्रजी से कहा, "अब हम सब मिथिलापुरी चल रहे है। वहा राजश्रेष्ठ जनक एक अनुष्ठान करने वाले है। हमे उसी मे सम्मिलित

होना है। आप दोनो राजकुमार हमारे साथ चलेगे। राजा जनक के अद्भुत धनुष को भी रामचद्र देखे, तो अच्छा है।" और दूसरे दिन राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी की ओर चल दिये।

: १० :

भूमि-सुता सीता

विदेह देश के राजा जनक अपनी प्रजा का पालन बडे न्यायपूर्वक करते थे। वह महाराज दशरथ के पुराने मित्र थे। एक बार दशरथ ने अपने एक यज्ञ मे बहुत-से राजाओ को आमत्रित किया था। अन्य राजाओ के पास तो दूत लोग निमत्रण लेकर गये थे, किंतु राजा जनक को मत्री लोग स्वय जाकर आमत्रित करे, ऐसा राजा दशरथ का आदेश था। इससे हम समझ सकते है कि राजा जनक का महाराज दशरथ कितना आदर करते थे। जनक केवल शूरवीर ही नही थे, वह सभी शास्त्रो के ज्ञाता, वेद-वेदागो मे प्रवीण, नियमपालक और ज्ञानी पुरुष भी थे। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कर्मयोग से सिद्धि प्राप्त करनेवालो मे जनक राजा का उदाहरण दिया था। जब देवी सीता ने उनको पिता-रूप मे स्वीकार किया तो, फिर उनके विषय मे अधिक कुछ कहने को नही रहता।

राजा जनक ने एक बार एक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिए उपयुक्त स्थान पसद किया। जमीन को जोतकर नरम और समतल किया गया। हल उन्होने स्वय चलाया। जिस समय वह हल चला रहे थे, उन्हे अत्यत तेजोमय और सुदर बालिका मिट्टी मे लिपटी हुई दिखाई दी। निस्सतान राजा जनक के मन मे सहसा यही भावना हुई कि धरती माता ने दया करके उन्हे यह कन्या प्रदान की है। बडे आनन्द के साथ उन्होने उस नन्ही बालिका को गोद मे उठा लिया और अपनी रानी के पास ले जाकर बोले, "देखो, यह कैसा अनमोल रत्न हमे प्राप्त हुआ है। यज्ञभूमि मे मैंने

इसे पाया है। आज से हम सतानवान होगये।"

रानी ने बालिका को छाती से लगा लिया। उन्हे ऐसा लगा जैसे वह उनकी कोख से ही पैदा हुई हो।

भूदेवी के सौदर्य को हम पूरी तरह से देख नही पाते। श्यामल शस्य जब सूर्य की किरणो से प्रभासित होता है, तब हम उसका यत्किचित सौदर्य ही देख पाते है। देवी सीता जब राजा जनक के हल के फल से ऊपर उठी, तब के सौदर्य का वर्णन करना कठिन है। कवि कबन ने गाया है कि क्षीर-सागर से उत्पन्न महालक्ष्मी भी यदि उस समय सीतादेवी का सुदर रूप देखती, तो विस्मित हो जाती। इस दैवी बालिका का राजा जनक और उनकी रानी बडे ही यत्न और प्यार से पालन-पोषण करने लगे।

कन्या सीता अब विवाह योग्य होगई। जनक को चिता होने लगी कि अब तो यह बडी हो रही है। इसे अलग कैसे किया जायगा ? ऐसी कन्या के लिए योग्य वर कहाँ से मिलेगा ? वरुण ने राजा जनक को तूणीर-सहित एक रुद्र-धनुष उपहार मे दिया था। इस रुद्र-धनुष को शक्तिवान, तेजस्वी और अति बली पुरुष ही हिला-डुला सकता था। राजा ने सोचा कि जो इस धनुष का सधान कर सकेगा, उसी के साथ अपनी पुत्री का विवाह करूगा। यह सोचकर उन्होने घोषणा की कि जो कोई राजकुमार इस पुरातन, दैवी रुद्र-धनुष को उठायेगा और इसे झुकाकर जो इसकी प्रत्यचा चढायेगा, उमी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा।

राजकुमारी सीता की ख्याति तो सब जगह फैली हुई थी ही। उसे पाने की इच्छा से कई राजा और राजकुमार जनक के दरबार मे आये किंतु वे मभी धनुष को देखकर ही अवाक् होकर चले गये।

: ११ :

सगर और उनके पुत्र

विश्वामित्र के नेतृत्व मे तपस्वीगण बैलगाडियो मे बैठकर मिथिलापुरी की ओर रवाना हुए। आश्रम के पक्षी और मृग भी उनके साथ-साथ चलने लगे। पर विश्वामित्र ने उन्हे स्नेह से रोक दिया।

जब ये लोग शोन नदी पर पहुँचे, तब शाम होगई थी। सबने रात वही बिताई। विश्वामित्र ने राजकुमारो को कई प्राचीन कथाएँ सुनाई। दोनो राजकुमारो को वे कथाएँ बहुत अच्छी लगी। सुबह सब उठे और नदी पार की। नदी गहरी नही थी, इसलिए चलकर ही पार कर ली। मध्याह्न के समय गगा-तट पर पहुँचे। सबने गगाजी मे स्नान किया। देवताओ, ऋषियो और पितृगण को याद करके तर्पण किया। वहाँ कुछ भोजन भी तैयार किया गया। पूजा करके भोजन किया गया। दोपहर को सब विश्वामित्रजी के चारो ओर बैठ गये।

राजकुमारो ने विश्वामित्र से कहा, "मुनिवर, हम गगाजी का वृत्तात सुनना चाहते है। हमे वह सुनाने की कृपा करे।"

विश्वामित्रजी ने गगावतरण की कथा प्रारभ की

पर्वतराज हिमवान के सर्वलक्षण-सपन्न दो पुत्रिया थी। बडी पुत्री को देवो ने मागा। हिमवान ने उसे आकाश भेज दिया। छोटी उमा शकर को प्राप्त करने के लिए उनका ध्यान करके कठोर तप मे लीन होगई। उसमे वह सफल हुई। महादेव शकर ने उमा से पाणिग्रहण कर लिया। हिमवान की दोनो लकडियो ने इस तरह पवित्र स्थानो को प्राप्त कर लिया।

पापमोचिनी गगा उन दिनो आकाश मे ही वास करती थी।

इधर अयोध्या के राजा सगर सतान-प्राप्ति की अभिलाषा से अपनी दोनो रानियो केशिनी और सुमति के साथ हिमालय मे तपस्या कर रहे थे। भृगु मुनि राजा के तप से प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि उन्हे

पुत्र-लाभ होगा। उन्होने कहा, "हे वीर, तुम्हे पुत्र और यश दोनो प्राप्त होगे। तुम्हारी पत्नियो मे से एक के तो एक ही पुत्र होगा। उससे तुम्हारा वश बढेगा। दूसरी से साठ हजार पराक्रमी पुत्र पैदा होगे।"

राजा ने मुनि को प्रणाम किया और पूछा, "स्वामिन्, दोनो रानियो मे, किसके एक लडका होगा और किसके गर्भ से साठ हजार राजकुमार उत्पन्न होगे?"

ऋषि ने उत्तर दिया, "जिसके एक लडका होगा, उसके द्वारा वश की वृद्धि होगी, और दूसरी के साठ हजार राजकुमार खूब बल और यश प्राप्त करेगे। दोनो रानिया स्वय निर्णय कर ले कि उन्हे किस प्रकार की सतति चाहिए।"

लोगो की रुचिया और इच्छाए भिन्न-भिन्न होती है। केशिनी ने कहा कि उसे एक ही पुत्र पसद है, जिससे वश चलता रहे। सुमति ने कहा कि मुझे तो हजारो पुत्र पसद है, जो नामी और पराक्रमी हो। मुनि ने आशीर्वाद दिया कि उनकी इच्छाए पूरी हो। राजा सगर प्रसन्न मन से अपनी पत्नियो के साथ अयोध्या लौट आये।

समय होने पर केशिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम असमजस रखा गया। सुमति के गर्भ से एक पिण्ड पैदा हुआ। उसमे से ऋषि के वचनानुसार साठ हजार पुत्र निकले। दाइयो ने इन हजारो कुमारो के पालने का काम अपने हाथ मे ले लिया और भली प्रकार उन्हे सम्हाला। ये साठ हजार राजकुमार युवावस्था को पहुचे। बडे तेजस्वी हुए। केशिनी का पुत्र असमजस जैसे-जैसे बढता गया, वैसे-वैसे क्रूर और मूर्ख बनता गया। नगर के खेलते-कूदते बालको को पकडकर नदी-नालो मे फेक देता और उन्हे तडपते देखकर तालिया बजाकर खुश होता था। ऐसे पागल राजकुमार को प्रजा कोसने लगी। राजा से लोगो ने प्रार्थना की कि असमजस को देश से बाहर निकाल दिया जाय। राजा क्या करता? मान गया। असमजस तो था क्रूर और पागल, किंतु उसके एक लडका पैदा हुआ, जसिका नाम था अशुमान। वह बडा सुशील, विवेकी और वीर था।

सगर राजा ने एक बार अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के घोडे की रक्षा अशुमान के जिम्मे थी। इद्र के मन मे खोट आया और एक राक्षस का वेश धरकर वह घोडे को चुराकर ले गया।

देवो को अश्वमेध-यज्ञ मे बाधा डालने की आदत पड गई थी। इसका कारण भी था। मनुष्य राजाओ के अश्वमेध-यज्ञ करने से इनको अपने पद का महत्त्व घट जाने का डर रहता था। किंतु विघ्नो के बावजूद यदि यज्ञ पूरा हो जाता तो देवतागणो को उसमे शामिल होकर हवि स्वीकार करनी ही पडती थी। उससे राजा को यज्ञ का फल मिल जाता था!

जब राजा सगर को पता चला कि उनका घोडा चुरा लिया गया है तो उन्हे बहुत बुरा लगा। उन्होने अपने साठ हजार पुत्रो को बुलाकर कहा, "जैसे भी हो, खोये हुए घोडे का पता लगाओ, चाहे सारे भूमण्डल का ही चक्कर क्यो न काटना पडे! यज्ञ का अश्व खो जाने से उससे सबधित जनो का अनर्थ हो सकता है, इसलिए पृथ्वी, पाताल, सब जगह जाकर खोज की जाय।" सभी राजकुमार चारो ओर खोज मे लग गये। बडा शोर मचा। लोगो को पकड-पकडकर पूछा जाने लगा कि घोडा किसने चुराया है।

लेकिन पृथ्वी पर कही भी घोडे का पता न चला। तब राजकुमारो ने धरती को खोदकर अदर घोडे की तलाश प्रारभ की। वहा उन्हे दिग्गज मिले। उन गजो को नमस्कार करके राजकुमार इधर-उधर घोडे को ढूढने लगे। ढूढते-ढूढते पाताल की पूर्वोत्तर दिशा मे उन्होने अपने घोडे को देखा। वही महाविष्णु कपिल भी समाधि लगाये बैठे थे। घोडा उनके पास ही चर रहा था। सगर-पुत्रो ने शोर मचाया, "देखो, कैसा चोर है, जो घोडे को चुराकर यहा छिपा रखा है और अब समाधि का ढोग कर रहा है।" इतना कहकर वे कपिलदेव पर टूट पडे।

समाधि-अवस्था से इस प्रकार जगाये जाने पर कपिलदेव ने आखे खोली। उनके मुह से एक हुकार निकली और उस हुकार से साठो हजार राजकुमार वही-के-वही जलकर भस्म होगये। यह इद्र की करतूत थी।

उसी ने घोडे को पाताल मे कपिल के पास छिपा दिया था। उसके इस कृत्य से सगर-पुत्र भस्म होगये।

: १२ :

गंगावतरण

राजा सगर चिन्ता मे पड गये कि अश्व की तलाश मे गये हुए उनके साठ हजार पुत्रो मे से कोई भी वापस क्यो नही आया। उन्होने काफी दिन प्रतीक्षा मे निकाले। अत मे अपने पोते अशुमान को बुलाकर कहा, "अभी तक तुम्हारे साठ हजारो चाचाओ का कोई पता नही चला। वे सब पाताल की ओर गये थे। तुम बडे वीर हो। कुशल योद्धा हो। हथियारबद फौज लेकर तुम उनकी खोज को जाओ। तुम्हारा मगल हो। तुम्हे सफलता मिले।"

जिस मार्ग से उसके हजारो चाचा नीचे गये थे उसी मार्ग से अशुमान पाताल गया। उसे भी दिग्गज मिले। उन्हे प्रणाम करके अशुमान ने अपने वहा पहुचने का हेतु बताया। दिग्गजो ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि उसे कार्य मे सिद्धि प्राप्त होगी। इससे अशुमान का उत्साह बढा। वह आगे चला। एक स्थान पर उसने राख का एक बडा ढेर देखा और पास मे अपने अश्व को भी चरता हुआ पाया। यह सब देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ।

वही उसकी माता सुमति के भाई गरुड भी दिखाई दिये। वह बोले, "अशुमान, घबराओ नही। यह राख तुम्हारे चाचाओ की है। कपिलदेव की हुकार से उनकी यह गति हो गई है। हे वत्स, अपने घोडे को वापस ले जाओ और अपने पितामह से कहो कि यज्ञ पूरा करे। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पितृगण सद्गति पाये तो इसके लिए स्वर्गलोक से गगा को पृथ्वी पर लाना होगा। गगाजल मे यदि यह भस्म प्रवाहित कर दी जाय तो सगर-पुत्रो की सद्गति हो जायगी।"

अशुमान घोडे को लेकर तेजी से अयोध्या पहुचा और अपने पितामह सगर को सारा वृत्तात कह सुनाया।

अपने प्यारे पुत्रो का दु.खद अत सुनकर राजा सगर शोक-विह्वल हो उठे। फिर भी यज्ञ का घोड़ा वापस मिल गया था, इसलिए उन्होने किसी तरह यज्ञ-विधि पूरी की। लेकिन वह सदा यही सोचते रहे कि गगा को कैसे आकाश से पाताल मे लाया जाय? इसी चिता मे वह दिन-पर-दिन क्षीण होते गये और एक दिन पुत्रो के शोक मे उन्होने अपने प्राण छोड दिये।

रामायण मे कहा गया है कि सगर ने तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। इन सख्याओ से हमे घबराना नही चाहिए। यहा सहस्र का अर्थ अनेक लेना चाहिए। इसी प्रकार साठ हजार पुत्रो का अर्थ भी यही है कि उनके अनेक पुत्र हुए थे। यदि कोई इन सख्याओ को यथार्थ भी माने तो कोई विशेष बात नही है।

सगर के बाद अशुमान, अशुमान के बाद दिलीप, दिलीप के बाद भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। अशुमान और दिलीप दोनो बडे नामी राजा हुए थे। प्रजा उन्हे प्यार करती थी। किंतु वे दोनो ही राजा अपने दिल मे इस दु ख को लेकर मरे कि उनसे अपने पितृव्यो को सद्गति प्राप्त कराने के लिए स्वर्ग से गगाजल लाने का काम नही हो सका।

दिलीप के बाद उनके पुत्र भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। उनके कोई सतान नही थी। सतान-प्राप्ति के लिए और गगा को पृथ्वी पर लाने के लिए भी उन्होने तपश्चर्या करने का निश्चय किया। राज्य का भार अपने मत्रियो को सौपकर वह गोकर्ण पर पहुचे और दीर्घ तपश्चर्या मे लीन हो गये। सूर्य की गरमी और अपने चारो ओर आग की तपन सहन करते हुए भगीरथ ने अनेक वर्ष तक उग्र तप किया। वह महीने मे केवल एक बार थोडा-सा भोजन करते थे। आजकल भी यदि कोई कार्य-सिद्धि के लिए अटूट यत्न करता है तो उसे भगीरथ-प्रयत्न कहते है।

प्रजापति ब्रह्मा ने भगीरथ की तपस्या से सतुष्ट होकर दर्शन दिये और

पूछा, "क्या चाहिए ?"

भगीरथ ने कहा, "भगवन्, यदि आप मेरे ऊपर दया करना चाहते है तो मुझे पुत्र-धन दीजिए, जिससे हमारा वश चलता रहे। दूसरी बात यह कि आकाश से गगा नीचे की ओर प्रवाहित हो, जिससे मै अपने पूर्वजो की भस्म को उसमे प्रवाहित कर सकू और वे सद्गति प्राप्त करे। यही मेरी प्रार्थना है। अपने कुल के उद्धार के लिए आपसे मै ये दो वर माग रहा हू। मेरे ऊपर कृपा करे।"

ब्रह्मा बोले, "तुमसे समस्त देवता प्रसन्न है। तुम्हारी मागे पूरी हो जायगी। किंतु एक बात है। जब ऊपर से गगा नीचे की ओर आयगी तो उसका वेग इस पृथ्वी से कैसे सहन होगा ? केवल उमापति शकर ही गगा का वेग सहन कर सकते है, इसलिए तुम शकर का ध्यान करो।"

भगीरथ ने हिम्मत न हारी। भगवान शिव को लक्ष्य करके उन्होने अनेक वर्ष खान-पान के बिना कठोर तपश्चर्या की। महादेव प्रसन्न हुए, भगीरथ के सामने आये और कहने लगे, "तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। गगा जब नीचे की ओर बहने लगेगी तो मै उसे सम्हाल लूगा।"

महादेव ने जब यह आश्वासन दे दिया तो ब्रह्मा के आदेशानुसार स्वर्ग से गगा नीचे की ओर भयकर वेग के साथ उतरी। भगवान शिव जटाए खोले खडे थे। गगा बडे जोर से उनके सिर पर गिरी। उसने सोचा कि वह शकर को भी अपनी शक्ति से पाताल मे धकेल देगी। पर शिवजी के सामने उसका गर्व कैसे चलता ! गगा के पूरे वेग और प्रवाह को भगवान शिव ने अपनी जटाओ मे समेट लिया। गगा ने जटा-जाल से बाहर आने का बडा प्रयत्न किया, किंतु वह निष्फल रही।

इधर भगीरथ चिंता मे पड गये कि यह क्या हुआ ? गगा का प्रवाह दिखाई ही नही दे रहा था ! उन्होने फिर शकर का ध्यान करके तप प्रारभ किया। महादेव का हृदय पिघला और उन्होने गगा को बिंदु-रूप मे धीरे-धीरे छोडा। वहा से वह सात शाखाओ मे बडी नम्रता के साथ प्रवाहित हुई। उसकी तीन शाखाए पूर्व की ओर और तीन शाखाए

पश्चिम की ओर बहने लगी । सातवी शाखा भगीरथ के पीछे-पीछे चली ।

भगीरथ के आनद का ठिकाना न था । अपने पूर्वजो के उद्धार की कल्पना से वह फूले न समाते थे। वह विजय-भाव से रथ मे बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे गगा की धारा उछलती-कूदती बढने लगी। जल के जीवो से भरी हुई गगा बिजली की तरह चमकती हुई दिखाई देने लगी। इस मनोहर दृश्य को देखने के लिए आकाश मे देव और गधर्व इकट्ठे होगये । कही उसकी गति धीमी होती थी तो कही तीव्र, कही वह अधोमुख हुई तो कही उन्नत-मुख। उसका यह मनमोहक नृत्य राजा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे होता जा रहा था । उसे देखने के लिए देव और गधर्व भी साथ-साथ चले जा रहे थे। मार्ग मे जह्नु ऋषि हवन कर रहे थे । मस्त गगा ने उनकी परवाह न की और उसने उनकी यज्ञ-अग्नि को बुझा डाला । जह्नु को बडा बुरा लगा । उन्होने गगा के सारे प्रवाह को हथेली मे लेकर आचमन कर डाला ।

भगीरथ ने पीछे मुडकर देखा तो वह चौक पडे । उन्होने देवर्षिगण के साथ जह्नु को प्रणाम किया और गगा को क्षमा करके बाहर छोडने की प्रार्थना की, जिससे उनके पूर्वज मुक्ति पा सके। ऋषि को दया आई । उन्होने अपने दाहिने कान के द्वारा गगा को बाहर छोड दिया। देवगण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने गगा से कहा, "तुम अब जह्नु की पुत्री समझी जाओगी । हम तुम्हे 'जाह्नवी' नाम देते है ।" उसके बाद बिना किसी प्रकार की रुकावट के गगा समुद्र मे जा मिली ।

सगर-पुत्रो के पृथ्वी खोदने के कारण समुद्र का नाम सागर हुआ । वहा से गगा पाताल मे, जहा सगर-पुत्रो की भस्म पडी हुई थी, पहुची । भगीरथ ने अपने पितृजनो का उदक-कर्म किया और उन्हे उत्तम लोक मे पहुचा दिया ।

भगीरथ के इसी प्रयत्न के कारण गगाजी का नाम 'भागीरथी' पडा है।

विश्वामित्र कहने लगे, "हे राम, तुमने अपने पूर्वज सगर-पुत्रो से खुदे हुए सागर का इतिहास और भगीरथ के कठोर प्रयत्नो से लाई गई गगा का

वर्णन सुना। तुम्हारा कल्याण हो। अब शाम होगई। तुम्हारे पूर्वज-राजा के यत्न से पृथ्वीवासियो को यह गगा मिली है। चलो, इसमे उतरकर सध्या-वदन करे।"

: १३ :

अहल्या का उद्धार

विश्वामित्रजी के सब सहयात्री एक दिन विशाला नगरी मे ठहरे। दूसरे दिन प्रात काल उठकर वे मिथिला को चल पडे।

जब जनक की राजधानी थोडी ही दूर रही तो उन्होने राह मे एक रमणीय आश्रम देखा। आश्रम अत्यत सुदर होने पर भी निर्जन दिखाई पड रहा था।

श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "इस आश्रम मे कोई तपस्वी क्यो दिखाई नही देता ? यह प्रदेश इस प्रकार निर्जन क्यो है ?"

मुनि कहने लगे, 'तुमने ठीक प्रश्न किया। यहाँ का वृत्तात तुम्हे अवश्य जानना चाहिए। यह आश्रम ऋषि गौतम का है, पर इस समय इसको शाप लगा है। पहले गौतम यही रहा करते थे।"

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने बताया कि बहुत दिनो पहले गौतम और उनकी पत्नी अहल्या यहा आनदपूर्वक रहा करते थे। उन लोगो के नित्य नियमो मे, तप और यज्ञ मे कोई रुकावट नही थी। लेकिन एक दिन उनके घर मे एक दुर्घटना होगई। अहल्या का रूप तीनो लोको मे प्रसिद्ध था। एक दिन जब ऋषि कुटी से बाहर थे तभी इद्र मोहाध होकर गौतम ऋषि के वेश मे उनके आश्रम मे घुस गया। उसने अहल्या से अपनी इच्छा प्रकट की। अहल्या को पता चल गया कि यह देवेद्र है, मुनि नही, तो भी उसे अपने सौदर्य पर घमड हो आया और वह बुद्धि खो बैठी। चरित्र-भ्रष्ट होगई। जब होश मे आई तो इद्र को चेताया, "तुम अब यहाँ से शीघ्र निकल

जाओ। ऋषि के लौटने का समय होगया है।" इद्र उसको धन्यवाद देकर चलने ही लगा था कि गौतम मुनि स्नान-जपादि से निवृत्त होकर घर लौटे।

गौतम मुनि का तपोबल इतना प्रखर था कि उनसे देव-दानव सभी डरते थे। स्नान करके शरीर को गीले कपडो से लपेटे, तेजोमय मुखमडल के साथ, हाथ मे होम के लिए दर्भ और समिधाए लिए वह घर आ रहे थे। द्वार पर आते ही उन्होने इद्र को अपने वेश मे देखा। गौतम मुनि को देखकर इद्र सिटपिटा गया और डर के मारे कापने लगा। दीन होकर वह मुनि के चरणो मे गिर पडा।

मुनि ने इद्र से कहा, "मूर्ख, पापी, तूने यह कैसा अनिष्ट कार्य कर डाला? मेरे आश्रम मे, मेरा रूप धारण करके, यह क्या पापाचरण तूने किया? जा, आज से तू नपुसक बन जा!"

क्रुद्ध मुनि के शाप से इद्र बहुत पछताया। देवगण बहुत दुखी हुए। मुनि ने अपनी पत्नी को प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया, "तुम केवल हवा के आधार पर बिना कुछ खाए-पीए अदृश्य बनी रहो और राख के ऊपर सोई रहो। तुम कई वर्ष इसी अवस्था मे पडी रहोगी। एक दिन काकुत्स्थ रामचद्र यहा पर आयगे। आश्रम मे उनका पदार्पण होने से ही तुम्हारा पाप छूटेगा। तुम उनका स्वागत तथा अतिथि-सत्कार करना। तब तुम फिर से शाप-मुक्त होकर अपने स्वाभाविक गुण और रूप को पा जाओगी। और तब हम फिर साथ रहने लगेगे।"

विश्वामित्र कहने लगे, "इस प्रकार गौतम मुनि ने अपनी पथभ्रष्ट पत्नी को त्याग दिया और हिमाचल की ओर तप करने चले गए। अब चलो, हम आश्रम मे प्रवेश करे। असहाय अहल्या को अब उसके दु ख से मुक्ति मिले।"

ऋषि की आज्ञानुसार रामचद्र ने आश्रम मे पदार्पण किया। दूसरे लोग भी उनके साथ हो लिए। राम के पाद-स्पर्श से राख मे छिपी अहल्या शाप से मुक्त होकर अतुल शोभा के साथ आ खडी हुई।

कहा जाता है कि सृष्टिकर्त्ता ने दुनिया-भर की सुदरियो का सौंदर्य

एकत्र करके उसे अहल्या मे डाल दिया था। अहल्या कई वर्ष तक प्रायश्चित्त करती रही थी। उसने अपने को बेल-पत्तो से छिपा लिया था। शर्म से वह किसी के सामने नही आती थी। राम जब आश्रम मे आए तब वह हिम से आच्छादित चद्रमा की तरह, धूम्र से आवृत्त अग्नि की तरह और विचलित जलाशय मे सूर्यबिब की तरह दीख रही थी। राम और लक्ष्मण ने शाप-मुक्ता देवी को चरण छूकर प्रणाम किया। ऋषि-पत्नी ने भी बडे आनद के साथ दशरथ-नदन का अर्घ्य-पाद्यादि से सत्कार किया। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। महापाप से छूटकर अहल्या फिर से देवकन्या की तरह शोभित हो उठी। उसी समय गौतम मुनि भी वहा वापस आ पहुचे।

अहल्या की कथा रामायण मे इसी प्रकार दी गई है। पुराणो मे इस कथा का वर्णन किंचित भिन्न रूप मे किया गया है, पर उससे हमे परेशान होने की आवश्यकता नही।

यहा कुछ रुककर आजकल के लोगो को, जो रामायण, महाभारत आदि पढते है, दो-चार शब्द कहना चाहता हू।

हमारे पुराणो मे देव, असुर और राक्षसो का बार-बार जिक्र आता है। राक्षसकुल के लोग अधर्म से न डरनेवाले दुराचारी होते थे। असुर भी वैसे ही होते थे। कभी-कभी इन दुष्ट-कुल के लोगो मे भी एकाध अच्छा सदाचारी ज्ञानी पैदा हो जाता था। उसी प्रकार अच्छे कुल मे भी कभी-कभी कोई दुराचारी पैदा हो जाता था। किंतु सामान्य रूप से राक्षस और असुर दुष्ट कर्मो मे ही खुश होते थे।

अपने को पडित माननेवाले कुछ लोग यह समझने लगे है कि हमारे रामायणादि पुराणो मे दक्षिणवासी द्रविडो को राक्षस और असुर कहा गया है। यह कथन एकदम निराधार और मूर्खतापूर्ण है। देवो का यह गुण बताया गया है कि वे धर्म मे विचलित होने से डरते थे। उनका प्रधान काम असुरो को बढने से रोकने का और उनको जीतने का था। राक्षस लोग तप करके असाधारण शक्ति और वर प्राप्त कर लेते थे। वे उसका दुरुपयोग करने से लज्जित नही होते थे। उस समय उन्हे हराने के लिए

देव कुछ ऐसे उपाय करते थे, जो कभी-कभी एकदम धर्मपूर्ण नही कहे जा सकते थे। पर आमतौर से देव धर्म से अलग मार्ग ग्रहण नही करते थे। उनमे कभी कोई दुराचारी निकल आता था तो उसे देव समझकर क्षमा नही मिल सकती थी। उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पडता था।

चूकि सामान्य रूप से देव सदाचारी होते थे, इसलिए यदि उनसे कोई अपराध हो जाता था तो वह बहुत स्पष्ट दिखाई देता है, ठीक वैसे ही जैसे उजले कपडे पर कोई दाग एकदम दिखाई दे जाता है। यह स्वाभाविक है कि सदा दुराचार करने वाले राक्षसो का अपराध हमे, रगीन कपडो मे मैल की तरह, स्पष्ट दिखाई न दे।

दुराचारी लोगो के अत्याचारो को सहन कर लेना और धर्म-सकट मे कोई भला आदमी कुछ गलती कर बैठे तो उसको बहुत-से कटु वचन सुना देना स्वाभाविक है। किंतु वह न्यायपूर्ण नही हो मकता।

पुराणकर्त्ताओ ने कभी-कभी कुछ देवी-देवताओ को, इद्र को, रास्ता भूलनेवाला और गलतिया कर बैठनेवाला चित्रित किया है। इस पर हमे ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। उन्होने ऐसी कहानिया क्यो लिखी ? अच्छे-अच्छे लोगो के पाप-कर्मो मे प्रेरित होने के कारणो को हमे समझना चाहिए और सावधान रहना चाहिए। लोगो के मन मे विवेक, नम्रता और भक्ति पैदा करने के लिए वाल्मीकि जैसे पुराणो के लेखको ने हमारे सामने देवताओ की कुछ समस्याए और कुछ गलतिया बताई है। बात यही है। इसको न समझकर यदि हम टीका करने लग जाय कि "वाल्मीकि भी कैसे अजीब आदमी है कि रावण को तो महादुष्ट बता दिया और राम ने जब यही काम किया, या सीता ने ऐसा कहा, तो उसके लिए कुछ भी नही कहा", तो हम निरे मूर्ख साबित होगे।

वाल्मीकि ने हमे जीवन की समस्याओ को खूब विस्तार से बताया है। वह हमारे ही हित के लिए है। राम की कथा पहले-पहल उन्होने ही दुनियावालो को मुनाई है। उनके कथन से ही हमे रामायण व उमके कथा-पात्रो के गुण-अवगुणो का पता चला है। अन्य किसी ग्रथ से नही। हम

चाहे तो ईर्ष्या-रहित और शात चित्त से रामायण का अध्ययन करके उससे अच्छे पाठ सीख सकते है।

अब अहल्या की कहानी से हमने क्या सीखा, इस पर विचार करे। इस कथा से यही सिद्ध होता है कि यदि कोई व्यक्ति बहुत बडा पाप कर डाले तो भी, यदि उसके मन मे पश्चात्ताप की भावना हो, उसके लिए वह प्रायश्चित्त करे, किये पाप के लिए दड भोगने के लिए तैयार रहे, वह पाप-मुक्त हो सकता है। किसी से गलती हो जाय तो उसकी निदा करने के बजाय खुद वैसी गलती न करे, ऐसी कोशिश हरेक को करनी चाहिए। कैसे भी ऊचे पवित्र स्थान मे क्यो न रहे, मनुष्य को सदा साव-धान रहना चाहिए।

: १४ :

राम-विवाह

मिथिला मे राजा जनक के यज्ञ के लिए धूमधाम से सब प्रबन्ध किये जा रहे थे। नाना प्रदेशो से उत्तम ब्राह्मण और ऋषि लोग एकत्र हो रहे थे। सबके ठहरने के लिए यथोचित प्रबध किया गया था। विश्वामित्रजी, उनके साथी ऋषि और दोनो राजकुमारो के ठहरने के लिए भी स्थान निश्चित हो गया था। जनक के पुरोहित सदानदजी ने स्वय विश्वामित्रजी का स्वागत किया। राजा जनक भी आकर उनसे मिले।

जनक ने विश्वामित्रजी से कहा, "इस समय आपके यहा आगमन को मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं। ये दोनो कुमार कौन है? देव-लोकवासियो जैसे तेजवाले ये राजकुमार कहा के है? अपने आयुधो को जिस प्रकार ये धारण कर रहे है, उसे देखने से पता लगता है कि ये दोनो शस्त्र-विद्या मे बडे प्रवीण हैं। दोनो देखने मे एक-जैसे लग रहे है। वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, जो इनका पिता है?"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का परिचय देते हुए राजा को बताया, "राजन्, ये दोनो सम्राट् दशरथ के पुत्र है। मै इन दोनो को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए अयोध्या से लाया था। मेरे यज्ञ की रक्षा करते हुए इन दोनो ने हाल ही मे अनेक राक्षसो का सहार किया है। आपके पास जो धनुष है, इन्होने उसके बारे मे सुन रखा है। ये उसे देखना चाहते है। आप उचित समझे तो इन्हे वह धनुष दिखा दीजिए।"

जनक ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "मुनिवर, यदि राजकुमार राम उस दैवी धनुष को उठाकर उस पर बाण चढा सकेगे तो मेरे-जैसा सुखी और आनदित और कोई न होगा। मै अपनी लडकी का विवाह, जिसका जन्म अति पवित्र रूप से—शारीरिक सबध के बिना—हुआ है, राम के साथ कर दूगा। अभी तक कई राजा और राजकुमार निराश होकर लौट गये है। राम अवश्य धनुष को देखे। मै अभी उस रुद्र-धनुष को मडप मे मगाता हू।"

धनुष लोहे के एक बहुत बडे सदूक मे यत्नपूर्वक रखा हुआ था। उसे आठ पहियोवाली एक बहुत बडी गाडी मे लदवाकर सैकडो लोग, रथोत्सव के समय जैसे रथ को खीचा जाता है, उसी प्रकार खीचकर सभा-मडप मे ले आये।

"यह है रुद्र-धनुष। यह हमारे कुलदेवता महादेवजी का है। सीता को पाने की आशा मे कई राजा इस पर तीर चढाने के लिए आये, लेकिन सब-के-सब हार मानकर चले गये। राम की इच्छा हो तो वह प्रयत्न करके देखे।" जनक ने सबके सामने सभा मे कहा।

इतना सुनकर विश्वामित्रजी ने राम से कहा, 'वत्स, जाओ, सदूक खोलकर धनुष का दर्शन करो।"

गुरु की आज्ञा पाकर श्रीरामचद्र उठे और सदूक खोलकर धनुष का दर्शन किया। फिर वह विनयपूर्वक पूछने लगे, "क्या मै इसका स्पर्श कर सकता हू? क्या इसे उठाकर इसपर प्रत्यचा चढाने की मुझे अनुमति है?"

जनक और विश्वामित्र दोनो ने एक साथ आशीर्वाद दिया, "तुम्हारा

कल्याण हो !" सभा-मडप मे जितने लोग उपस्थित थे, सब-के-सब टकटकी लगाकर देखने लगे कि क्या होता है !

और महान् आश्चर्य से लोगो ने देखा कि उस भारी-भरकम धनुष को श्रीरामचद्र ने ऐसी आसानी से उठा लिया जैसे वह कोई पुष्पमाला हो। उन्होने उसके एक सिरे को पैर के अगूठे से दबाया और मोडकर डोरी चढाने के लिए जैसे ही उसे कान तक खीचा कि जोर लगाने से वह बडे कडाके की आवाज के साथ दो टूक होगया। सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि देखनेवाले दग रह गये। देवताओ ने पुष्प-वृष्टि की। जनक ने कहा, "राम, मेरी प्राणो से भी प्रिय सीता अब तुम्हारी है।"

विश्वामित्र बोले, "अब दूतो को शीघ्र ही दशरथ के पास अयोध्यापुरी भेज दीजिये और उन्हे विवाह के लिए निमत्रित कीजिये।"

उसी समय दूत भेज दिये गये। वे तीन दिनो मे ही अयोध्या पहुच गये।

सिहासन पर देवेंद्र की तरह दशरथ विराजमान थे। दूतो ने वदना की, "महाराजा की जय हो, हम शुभ सदेश लेकर आये है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजा जनक ने हमे आपके पास भेजा है। महाराज के सुपुत्र श्रीराम ने सीता-स्वयवर के मडप मे शिवजी का धनुष चढाकर उसे तोड दिया है। अब राजकुमार का विवाह सीताजी के साथ सपन्न कराने के लिए आपकी अनुमति मागने और आपको वहा ले जाने के लिए हमे राजा जनक ने यहा भेजा है। आपके पधारने से सब लोग असीम सुख और आनद पायगे, अत आप तुरत ही सपरिवार मिथिला को पधारने की कृपा करे।"

दशरथ ने डरते हुए राम को विश्वामित्र के साथ भेजा था। इस कारण वह चितातुर थे। लेकिन ऐसी खुशी की खबर पाकर वह आनद से अभिभूत होगये। उसी समय उन्होने मत्रियो को बुलाया, यात्रा का सब प्रबध करवाया और दूसरे ही दिन सपरिवार मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा दशरथ मिथिला नगरी मे बडे ठाट-बाट के साथ पहुचे। जनक

बहुत ही प्रेम के साथ उनसे मिले। उनका खूब आदर-सत्कार किया। जनक ने दशरथ से कहा, "यज्ञविधि जल्दी ही समाप्त हो जायगी। उसके बाद तुरत ही विवाह-सस्कार के कार्य शुरू कर देगे। इसमे मै आपकी सम्मति चाहता हू।"

"कन्या के पिता को ही सब-कुछ निर्णय करने का अधिकार है। आप जो कहेगे, वही होगा।" दशरथ ने उत्तर दिया।

और विवाह के समय सीता के हाथ को राम के हाथ मे रखकर गद्गद् स्वर से जनक बोले, "मेरी यह कन्या तुम्हारे साथ धर्म-मार्ग मे सदा साथी होकर चलेगी। इसका पाणिग्रहण करो। महासौभाग्यवती, पतिव्रता, मेरी कन्या छाया की तरह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी। तुमसे यह कभी अलग नही हो सकती।"

"इयं सीता मम सुता, सहधर्मचरी तव ॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणि गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ॥"

सीता-पाणिग्रहण के समय का यह मत्र है। आजकल भी विवाह-विधि के समय यही मत्र बोला जाता है।

राजा जनक ने अपने प्राणो से भी प्यारी पुत्री को इस प्रकार श्रीराम-चद्र के हाथो मे सौप दिया। राम और सीता क्षीरसागर के पुराने प्रेमी तो थे ही। दोनो ऐसे पुलकित हुए मानो वर्षों के बिछुडे दो प्रेमी फिर से मिले हो।

: १५ :

परशुराम का गर्व-भंजन

विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा, "मैं अपनी जिम्मेदारी पर राज-कुमार को आपके पास से लाया था। अब मैं फिर उन्हे आपको सौपता हू।

विवाह का मगल-कार्य भी सपन्न हुआ । अब मुझे आज्ञा दीजिये ।"

इस प्रकार राजा दशरथ और जनक से विदा लेकर विश्वामित्रजी हिमालय की ओर चल दिये ।

श्रीरामावतार कथा मे विश्वामित्र का भाग यही समाप्त हो जाता है । इसके बाद वह कही नही आते । राम-कथा-रूपी मदिर मे विश्वामित्र को हम उसकी नीव कह सकते है । वाल्मीकि रामायण की यही विशेषता है कि उसके प्रत्येक काड मे एक प्रधान व्यक्ति होता है । प्राय उस काड के बाद उसका उल्लेख बहुत कम या बिलकुल नही होता । हम बालकाड के पश्चात् विश्वामित्र को भी कही नही देखते । अयोध्याकाड के बाद कैकेई लुप्त हो जाती है । निषादराज गुह का भी यही हाल है । भरत का भी अधिकतम परिचय अयोध्याकाड मे ही है । चित्रकूट मे राम से विदा लेने के पश्चात् जबतक राम फिर अयोध्या नही लौटते, भरतजी भी हमे कही दिखाई नही देते । आजकल के कथा या नाटको के पात्र तो हमे छोडते ही नही । सब-के-सब बार-बार हमारे सम्मुख खडे हो जाते है । स्त्री-पात्रो पर विशेष ममता रखनेवाले हमारे साहित्यकारो को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

विवाह-महोत्सव पूरा हुआ । राजा दशरथ जनक से विदा लेकर राजकुमारो, उनकी नववधुओ तथा परिवार-सहित अयोध्या लौटने लगे ।

पर मार्ग मे कुछ अपशकुन दिखाई देने लगे । दशरथ को चिंता हुई । गुरु वसिष्ठ से पूछा, "इन अनिष्ट-सूचक चिह्नो का क्या कारण है ?"

वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "यद्यपि अनिष्ट-सूचक चिह्न हो रहे है तो साथ-साथ अच्छी चीजे भी दिखाई दे रही है । इसलिए कोई विघ्न आया भी तो वह शीघ्र ही दूर हो जायगा ।"

राजा दशरथ और कुलगुरु वसिष्ठ ये बाते कर ही रहे थे कि सहसा पवन की गति अत्यत तीव्र होने लगी । पेड-पौधे जड से उखडकर गिरने लगे । धरती हिल उठी । सूर्य को धूल आवृत करने लगी । दसो दिशाओ मे अधकार छा गया । सब-के-सब भयभीत होगये । कारण समझ मे आने

मे देर न लगी। क्षत्रिय-कुल के लिए काल-रूप परशुराम सामने आकर खडे होगये थे।

धनुर्धारी परशुराम के कधे पर फरसा लटका हुआ था। उनके हाथ मे एक दमकता हुआ बाण भी था। त्रिपुर-सहारी रुद्र की तरह जटाधारी परशुराम दीप्तिमान हो रहे थे। उनके मुख का तेज कालाग्नि की भाति प्रज्वलित हो रहा था। क्षत्रियकुल-सहारी जमदग्निसुत परशुराम जब कभी और जहा भी जाते थे, हवा प्रचड हो जाती थी और धरती हिल उठती थी। क्षत्रिय-कुल मे तो उनके नाम से ही कपकपी पैदा हो जाती थी।

दशरथ के दल मे जो ब्राह्मण थे वे आपस मे बात करने लगे, "अपने पिता की हत्या एक क्षत्रिय राजा के द्वारा हो जाने के कारण परशुराम ने उसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। तबसे सैकडो राजाओ को उन्होने मार डाला है। हमने तो सोचा था कि उनका क्रोध अब शात हो गया होगा, लेकिन अब यह यहा कूद पडे !"

डरते-डरते लोगों ने परशुराम को अर्घ्य समर्पण करके उनका सत्कार किया।

परशुराम ने सत्कार स्वीकार किया और राम की तरफ घूमकर बोले, "हे दशरथ-पुत्र, तुम्हारे पराक्रम के बारे मे मैंने बहुत सुना है। पर तुमने वह शिव-धनुप भी तोड दिया, यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ है। मै तुम्हारी परीक्षा लेने आया हू। यह देखो, मेरे पास भी एक धनुप है। यह उस रुद्र-धनुष के समान ही है, जिसे तुमने तोडा है। यह महा-विष्णु का दिया हुआ है। यह मेरे पिता जमदग्नि के पास रहा करता था। यह लो, बाण भी दे देता हू। इस पर प्रत्यचा चढाकर सधान करो। यदि तुम इसे चढाने मे सफल न हुए तो हम दोनो युद्ध करेगे।"

राजा दशरथ जैसे यह सुन रहे थे, उनका दिल काप रहा था। उन्होने सोचा कि क्रूर परशुराम से किसी भी तरह राम को बचाना चाहिए। वह दीन स्वर मे कहने लगे, "आप तो ब्राह्मण है। क्षत्रिय-जाति पर आपका क्रोध तो कभी का शात हो चुका। उसके बाद तो आप उदासीन होकर तप

करने चले गये थे। मेरा लडका तो अभी बालक है। वह आपके साथ क्या लडेगा ? देवेद्र को आपने वचन दिया था कि आप फिर कभी शस्त्र न उठायगे। कश्यप के हाथ मे भूमडल को सौपकर आप तो तप करने महेद्र पर्वत चले गये थे न ? आपसे वचन-भग कैसे हो सकता है ? राम तो हमे प्राणो से भी प्यारा है। इसे अगर कुछ हो गया तो हम सब उसी क्षण मर जायगे।"

दशरथ की यह प्रार्थना परशुराम को मानो सुनाई ही न दी। उन्होने राजा की ओर मुडकर भी न देखा। वह राम से ही बाते करने लगे। उन्होने कहा, "म्हान विश्वकर्मा ने दो धनुषो का निर्माण किया था। दोनो ही महान् शक्तिशाली थे। एक तो त्रिपुरसहारी त्र्यबक शिवजी को भेट दिया गया और दूसरे को बिश्वकर्मा ने महाविष्णु को समर्पित कर दिया। यह वही विष्णु-धनुष है। इसको मोड सकते हो तो प्रयत्न कर देखो, नही तो फिर हम दोनो लडेगे।"

महाबली परशुराम जब ऊचे स्वर मे यो बातें कर रहे थे तब मृदु वाणी मे राम बोले, "जामदग्ने, सुनिये। आपने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए बहुतो की हत्या की। उसके लिए मै आपको दोष नही देता। किंतु जैसे आपने अन्य राजाओ को पराजित किया है, मुझे नही कर सकेंगे। कृपा करके अपना धनुष मुझे दीजिये। चढाकर देखता हू।"

रामचद्र ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण ले लिये। जितनी सरलता से उन्होने रुद्र-धनुष उठाया था, उतनी ही सरलता से इस धनुष को भी मोडकर उन्होने उस पर बाण चढा दिया। तदुपरात वह मुसकराकर बोले, "हे ब्रह्मन्, अब क्या करू ? इस बाण का कही-न-कही प्रयोग करना ही पडेगा। बताइये, कहा करू ?"

इन दो रामो के एक साथ दर्शन करने के लिए आकाश मे देव, यक्ष और गधर्वो के समूह इकट्ठे होगये थे।

परशुराम का तेज मुरझा गया और अवतार-शक्ति लोप होने लगी। उन्होने कहा, "हे दशरथनदन राम, आज मैंने तुम्हारी शक्ति का दर्शन पाया।

तुमसे मेरा गर्व-भजन हुआ, इसका मुझे कोई दु ख नही। मै समझ गया कि तुम कौन हो। मुझसे मुक्त सारी शक्ति अब तुम्हारे अदर समाविष्ट हो जाय। किंतु तुमसे मैं एक वस्तु मागता हू। कश्यप को मैंने जो वचन दिया है, उसके अनुसार मै महेद्र पर्वत के सिवा और कही रात मे नही ठहर सकता। सूर्यास्त से पहले मै महेद्र पर्वत लौटना चाहता हू। उतनी शक्ति मुझे देकर मेरे शेष समस्त तपोबल को अपने बाण का लक्ष्य तुम बना डालो।"

यो कहकर परशुराम ने रामचद्र की प्रदक्षिणा की, प्रणाम किया और वहा से चल दिये।

: १६ :

दशरथ की आकांक्षा

चक्रवर्ती दशरथ सपरिवार—पुत्र और पुत्र-वधुओ-सहित—लौट रहे है, यह खबर अयोध्या मे जब पहुची तब वहा की प्रजा को जो आनद हुआ, उसका वर्णन करना अशक्य है। राजपरिवार के स्वागत के लिए अलकृत अयोध्यापुरी इद्रपुरी के समान शोभायमान थी।

राम और सीता बडे ही आनद के साथ रहने लगे। उन्हे किसी बात की कमी न थी। राम ने अपना सारा हृदय सीता को सौप दिया था। इन दोनो के ऐसे गहन प्रेम का कारण उनका अनुपम गुण था, या अद्वितीय रूप—यह कहना कठिन था, क्योकि उन दोनो का जैसा मनमोहक रूप था, गुण भी उनके उसी प्रकार के थे। दोनो की एक-दूसरे के प्रति प्रीति दिनो-दिन बढती ही गई। वाणी से व्यक्त किये बिना ही एक का हृदय दूसरे के हृदय के भाव को समझ जाता था और प्रफुल्लित होता था। राम के सम्पूर्ण प्रेम को पाकर सीता साक्षात् महालक्ष्मी की तरह शोभायमान हो रही थी।

इसके कई वर्षो के पश्चात् इन लोगो का वनवास शुरू हुआ था। तब तपस्विनी अनुसूया ने राम के प्रति सीता के प्रेम को सराहते हुए कुछ शब्द कहे थे। सीता ने उसके उत्तर मे यो कहा था, "राम सर्वगुण-सपन्न है। मुझ पर उनके प्रेम की तुलना मेरे उनके प्रति प्रेम के साथ ही हो सकती है। उनका प्रेम मैने सदा सभी अवस्थाओ मे एक-सा पाया है। यह मेरे पति निर्मल विचारो वाले है और इद्रियो को वश मे रखने की शक्ति इनमे खूब है। यह मेरे पति तो है ही, किंतु मेरी रक्षा भी इस प्रकार करते है जैसे माता-पिता अपनी सतान की करते है। ऐसे पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।"

वैवाहिक दायित्व सम्हालनेवाले आजकल के युवक युवतियो को अनुसूया से कहे हुए सीता के इन शब्दो पर ध्यान देना चाहिए। सीता के वाक्य अर्थगर्भित है। पति और पत्नी दोनो का प्रेम समान होना आवश्यक है। प्रेम मे कभी अन्तर नही आने देना चाहिए। सुख मे या दुःख मे, क्लेश मे या आनद मे अपने प्रेम मे परिवर्तन न लाए। पति पत्नी की वैसे ही रक्षा करे जैसे माता-पिता बच्चो की करते है। तभी जीवन मे सफलता प्राप्त हो सकती है।

विवाह के बाद अयोध्या मे राम और सीता के बारह वर्ष बडे सुख से बीते। जो नियम सामान्य मनुष्यो के लिए बनाये, भगवान् ने उन्हे अपने लिए भी स्वीकार किया। उन्होने स्वेच्छा से मानव-जन्म लिया था। सुखमय जीवन के बाद अब राम-सीता दोनो को दुःख और क्लेश का अनुभव करना बाकी था।

राजा दशरथ अपने चारो पुत्रो को खूब चाहते थे। किंतु चारो मे राम पर उनकी विशेष रूप से प्रीति थी। राम ने भी अपने शील और सदाचार से पिता के असाधारण प्रेम के लिए अपने को योग्य सिद्ध कर दिया था। उनमे राजा होने के समस्त लक्षण सपूर्ण रूप मे थे। उनकी माता कौशल्यादेवी अपने सर्वगुण-सपन्न पुत्र को देखकर देवेद्र की मा अदिति की तरह फूली नही समाती थी।

कवि वाल्मीकि ने रामायण के कई पृष्ठो मे राम के गुणो का काव्य-मयी भाषा मे वर्णन किया है। राम के गुण-रूपी जलाशय से जल पीते-पीते वाल्मीकि की प्यास बुझती ही नही। कभी वह स्वय दशरथ-नदन के गुणो का बखान करते है, तो कभी दशरथ के प्रमुदित मन का वर्णन करते हुए या अन्य पात्रो द्वारा रामचद्र की स्तुति कराते हुए सर्वत्र श्रीराम के गुणो का गान करते जाते है। वैसे तो उनकी शैली विषयो को सक्षिप्त रूप मे बताने की है, पर जहाँ राम की महिमा का प्रसग आता है, वाल्मीकि पृष्ठ-पर-पृष्ठ भरने मे कजूसी नही दिखाते है। उनकी यही मनोकामना रही होगी कि लोग रामायण पढते हुए स्थान-स्थान पर रघुकुलकेसरी श्रीराम के गुणो को पूरी तरह जाने और उससे अपने आचरणो को सुधारकर उन्नति की ओर चले।

राम जैसे सुदर थे वैसे ही उनके आचरण भी मनमोहक थे। वह शरीर से भी उतने ही स्वस्थ थे। रामचद्र का निर्मल चरित्र, मृदु वचन, विद्वत्ता और राजनीति मे प्रवीणता आदि को देखकर प्रजा बहुत खुश थी और बडी आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी कि वह कब राजा बने। दशरथ इस बात को अच्छी तरह जानते थे। वह अब बूढे भी होने लगे थे। राम के हाथो मे अब वह राज्यभार सौप देना चाहते थे। एक दिन इसी बात की चर्चा के लिए उन्होने एक बडी सभा का आयोजन किया। सभा मे सम्मिलित होने के लिए उन्होने अपने सचिवो के अतिरिक्त अन्य राजाओ, देश के शिक्षित पडितो, नगर के प्रमुख लोगो तथा ऋषि-मुनियो को भी निमत्रित किया। राजा दशरथ ने सबका विधिवत् स्वागत किया और उचित आसनो पर बिठाया। सब लोग जब अपने-अपने आसनो पर बैठ गये, तब राजा दुदुभि-नाद जैसे गभीर स्वर मे बोले—

"अपने पूर्वजो का अनुकरण करते हुए मै भी अपनी पूरी शक्ति लगा-कर प्रजा का पालन करता आया हू। प्रजा को अपनी सतान समझकर उसकी भलाई का ही विचार मैने किया है। उसके हित के लिए काम करते हुए कभी आलस्य मेरे मन मे नही आया। अब मै बूढा हो गया हू, शरीर भी

ढीला हो गया है। अपने बडे पुत्र राम के हाथो मे राज्यभार सौपकर मै आराम करना चाहता हू। जैसे मेरे पूर्वज करते आये है, उसी प्रकार मै भी जीवन के अतिम दिन वानप्रस्थी होकर बिताना चाहता हू।

"राम को तो आप सब जानते ही है। वह सुशिक्षित है। राज्य-पालन, नीतिशास्त्र और शस्त्र-विद्या इन सबको वह अच्छी तरह जानता है। शत्रुओ के बल को समझनेवाला और पराक्रमी है। शीलवान है। उसके हाथो मे राज्य सौपकर मै निश्चित हो जाना चाहता हू। आप सभी माननीय राजा और वयोवृद्ध, नगर के प्रमुख महाजन, इस कार्य के लिए मुझको अनुमति दे। मेरे विचार मे कोई त्रुटि दिखाई देती हो तो मुझे बताये।"

राजा का वक्तव्य सुनकर सभा मे हर्ष की लहरे उठने लगी। जब लोगो ने सुना कि राजा दशरथ राम को युवराज बनाने जा रहे है तो सभी एक स्वर मे बोलने लगे, "बिलकुल ठीक। आपने ठीक सोचा, हम सब इसके लिए सहमत है।" उस समय उन लोगो को देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो वर्षा ऋतु मे बादलो को देखकर मोर नृत्य कर रहे हो।

राम के प्रति लोगो का असाधारण प्रेम देखकर राजा बहुत ही आनदित हुए। किंतु वह राम की प्रशसा और भी सुनना चाहते थे। इसलिए उन्होने सभा मे उपस्थित लोगो से फिर कहा, "मेरे कहते ही आप सबने मेरी इच्छा का समर्थन कर डाला। इससे मै सतुष्ट नही हू। किन कारणो से आप लोग राम को युवराज बनाना चाहते है, यह आप लोग मुझे समझाये। मै समझना चाहता हू।"

कई वयोवृद्ध प्रजाजन तथा राजागण एक-एक करके उठे और रामचद्र के गुणो का बखान करने लगे। राजा सुनते जाते थे और खुशी से फूले न समाते थे। अत मे सभी ने हाथ जोडकर राजा से विनती की कि शुभ कार्य मे विलब न होने दिया जाय।

तब दशरथ ने सबसे कहा, "प्रिय सज्जनो, आप लोगो की बातो से मै बहुत प्रसन्न हू। राम के अभिषेक को विलबित करने का कोई कारण मै नही देखता। इस मगल-कार्य के आयोजन अब शुरू हो जायगे।"

राजा ने वसिष्ठ और वामदेव से पूछा कि अभिषेक के लिए अच्छा दिन और मुहूर्त कब होगा ? सबने मिलकर निश्चय किया कि चैत्र का सुहावना मास, जब सब जगह पेड और पौधे फूलो से सुशोभित रहते है, युवराजाभिषेक के लिए सर्वोत्तम रहेगा। राजा ने घोषणा करवा दी कि चैत्र मे राजकुमार रामचद्र का युवराजाभिषेक होगा। लोगो मे आनदपूर्ण कोलाहल मच गया।

महाराजा दशरथ ने अपने निजी सचिव सुमत को श्रीराम के पास भेजा। राम को अभी तक किसी बात का पता न था। यह सुनकर कि पिता ने उन्हे बुलाया है, वह एकदम उनके सम्मुख आ खडे हुए। राजा ने सारी बाते उन्हे बताई और कहा कि वह युवराज बनने को तैयार हो जाय।

राम ने कहा, "आपकी जो भी आज्ञा हो, मेरे लिए शिरोधार्य है।"

राजा ने श्रीराम को बडे प्यार से अपने पास बिठाया। उनको उपदेश दिया कि यद्यपि वह अत्यत गुण-सपन्न और प्रजा की प्रीति के पात्र है, परतु जब वह यह गभीर उत्तरदायित्व ग्रहण कर रहे है तो उन्हे बहुत सावधानी के साथ चलना होगा। उन्होने राम को हृदय से आशीर्वाद दिया कि वह बडे भाग्यशाली, प्रभावशाली और प्रजा-पालक राजा बने। राम अपने पिता से विदा लेकर अपने भवन लौट आये।

उनको अपने भवन मे लौटे थोडी ही देर हुई थी कि सचिव सुमत फिर वहा पहुचे और कहने लगे, "महाराज ने आपको फिर याद किया है।"

रामचद्र ने पूछा, "क्या बात है, जो पिताजी ने मुझे इतनी जल्दी फिर याद किया ?"

सुमत ने विनय से जवाब दिया कि उन्हे स्वय मालूम नही कि किस कारण से राजा ने उन्हे बुलाया है।

'शायद युवराजाभिषेक के बारे मे उन्होने और विचार किया होगा। सभव है, कुछ उचित अथवा अनुचित शकाए उनके मन मे आई हो। जो हो, मुझे तो युवराज पद की जल्दी है ही नही। राजा की जो आज्ञा हो, उसका पालन करना मेरा धर्म है। देखू, राजा मुझे क्या काम सौप रहे है।'

इस प्रकार मन मे सोचते हुए वह राजा दशरथ के पास फिर पहुच गये।

राजा दशरथ ने पुत्र का प्यार से आलिगन किया। अपने पास आसन पर बिठाया और कहा, "राम, अब तो मै बूढा हो गया हू। दुनिया के सुखो का खूब अनुभव कर चुका हू। जितने देव तथा पितृ-कार्य करने के थे, वे कर लिये है। अब कुछ बाकी नही रहा। मै तुम्हे अभिषिक्त होकर सिंहासन पर बैठा हुआ देखना चाहता हू। भविष्य के ज्ञाता लोग मुझे कई तरह की बाते बताते है। उनके कहने के अनुसार शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो सकती है और अति दुखमय घटनाए घट सकती है। इसलिए युवराजाभिषेक मै कल ही कर डालना चाहता हू। कल पुष्य नक्षत्रवाला शुभ दिन है। मालूम नही क्यो, मेरे मन मे यह शुभ कार्य शीघ्र ही कर डालने की आतुरता हो रही है। अत हे प्रिय, तुम एकदम आज ही वधू सीता-सहित व्रत लेकर पूजा मे बैठो ताकि मगल कार्य निर्विघ्न समाप्त हो। भरत तो दूर अपने मामा के यहा है। कैकय देश यहा से बहुत दूर है। भरत को खबर भेजी जाय और वह आये, इसमे बहुत विलब हो सकता है। तब तक यह कार्य टालने की मेरी हिम्मत नही हो रही।" राजा दशरथ ने पुत्र से अपने मन की बात बताई।

दशरथ के वचनो द्वारा कवि वाल्मीकि हमे कुछ सोचने का मसाला देते है। हो सकता है कि दशरथ को पुरानी बाते याद आ गई हो। हो सकता है कि उन्हे कैकेयी को दिये गए अपने दो वरदानो का स्मरण हो आया हो। यद्यपि भरत के अति उच्च सद्गुणो से राजा भली-भाति परिचित थे, जानते थे कि राम के राज्याभिषेक का वह कदापि विरोध नही करेगा, तो भी उनके मन मे कुछ अनिष्ट का आतक छा गया था। डरने लगे कि मानव-हृदय की कमजोरियो को कौन समझ सकता है? अभिषेक-कार्य भरत के लौटने से पहले ही हो जाय तो अच्छा।

दशरथ से विदा लेकर श्रीरामचद्र माता कौशल्या को यह आनदप्रद समाचार स्वय सुनाने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अत पुर मे

गये। कौशल्यादेवी के पास पहले ही खबर पहुच चुकी थी। सीता और लक्ष्मण भी वही थे। माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण करके पूजा मे बैठी थी। राम ने उनको पिता की आज्ञा सुनाई।

"हा, मेरे लाल, मैने भी सुना है। दीर्घायु होओ। राज्य का भार भली प्रकार सम्हालना। वैरियो को रोकना। प्रजा और परिवारो की रक्षा मे तत्पर रहना। यह मेरा अहोभाग्य है कि तुमने अपने गुणो द्वारा राजा के मन को लुभा लिया है।" कौशल्यादेवी ने राम को आशीर्वाद दिया।

राम लक्ष्मण से कहने लगे, "क्यो लक्ष्मण, तुम तो मेरे साथ राज्य का भार उठाओगे न ? मै अपने मे और तुममे कोई अतर नही देखता। जो कुछ मेरा होगा, वह तुम्हारा भी होगा।"

राम को लक्ष्मण के प्रति अपार प्रेम था। एकाएक बहुत ही बडा पद उन्हे मिल रहा था। फिर भी राम उससे किसी प्रकार के आवेश मे नही आये। अनासक्त भाव से वह लक्ष्मण से बाते करने लगे।

इसके बाद माता कौशल्या और लक्ष्मण की माता सुमित्रा दोनो को उन्होने प्रणाम किया और वहा से देवी सीता को लेकर अपने भवन मे गये। वहा राजा के आदेश से गुरु वसिष्ठ आ रहे थे। राम ने सामने जाकर सहारा देकर उन्हे वाहन से उतारा, प्रणाम किया और अदर ले गये। शास्त्रोक्त विधि से वसिष्ठ ने राम और सीता से उपवास-व्रत का सकल्प करवाया और फिर राजा के पास वापस चले गये। सारे मार्ग मे लोगो की भीड लग गई थी। सभी जन अभिषेक की बाते बडी ही उत्सुकता के साथ कर रहे थे। नगर-निवासी अपने घरो के द्वार और मार्ग सजाने मे सलग्न थे। कल ही तो राम का अभिषेक होना था। वसिष्ठ का रथ उस भीड को चीरता हुआ धीमे-धीमे राजभवन पहुच गया। राजा दशरथ ने आतुरता से गुरुदेव से पूछा, "व्रत और पूजा के कार्य राम ने प्रारभ कर दिये ? उपवास शुरू हो गया न ?"

दशरथ के मन से विघ्नो का आतक हटा नही था।

सारा नगर आमोद-प्रमोद मे निमग्न था, लेकिन स्त्रियो का उत्साह

असाधारण दीख पडता था। सबने ऐसा माना मानो उनके ही घर मे कोई शुभ प्रसग हो रहा है। बच्चे, बूढे, जवान, नर, नारी सभी प्रसन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे।

उधर श्रीरामचद्र के भवन मे राम और सीता दोनो ने राजा के कथनानुसार व्रत करने का निश्चय किया और भगवान् नारायण का ध्यान किया। शातिपूर्वक होमाग्नि मे घी की आहुति डाली। पात्र मे जो घी बाकी रह गया था, उसीको प्रसाद-रूप मे पाया। उसके सिवा और कुछ न खाकर धरती पर घास बिछाकर उसी पर सो गये। दूसरे दिन प्रात काल वाद्यो की ध्वनि से वे दोनो जगे।

: १७ :

उल्टा पांसा

राजघरानो की प्रथा के अनुसार रानी कैकेयी की भी एक निजी परिचारिका थी। वह कुबडी थी और रानी के दूर के रिश्ते की थी। रानी की आत्मीय मित्र बनकर उनके स्नेह को दासी मथरा ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था। वह रामायण-गाथा की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। हमारे देश का हर कोई मथरा के नाम को दुत्कारता है। मथरा के कारण ही रामचद्र को वनवास भुगतना पडा था। यह कैसे हुआ, मथरा ने क्या किया, यह अब देखेगे।

जिस दिन राजा ने विशेष सभा बुलाई थी और यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिन अभिषेक होगा, उस दिन मथरा योही रानी कैकेयी के भवन की सुदर छत पर जाकर खडी हुई थी। ऊपर से उसकी दृष्टि नीचे नगर की गलियो पर पडी। उन पर पानी छिडका जा रहा था। लोग जगह-जगह तोरणो से नगर को सजा रहे थे। घरो के ऊपर झडे लगाये जा रहे थे। अच्छे भडकीले वस्त्रो तथा आभूषणो और मालाओ आदि से

सज्जित होकर लोग घूम रहे थे। जगह-जगह लोगो का जमघट लगा था। मदिरो से नाना प्रकार के वाद्य-वृ दो का निनाद आ रहा था। इसमे कोई सदेह नही था कि किसी विशेष उत्सव की तैयारी हो रही थी।

पास खडी एक दासी से मथरा ने पूछा, "क्या बात है? तूने यह रेशमी साडी आज क्यो पहन रखी है? धन को खर्च करने मे बहुत सोच-विचार करनेवाली महारानी कौशल्या कैसे आज ब्राह्मणो को बडी उदारता के साथ दक्षिणा दे रही है? जहा देखो वहा बाजा और गाना सुनाई दे रहा है! आज कौन-सा पर्व है? क्या तुझे कुछ पता है?"

दूसरी दासी उम्र मे छोटी थी। उछल-कूदकर जोर से कहने लगी, "तुम्हे यह भी नही पता कि हमारे श्रीरामचद्रजी का कल अभिषेक होने वाला है?"

यह बात सुनते ही मथरा के मन मे बडी बेचैनी पैदा हो गई। उसने मुह से एक शब्द भी नही निकाला। तेजी से सीढिया उतरी और सीधे कैकेयी के कमरे मे गई। कैकेयी लेटी हुई थी। उसको सबोधित करके मथरा चीखने लगी, "अरी पगली, तुम्हे तो सोते रहने के अलावा, बाहर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी ज्ञान नही है! उठो तो सही! तुम्हे धोखा दे दिया गया है। भारी अनर्थ हो गया। उठो, अब भी सम्हलो।"

कैकेयी घबराई। उसने सोचा कि मथरा को कोई पीडा हुई है। उससे प्यार से पूछा, "मथरा, तुम्हे क्या कष्ट है? क्यो रो रही हो? रोना बद करके बताओ, क्या बात है?"

मथरा बडी चतुर थी। बोली, "तुम्हारे और मेरे ऊपर वज्रपात हो गया है। अभी-अभी मैने सुना है कि राम युवराज बनने जा रहे है। इससे भयकर और क्या बात हो सकती है? यह बात सुनकर मुझसे रहा नही गया। भागी-भागी तुम्हारे पास आई हू। कैसे अच्छे राजकुल मे तुम पैदा हुई! यहा दशरथ की सबसे प्यारी रानी बनकर हुक्म चलाती रही। अब तुम्हारा यह सारा वैभव नष्ट हो रहा है। राजा ने मीठी-मीठी बातो से तुम्हे छल लिया। यह तो महाकपटी निकला। सब-कुछ अब कौशल्या का

हो जायगा। तुम भटकती ही रह जाओगी। भरत को जान-बूझकर दूर भेज दिया गया है और कल ही राम का युवराजाभिषेक हो जानेवाला है। तुम्हे तो जैसे कोई चिता ही नही। सोई पडी हो। तुम और तुम्हारे भरोसे रहनेवाले हम सब अब डूब गये।"

मथरा यो कुछ-न-कुछ कहती ही गई। यद्यपि कैकेयी के कानो मे उसकी बाते पडती थी, पर उसने उन पर ध्यान नही दिया। उसका ध्यान एक ही वाक्य पर आकर्षित हुआ। वह सहसा बोल उठी, "क्या कहा तुमने ? हमारा पुत्र राम कल युवराज बनेगा ? बडी खुशी की बात है यह तो। यह लो मेरा मुक्ताहार। इसे मै तुम्हे उपहार मे देती हू। तुम ऐसी अच्छी खबर लाई हो। और भी जो चाहो, माग लो। मै देने को तैयार हू।"

राज-कुटुब के लोग सदा मगल-समाचार लानेवालो को बडी उदारता के साथ उसी समय कुछ-न-कुछ दे देते थे।

कैकेयी ने सोचा कि मथरा व्यर्थ घबरा रही है। आखिर दासी ही ठहरी। ऊचे घरो की बाते यह क्या समझे! इसका डर मूर्खतापूर्ण है। इसे आभूषण देकर खुश कर दूगी और इसके भय को हटा दूगी।

कैकेयी उच्च सस्कारवाली स्त्री थी। वह काफी देर तक मथरा को समझाती रही, पर मथरा ने हार न मानी। उसने कैकेयी के दिये हुए मोती के हार को उतारकर धरती पर पटक दिया। "अरी मूर्खा, छाती कूटकर रोने के बदले तुम हँस रही हो! तुम्हारी जीवन-नौका तो डूब रही है। मेरी समझ मे नही आ रहा है कि तुम्हारे इस व्यवहार को देखकर मै हँसू या रोऊ ? तुम्हारी सौत कौशल्या तो बडी होशियार निकली। किसी तरह राजा को मनवाकर अपने लडके को कल गद्दी पर बिठवा रही है। उसे तुम 'बडी अच्छी खबर' कहती हो! तुम्हारी बुद्धि को मै क्या कहू! कभी तुमने सोचा भी कि राम यदि राजा बन गये तो भरत की क्या दशा होगी ? राम तो हमेशा भरत को अपने रास्ते का काटा समझकर उसे दूर करने को ही तत्पर रहेगा। उसे वह अपना बैरी समझेगा। उससे डरेगा। राजगद्दी पर बैठते ही राम भरत से डरने लगेगा। डर के कारण से ही तो हम साप को

देखते ही मार डालते है। भरत की जान तो, समझो, आज से खतरे मे है। बस, मालकिन, कल से रानी कौशल्या यहा की मालकिन है और तुम उसकी दासी। हाथ जोडकर उसको प्रणाम करती रहो। तुम्हारा बेटा भी अबमे राम का एक किकर बनकर रहेगा। हमारे इस अत पुर के वैभव का आज से अत हो गया समझो।"

बोलते-बोलते मथरा की सास फूलने लगी। दु ख के आवेग से वह ज़रा रुकी।

कैकेयी को मथरा की बातो से आश्चर्य हुआ। 'राम के स्वभाव को भली-भाति जाननेवाली यह औरत क्यो ऐसी बाते करती है ? सत्य और धर्म के अवतारस्वरूप राम से इसके घबराने का क्या कारण हो सकता है ?' यो देवी कैकेयी सोचने लगी।

"मथरे, राम के सत्य, शील और विनय को तो हम सभी जानते है। देखकर खुश हुए है। वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र है। उसीको तो राज्य मिलना चाहिए। भरत का हक तो राम के बाद ही हो सकता है। मेरी प्रिय सखी, किसीका कुछ बिगडा नही है। राम के पश्चात् भरत राजा होकर सौ वर्ष राज्य कर सकता है। तुम क्या यह नही जानती कि राम मुझपर कितना प्रेम और आदर रखता है ? मुझे तो अपनी मा से भी अधिक मानता है। अपने छोटे भाइयो को तो प्राणो के समान चाहता आया है। तुम्हारा डर बेकार है। हटाओ, उसे छोडो।" कैकेयी ने मथरा को समझाते हुए कहा।

"हाय मेरी मा ! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। राम जैसे ही राजा बना कि भरत का हक खतम हो जाता है। राजकुल के नियम भी भूल गई हो क्या ? राम सिहासन पर बैठेगा तो उसके बाद उसका लडका गद्दी पर बैठेगा। उसके बाद उसके पुत्र का लडका राजा बनेगा। कही अनुज थोडे ही राजा बन सकता है ? ज्येष्ठ पुत्र, फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र, इस तरह कडी जारी रहा करती है। राम के राजा बन जाने के बाद भरत को कौन पूछनेवाला है ? वह अनाथ हो जायगा। उसके या उसके पुत्रो के लिए सिहासन का स्थान कभी नही हो सकता। तुम्हे यह छोटी-सी बात भी समझ मे नही

आई ? मेरी दुलारी, तुम्हे क्या हो गया है ?" मथरा का विलाप बन्द न हुआ।

"राजा बनने के बाद राम का पहला काम भरत को खत्म करने का होगा। यदि भरत की प्राण-रक्षा चाहती हो तो उसको कैकय राज्य मे ही कही छिपाकर रखना होगा। यहा तो खतरा है। कौशल्या तुमसे चिढी हुई है। यह सोचकर कि राजा की कृपादृष्टि अपने ऊपर है, तुमने कौशल्या का कई बार अपमान किया है। वह उसका बदला लिये बिना न रहेगी। सौत का वैर बहुत बुरा होता है। यदि राम राजा बन जाय तो समझ लो कि भरत मर गया। किसी प्रकार से भी राम को रास्ते से हटाकर भरत को राज्य दिलाओ।" यह उलटा उपदेश देकर मथरा चुप हुई।

मथरा के वाक्यो ने देवी कैकेयी के मन मे धीरे-धीरे डर पैदा कर दिया और अत मे कुबडी की विजय हुई। भय और क्रोध से कैकेयी का चेहरा लाल होगया। उसकी सासे खूब गरम-गरम निकलने लगी। वह मथरा के हाथो को अपने हाथो मे लेकर पूछने लगी, "ऐसी बात है तो फिर उपाय बताओ।"

जब कौशल्या और सुमित्रा दोनो रानियो से राजा के कोई सन्तान न हुई तो राजा दशरथ ने पुत्र पाने की आशा से कैकय-राजकुमारी कैकेयी से विवाह किया था। उस समय कैकय देश के राजा ने एक शर्त पर अपनी कन्या का दशरथ के साथ विवाह किया था। शर्त यह थी कि जो लडका कैकेयी के गर्भ से होगा वही गद्दी पर बैठेगा। दशरथ का यह तीसरा विवाह था। दोनो रानियो के कोई बालक नही था। राजा का कोई उत्तराधिकारी न था, तभी राजा ने तीसरी बार विवाह करने की सोची थी। उन्होने कैकय राजा की शर्त को न मानने का कोई कारण न देखा। तब भी उनके मन की अभिलाषा पूरी न हुई। कई वर्षों के बाद पुत्र-कामेष्टि और अश्वमेध-यज्ञ किये। तब तीनो रानियो के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र राम थे। राम को सभी तरह से योग्य देखकर सभी नर-नारी यही चाहने लगे कि राम ही राजा बने। प्रजा की इच्छा का तिरस्कार करके भरत को युवराज बनाने की कोई आवश्यकता राजा या मत्रियो ने नही देखी। कैकेयी को भी यह विचार कभी न हुआ कि राम राजा न बने। वह राम को भरत के

समान ही प्यार करती रही। इसलिए राजा दशरथ ने भी सोचा कि राम के युवराजाभिषेक मे कोई बाधा नही हो सकती। भरत का राम के प्रति जो प्रेम और आदर था वह तो सभी जानते थे।

किंतु जैसे दशरथ ने राम से कहा था, मनुष्य के हृदय की विचित्र गतियो को समझना अति कठिन होता है। दुष्टो के दुर्बोध से अच्छे-से-अच्छे हृदय भी कलुषित हो जाते है। साथ मे दैव भी मिल जाय तो क्या कहना! कैकेयी के मन ने एकदम भिन्न रूप धारण कर लिया। राजा दशरथ को अनिष्ट का आतक होगया था। इसीलिए उन्होने एकदम राम का युवराजाभिषेक कर डालना चाहा था। भरत के लौटने तक राह नही देखना चाहते थे। उनको शुभ कार्य के लिए जितनी जल्दी हो रही थी, उतनी ही शीघ्रता के साथ मथरा ने कैकेयी की बुद्धि को कुटिल दिशा मे ले जाने मे सफलता प्राप्त कर ली। उसने मौका हाथ से जाने न दिया।

"सोचो तो सही कि राजा ने इतनी जल्दी क्यो मचाई है? जब भरत विदेश मे है तब उन्होने यह षड्यत्र रचा है। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम तो एकदम ढकोसला है।" मथरा ने कैकेयी से कहा।

कैकेयी सहज स्त्री-स्वभाव से मथरा की कुमति मे आ गई। कैकेयी वैसे तो भली थी, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाली होने पर भी जिद्दी स्वभाव की थी। अब वह विवेक-बुद्धि खो बैठी और मथरा के बहकावे मे पूरी तरह से आ गई।

अब रामायण की कथा मे सकट-काल का प्रारभ हो जाता है।

: १८ :

कुबड़ी की कुमंत्रणा

कैकेयी, जो अबतक राम को अपनी ही कोख का पुत्र समझती थी और वैसा ही प्यार करती थी, मथरा के उपदेशरूपी जाल मे पूरी तरह फस

गई। कहने लगी, "मथरे, मुझे डर लगने लगा है। बताओ, अब क्या किया जाय ? मै कौशल्या की दासी तो कभी न बनूगी। भरत को किसी-न-किसी उपाय से राजगद्दी पर बिठाना ही होगा। तुम ठीक कहती हो, राम को यहा से निकालकर वन मे भेजना ही पडेगा। इसके लिए कौन-सा उपाय करे ? तुम इन बातो मे बडी चतुर हो। अब राम को वन मे भेजने के लिए कोई रास्ता ढूढो।" उस समय कैकेयी को कुबडी मथरा बहुत ही प्यारी लग रही थी। इसमे हँसी की कोई बात नही है। यह तो सूक्ष्म मनोविज्ञान की ही परिचायक है।

मथरा ने तुरत उत्तर दिया, "कैकेयी, तुम्हारी बातो से मुझे आश्चर्य होता है! मुझसे उपाय क्यो पूछती हो ? मजाक कर रही हो क्या ? अथवा सचमुच भुलक्कड होगई हो ? यदि वास्तव मे मुझसे सलाह माग रही हो तो मै बताने को तैयार हू।"

"जल्दी बताओ। किसी तरह भी भरत राजा बने और राम यहा से हटे।" कैकेयी को अब विलब असह्य होने लगा था।

"तो धीरज से सुनो," मथरा ने कहना प्रारभ किया, "बहुत समय पहले तुम्हारे पति दशरथ दक्षिण मे शबर नामक असुर से लडने गये थे। याद है कि नही ? तुम भी उनके साथ थी। दशरथ इद्र की सहायता करने गये थे। वैजयती नगर के शबर को जब इद्र अकेले पराजित न कर पाये तो दशरथ उस असुर के साथ खूब लडे। उनका सारा शरीर घायल होगया और वह बेहोश हो गये। तब तुम उनके रथ को बडी खूबी से स्वय चलाकर युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल लाई थी। राजा के शरीर मे लगे सभी वाणो को तुमने कोमलता के साथ निकाल लिया था। तुम राजा को होश मे लाई और उनकी प्राणरक्षा की। तुम्हे ये बाते याद है या नही ?"

मथरा ने कुछ ठहरकर फिर कहना प्रारभ किया, "तब राजा ने तुमसे क्या कहा था ? जरा याद तो करो। राजा ने कहा था, 'प्रिये, मै तुम्हे दो वरदान देता हूं। कोई भी दो वर माग लो। मैं दूगा।' तुमने उत्तर मे कहा था, 'बाद मे सोचकर माग लूगी।' राजा को भी यह बात अच्छी लगी

थी। एक दिन तुम्ही ने तो मुझे ये सारी बाते बताई थी। मालूम होता है तुम भूल गई। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है। अब उन दो वरदानो के मागने का स्वर्ण अवसर आ गया है। हमारा काम इससे बन जायगा। राम की जगह भरत का युवराजाभिषेक हो, यह तुम्हारी पहली माग होगी। दूसरी माग यह हो कि राम चौदह वर्ष वनवास करें। दयाभाव को मन मे बिलकुल न आने देना। डरना मत। मेरा कहना मानो। राम जब चौदह वर्ष आखो से दूर रहेगा, तभी प्रजा उसको भूल सकेगी। तुम्हारा भरत राजगद्दी पर जमकर बैठ पायगा। अभी, इसी घडी कोपभवन मे चली जाओ। नीचे धरती पर लोट जाओ। इन कपडो और आभूषणो को उतार दो। मलिन और जीर्ण वस्त्र धारण कर लो। राजा जब तुम्हारे पास आए तो उनसे बोलना मत। उनकी तरफ देखना भी मत। तुम्हारा क्लेश दशरथ सहन नही कर पायगे। बस, हमारी कार्यसिद्धि हो जायगी।"

थोडी देर चुप रहकर मथरा फिर बोलने लगी, "राजा तुम्हारे मन को फेरने के लिए खूब प्रलोभन देगे, किंतु तुम अपनी मागो से टस-से-मस न होना। राजा अपने दिये वचनो को कभी वापस नही लेगे। वह प्राण छोड देगे, किंतु सत्य से नही हटेगे। वह तुम्हे खूब चाहते है। तुम यदि कहो कि 'आग मे कूद पडो' तो वह भी करने को तैयार होगे। इसलिए डरने का तो बिलकुल काम ही नही है। मै जो कहती हू, वही करो। राम के वनवास के बिना हमारा काम नही बन सकता। यदि राम राज्य मे रहे, तो भरत के राजा होने का कोई भरोसा नही। मैंने तुम्हे सब बता दिया है। सावधान रहना और अपना हठ बिलकुल न छोडना।"

कैकेयी का मुख, जो डर से सफेद हो गया था, अब कुबडी मथरा की मत्रणा से फिर खिल उठा। उसने कहा, "मेरी प्रिय सखी, तुम्हारी बुद्धिमत्ता की प्रशसा करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। तुमने ठीक समय पर मुझको बचा लिया।" यह कहकर रानी कैकेयी खुश हो गई।

तभी मथरा फिर बोली, "देवी, अब देर न करो। बाढ आने से पहले बाध पक्का हो जाना आवश्यक है। मैने जो बाते बताई है, सब ध्यान मे

रख लो। अपने हठ पर डटी रहो। तुम्हे सफलता अवश्य मिलेगी। बस, अब तुम कोपभवन मे चली जाओ।"

कैकेयी ने उसको विश्वास दिलाया और वह एकदम कोपभवन मे प्रविष्ट हो गई। उसने अपने रेशमी वस्त्रो और बहुमूल्य आभूषणादि को उतारकर फेक दिया। मलिन वस्त्र पहनकर वह धरती पर लोट गई। राजा दशरथ पर अब उसको वास्तव मे बहुत क्रोध आ रहा था। उसने सोच लिया कि राजा का प्रेम केवल ढकोसला था। वह सिसकती हुई मथरा से बोली, "मथरे, जा, मेरे पिना के पास जा और उनसे कह दे कि या तो भरत का अभिपेक होगा या कैकेयी मर जायगी।"

उस अवस्था मे भी रानी कैकेयी की देह-काति कम न हुई। प्रसन्न मुद्रा मे वह जैसी रूपवती दिखाई देती थी, उसी तरह कोपमुद्रा मे भी उसका सौदर्य भिन्न रूप मे मनमोहक था। रूपवती स्त्रियो की यह एक विशेपता होती है।

भरत के प्राण-भय का भूत कैकेयी के मन पर सवार हो गया। उसका मन पापपूर्ण चिताओ से भर गया। शुरू मे जो सकोच का भाव उदित हुआ था, वह तिरोहित हो गया। कैकेयी ने अब अपना हृदय पत्थर का बना लिया। उसने अपने सुदीर्घ केशो को खोल लिया। दीर्घ नि श्वास छोडती हुई, शोकातुर हो वह एक नागकन्या की तरह भूमि पर लेट गई। निषाद के शरो से आहत एक सुदर पक्षी की तरह कैकेयी धरती पर पडी थी। उसके द्वारा फेके गये आभूषण चारो तरफ ऐसे बिखरे पडे थे, मानो आकाश मे तारे चमक रहे हो।

: १६ :

कैकेयी की करतूत

राजा दशरथ ने जो विशेष सभा बुलाई थी वह समाप्त हुई। राजा ने कर्मचारियो को विभिन्न कार्य सौपे। उनके मन से बडा भारी भार उतर

गया। चितामुक्त हो जाने पर मनोरजन की ओर ध्यान गया। अपनी सबसे प्यारी रानी कैकेयी को यह शुभ समाचार स्वय सुनाने तथा आराम से रात वही बिताने की उन्हे उत्कठा हुई।

राजभवन वैसे तो सारा ही बहुत सुदर था, परतु कैकेयी का भवन तो विशेष रूप से सुदर बना था। भवन के चारो ओर रमणीय उपवन था। उपवन मे स्थान-स्थान पर तालाब, फव्वारे इत्यादि थे। तालाब मे तैरने-वाले पक्षी आनद से कलरव करते हुए विचरण करते थे। फूलो से लदे वृक्षो के पास मोर अपने पख फैलाकर नृत्य करते थे। राजा दशरथ ने प्रमुदित मन से, किसी प्रकार के आतक के बिना, चद्रग्रहण के दिन आने-वाले सकट से अनभिज्ञ, शुक्लपक्ष के पूर्ण चद्र के समान महल मे प्रवेश किया। उनका चेहरा आनद से प्रफुल्लित हो रहा था। उन्हे आनेवाले अनिष्ट की तनिक भी प्रतीति न थी।

रानी के भवन मे सुगध की वस्तुए, नाना प्रकार के पान आदि भोग के द्रव्य अपनी-अपनी जगह पर सदा की तरह रखे हुए थे। इन मादक वस्तुओ से राजा को अपनी प्रेयसी रानी के पास पहुचने की आतुरता और भी प्रबल हुई। किंतु उन्होने देखा कि रानी के सभी आसन खाली पडे थे।

जब कभी राजकार्यो से राजा दशरथ थक जाते थे तो रानी कैकेयी के पास पहुचकर विश्राम पाते थे, क्योकि कैकेयी बाहर के कार्यों के बारे मे न कभी पूछती थी, न उनमे दखल देती थी। वह सदा राजा के मन को प्रमुदित करती थी। प्रेम से आलिंगन करके उनका स्वागत किया करती थी। आज उसको सामने न देखकर दशरथ को विस्मय हुआ। मच का और आसनो का फिर से निरीक्षण करते हुए राजा ने इधर-उधर देखा। रानी वहा न थी। उन्हे शका हुई कि शायद उन्हे चिढाने के लिए कही छिपकर न बैठी हो। उससे प्रसन्नता-मिश्रित कौतूहल हुआ और एक बार फिर सब जगह निगाह दौडाई। तभी वहा एक दासी आई और उसने हाथ जोडकर कहा, "राजन्, देवी कोपभवन में प्रविष्ट हुई है।"

भयभीत होकर दशरथ कोपभवन मे घुस पडे। इससे पहले ऐसा मौका

रख लो । अपने हठ पर डटी रहो । तुम्हे सफलता अवश्य मिलेगी । बस, अब तुम कोपभवन मे चली जाओ ।"

कैकेयी ने उसको विश्वास दिलाया और वह एकदम कोपभवन मे प्रविष्ट हो गई । उसने अपने रेशमी वस्त्रो और बहुमूल्य आभूषणादि को उतारकर फेक दिया । मलिन वस्त्र पहनकर वह धरती पर लोट गई । राजा दशरथ पर अब उसको वास्तव मे बहुत क्रोध आ रहा था । उसने सोच लिया कि राजा का प्रेम केवल ढकोसला था । वह सिसकती हुई मथरा से बोली, "मथरे, जा, मेरे पिता के पास जा और उनसे कह दे कि या तो भरत का अभिषेक होगा या कैकेयी मर जायगी ।"

उस अवस्था मे भी रानी कैकेयी की देह-काति कम न हुई । प्रसन्न मुद्रा मे वह जैसी रूपवती दिखाई देती थी, उसी तरह कोपमुद्रा मे भी उसका सौदर्य भिन्न रूप मे मनमोहक था । रूपवती स्त्रियो की यह एक विशेषता होती है ।

भरत के प्राण-भय का भूत कैकेयी के मन पर सवार हो गया । उसका मन पापपूर्ण चिताओ से भर गया । शुरू मे जो सकोच का भाव उदित हुआ था, वह तिरोहित हो गया । कैकेयी ने अब अपना हृदय पत्थर का बना लिया । उसने अपने सुदीर्घ केशो को खोल लिया । दीर्घ नि श्वास छोडती हुई, शोकातुर हो वह एक नागकन्या की तरह भूमि पर लेट गई । निषाद के शरो से आहत एक सुदर पक्षी की तरह कैकेयी धरती पर पडी थी । उसके द्वारा फेके गये आभूषण चारो तरफ ऐसे बिखरे पडे थे, मानो आकाश मे तारे चमक रहे हो ।

: १६ :

कैकेयी की करतूत

राजा दशरथ ने जो विशेष सभा बुलाई थी वह समाप्त हुई । राजा ने कर्मचारियो को विभिन्न कार्य सौपे । उनके मन से बडा भारी भार उतर

गया। चितामुक्त हो जाने पर मनोरजन की ओर ध्यान गया। अपनी सबसे प्यारी रानी कैकेयी को यह शुभ समाचार स्वय सुनाने तथा आराम से रात वही बिताने की उन्हे उत्कठा हुई।

राजभवन वैसे तो सारा ही बहुत सुदर था, परतु कैकेयी का भवन तो विशेष रूप से सुदर बना था। भवन के चारो ओर रमणीय उपवन था। उपवन मे स्थान-स्थान पर तालाब, फव्वारे इत्यादि थे। तालाब मे तैरनेवाले पक्षी आनद से कलरव करते हुए विचरण करते थे। फूलो से लदे वृक्षो के पास मोर अपने पख फैलाकर नृत्य करते थे। राजा दशरथ ने प्रमुदित मन से, किसी प्रकार के आतक के बिना, चद्रग्रहण के दिन आनेवाले सकट से अनभिज्ञ, शुक्लपक्ष के पूर्ण चद्र के समान महल मे प्रवेश किया। उनका चेहरा आनद से प्रफुल्लित हो रहा था। उन्हे आनेवाले अनिष्ट की तनिक भी प्रतीति न थी।

रानी के भवन मे सुगध की वस्तुए, नाना प्रकार के पान आदि भोग के द्रव्य अपनी-अपनी जगह पर सदा की तरह रखे हुए थे। इन मादक वस्तुओ से राजा को अपनी प्रेयसी रानी के पास पहुचने की आतुरता और भी प्रबल हुई। किंतु उन्होने देखा कि रानी के सभी आसन खाली पडे थे।

जब कभी राजकार्यो से राजा दशरथ थक जाते थे तो रानी कैकेयी के पास पहुचकर विश्राम पाते थे, क्योकि कैकेयी बाहर के कार्यों के बारे मे न कभी पूछती थी, न उनमे दखल देती थी। वह सदा राजा के मन को प्रमुदित करती थी। प्रेम से आलिंगन करके उनका स्वागत किया करती थी। आज उसको सामने न देखकर दशरथ को विस्मय हुआ। मच का और आसनो का फिर से निरीक्षण करते हुए राजा ने इधर-उधर देखा। रानी वहा न थी। उन्हे शका हुई कि शायद उन्हे चिढाने के लिए कही छिपकर न बैठी हो। उससे प्रसन्नता-मिश्रित कौतूहल हुआ और एक बार फिर सब जगह निगाह दौडाई। तभी वहा एक दासी आई और उसने हाथ जोडकर कहा, "राजन्, देवी कोपभवन मे प्रविष्ट हुई है।"

भयभीत होकर दशरथ कोपभवन मे घुस पडे। इससे पहले ऐसा मौका

कभी न आया था। कैकेयी भूमि पर पडी हुई थी। उसने राजा की तरफ आख उठाकर भी न देखा। भोले राजा की कुछ समझ मे न आया। उनके मन मे कोई मैल न था। कैकेयी के मन मे तो दुर्विचार भरे हुए थे। राजा वृद्ध थे और कैकेयी अभी जवान थी। ऐहिक भोगो की लालसा राजा के चित्त मे खूब थी। कैकेयी की दशा देखकर उन्मत्त की तरह वह आचरण करने लगे।

धरती पर पडी रानी के पास जमीन पर ही वह बैठ गये। उसके सिर को अपनी गोद मे रख लिया और प्यार से हाथ फेरने लगे। "प्रिये, तुम्हे क्या हो गया? कही पीडा हो रही है क्या? मेरे पास तो चिकित्साशास्त्र मे निपुण कई चिकित्सक है। तुम जिसको कहो उसे अभी बुलवाता हू। तुम्हे एकदम ठीक कर देंगे। घबराओ नही, मेरी तरफ देखो तो सही।" दीन स्वर मे राजा दशरथ बोले।

रानी लबी-लबी सासे लेती रही। बोली कुछ नही।

"तुम्हारा किसी ने अपमान किया है क्या? मुझे उसका नाम बताओ। अभी उसको कठोर दड दिलवाता हू। तुम्हे किसी पर क्रोध हुआ है, मुझे बताओ। यदि मुझसे ही कुछ अपराध होगया हो तो भी, देवी, मुझे बताओ।" दशरथ गिडगिडाये। पर कैकेयी के बर्ताव मे कोई अंतर नही आया।

"मेरी प्यारी रानी, तुम जिसे दड देना चाहो, उसको दड दूगा। किसी को जेल से छुडवाना चाहती हो तो उसे मुक्त कर दूगा, चाहे उसने नरहत्या ही क्यो न की हो।" कामाध राजा कहते गये।

"मैं सम्राट् हू। मेरी शक्ति को तुम जानती हो। वह कौन है, किस देश मे है, जिसने तुम्हे दु ख पहुचाया है? उसको अभी ठीक कर देता हू। यदि किसी को खुश करना चाहती हो तो वह भी बता दो।" राजा फिर बोले।

कैकेयी, जो अबतक चुपचाप लेटी थी, उठकर बैठ गई। दशरथ प्रसन्न हुए। वह बोली—

"न मेरा किसी ने अनादर किया, न किसी ने मेरी निंदा की है। हे राजन्, आपसे मुझे कुछ चाहिए। यदि आप मेरी अभिलाषा पूरी करना

स्वीकार करते हो तो मै कहू ।"

यह सुनकर दशरथ खुश हो गये। उन्होने सोचा—यह कौन-सी बडी बात है ? कैकेयी को मै क्या न दे सकूगा ?

"मेरी रानी, तुम जो मागोगी, मै देने को तैयार हू। स्त्रियो मे मेरे लिए सबसे प्यारी तुम ही हो। पुरुषो मे मै राम को सबसे अधिक चाहता हू। राम की शपथ लेकर कहता हू, तुम जो कुछ भी मागोगी वह तुम्हारा हो जायगा, यह सत्य है।" दशरथ ने कैकेयी को वचन दे डाला।

अब कैकेयी का पापचिंतन वृद्धि पाता गया। जब राजा ने 'राम की शपथ' कहा तो अब उसे कोई डर न रहा।

वह बोली, "अच्छा, तो फिर दुबारा राम की शपथ लेकर कहिये कि मेरी माग पूरी करेंगे।"

"प्राणप्रिये, लो, राम के नाम से और मेरे समस्त पुण्य कर्मों के नाम से शपथ लेता हूं कि मै तुम्हारे मन की इच्छा को पूरा करूगा।" राजा ने कह डाला।

इस समय कैकेयी को तनिक-सा सदेह हो उठा कि राजा शायद यह कह सकते है कि मै शपथ को ऐसे भयकर कुकर्म के लिए कभी काम मे न लाऊगा, क्योकि उसकी मनोकामना कितनी भयकर और नीति-विरुद्ध थी, यह वह जानती थी। कैकेयी उठकर खडी हुई। दोनो हाथ जोड लिये, चारो दिशाओ मे अजलिबद्ध हो प्रणाम किया और जोर से चिल्लाकर बोली, "हे समस्त देवतागण, मेरे पति ने जो शपथ ली है, उसके तुम सभी साक्षी हो। हे पचभूत, तुम लोग भी मेरे पति की प्रतिज्ञा के साक्षी हो।"

राजा दशरथ को अब भी कुछ भय का अनुभव न हुआ। कैकेयी के सुदर रूप को ही वह निरखते गये। अब रानी को अपनी माग राजा के सामने रखने का पूर्ण रूप से धीरज हो गया। बोली, "राजन्, आपको याद है न कि एक समय आप रणक्षेत्र मे घायल हो गये थे और आपका बचना कठिन हो रहा था। उस समय मै अधेरे मे ही आपको रथ मे लिटाकर युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल लाई थी। आपकी देह से बाणो को बाहर

निकाला था और आपको आराम पहुचाया था। जब आप होश मे आये थे तो मुझपर बडे प्रसन्न हुए थे और मुझसे कहा था कि 'दो वर माग लो, तुमने मेरे प्राण बचाये है। मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हू।'

"मैने उत्तर मे कहा था, 'आपके प्राण बचे, यही मेरे लिए काफी है। मुझे कोई वर नही चाहिए, फिर कभी माग लूगी।' ये सब बाते आपको याद है या भूल गये ?"

"अच्छी तरह याद है। अभी माग लो वे दोनो वर।" दशरथ ने कहा।

"देखिये, आपने राम का नाम लेकर शपथ ली है। सभी देवतागण और पचभूत इसके साक्षी है। मै अभी अपनी मागें बताती हू। आप अपने रघुकुल की रीति से हटना मत। वचनभग न करना। आपका कल्याण होगा। सुनिए, अभी-अभी आपने युवराजाभिषेक का जो आयोजन किया है, राम की जगह वह मेरे बेटे भरत के लिए होगा। युवराज मेरा भरत बनेगा। यह मेरा पहला वर है। दूसरा वर यह है कि राम चौदह वर्ष वन-वास भोगेगे। उन्हे अभी दडकारण्य भेज देना होगा। अपने प्रण की रक्षा करे, अपने कुल की प्रतिष्ठा और सत्य का मान रखे और सत्य से न हटे।"

आखिर कैकेयी ने कह ही डाला।

: २० :

दशरथ की व्यथा

दशरथ को अपने कानो पर विश्वास न हुआ।

'कैकेयी के मुह से मैं यह क्या सुन रहा हू ? सभव है कि मै कोई बुरा स्वप्न देख रहा हू, या पिछले जन्मो के बुरे कर्मो की याद सच्ची घटना की तरह मेरी आखो के सामने आ रही है। हो सकता है, मेरे ग्रहो के बुरे सचारो का यह परिणाम है। मै पागल तो नही हो गया हू ?'

कैकेयी के वचनो से राजा को भयकर आघात पहुचा। वह मन मे नाना प्रकार के विचार करने लगे। कैकेयी के वचनो को फिर से मन मे लाने का उन्होने प्रयत्न किया तो यह उनके लिए अशक्य और असहनीय प्रतीत हुआ। एकदम बेसुध होकर वह गिर पडे। थोडी देर बाद जब उन्हे होश आया तो सामने कैकेयी खडी थी। उसे देखकर राजा ऐसे कापने लगे, जैसे शेरनी को देखकर हिरन कापता है। 'हाय' करके मदारी के साप की तरह उनका शरीर चक्कर खाने लगा और वह फिर मूच्छित हो गए। इस बार वह काफी देर तक उसी अवस्था मे रहे। जब होश मे आए तो आखो से क्रोध की चिनगारिया निकलने लगी। "अरे दुष्टा राक्षसी, कुलघातिनी! राम ने तेरा क्या बिगाडा? अपनी मा मे और तुझमे उसने अब तक कोई भेदभाव नही रखा। तुझे मै अब तक बहुत अच्छी समझता रहा, मेरी यह बडी भारी मूर्खता थी, गलती थी। तू तो महाविषैली नागिन निकली। तुझे मै भूल से अपनी गोद मे खिलाता रहा!" दशरथ विलाप करने लगे और कैकेयी चुपचाप सुनती रही। बोली बिलकुल नही।

"सारा जगत् राम का गुणगान कर रहा है। उससे क्या अपराध हुआ, जो मै उसे वनवास का दड दू? कौशल्या के बिना मै दिन निकाल सकता हू, धर्मस्वरूपा सुमित्रा को खोकर भी मै जी लूगा, किंतु राम के बिना तो मै मर जाऊगा। जल के बिना मै जिन्दा रह सकूगा, सूर्य के प्रकाश के बिना भी रह लूगा, किंतु अपने राम के बिना मै मर जाऊगा। तू इस महापापमय विचार को मन से दूर कर दे। मै तेरे पैरो पडता हू। तूने स्वय अपने मुह से कितनी बार राम की बडाई की है। मैने तो यही सोचा था कि राम के अभिषेक से तुझको आनद होगा। तेरे मुह से ये कठोर शब्द क्यो निकले? ये भयकर वर तूने क्यो मागे? कही मेरी प्रीति की परीक्षा तो नही ले रही है? शायद तू यह देखना चाहती है कि मै भरत को प्यार करता हूं या नही?"

राजा के इन वचनो का भी कैकेयी ने कोई उत्तर नही दिया। क्रुद्ध आखो से वह दशरथ को देखती ही रही।

"आज तक तो तूने कभी ऐसा काम नही किया, जिससे मुझे दु ख पहुचे। कभी बुरे शब्द भी मुह से नही निकले। अवश्य ही किसी ने तुझे बहका दिया है। तू अपने-आप यह कभी नही माग सकती। तूने मुझसे कितनी ही बार कहा है कि 'भरत तो बडा अच्छा लडका है, किंतु राम मे तो और भी विशेषता है। राम के समान कोई नही हो सकता।' ऐसे राम को वनवास का दड क्यो दिलाना चाहती है ? वह जगल मे कैसे रहेगा ? घोर वन मे जगली जानवर उसे खा डाले तो मैं क्या करूगा ? तुझ पर उसने कितना प्यार दिखाया है, वह सब भूल गई क्या ? उससे क्या अपराध हुआ ? राजभवन मे सैकडो स्त्रियाँ रहती है। आज तक राम के विरुद्ध किसी से एक शब्द भी मैंने नही सुना। सारी दुनिया उसे चाहती है। तुझे एकाएक उस पर घृणा क्यो हो गई ? वह तो इद्रादि देवताओ की तरह और ऋषि-मुनियो जैसा तेजवान है। राम के सत्य, शील, स्नेह, ज्ञान, विद्वत्ता, शौर्य और बडो के प्रति विनय इत्यादि गुण सुप्रसिद्ध है। कभी उसके मुह से तूने कटु वचन सुना है ? उसे मै कैसे कहू कि 'तू वन को चला जा।' नही, यह सभव नही। महामाया, इस बूढे पर दया कर ! यह सारा राज्य तू ले ले। मुझे यम के पास न भेज। मै तेरे हाथ जोडता हू। पैर पकडता हू। तेरी शरण मे आया हू। मेरी रक्षा कर। राम को वन जाने को मत कह। मुझे अधर्म की ओर प्रेरित मत कर।"

यो प्रलाप करते हुए राजा दशरथ अनेक बार बेसुध हुए। उनकी आखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। ऐसी व्यथा पानेवाले राजा दशरथ से रानी कैकेयी फिर भी निर्दयतापूर्वक कहने लगी, "राजन्, आपने मुझे दो वर मागने को कहा था, और यह भी कहा था कि मैने दोनो वर दे दिये। देने के बाद अब पश्चात्ताप करते है ! दिये वर वापस लेना चाहते है ! यह कहा का न्याय है ? तब फिर आपको सत्य और धर्म का नाम भी लेने का क्या अधिकार रहा ? आपको यह कहते हुए कि 'हा, कैकेयी ने मेरे प्राण बचाए थे, उसके बदले मे मैंने उससे दो वर मागने को कहा था, बाद मे उसकी मागे मुझे पसद न आईं, मैने इन्कार कर दिया', लज्जा नही आएगी?

सारा राजकुल आपकी निंदा करेगा। शिवि ने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने शरीर का मास काटकर दे दिया था। अलर्क ने अपनी दोनो आखे निकालकर वचन का पालन किया था और सद्गति को प्राप्त हुआ था। क्या इन बातो को आप भूल गए ? समुद्र ने अपनी मर्यादा को भग न करने की प्रतिज्ञा की थी, अभी तक उसने अपना वचन भग नही किया। आपने उत्तम कुल मे जन्म पाया है। उस कुल के नाम को बट्टा न लगाए। पर नही, आपको सत्य और धर्म की क्या चिंता है ? आपको तो बस कौशल्या चाहिए, राम चाहिए। पर याद रखिए, मेरे मागे हुए वरो को आप मुझे न देगे तो मैं अभी आपके सामने जहर पीकर मर जाऊगी। आपका राम राजा बन जाएगा, मैं आपके सामने मरी पडी रहूगी। यह सत्य है। मै भरत की सौगध खाकर कहती हू, यदि राम को तुरत वन न भेजा तो अभी विष-पान करूगी।"

राजा दशरथ स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। उन्हे सदेह हुआ कि यह पत्नी है, या पिशाचिनी ? फिर बेसुध होकर कटे वृक्ष की भाति धडाम से नीचे गिर पडे। थोडी देर बाद सचेत हुए तो दीन स्वर मे कैकेयी को समझाने लगे, "मेरी रानी, बता, तुझे किसने यह सब सिखाया है ? मै तो अब मरा। मेरा कुल भी गया, समझ ले। कोई भूत-प्रेत तो तुझे नही नचा रहा है ? इस प्रकार का निर्लज्ज आचरण तेरे स्वभाव के विरुद्ध है। क्या तू सोचती है कि राम को वन भेजकर खुशी के साथ भरत राजा बन जाएगा ? भरत के गुण को तू अच्छी तरह नही जानती। भरत कभी इसके लिए राजी न होगा। मै किस मुह से राम से कहू कि 'वन चला जा।' यह कभी हो सकता है ? दुनिया के अन्य नरेश मेरे बारे मे क्या सोचेगे ! 'औरत के कहने मे आकर बूढा पागल हो गया। लडके को देश से निकाल दिया।' यही कहेगे न ? तूने तो बडी आसानी से कह डाला कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन मे भेज दो। यह सुनते ही कौशल्या जान दे देगी। मैं भी जीवित न रहूगा। जनकसुता सीता के बारे मे भी तूने कुछ सोचा है ? राम के दडकारण्य मे रहते हुए क्या सीता के प्राण यहा टिक सकते है ? तेरे

रूप को देखकर मै धोखे मे आ गया। विष मिला हुआ मधु है तू। व्याध के सुरीले राग मे जैसे हिरन फस जाता है, वैसे ही तेरे रूप के मोह मे फसकर मैने मृत्यु मोल ली। सारी दुनिया मुझे दुत्कारेगी। मद्यपान करनेवाले ब्राह्मण से जैसे हर कोई घृणा करता है, वैसे ही मुझसे घृणा करेगा। तूने भी अच्छे वर मागे! राम थोडे ही मेरी आज्ञा का उल्लघन करनेवाला है। उसको वन भेजकर मै और मेरे साथ-साथ कौशल्या और सुमित्रा हम सभी मर जाएगे। तू राज्य का भोग करती हुई जिदा रह। अरी पिशाचिनी, यदि भरत तेरे षड्यत्र को मान ले तो वह मेरे मरने के बाद मेरी उत्तर-क्रियाए न करे। हे मेरी परम वैरिन, विधवा होकर मेरी सपत्तियो का भले तू भोग कर।

"हाय, अपने राम को मै राज्य से भगाकर वन भेजू? यह भला मुझमे कैसे होगा? स्त्रिया कैसी बुरी होती है! नही, सभी स्त्रिया बुरी नही होती। यह कैकेयी ही ऐसी पापिनी निकली। औरो को मै क्यो कोसू? इसने भरत-जैसे को कैसे जन्म दिया?

"कैकेयी, बार-बार मै तेरे पैर पकडता हू। मेरी बात मान ले। अपनी माग वापस ले ले।"

इतना कहकर राजा दशरथ जमीन पर लोटने लगे। करुण प्रलाप करने लगे। कर्म की गति न्यारी होती है। दशरथ को देखकर ऐसा लगता था कि किये हुए पुण्यो के क्षीण हो जाने पर जैसे स्वर्ग से राजा नहुष पृथ्वी पर फेंके गये हो।

राजा के हजार बार मनाने पर भी रानी तनिक भी नरम न पडी। "देवता साक्षी है, आप तो सबसे यही कहते फिरते है कि 'मै महासत्यवादी हू।' अब उससे हटना चाहते है! यदि आप अपना वचन न पालेगे तो मै भी आत्महत्या कर लूगी। यह मेरा पक्का और अतिम विचार है।" कैकेयी ने वाक्य पूरा किया।

"तो पापिनी, सुन! राम वन को जाएगा। मै मर जाऊगा। मेरी और मेरे कुल की शत्रु बनकर प्रसन्न हो। आराम से धन-दौलत का भोग कर।"

राजा ने चिल्लाकर कहा, "दुष्टे, राम को वन भेजकर तू कौन-सा सुख भोगनेवाली है ? सारी प्रजा तुझे कोसेगी। बरसो की तपस्या के बाद मुझे राम मिला था, अब उसको जगल भेज रहा हू। अपने भाग्य को क्या कहू!"

फिर आकाश की ओर राजा ने देखा और कहा, "हे निशे, तू तो तेजी से जा रही है। सूर्योदय शीघ्र होनेवाला है, और तू एकदम चली जाएगी। भोर हुआ तो मै क्या करूगा ? अभिषेक के लिए लोग राह देख रहे है। उनको अपना मुह कैसे दिखाऊगा ? हे तारागण, आप लोग सब अपने-अपने स्थानो मे रुके रहे। नही-नही, शायद आप सब मुझ पापी को देखना नही चाहते होगे। अच्छा, तो आप मब हट जाए। सुबह होने दे। सुबह होते ही मै यहा से निकल जाऊगा। इस पिशाचिनी को देखने से तो बचूगा।"

वर्षो तक राज्य-पालन करते-करते जो बूढे हो गये थे, जिन्होने कभी किसी से हार न मानी थी, वह दशरथ इस तरह करुण विलाप करने लगे।

"हे देवी, एक बार मेरे ऊपर दया कर। मैने आवेश मे आकर तुझे बहुत-कुछ बुरा सुना दिया। उसे भूल जा। तू तो मुझे कितना प्यार करती है! मैने तो यह सारा राज्य तुझे दे ही दिया है। अब मेरी एक बात सुन ले। अपने हाथो से उस राज्य को राम को दे दे। कल का शुभ कार्य हो जाने दे। सबको मैने बता दिया है कि कल राम का राज्याभिषेक होगा। उमे तू निभा ले। जबतक यह दुनिया रहेगी, लोग तेरी स्तुति करते रहेगे। मै यही चाहता हू, लोग यही चाहते है, वयोवृद्ध लोग यही चाहते है और भरत की भी यही इच्छा होगी कि राम राजा बने। मान जा, मेरी प्यारी, मेरी रानी, मेरी सर्वस्व!"

यो कहते हुए राजा ने फिर कैकेयी के पैर पकड लिये।

कैकेयी ने अपने पैर छुडाकर कहा, "मै आपकी बात कभी न मानूगी। आपको अपना वचन पालना ही होगा और वह भी अभी, एकदम। यदि आप सत्य से हटकर झूठ की तरफ जायगे तो तुरत आत्महत्या कर लूगी।"

"मन्त्रोच्चार के साथ अग्नि के सामने मैंने तेरे साथ पाणिग्रहण किया

था। अब तेरा परित्याग करता हू। तेरे लडके भरत का भी त्याग करता हू। रात पूरी हो जाय और सूर्योदय हो तब युवराजाभिषेक नही, मेरी अतिम क्रियाए होगी।" राजा बोले।

"क्यो व्यर्थ बके जा रहे हो? अभी इसी क्षण राम को यहा बुलवाइये। उससे कहे कि राज्य भरत के लिए है और तुम वन की ओर चल दो। मुझसे अब देर नही सही जाती।" कैकेयी के मुह से ये कठोर वचन निकले।

"अच्छा, मरने से पहले अपने प्रिय पुत्र का मुह तो देख लू। बुला उसको। वचनबद्ध होकर मै तो अब लाचार होगया हू। मै बेवकूफ बूढा अब कर ही क्या सकता हू?"

यह कहते-कहते राजा दशरथ फिर बेहोश हो गये।

: २१ :

मार्मिक दृश्य

एक ओर राम के प्रति अपार स्नेह, दूसरी ओर वचन का बधन—इन दो बातो से राजा धर्मसकट मे पड गये। उन्होने यह आशा की थी कि कैकेयी दया करेगी, मान जायगी, किंतु परिणाम कुछ और ही निकला। कैकेयी जरा भी नही पिघली। "अब एक ही मार्ग खुला है। मै वचनबद्ध हू। किंतु राम स्वतत्र है। उसे मेरी प्रतिज्ञा के बारे मे क्यो चिता होनी चाहिए? वह बली है। सारी प्रजा उसके साथ रहेगी। उसे मेरी माग को मान लेने की कोई आवश्यकता नही। किंतु क्या राम ऐसा करेगा? यह तो उसके स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल है। यदि उसके मन मे मेरे विरुद्ध खडे होने का विचार आ जाय तो मैं कितना खुश होऊगा, तब मैं भी वचन-भग से बच जाऊगा। इससे कुलधर्म की रक्षा और प्रजा की माग, दोनो बातें पूरी हो जायगी।" राजा दशरथ इस प्रकार सोचने लगे। पुत्र के कल्याण और आराम मे ही तत्पर दशरथ उस समय भूल गये कि रामचद्र पिता के

वचन का पालन करने के लिए सब-कुछ त्याग सकते है ।

राजा को निश्चित रूप से विश्वास होगया कि वह अब मरने ही वाले है। इससे उन्हे कुछ सात्वना मिली । उन्होने सोचा, "चलो, अपनी आखो से तो यह सब न देखूगा ।"

मृत्यु जब राजा को एकदम पास मे खडी दिखाई दी तो राजा को पुरानी बाते याद आने लगी । "अपने कर्मो का फल ही तो यह भोग रहा हू । ऋषि-कुमार की हत्या करके उसके वृद्ध माता-पिता को मैने कैसा भयकर आघात पहुचाया था ! वह व्यर्थ कैसे हो सकता है ? मेरा पुत्र-शोक से पीडित होकर मरना अनिवार्य है। उससे पापमुक्त होऊगा ।" दशरथ के मन मे इसका निश्चय होगया । अपने मन को शात करने का व्यर्थ प्रयत्न वह करते रहे ।

अब कैकेयी को दिये गये वचनो को अमल मे लाने के अतिरिक्त दशरथ के पास और कोई उपाय न रहा। इसलिए कैकेयी से यह कहकर चुप हो गये कि "तुझे जो कुछ करना है, अपने-आप कर ले ।"

जैसे ही सूर्य उदय हुआ और मगल मुहूर्त का समय आने लगा, वसिष्ठ और उनके शिष्य पुण्य सरिताओ के जल से पूरित स्वर्ण-कलश तथा अन्य सामग्रियो को जुटाकर राजपथ से होकर राजभवन की ओर आने लगे । सारा मार्ग सजावटो से सुशोभित हो रहा था । लोगो की बडी भीड लगी हुई थी । बडी आतुरता के साथ जनसमुदाय मगल घडी की प्रतीक्षा मे था । पुरोहितो का जलूस देखकर उन्हे बडा आनद हुआ । पूर्णकुभ, धन, धन्य, मधु, दही, घी, खील, दर्भ, समित्, पुष्प, दूध, हाथी, घोडे, रथ, धवल, छत्र, बल और व्याघ्र चर्मो के आसन इत्यादि वाद्यघोष के साथ राजभवन की ओर जाते देखकर लोगो का उत्साह खूब बढ गया ।

राजभवन के द्वार पर ऋषि वसिष्ठ ने सुमत को देखा । "सब वस्तुए तैयार है । लोग आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे है । राजा से कहे कि मगल कार्य का प्रारभ हो जाय ।" वसिष्ठ ने सुमत से कहा ।

सुमत ने हाथ जोडकर राजगुरु को प्रणाम किया और राजा के शयनगृह के द्वार पर जाकर नियम के अनुसार मगल स्तुति की और खडे-खडे राजगुरु

का सदेश सुनाया, "हे राजाधिराज, इद्र-तुल्य, मातलि जैसे इद्र को जगाया करता है वैसे ही मै आपको जगाना चाहता हूं। सभी देवता आपको कार्य-सिद्धि प्रदान करे। वयोवृद्ध लोग, सेनानायक, नगर के सभी प्रमुख जन आपके दर्शनो की प्रतीक्षा कर रहे है। अत रात बीत चुकी है। प्रात काल के सभी कार्य आपकी आज्ञा के बाद ही आरभ होगे। राजन्, उठने की कृपा करे। ऋषि वसिष्ठ अन्य ब्राह्मणोत्तमो के साथ प्रतीक्षा कर रहे है।" सुमत ने राजा से निवेदन किया।

राजा दशरथ की ऐसी स्थिति नही थी कि वह कुछ बोल सके। उनके मन मे ग्लानि चरमसीमा पर पहुची हुई थी। अत उनकी जगह रानी कैकेयी ने दृढता के साथ सुमत से कहा, "राजा तो राज्याभिषेक के बारे मे ही सोचते रहे। अभी-अभी जरा सोये है। गहरी नीद मे है। आप जल्दी से राम को यहा बुलाकर लाये।"

इस प्रकार बडी चतुराई के साथ उसने सुमत को राम को बुलाने के लिए भेज दिया। उसने अपने मन मे सोच लिया कि राजा ने वचन तो दे दिया है, पर उसे अमल मे लाने के लिए बाकी सब काम मुझे स्वय ही करने पडेगे। राजा से वह हो नही सकेगा।

सुमत राम के महल मे गये। वहा राम और सीता दोनो महोत्सव के लिए एकदम तैयार थे। सुमत वहा पहुचे और राम से कहने लगे, "महाराजा और देवी कैकेयी ने आपको इसी क्षण बुलाया है।"

राम सुमत के साथ राजा के पास चल दिये। यह देखकर वहा उपस्थित लोगो को कुछ आश्चर्य होने लगा, किंतु किसी को कुछ पूछने की हिम्मत न हुई।

बाहर उत्सव के लिए आनदोल्लास हो रहा था। शुभ घडी भी एकदम पास आगई। पर अत पुर का और ही हाल था।

विलब का कारण लोगो की समझ मे नही आ रहा था। सोचते थे कि प्रारभिक विधिया कुछ लबी हो गई होगी।

राजभवन के सामने लोगो की भीड बढती चली जा रही थी।

सुमत राम को ले आये। लोगो की भीड को हटाकर उन्हे रास्ता बनाकर जाना पडा। अत पुर मे राजा के शयनगृह मे राम ने प्रवेश किया। अदर का दृश्य देखकर राम एकदम चौक पडे, क्योकि उन्हे स्वप्न मे भी राजा की अस्वस्थता की कल्पना नही थी। राजा दशरथ शोकसागर मे डूबे हुए थे। धूप मे मुरझाए फूल की तरह उनका मुखमडल कातिहीन दिखाई दे रहा था।

रामचद्र ने पिता को चरण छूकर प्रणाम किया। कैकेयी को भी प्रणाम किया।

राजा के मुह से केवल 'राम' शब्द निकला। उससे आगे उनसे कुछ भी न बोला गया और न राम से आखे मिलाने का ही उन्हे साहस हुआ।

राम को बडा आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि पिताजी मेरी तरफ देख भी नही रहे हैं, कुछ बोल भी नही रहे है, क्या बात हो सकती है? उन्हे चिंता होने लगी।

राजा को व्यथित देखकर राम को कुछ समझ मे न आया। उन्होने माता कैकेयी से पूछा, "मा, बात क्या है? कभी ऐसा नही हुआ कि राजा मुझे देखकर प्यार से बोले बिना रहे हो। चाहे कैसी भी चिंता मे हो, मुझसे तो सदा मिठास से ही बोलते रहे है। आज क्या बात हुई? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ? पिताजी का शरीर तो अस्वस्थ नही है न? किसी ने उन्हे चोट पहुचाई है? मामला क्या है? कृपा कर मुझे सारी बाते बताए। मुझसे उनकी यह हालत सही नही जाती।"

राम ने चिंताकुल होकर जब इस प्रकार पूछा तो कैकेयी ने सोचा कि अब सकोच करने का मौका नही है। कार्यसिद्धि का अवसर आ गया है। इसे हाथ से नही जाने देना चाहिए। उसने राम से कहा, "राजा किसी से खिन्न नही है। तुमको उन्हे एक-दो बाते बतानी है। किंतु उन्हे ऐसा करने की हिम्मत नही हो रही है। इसी कारण बोल नही पाते है। एक समय राजा मुझसे बहुत प्रसन्न हो गये थे। तब उन्होने मुझे दो वरदान दिये थे। लेकिन अब पछता रहे है कि ऐसा क्यो किया? तुम्ही बताओ,

यह काम भला राजा को शोभा देता है? दिये हुए दान पर पछताना मूर्खता नही तो क्या है? अब उनके दिये हुए वचन को निभाना तुम्हारे हाथ मे है। तुमसे यह बात बताते हुए वह डरते है और अपने वचन से पीछे हटना चाहते है। यह कैसी बुरी बात है! यदि तुम उनसे कहोगे कि चिता की कोई बात नही, तुम्हारे लिए वह अपनी प्रतिज्ञा को भग न करे, तो सब-कुछ ठीक हो जायगा। राजा फिर अपने मन की बात तुमसे कह सकेगे। यदि तुम मुझसे कहो कि यह काम अवश्य करूगा तो मै स्वय सारी बात बता दूगी।"

रामचद्र को कैकेयी की बात से बडी चोट पहुची। उन्होने उससे कहा, "मा, आपका मुझ पर अविश्वास करना ठीक नही है। मै इतना नीच नही बन गया हू। पिताजी यदि मुझे आग मे कूदने को कहे तो उसके लिए भी मैं तैयार रहूगा। मुझे आप भली-भाति जानती है। आप किसी बात की चिंता न करे। मै प्रण करता हू कि पिताजी की जो भी आज्ञा होगी उसका मैं पालन करूगा, यह निश्चित है।"

रामचद्र की यह वाणी सुनकर कैकेयी को बडा हर्ष हुआ। उसने सोचा, अब मेरा काम बन गया। पर राजा दशरथ तो दुखसागर मे एकदम डूब गये। उन्होने सोचा—बस, अब बचने के सभी द्वार बद हो गये।

कैकेयी ने अब लोकलाज छोड दी। दयाभाव को हृदय से दूर हटाकर रामचद्र से पापिनी कैकेयी ने अति कठोर बात कह डाली, "राम, तुमने जो कहा वह तुम्हारे ही योग्य है। पुत्र का सर्वोत्तम धर्म पिता को सत्य-धर्म से हटने न देना होता है। अब तुम्हे सारी बाते मै बताती हू। इससे तुम्हारी समझ मे आ जायगा कि राजा तुमसे बोलने के लिए क्यो सकुचाते है। शबर के साथ युद्ध करते समय जब राजा घायल हो गये थे तब मैंने उनके प्राण बचाये थे। उस समय मुझसे प्रसन्न होकर उन्होने मुझे दो वर मागने को कहा था। मैने तब कुछ न मागा। कहा था कि फिर कभी माग लूगी। उन्होने मेरी बात मान ली थी। अब इस समय मैंने पुराने दो वरो की माग की है। मेरी पहली माग यह है कि भरत को राजगद्दी मिले और दूसरी यह कि

तुम्हे आज के दिन से ही कोशल राज्य से बाहर निकल जाना चाहिए और दडकारण्य मे चौदह वर्ष बिताने चाहिए। राजा इन दो वरो को देने से अब इन्कार करना चाहते है। यह कैसे सभव है ? तुम अब स्वय अपने और पिता के दोनो के प्राणो की रक्षा करो। यदि तुम भी सत्य से हटना चाहते हो तो दूसरी बात है। यदि वैसा न करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो। तुम्हारे अभिषेक के लिए जो जल लाया गया है उसी से भरत का अभिषेक करवाओ। विलब किये बिना अब अपने बालो की जटा बनवा लो, अपने नरम वस्त्रो को उतारकर वल्कल धारण करके वन के लिए चल पडो। यदि तुम 'हा' कर दोगे तो राजा भी धर्मसकट से बच जायगे और तुम भी बडी ख्याति पाओगे।"

कैकेयी के इन भयकर शब्दो मे एक ही बात थी, वह थी राम की ख्याति। राम की ख्याति तो तब से लेकर अब तक बनी है और जब तक हिमाचल और गगा का अस्तित्व रहेगा तब तक बनी रहेगी।

बेचारे दशरथ पत्नी की बाते सुनते रहे। उनका हृदय दु ख से फटने लगा। किंतु कैकेयी तो विस्मय से स्तब्ध ही रह गई। ऐसी निर्दय आज्ञा को सुनकर भी राम की मुखाकृति जरा विकृत न हुई। दशरथनदन मुसकराकर बोले, "मा, आपकी जो आज्ञा। लीजिये, अभी वल्कल पहनकर वन के लिए निकल पडता हू। मैं बडे हर्ष के साथ राज्य को छोडता हू। किसी के कहने से क्यो, अपनी इच्छा से मै भरत के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हू। जब पिताजी की भी यही आज्ञा है तब तो एक क्षण का भी विलब मैं नही कर सकता। मै उनका दास हू। दास को आज्ञा देते हुए राजा को जरा भी सकोच नही करना चाहिए। उनकी आज्ञा का पालन करना मैं अपना अहोभाग्य समझता हू। मुझे इसी बात का दु ख है कि राजा ने, मेरे पिताजी ने, अपने मुह से मुझे आज्ञा क्यो नही दी ? मै सहर्ष वन जा रहा हू। भाई भरत के पास शीघ्रता से दूत भेज दिये जाय।"

ऐसे धीर-गभीर शब्द कहकर राम चुप हो गये। उस समय उनका सुदर मुख घी से प्रज्वलित अग्नि की तरह तेजोमय था। दुष्ट कैकेयी

स्वार्थसिद्धि पाकर खुश हो गई। उसे इसका जरा भी भास न हुआ कि आगे उसके लिए कौन-कौन से दु ख पडे है। अपने बेटे के मुह से तिरस्कारोक्ति से अधिक एक मा के लिए बुरी चीज और क्या हो सकती है ? उस समय लोभ से कैकेयी अधी होगई थी। उसमे भरत के स्वभाव को जानने की क्षमता भी नही रही थी।

महाराजा दशरथ तडपने लगे। उनकी स्थिति चारो तरफ से रास्ता रोककर पकडे जानेवाले जगली हाथी-जैसी थी। कैकेयी आगे बोली, "राम, राजा के मुह से आज्ञा सुनने के लिए ठहरो मत। यहा से जल्दी ही निकल पडो।"

राम ने विनय से कहा, "मा, आपने मुझे ठीक पहचाना नही। मै किसी चीज की इच्छा से विलब नही कर रहा हू। मेरी एकमात्र इच्छा पिता के वचनो का पालन ही है। भरत राज्य-भार अच्छी तरह सम्हाले और वृद्ध पिता को भी भली प्रकार सम्हाले, यही मै चाहता हू।"

दशरथ से अब सुना नही गया। वह बेचारे फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीरामचद्र ने पिता के और कैकेयी के चरण छूकर प्रणाम किया और वहा से चल दिये।

लक्ष्मण अब तक बाहर खडे-खडे सब तमाशा देख रहे थे। क्रोध से उनकी आखे लाल हो गईं। वह राम के पीछे-पीछे जाने लगे।

सामने अभिषेक के लिए लाये गये पूर्णकुभो को देखकर भी राम का मुख-कमल विषादग्रस्त न हुआ। उनकी प्रदक्षिणा करते हुए श्रीराम आगे बढे। राम के साथ सफेद छत्र-चमर लिये लोग खडे थे। उनको श्रीराम ने अलग हटा दिया। वहा एकत्र लोगो से विनती की कि सब अपने-अपने स्थान को लौट जाय। और जितेद्रिय रघुकुलमणि श्रीराम माता कौशल्या के पास उनको सारी बाते सुनाने तथा उनसे विदा लेने के लिए चले गये।

ऐसी घटना के समय उत्पन्न मानसिक उद्वेगो और सघर्षो को समझ पाना, केवल पुस्तको को पढ लेने से, अशक्य है। अपने-अपने अनुभवो को लेकर हम कल्पना करते हैं कि उस समय अयोध्या मे लोगो की मानसिक

दशा क्या रही होगी। दशरथ का पुत्र-स्नेह, रघुनदन का सत्यधर्म, कैकेयी का लोभग्रस्त हृदय आदि हमारे दैनिक मानसिक सघर्षो से भिन्न नही है।

मुनि वाल्मीकि, कबन और अन्य भक्तो ने रामायण के इस भाग का बहुत ही हृदयद्रावक ढग से वर्णन किया है। इसीलिए कहते है कि जहा कही भी रामायण का पाठ हो रहा हो वहा हनुमानजी 'वाष्पवारिपरिपूर्ण लोचन' होकर तथा अजलिबद्ध हाथो के साथ कथा सुनने लग जाते है।

रामायण की इस घटना को जो कोई नर, नारी, बालक पढेगे, वे राम के कृपापात्र होगे। सकट के समय उन्हे श्रीरामचद्र याद आयगे। उन्हे दु खो का सामना करने की शक्ति प्राप्त होगी।

: २२ :

लक्ष्मण का क्रोध

रामचद्र माता कौशल्या के महल मे पहुचे। वहा बहुत-से ब्राह्मण, स्त्रिया और अतिथिगण इकट्ठे थे। सब आनदित थे कि राम युवराज बनने वाले है और सब उसी मगल घडी की प्रतीक्षा मे थे। सामने वाले मडप मे महारानी कौशल्या धवल रेशमी वस्त्र पहने हवन कर रही थी। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह देवताओ का ध्यान कर रही थी। जैसे ही उन्होने रामचद्र को देखा वह उठ खडी हुई। उन्होने पुत्र का आलिगन किया, माथा चूमा और युवराज के उपयुक्त आसन दिखाकर राम से कहने लगी, 'इस पर बैठ जाओ।''

''मा, मैं ऐसे आसन पर अब नही बैठ सकता। नीचे दर्भ के आसन पर ही बैठूगा। आज से मै तपस्वी हुआ हूं। मै आपको एक समाचार सुनाने आया हू। उससे आपको दु ख तो होगा पर आपको शाति रखनी होगी।'' यह कह श्रीराम ने माता कौशल्या को सारी बाते बताई और उनसे आशीर्वाद मागा।

राम कहने लगे, "महाराज भरत को राज्य देना चाहते है। उनकी आज्ञा है कि मै चौदह वर्ष दडकारण्य मे वास करू। आपसे विदा लेकर मुझे आज ही देश छोडकर चले जाना होगा।"

ऐसी कठोर बात को सुनते ही कटे हुए कदली के पेड के समान देवी कौशल्या नीचे गिर पडी। लक्ष्मण और राम ने उनको दौडकर सम्हाला। कौशल्या राम से लिपटकर रोने लगी। वह कहने लगी, "मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ है या लोहे का? मै अभी तक जिंदा कैसे हू?"

माता कौशल्या का प्रलाप लक्ष्मण से नही सुना गया। उन्हे अपने पिता दशरथ पर बडा क्रोध आया। आवेश मे आकर वह कहने लगे, "ऐसा दड, जो बडे दुष्ट अपराधियो को ही दिया जाता है, भाई रामचद्र को हमारे बूढे बाप ने दिया है। किसके कहने से यह सब हुआ है? राजा ने राम का क्या अपराध देखा! दुश्मन भी राम पर किसी दोष का आरोप नही लगा सकता। बुढापे के कारण पिताजी पागल हो गये लगते है। उन्हे राजा बने रहने का अब अधिकार नही। जो राजा अपनी स्त्री के कहने पर अधर्म करने लग जाता है, वह राजा कैसे रह सकता है! वैरी भी राम को देखते ही अपना वैर भूलकर उन्हे प्यार करने लग जाते है। भैया, मेरी बात सुनो, हम दोनो मिलकर पिता से लडकर राज्य छीन लेगे। हमारा सामना कौन कर सकता है! कोई मेरा सामना करेगा तो उसे मार गिराऊगा। बस, आपकी आज्ञा की देर है। मैं अकेला ही सब देख लूगा। देखू भरत कैसे राजा बनता है! आपको वन मे भेज देने की खूब सूझी है इन लोगो को। आप इस षड्यत्र के शिकार न बने। मैं इनको हराकर आपको सिंहासन पर बिठाकर छोडूगा। मुझमे ऐसा करने की पूरी शक्ति है। यह सूर्योदय नही हुआ है, अधकार छा गया है। सारी जनता तो आपके अभिषेक को देखने के लिए जमा हुई है और राजा आपको वन भेज रहे है! मै इसे चुपचाप सहन नही कर सकता। मै तो वही करूगा जो न्याययुक्त है। मा, आप देखती रहे। भाई, आप भी देखे कि लक्ष्मण मे कितनी ताकत है!"

लक्ष्मण की बातो से कौशल्यादेवी कुछ स्वस्थ हुई। किंतु राजा को

गद्दी से हटा देना, बलपूर्वक सिहासन पर बैठ जाना, बाप से राज्य छीनना आदि बातो से वह डर गई। राम से कहने लगी, "लक्ष्मण क्या कह रहा है, सोच लो। तुम दडकारण्य मत जाओ। तुम्हारे बिना मै शत्रुओ के बीच मे कैसे रह सकूगी ? यदि तुम्हे जाना ही पडे तो मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

राम शाति से लक्ष्मण की बाते सुन रहे थे। उन्होने सोचा कि लक्ष्मण को बीच मे रोकना कठिन है। उसका रोष चरमसीमा तक पहुचने के बाद ही उतरता है। बाद मे ही उसको समझाना उचित होगा।

श्रीरामचद्र माता कौशल्या से कहने लगे, "मा, मेरे साथ वन मे चलने की बात कोई न करे। पिताजी वृद्ध हो गये है, दुखी है। उनकी सेवा-शुश्रूषा आप ही कर सकती है। आपका धर्म यही है। महाराज की पटरानी होकर एक विधवा की तरह मेरे साथ आपका चलना ठीक नही। चौदह वर्ष वन मे काटकर मै तो जल्दी ही वापस आ जाऊगा। उसके बाद हम सब बहुत वर्ष सुख से रहेगे। पिता की आज्ञा धर्मयुक्त है या नही, अपने-आप उन्होने ऐसा कहा या किसी और के कहने मे आकर कहा, इसका हम विचार न करे। मेरा धर्म तो उनका कहना मानना है। अपना धर्म छोडकर धन-धान्य, राज्य और अधिकार से मै सुख न पाऊगा। उसमे श्रेय भी नही है। भाई लक्ष्मण, तुम जो कहते हो, वह ठीक नही है। तुम्हारी शक्ति को मै जानता हू। तुम सबको हराकर मुझे राजगद्दी दिला सकते हो। मेरे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है, उसे भी मै समझता हू। किंतु, मेरे प्यारे भाई, ऐसा काम हमारे वश को शोभा नही दे सकता। पिता का कहना मानना सबसे उत्तम काम होता है। उसे खोकर अन्य कोई भी चीज निरर्थक है।"

राम इस प्रकार माता कौशल्या को और भाई लक्ष्मण को समझाने लगे। किंतु लक्ष्मण का क्रोध इतनी जल्दी उतरनेवाला न था। उनकी अपनी कोई बात होती तो वह भूल सकते थे। भाई राम के साथ बिना किसी कारण के ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार लक्ष्मण से सहा नही गया। उनकी आखे लाल हो रही थी, मानो उनसे चिनगारिया निकल रही हो। रामचद्र उन्हे

अलग ले गये और कोमलता से बात करने लगे, "प्यारे भाई, तुम तो मेरे चलते-फिरते प्राण हो। मेरा कहना मानो। तुम बडे साहसी हो, अपने क्रोध का—मेरे कारण उत्पन्न दु ख का—दमन करो। उसके वश मे न होओ। हम धर्म को दृढता से पकडे रहे। अभी जो तुम कह रहे थे कि हमारा अपमान हुआ तो उसी को हमे आनद का रूप दे देना चाहिए। राज्याभिषेक को हम एकदम भूल जाय और अपने ध्यान को दूसरी दिशा मे ले जाय। अब हमे सोचना चाहिए कि पिताजी की क्या स्थिति है ? उन पर कैसा-क्या सकट आया है ? अबतक वह एक बार भी सत्य से नही हटे। अब वह अपने वचन से हटे तो उनके किये सभी पुण्य निरर्थक हो जायगे और पाप उन्हे घेर लेगा। इसलिए पिताजी असत्य की ओर जाने से घबरा रहे है। हमारा धर्म यह है कि उनसे कहे कि डरने का कोई कारण नही। उन्हे सचाई छोडने की आवश्यकता बिलकुल नही। उनकी आज्ञा से मुझे या तुम्हे बिलकुल दु ख नही हो रहा। तब पिताजी के लिए मार्ग सरल बन सकता है।

"हमारा कर्तव्य यह है कि प्राणदाता पिता के चित्त मे शाति उत्पन्न करे, उन्हे विश्वास दिलाये कि उन्हे अवश्य ही सद्गति प्राप्त होगी। उनके मन मे यह डर बैठ गया है कि कही असत्य आचरण से मरने के बाद वह नरक न पहुच जाय। हम उनके डर को दूर करेगे। हमने आज तक उनको तनिक भी व्यथा नही पहुचाई है। अब वह दुखी है। उन्हे और दुखी न करेगे।

"इसलिए, हे लक्ष्मण, मेरा मन तो अपने युवराजाभिषेक से हट गया है। मै हृदय से चाहता हू कि छोटे भाई भरत को गद्दी मिले। हम इस कार्य मे विलब करेगे तो माता कैकेयी को मेरी वृत्ति के विषय मे शका होगी। इसलिए मै आज ही यहा से निकल जाना चाहता हू। तभी मा कैकेयी के मन मे शाति हो सकती है। पिताजी भी धर्मसकट से मुक्त होकर शाति पायगे। उन्हे यही विचार सता रहा है कि मै दु ख पाऊगा। उनका यह विचार निराधार है। मैं यह साबित करके दिखाना चाहता हू। तभी उनके मन का दु ख दूर हो सकता है। इसी कारण मै जल्दी मचा रहा हू।

"कैकेयी माता के ऊपर भी हमे नाराज नही होना चाहिए। वह तो

आज तक हमे कितना प्यार करती आई है। एकाएक उनके मन मे जो परिवर्तन आया है, उसे मै विधि का ही दोष मानता हू। हम कैकेयी माता की निदा करेंगे तो यह बडी अनुचित बात होगी।

"विधि के आगे मनुष्यो के सकल्प नही चलते। जो कुछ अब बना है, उसमे कैकेयी का दोष नही। होनी होकर ही रहती है। मा कैकेयी तो निमित्त बन गई है। माता कैकेयी को जैसे हम पहले प्यार करते थे, हमारा व्यवहार अब भी वैसा ही रहना चाहिए। यदि उनके मन मे कपट रहता तो अबतक हमसे छिपा न रहता। आज एकाएक जब मैने उनके मुह से सुना कि 'राम, तू आज ही देश छोडकर वन चला जा' तो मैं समझ गया कि कुछ विधाता का ही खेल है। ऐसी सुसस्कृत, सदा मृदुभाषिणी, सदा हम सबको सगी मा की तरह चाहनेवाली कैकेयी का राजा के सामने इस प्रकार का निर्लज्ज व्यवहार देखकर मुझे तो लगता है कि यह दैवेच्छा के सिवाय और कुछ भी नही। दैव के सामने तो बडे-बडे ऋषि-मुनि भी हार मानते है। अपने तप से फिसल पडते है। तो बेचारी मा कैकेयी क्या कर सकती थी?

"हम अपने मनोबल से इस अनर्थ को खुशी का प्रसग बना डालेगे। उसी मे हमारी शोभा है। प्यारे लक्ष्मण, अब वन जाने का सकल्प मुझे लेना है, गुरुजनो का आशीर्वाद लेना अभी बाकी है। समय बीत रहा है। जो पानी अभिषेक के लिए लाया गया है, उसी गगाजल को वनवास-व्रत-सकल्प के काम मे लाऊगा। पर नही, यह भी ठीक नही है। वह जल तो राजकीय वस्तु है। अभिषेक के कार्य के लिए लाई गई चीज है। उसको काम मे लाने का अधिकार अब हमे नही। राज्य और धन-सपत्ति की चिंता मत करो। वनवास उससे भी ऊची चीज है। हमारी छोटी मा के ऊपर से तुम अपना क्रोध हटा लो।" इस प्रकार राम लक्ष्मण को खूब अच्छी तरह समझाने लगे।

वाल्मीकि ने इस स्थान पर 'दैवी' शब्द का प्रयोग किया है। सस्कृत मे 'देव' शब्द का अर्थ होनहार, अथवा नियति याने जो अचानक हमारी समझ के बाहर कोई घटना घट जाती हो, के लिए उपयोग मे लाया जाता

है। रामचद्र यहा पर विधि का उल्लेख करके यह नही कह रहे है कि यह पहले ही से देवो से निश्चित वस्तु है, जिसका पता राम को था, किंतु यही कहना चाहते है कि मनुष्य-जीवन मे ऐसी विपदाए दैव-सकल्प से आ पडती है। इसमे किसी और व्यक्ति को दोष देना उचित नही, ऐसी स्थिति मे हिम्मत नही हारनी चाहिए।

रामचद्र की बातो से लक्ष्मण का क्रोध कुछ समय के लिए शात हुआ तो, लेकिन थोडी ही देर मे वह फिर भभक उठे, कहने लगे, "अच्छा, मै मानता हू, यह विधि का काम है। विधि ने छोटी मा का दिमाग बिगाड डाला। किंतु हम क्यो चुपचाप विधि के अनर्थ को स्वीकार करे ? यह सब क्षत्रियो को शोभा देता है ? सारे राज्य मे ढिढोरा पिटवा दिया कि राम का अभिषेक होगा। उसके बाद पहले के दिये हुए वरो को याद किया और आपसे कहा कि जाकर जगल मे बसो। यह काम वीर पुरुषो का तो नही है। विधि के सामने सिर झुकाना कायरो का काम होता है। हमे तो उसके साथ लडना चाहिए। मै तो बिना लडे नही रहूगा। आप देखेगे कि विधि और वीर पुरुषो मे किसका बल अधिक है। जिन्होने यह सोचा कि आपको वन मे भेजना चाहिए, उन्ही को मैं जगल मे भगाऊगा। यदि आपको जगल मे वास करने की महत्त्वाकाक्षा हो तो कुछ देर ठहरकर फिर भले ही चले जाइयेगा। पर उसके लिए अभी समय है। अनेक वर्ष राज्य करने के बाद अपने पुत्रो को राज्य सौपकर फिर वन की याद करना। जो कोई इसका विरोध करेगा उसे हटाने के लिए मैं हू। मेरी ये भुजाए किस काम के लिए है ? अपनी सुदरता दिखाने के लिए ? मेरी कमर मे यह तलवार किसलिए टगी हुई है ?, क्या यह केवल आभूषण है ? या मै किसी नाटक मे भाग लेनेवाला हू ? नही, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपका सेवक हूं। जरा देखिए तो सही, आपके सेवक मे कितनी सामर्थ्य है।"

श्रीराम ने पुन लक्ष्मण के क्रोध का शमन किया। वह धीरे-धीरे लक्ष्मण को समझाने लगे, "जब तक हमारे माता-पिता जीवित है, उनका कहना मानना हमारा परम धर्म है। मैं उनका विरोध कभी नही करूगा।

मा-बाप का आदर करके, धर्म के अवताररूपी भरत की हत्या करके, इस राज्य को लेकर मैं करूगा क्या ? मै जो कहता हू, वह करो। शात हो जाओ।"

यो कहकर राम अपने हाथो से अनुज लक्ष्मण की आखो से आसुओ को पोछने लगे।

श्रीरामचद्र जब स्वय अपने हाथो से लक्ष्मण की आखे पोछने लगे तो वहा क्रोध कैसे टिक सकता था ? लक्ष्मण शात हो गये।

: २३ :

सीता का निश्चय

अभी तक नगर के लोगो को इस बात का पता नही लगा था कि राज-भवन के अत पुर मे क्या बाते हो रही है। रामचद्र का मन अब तो वनवास की तैयारी की ओर था और उन्हे बहुत जल्दी भी हो रही थी। जब उनकी तैयारी पूरी हुई तो वह माता कौशल्या के पास आशीर्वाद लेने गये।

माता कौशल्या ने रामचद्र के साथ चलने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होने कहा, "मेरे प्यारे राम, तुम्हारे बिना मुझसे अयोध्या मे नही रहा जायगा। मै तुम्हारे साथ ही चलती हू।"

रामचद्र जी ने माता को अनेक कारण बताकर और धर्म की बात समझाकर रोका। उन्होने कहा, "राजा और पति दशरथ को छोडकर आपका वन जाने का निश्चय धर्म-विरुद्ध होगा। बुढापे मे पति की सेवा करने के लिए आपको अयोध्या मे ही रहना चाहिए, परिस्थिति चाहे कैसी भी हो।" रामचद्र जानते थे कि माता कौशल्या स्वय अपना धर्म समझती है, फिर भी अचानक पहाड-जैसा दु ख आ पडने पर वह किंकर्तव्यविमूढ हो गई है। इसलिए राम ने माता को समझाने का प्रयत्न किया। अत मे स्तुति-मत्रो द्वारा माता कौशल्या ने पुत्र को आशीर्वाद दिया, "पिता की

आज्ञा पूरी करके सफलतापूर्वक सकुशल लौट आओ, मेरे राम !" उन्होने गद्गद् स्वर से कहा। राम ने उनको सात्वना देते हुए हँसते-हँसते कहा, "मा, चौदह वर्ष बहुत जल्दी निकल जायगे। उसके बाद मैं तुम्हारे पास तत्काल उपस्थित हो जाऊगा।"

वाल्मीकि कहते है कि मा का मगलमय आशीर्वाद पाकर श्रीराम का मुखमडल और भी तेजोमय हो गया। कर्तव्य-पालन के लिए जो सुख और वैभव त्यागते है उनके चेहरे पर एक असाधारण तेज आ जाता है। जिन्होने ऐसे लोगो का दर्शन किया है, कवि वाल्मीकि का यह वर्णन उनकी समझ मे अच्छी तरह आ सकता है।

सुमत के साथ श्रीरामचंद्र जब राजा दशरथ के पास चले गये तो उसके बाद सीता प्रतिक्षण राम के वापस आने की, रथ और छत्र-चवर के साथ लौटने की, प्रतीक्षा करती रही। वहा से लौटते हुए राम विचारमग्न हो रहे थे कि सीता को वियोग की बात किस तरह बताई जाय ? राम जब बिना रथ के और बिना छत्र-चवर के अकेले आने लगे और उनका चेहरा कुछ उदास जान पडा तो सीता एक साथ चिंतित और विस्मित हो उठी। मन-ही-मन उन्होने सोचा कि कुछ भी हो, हम दोनो के बीच मे जो प्रेम है उसके रहते हुए किसी बात की चिंता नही। उन्होने प्रेमपूर्वक राम से पूछा, "क्यो, क्या बात है ? आपके चेहरे पर विषाद क्यो छाया हुआ है ?"

श्रीरामचद्र ने देवी सीता को सक्षेप मे ही सारी बाते बता दी और कहने लगे, "वैदेही, मै जानता हू कि मेरे बिना तुम्हे कितना बुरा लगेगा। फिर भी तुमसे अधिक धर्म को कौन समझता है ? जनक महाराजा की पुत्री जो हो। तीनो माताओ के साथ तथा राजा के साथ बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार रखना और अपने लिए अत पुर की अन्य स्त्रियो से विशेष अधिकार की आशा न करना। राजा अब भरत बनेगा, उसके साथ सभलकर रहना होगा। इस बात का ध्यान रखना कि उसका तुम्हारे प्रति स्नेह बना रहे। हे जानकी, तुम मुझे तो इसी प्रकार चाहती रहोगी न ? चौदह वर्ष वन मे बिताकर मैं जल्दी ही लौट आऊगा। तब तक अपने पूजा आदि व्रतो का

ठीक तरह से पालन करती रहना। माता कौशल्या को विशेष रूप से देखना होगा। वह बहुत दु खी हो गई है। भरत और शत्रुघ्न को अपने ही छोटे भाई के समान समझना। राजकुल के लोगो के स्वभाव तुम जानती ही हो। उनके सामने मेरी प्रशसा न करना और अपने मन को स्थिर रखना।"

सीता को राम की बाते सुनकर बडा गुस्सा आया। प्रेम ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था। वह बोली, "आपने खूब उपदेश दिया, हे धर्मज्ञ राजकुमार! पर मुझे आपकी बाते सुनकर हँसी आती है। पति अलग है और स्त्री अलग, इस बात का ज्ञान मुझे आपकी बातो से आज हुआ है। जहा तक मेरी जानकारी है, यदि राम को वनवास की आज्ञा मिलती है तो वह सीता के लिए भी है। आपके आगे-आगे चलकर ककड-पत्थरो को हटाकर आपके लिए मै मार्ग सुगम करती जाऊगी। हे नाथ, मुझसे नाराज न होइए। मैने अपने माता-पिता से धर्म सीखा है। आज आप जो कह रहे है, और आज तक मैने जो सीखा है, वे परस्पर विरोधी मालूम देते है। मैंने तो यही सीखा है कि जहा आप हो मुझे भी वही रहना चाहिए। यदि आप आज ही वन जा रहे हो तो मैं भी आज ही आपके साथ चल पडूगी। इसमे सोचने की कोई बात ही नही। आपके साथ खेल-खेल मे ही वनवास के दिन निकल जायगे। आप मुझे यहा अकेली न छोड जाय। आपके चले जाने पर मै यहा अकेली क्या करूगी? मैं आपको कोई कष्ट न दूगी। कद-मूल-फल खाकर रह जाऊगी। आपसे आगे चलूगी। आपके साथ नदी, पहाड आदि देखकर प्रसन्नता पाऊगी। यह तो मेरी बहुत दिनो की चाह रही है। पुष्पो से और विहगो से भरे हुए वनो मे आपके साथ खूब घूमूगी। नदियो मे और तडागो मे हम लोग खूब आनद से रहेगे। आपके बिना मुझे स्वर्ग भी पसद नही आ सकता। आप विश्वास करे कि यदि आप मुझे यहा अकेली छोड जायगे तो मै अवश्य मर जाऊगी। मै आपसे याचना करती हू कि आप मुझ पर दया करे। मुझे असहाय न छोड जाय।"

सीता ने क्रोध के साथ बोलना शुरू किया था, किंतु अत याचना के साथ किया। राम ने अपनी प्राणप्रिया पत्नी को वनवास के भय और सकट

विस्तार से समझाये। सीता की आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। "व्याघ्र, सिह, रीछ और सर्प आपको देखकर दूर भागेगे। आप जो धूप, वर्षा, आधी, भूख आदि की बाते बता रहे है उन्हे मै बडे आनद से सहन कर लूगी। मुझे वनवास से बिलकुल डर नही। हा, यहा मुझे अकेली रहना पडे तो मेरा जीना असम्भव है।" सीता ने साफ-साफ कह दिया।

फिर बोली, "मिथिला मे, जब मै छोटी थी, ज्योतिषियो ने मेरी मा से कहा था कि 'तुम्हारी लडकी के भाग्य मे वनवास का भी योग मालूम होता है।' और मै अकेली ही थोडे वनवास कर सकती हू? अब आपके साथ जाने का मौका है। ज्योतिपियो की बात सुख से फलित हो जायगी। वनवास मे उन्ही लोगो को कष्ट हो सकता है, जिनकी इद्रिया वश मे नही होती है। आपको या मुझे इस बात का कोई डर नही है।"

: २४ :

विदाई

सीता की भी राम के साथ वन जाने की बात पक्की हो गई। सीता ने गरीब ब्राह्मणो को बुलाकर अपना सारा धन दान कर दिया और वनवास की तैयारी करने लगी।

उधर लक्ष्मण भी अपने हठ मे विजयी हो गये। राम के साथ उनका भी जाना निश्चित हो गया। अब शीघ्र-से-शीघ्र राज्य छोडना था। तीनो महाराज से विदा लेने चले। अब तो बात नगरभर मे फैल गई।

जब शहर की गलियो मे दोनो तरफ इकट्ठे हुए लोगो ने राम, सीता और लक्ष्मण को पैदल जाते हुए देखा तो सबको बडा दु ख हुआ। राजा के निर्णय पर उन्हे आश्चर्य हुआ! सब उन्हे धिक्कारने लगे। सीता को मार्ग मे इस तरह पैदल जाते हुए लोगो ने कभी न देखा था। उनसे यह बात सही नही गई। मकानो की खिडकियो मे, छतो पर, आगे-पीछे, सब

ओर राजकुमारो और सीता को देखने के लिए भीड इकट्ठी हो गई। सबने सोचा, "जनकदुलारी सीता वन मे कैसे वास करेगी? इसमे वर्षा और धूप कैसे सहन हो सकेगी? राम के बिना हमे इस नगर मे रहने का क्या आकर्षण है? हम भी इन लोगो के साथ-साथ चल दे। अपनी धन-सपत्ति साथ ले जायगे। जहा राम रहेगे, वही हमारी अयोध्या है। हम सब चले जायगे तो यह नगर उजड जायगा। जगल के जानवर और मुर्दो का मास खानेवाले प्राणी यहा आकर बसने लगेगे। कैकेयी यहा राज करती रहे!"

रामचद्र के कानो मे ये बाते पडती थी, किंतु उन्होने उन पर ध्यान नही दिया।

राजभवन के द्वार पर सुमत एक कोने मे शोकाच्छन्न मुखमुद्रा मे खडे थे। राम ने उनसे कहा, "हम तीनों यहा से जाने से पहले महाराज से विदा लेने आये है। उनसे पूछ लीजिये कि हम अदर आ सकते है या नही?" सुमत अदर गये।

वहा राजा दशरथ राहुग्रस्त सूर्य की तरह, राख से ढकी अग्नि की तरह या सूखे तडाग की तरह कातिहीन पडे थे। सुमत ने उनको प्रणाम किया। दु ख से उनके मुह से पूरी आवाज भी नही निकल रही थी। बोले, "राजकुमारो ने अपनी सारी सपत्ति दान कर दी है और वन जाने के लिए द्वार पर तैयार खडे है। महाराज का मगल हो। आपके दर्शन के लिए आज्ञा माग रहे है। दडकारण्य जाने से पहले आपसे मिलना चाहते है।"

राजा ने कहा कि राम को अदर ले आओ।

राम ने कक्ष मे प्रवेश करते ही पिता को प्रणाम किया। दशरथ पुत्र को देखते ही उन्हे आलिगन करने के लिए मच से उछलकर उनकी ओर जाने लगे, लेकिन राम के पास पहुचने से पहले ही वह मूर्च्छित होकर गिर पडे।

राम और लक्ष्मण दोनो ने एकदम राजा को उठाकर बिस्तर पर लिटाया। उन पर प्यार से हाथ फेरने लगे। राम ने दशरथ से कहा, "अब आप हमे अनुमति दीजिये। सीता और लक्ष्मण दोनो मेरे साथ जा

रहे है। मैने उन्हे रोकने के लिए काफी प्रयत्न किया, किंतु दोनो ने अपना हठ नही छोडा। अब हम जा सकते है न ?"

दशरथ बेचारे बोलने लगे, "राम, कैकेयी को दिये हुए वचन से अकेला मै बधा हुआ हू। तुम स्वतत्र हो। तुम मेरे विरुद्ध खडे होकर राज्य छीन क्यो नही लेते ?" अब तक राजा इस बात को मन मे सोचते रहे थे, अब उन्होने स्पष्ट कह डाला।

राम बोले, "पिताजी, आप ऐसा न कहे। आप इस देश का और हजार वर्ष तक पालन कर सकते है। मुझे राजा बनने का मोह नही है। चौदह वर्ष वन मे बिताकर वापस लौटकर आपके चरण छुऊ, यही मेरी अभिलाषा है।"

"मेरे प्यारे राम, मेरे प्रिय पुत्र, तुमने अपने कुल का नाम बढा दिया। तुम्हारा मगल हो। तुम्हारे रास्ते मे भय पाम भी न फटकने पाये। हे उत्तम, दृढ चित्तवाले वीर, तुमने तो वन जाने का निश्चय कर ही लिया है, किंतु आज ही क्यो ? आज रात तो ठहर जाओ। मै जी भरकर आज तुम्हे देख लू। कैकेयी ने मुझे फसा दिया। उस कपटिनी के फदे मे मैं आ गया। तुम तो मेरे प्रण को पालनेवाले सत्यधर्मी हो। राज्य की उपेक्षा करके वन मे चौदह वर्ष बिताने का तुमने निश्चय कर लिया। तुम्हारे-जैसा पुत्र इस भूमडल मे और कौन हो सकता है ? मैं सच कहता हू, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ है।"

दशरथ रोने लगे। वह जान गये कि उनका अत अब अत्यत निकट है। इसलिए वह चाहते थे कि राम को सारी बाते वास्तविक रूप से मालूम हो जाय और अपने प्रति उनके प्रेम मे कमी न आने पाये।

"पूज्य पिताजी, आप दुखी न हो। माता को दिये गये वचन को आप पाले। अभी दूतो को भेजकर भरत को बुलवा ले। मैने अपने मन से राजपद को निकाल दिया है। भरत को हृदय से आशीर्वाद देकर आप उसे राजा बना दे। मेरा तो मन अब वनवास मे ही लगा है। यहा के किसी सुखोपभोग मे मेरी आसक्ति नही रही। आप आसू न बहाये।

आपको समुद्र के समान तटस्थ रहना चाहिए। आपको असत्यवादी बनाकर मुझे क्या मिलेगा ? यदि जैसे आप चाहते है वैसे हठात् राजा बनू भी तो आप झूठे साबित होगे और मुझे स्वय भी तो राज्यभोग की इच्छा नही हो रही। जगल मे आनद से मेरे दिन निकल जायगे। आप मुझको चौदह वर्ष के बाद अवश्य अपने पास देखेगे। आप शोक करना छोड दे। आज जाऊ अथवा कल, इसमे क्या अतर पडता है ? आज जैसा ही आपको कल भी लगेगा। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करता हू कि आज ही हमे यहा से जाने की अनुमति दे दीजिये।"

दशरथ ने सुमत को आज्ञा दी, "सुनिये, मेरी आज्ञा है कि एक चतुरग सेना राम के साथ चलेगी। इसके बारे मे अभी हमारे सेनानायको को खबर दे दी जाय। राम वन मे ऋषियो के साथ आराम से रह सके, इसके लिए जरूरी चीजे काफी मात्रा मे साथ मे भेजी जाय। धन-धान्य, नौकर-चाकर, किसी की कोई कमी न होने पाए।"

बेचारे दशरथ सोचने लगे, राम के वनवास को राजाओ की सैर के रूप मे क्यो न बदल दिया जाय ?

कैकेयी यह सुनकर हँस पडी। बोली, "वाह, महाराज ! आपने अपना वचन खूब पालन किया ! राज्य की सभी चीजे राम को दे दे तो भरत के लिए क्या बचेगा ! उसको राज्य दिया जायगा तो राज्य मे से चीजे कैसे हटाई जा सकती है ? धन-धान्य से रिक्त राज्य लेकर भरत क्या करेगा ?"

दशरथ बडे क्रोध मे आकर कुछ बोलने ही लगे थे कि श्रीरामचद्र ने उन्हे बीच मे ही रोक दिया। उन्होने कहा, "मेरी यह नम्र प्रार्थना आप सब सुनें। मुझे तापस लोगो का ही जीवन लेकर वन मे रहना है। मैं राज्य के ऐश और आराम को त्याग करके जाना चाहता हू। धन-धान्य और नौकर-चाकर मुझे बिलकुल नही चाहिए। हाथी को दान मे दे देने के पश्चात् उसकी जजीर अपने पास रखकर कोई क्या करेगा ? जल्दी से मेरे लिए वल्कल मगा दीजिये। हम लोगो को एक फावडा और टोकरी की आवश्यकता होगी, उन्हे मगवाकर दे दीजिये।"

यह सुनते ही कैकेयी भागकर अदर गई। उसने पहले से ही वल्कल तैयार कर रखे थे। निर्लज्ज भाव से उसने राम के हाथ मे वल्कल पकडा दिये। राम ने अपने शरीर से बहुमूल्य वस्त्र उतारकर वही वल्कल धारण कर लिये। वल्कलधारी राम एक महर्षि की तरह तेजवान दिखाई देने लगे। लक्ष्मण ने भी बडे भाई का अनुसरण करके वल्कल पहन लिये। दशरथ बेचारे कुछ बोल नही पाये। चुपचाप देखते रह गये।

कैकेयी सीता के लिए भी वल्कल ले आई और सीता से बोली कि 'ले, इसे पहन ले।' वैदेही ने ऐसी पोशाक को अपने जन्म मे कभी हाथ नही लगाया था। उसकी समझ मे नही आया कि उसे किस प्रकार धारण किया जाता है। वह सोच मे पड गई। फिर गधर्वराज की तरह अति सुदर शोभायुक्त अपने पति श्रीराम को सबोधित करके बोली, "मुझे बता दे कि इसे किस प्रकार पहना जाता है?"

राम ने वल्कल को उठाकर सीता ने जो वस्त्र पहने थे, उन्ही के ऊपर पहनाकर दिखाया कि उसे यो पहनना चाहिए। इस दृश्य को देखकर अत पुर की स्त्रियो मे हाहाकार मच गया। राजा दशरथ बेहोश होकर गिर पडे।

होश मे आने के बाद राजा दशरथ कैकेयी को सबके सामने बुरा भला कहने लगे। किंतु कैकेयी पर उसका कोई असर न पडा। कौन क्या कर सकता था? सीता का वन जाना कैकेयी के कहने से नही हुआ था। उन्होने अपनी इच्छा से राम के साथ जाना निश्चित किया था। उसी मे सीता ने सुख देखा। इसको कोई रोक नही सकता था।

जाते-जाते राम ने नीचे की ओर दृष्टि करके पिता से कहा, "पिताजी, मा कौशल्या को आपके पास छोडकर जा रहा हू। अनुपम गुणवाली है मेरी मा। उनको किसी पर क्रोध नही। उनको ठीक तरह से देखे। मेरे वियोग से दुखी होने पर भी आपके लिए ही वह प्राण धारण कर रही है। मै जब वापस आऊगा तो मुझे मेरी मा जीवित मिले, यह आपका काम होगा। ऐसा न हो कि मुझे मा को ढूढने के लिए परलोक जाना पडे।" राम

को मा का वियोग बहुत दु खप्रद लगा।

राम, लक्ष्मण और सीता तीनो इस प्रकार विदा होकर बाहर चले आये। राजा दशरथ से यह दृश्य देखा न गया। वह अपने हाथो से मुह ढककर रोने लगे।

: २५ :

वन-गमन

राम के विदाई-वचनो से राजा दशरथ की मनोव्यथा असह्य हो उठी। उनकी आखो से आसुओ की धारा बद ही नही होती थी। वह मुह से कुछ भी न बोल पाये। थोडी देर के बाद कुछ सम्हले और बोले, "मालूम नही, मैंने कौन-सा पाप किया, जिसका फल आज भोग रहा हू। कदाचित् मैने कई बछडे-बछियो को मारकर गोमाताओ को तडपाया होगा, नही तो मेरा राम आज मुझसे क्यो अलग होता ? हाय, मालूम होता है कि मृत्यु भी जब हम चाहते है तब नही आती, नहीं तो मैं कैकेयी के हाथो इन कष्टो को अनुभव करने के लिए जीवित क्यो रहता ? अग्नि के समान तेजवाला मेरा पुत्र मेरे सामने वल्कल धारण किये खडा है। मेरी छाती फटी जा रही है। इस दृश्य को देखकर भी मै जिंदा कैसे हूं ? हे राम, मुझे छोडकर कहा चले जा रहे हो ?"

यो बेचारे विलाप करते रहे। फिर उन्होने सुमत को बुलाकर आदेश दिया, "देखो, पुत्रवधू जानकी और राम-लक्ष्मण को राज्य की सीमा तक रथ मे बिठाकर ले जाओ। यहा से वे पैदल नही जाएगे।"

लक्ष्मण ने अपनी माता सुमित्रा से विदाई लेते हुए उनके चरण छुए। वह माता से कुछ कहना चाहते थे किंतु शोकविह्वल हो जाने के कारण एक शब्द भी न बोल सके। देवी सुमित्रा ने पुत्र को प्यार से छाती से लगा लिया। मस्तक चूमकर वह कहने लगी, "मेरे प्यारे पुत्र, तुम्हारे भ्रातृप्रेम

को मैने आज देखा। धन्य हू मै, जिसने ऐसा सपूत पाया। बेटा, राम का दिन-रात खयाल रखना। तुम्हारे लिए राम न केवल भाई है, किंतु वह तुम्हारे गुरू और राजा भी है। हमारे कुल मे छोटे भाई बडे भाइयो को इसी प्रकार मानते आये है। खुशी के साथ वन जाओ, मेरे लाल ! राम और सीता ही अब तुम्हारे माता-पिता है। वन को अयोध्या समझकर आनद से वनवास के दिन काटना।"

रामायण काव्य मे सुमित्रादेवी को बहुत ही ज्ञानवाली, मितभाषिणी और महाविवेकी चित्रित किया गया है। पढे-लिखे वृद्ध लोगो की मान्यता है कि रानी सुमित्रा को रामावतार का रहस्य मालूम होगया था। कौशल्या-देवी को पुत्र के वियोग का शोक हुआ था, किंतु सुमित्रा ने तो अपने लक्ष्मण को आनद के साथ ही विदा दी।

इसी बीच सुमत आये और कहने लगे, "हे कीर्तिमान, दशरथ-नदन रामचद्र, आपके लिए रथ तैयार है। आपका मगल हो। जहा और जिस तरफ आपको जाना हो, आज्ञा दे। इस क्षण से हम चौदह वर्ष की गिनती करेंगे।"

सीता हॅसती-हँसती रथ मे बैठ गई। उनके लिए देवी कौशल्या ने वस्त्र और आभूषण बाध दिये थे। दोनो भाइयो के कवच और शस्त्र, कद-मूल आदि ढूढकर खोद निकालने के लिए फावडा और टोकरी इत्यादि चीजे भी रथ मे रखी गई। वनवासियो के लिए तब फावडा और टोकरी नितात आवश्यक वस्तुए समझी जाती थी।

० ० ०

हम यहा थोडी देर रुक जाए और भगवान् का स्मरण करे। यहा से वनवास का खड प्रारभ होता है। हम अपने अत करण से दूषित विचारो को हटाये। मन को पवित्र करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करे। रामायण से हमे सत्य, धैर्य और प्रेम—ये तीन वस्तुए प्रसाद-रूप मे मिलती है।

रामावतार इसी हेतु से हुआ था। वल्कलधारी दशरथ-नदन को, अनुज

लक्ष्मण को, पतिव्रता जानकी को नमस्कार करे और उनसे कृपाप्रसाद की याचना करे।

० ० ०

इधर राम का रथ चला और उधर नागरिक चिल्लाने लगे—

"आहिस्ते-आहिस्ते चलो। रासो को मजबूती से पकडो। हे सुमत, रथ को धीरे-धीरे चलाओ। एक बार हमे श्रीरामचद्र को जी भरकर देख लेने दो।"

"तनिक इन राजकुमारो के सुकोमल मुखो को तो देखिये। इनकी माताए इनसे बिछुडकर कैसी तडपती होगी! वे कैसे जीवित रह पायगी! वैदेही और लक्ष्मण! धन्य हो तुम!" लोग यो कहते हुए रथ के पीछे-पीछे दौडने लगे।

एक तरफ राम का आदेश था कि रथ को तेजी से दौडाया जाय, दूसरी तरफ लोग चिल्ला रहे थे, "जल्दी मत करो, आहिस्ते चलाओ।" भीड रथ के पीछे बढती चली जा रही थी। बडी कठिनाई के साथ सुमत रथ को किसी तरह अयोध्या के बाहर निकाल लाये। नगर शोकनिमग्न हो गया। किसी घर मे किसी ने खाना नही बनाया, न खाया। रोने और कोसने मे दिन बीतने लगा।

राजा दशरथ अत पुर से बाहर आकर ड्योढी पर खडे होकर जबतक रथ आखो से ओझल नही हुआ, उसकी ओर देखते रहे। जब रथ आखो से ओझल होगया तो उससे उठी धूल को खडे देखते रहे। जब धूल भी खत्म होगई तो उनसे न रहा गया। मुह से एक चीख निकली और बेहोश होकर धडाम से नीचे गिर गये। उनकी दोनो तरफ कौशल्या और कैकेयी थी। दशरथ सुध मे आये तो कैकेयी से उन्होने कहा, "हे पापिनी, दुराचारिणी, मुझे हाथ न लगा। तेरा चेहरा भी मै नही देखना चाहता। तेरा और मेरा आज से सबध टूट गया। आज से तू मेरी कोई नही है। मैंने तुझे छोड़ दिया। जा, छोड दिया।

"यदि भरत तेरी करतूत से सहमत होकर राज्य लेना चाहता है तो

उसके हाथ से मेरे क्रिया-कर्म नही होगे। उसके हाथ का तर्पण मुझे नही पहुच सकता।

"मेरे राम, आज रात को तुम कहा सोओगे? पत्थर का सिरहाना तुमसे कैसे सहन होगा? तुम किस तरह जगल के कद-मूल खा सकोगे?" इस तरह बेचारे दशरथ विलाप करते रहे।

उन्होने फिर कहना प्रारभ किया, "कैकेयी, अब तो तू सुखी होगई! तेरा काम बन गया न!" यह कहते हुए दशरथ भवन के अदर आये। उनकी हालत उस मनुष्य की तरह थी जो अभी-अभी श्मशान से लौटकर आ रहा हो। वह चिल्लाकर बोले, "मुझे यहा से हटाओ। मै कौशल्या के यहा जाना चाहता हू।"

उनकी इच्छानुसार सब मिलकर उन्हे कौशल्या के अत पुर में ले गये। आधी रात को दशरथ जाग पडे और बोले, "कौशल्या, तुम हो न मेरे पास? मुझे स्पर्श करो तो। मेरी दृष्टि राम के पीछे-पीछे ही चली गई मालूम होती है। मै कुछ देख नही पाता।"

कौशल्या बेचारी क्या करती? वह दशरथ को आश्वासन देती या अपना दु ख भूलती? उन्होने दशरथ को छूकर देखा और रो पडी, "रात्रि के समय भी आपका शरीर धूप की तरह गरम क्यो है?"

तब समझदार सुमित्रा कौशल्या को समझाने लगी, "दीदी, देखिये, आपका इस तरह शोक करना उचित नही। आप सब-कुछ जानती है। राम तो पिता के सत्य और धर्म की रक्षा करते हुए वन गये है। धर्म की रक्षा के लिए राज्य को तुच्छ समझनेवाले राम की आप मा है। धन्य है आप! राम की धारणा उच्चकोटि की है। उससे हमे दु ख नही मानना चाहिए। मुझे तो बहुत गर्व हो रहा है कि मेरा बेटा लक्ष्मण राम की सेवा मे है। वनवास के कष्टो को जानते हुए भी सीता राम के साथ गई है। राम का नाम तीनो लोको मे गाया जायगा। राम की पवित्रता और सद्गुण उसकी रक्षा करेगे। वे ही उसके कवच है। सूर्य, चन्द्र और पवन उसके अनुकूल रहेगे। उसके पावन शरीर की रक्षा करते रहेगे। आप बिलकुल चिता न

करे। कोई व्यक्ति राम का विरोध करके लड नही सकता। वह अवश्य सफलतापूर्वक वनवासकाल पूरा करके अयोध्या लौटेगा और उसके बाद अवश्य राजा बनेगा। राम को आप महाविष्णु ही समझे। सीता को भगवती लक्ष्मी माने। इसमे मुझे कोई सदेह नही है। आपने देखा कि लोगो ने कैसी सहानुभूति प्रकट की। मेरा पराक्रमी बेटा धनुष-बाण लिये राम के साथ है। वह राम की दिन-रात रक्षा करता रहेगा। अब आप शोक छोड दे। मेरी बात पर विश्वास रखे। राम लौटकर कुशलपूर्वक आयगा और आपके चरण छूकर आशीर्वाद लेगा। पूर्ण चद्र के समान खिलते हुए उसके मुखमडल को आप अवश्य ही फिर देखेगी। आप रोना बद करे और अत पुर के अन्य जनो को आश्वासन दे। शोक के बदले आपको गर्व का अनुभव होना चाहिए। राम जैसा और कौन हो सकता है ?"

सुमित्रा की बातो से कौशल्या को कुछ आश्वासन मिला।

उधर राम के रथ के साथ-साथ लोग भी चलते गये। सबने राम से आग्रह किया कि अयोध्या वापस चले आये। वे रथ को भी आगे बढने से रोकने लगे।

राम ने उन सबको समझाया, "मै पिता के धर्म की रक्षा के लिए वन जा रहा हू। इसमे आप लोगो को दुखी नही होना चाहिए। मुझे रोकिये नही। आपसे प्रार्थना करता हू कि आप सब वापस चले जाय।"

राम के कई बार समझाने पर भी लोगो ने नही माना। वे रथ के साथ-साथ चलते ही गये। तब राम ने रथ को रोका। बडे प्रेम के साथ लोगो की तरफ देखा। बोले, "मेरे प्रिय अयोध्यावासियो, मैं आप लोगो के प्रेम को खूब जानता हू। मै चाहता हू कि अब आप उसी प्रकार का प्रेम-भाव भरत के प्रति दिखाए। उसको सतुष्ट रखे। मेरा भाई उम्र मे छोटा होने पर भी बडा विवेकशील है। उसके स्वभाव मे शौर्य और मृदुता दोनो का सुदर समन्वय है। वह आप सबका खूब अच्छी तरह पालन करेगा। अब आप लोगो का नाथ भरत है। पिता के वचन की रक्षा के लिए मै वन जा रहा हू। भरत को राजा ने युवराज नियुक्त किया है। वह उसके लिए

सभी प्रकार से योग्य भी है। आप लोगो को चाहिए कि राजा की आज्ञा का पालन करे, उनके मन की ग्लानि को हटाने का यत्न करे।"

राम के हितकर उपदेशो को लोगो ने सुना, लेकिन उनकी वाणी से राम के प्रति उनकी ममता और अधिक ही होगई। उनके धर्म-प्रेम और न्यायपूर्ण विचारो से राम पर वे और भी मुग्ध होगये।

भीड मे कुछ वृद्ध और भोले ब्राह्मण भी थे। वे रथ को खीचनेवाले घोडो को सबोधित करके कहने लगे, "घोडो, हमारे राम को क्यो वन मे भगाकर लिये जा रहे हो ? तुम भागो मत। हम लोगो ने सुना है कि घोडो की बुद्धि बहुत सूक्ष्म होती है। मनुष्य के मन की बातो को वे खूब समझ लेते है। हमारी माग को भी समझो न ! राम को उलटी दिशा मे लाकर हमारे पास पहुचा दो।"

राम ने इन वृद्धो की बातो को सुना। उन्होने रथ को रुकवा दिया। तीनो जने रथ से उतरकर पैदल चलने लगे। कुछ दूर चलने पर सामने तमसा नदी आई। वहा रथ को और सब लोगो को रुकना ही पडा। ऐसा लगा कि सामान्य नर-नारी और वृद्ध ब्राह्मणो की माग सुनकर राम को रोकने के लिए तमसा नदी सामने आकर खडी होगई है। सुमत ने घोडो को खोल दिया, उन्हे पानी पिलाया और चरने छोड दिया।

"लक्ष्मण, यह हमारे वनवास की पहली रात्रि है। आज की रात इस पुण्य नदी के तट पर काटेगे। कोई कष्ट नही होगा। यह देखो, यहा के पशु-पक्षी हमे कितने प्यार से निरख रहे है। मुझको केवल माता-पिता के शोक का विचार करते हुए कुछ चिता होती है। किंतु भरत इतना अच्छा है कि उसके अयोध्या मे रहते हुए चिता का कोई कारण नही। सुमतजी, घोडे बेचारे थक गये है। उनकी आवश्यकताओ पर ध्यान दिया जाय।"

सबने सध्या-वदन किया। राम ने लक्ष्मण से कहा, 'चूकि आज वनवास की पहली रात्रि है, हमे उपवास करना चाहिए। तुम्हारे पास मे होते हुए मुझे किसी बात की चिंता नही।"

लक्ष्मण ने रामचद्र और सीता के लिए भूमि पर घास बिछाकर

बिस्तर तैयार कर दिया। लेकिन स्वय उन्होने सुमत के साथ बाते करते हुए रात बिता दी। सोये बिलकुल नही।

अभी सुबह हुई नही थी कि राम जाग गये। सुमत से उन्होने कहा, "लोग बहुत दूर चलकर आये है, इससे थककर इधर-उधर सोये पडे है। इन लोगो का प्रेम देखकर मुझे दु ख होता है। ये मुझे छोडना बिलकुल नही चाहते है। किसी तरह मुझे वापस अयोध्या ले जाने का निश्चय करके ये आये है। इसलिए मै सोचता हू कि हमे यहा से चुपके-से निकल जाना चाहिए।"

तीनो जने रथ मे बैठ गये। राम के कहने से सुमत रथ को कुछ दूर उल्टी दिशा मे अयोध्या की तरफ ले चले और फिर लौटकर आगे बढे, ताकि लोगो को पहियो के चिह्नो से ठीक पता न चले कि रथ किस ओर गया और वे उनका पीछा करना छोड दे। इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण को सुमत दक्षिण दिशा की ओर ले गये।

: २६ :

निषाद्राज से भेंट

तमसा नदी के तट पर अयोध्यावासी सोये हुए थे। जब उनकी नीद खुली तो उन्हे न राम मिले, न रथ का ही कुछ पता लगा। पहियो के निशानो से उनकी समझ मे कुछ न आया। बडी निराशा लेकर वे अयोध्या लौटे। वे सब कैकेयी की निदा करके अपने जी को हलका करने का प्रयत्न करने लगे। अयोध्या नगरी की शोभा मिट गई। वह बुरी तरह शोकमग्न होगई।

० ० ०

सुबह होने से पहले ही राम का रथ बहुत दूर पहुच गया था। कई नदियो को पार करके राज्य की दक्षिण सीमा की ओर सुमत रथ को ले

जा रहे थे। राम रास्तेभर सुमत के साथ बातचीत करते रहे। एक बार बोले, "देखिये, अब फिर कब सरयू नदी के कछारो मे शिकार खेलने का अवसर मिलता है।"

शिकार खेलना उचित है या नही, इस पर टिप्पणी करते हुए राम ने कहा, "उसकी भी मर्यादा होनी चाहिए। शिकार अधिक खेलना बुरी टेव है।" ऐसी ही अनेक बाते करते हुए वे लोग आगे बढते गये। जब वे कोशल राज्य की दक्षिण सीमा पर पहुचे तो राम ने रथ को रुकवाया और अयोध्या की ओर मुडकर प्रणाम किया। कहने लगे, "हे नगरो की रानी, इक्ष्वाकु-वशियो की राजधानी, तुमसे यही आशीर्वाद मागता हू कि अपना वनवास मै सफलतापूर्वक पूरा करू और तुम्हारा तथा अपने माता-पिता का दर्शन पुन कर पाऊ।"

अब रथ गगा के किनारे-किनारे जाने लगा। उस पुण्य नदी के सौदर्य का अवलोकन करते हुए राजपरिवार के ये जन चले जा रहे थे। एक अत्यत मनोरम स्थान को देखकर राम कहने लगे, "आज रात यही ठहरा जाय।"

सुमत ने घोडो को खोल दिया। एक पेड के नीचे सब बैठ गये। उस प्रदेश का मालिक गुह था। राम के उस तरफ आने की खबर उसे मिल गई थी। राम, लक्ष्मण और जानकी के दर्शन के लिए अपने परिवार के साथ वह वहा पहुचा। निषादराज गुह का राम पर अपार प्रेम था। गुह वहां का प्रभावशाली अधिपति था। उसको जब दूर से ही आते देखा तो राम-लक्ष्मण दोनो भाई उठ खडे हुए और उसके पास गये। निषादराज ने राम को स्नेह से गले लगा लिया और कहा, "आप मेरे राज्य को अपना ही समझे। जैसी अयोध्या, वैसी ही यह भूमि भी आप ही की है। आप जैसे प्रभावशाली अतिथि को पाने का भाग्य किसे मिल सकता है? मेरा आज अहोभाग्य है।"

गुहराज का अतिथि-सत्कार असाधारण था। उसके अनुचर नाना प्रकार के व्यजन तैयार करके लाये और राम, लक्ष्मण, सीता से खाने का

अनुरोध करने लगे। उन्होने कहा, "आप तीनो मेरे ही राज्य मे चौदह वर्ष निकाल दे। आपको किसी प्रकार का कष्ट न होने दूगा। आपकी सेवा करते हुए अपने को धन्य समझूगा। मेरे ऊपर आप कृपा करे।"

राम ने भी प्यार से उसका आलिगन किया और बोले, "भाई गुह, तुम्हारे प्यार को क्या मै नही जानता ? तभी तो तुम्हारा आतिथ्य हम सबने स्वीकार किया। पर तुम जानते हो कि मै वचनबद्ध हू। मैने वनवास का व्रत लिया है। यह देखो, ये दोनो घोडे मेरे पिताजी को बडे ही प्रिय हैं। इनके चारे के लिए कुछ प्रबध कर दे। रही हमारी बात, सो तापसियो के लिए जो भोजन उपयुक्त होगा वही हम खायेगे।"

उसी पेड के नीचे राम और सीता सो गये। लक्ष्मण ने यह दूसरी रात भी सुमत और गुह के साथ बातचीत करते हुए बिना सोये ही बिता दी।

गुह ने लक्ष्मण से कहा, "भैया, तुम सो जाओ। देखो, तुम्हारे लिए वह बिस्तर तैयार है। इस वन मे मुझसे छिपाकर कोई कुछ कर नही सकता। मेरे आदमी सदा जागरूक है। इसलिए सीता और राम के बारे मे तुम किसी प्रकार की चिता न करो। सो जाओ।"

यह सुन लक्ष्मण बोले, 'हे मित्र, मुझे नीद नही आ रही है। वह देखो, जनक महाराजा की पुत्री और राजा दशरथ की पुत्रवधू जमीन पर पडी सो रही है। तीनो लोको को जीतने की शक्ति रखनेवाले पुरुषोत्तम रामचद्र घास पर लेटे हुए है। यह सब देखते हुए भला मुझे नीद कैसे आ सकती है ?

"मालूम नही आज अयोध्या का क्या हाल हो रहा होगा ? अत -पुर रोनेवालो के करुण विलाप से भर गया होगा। मालूम नही महारानी कौशल्या और मा सुमित्रा जीवित है या नही। मै नही समझता कि राम को वन भेजकर पिताजी अब अधिक दिन जियेगे, यद्यपि उन्होने ही यह आदेश दिया था कि राम वन जाय। उनकी मृत्यु के पश्चात् हमारी माताए कैसे जीवित रह सकेगी ? उनके क्रिया-कर्म करने का सौभाग्य भी

हमे न मिल सकेगा। मुझे इस बात की जरा भी आशा नही हो रही है कि जब हम वनवास पूरा करके अयोध्या लौटेगे तो अपने माता-पिता को जीवित पायेगे।"

लक्ष्मण के इन दु खभरे शब्दो को सुनकर गुहराज की आखो से आसुओ की धारा बह निकली। इसी प्रकार बाते करते गुह और लक्ष्मण ने रात बिता दी।

प्रात काल हुआ। राम जल्दी ही उठ गये। उन्होने लक्ष्मण से कहा, "हमे गगा पार करनी है। गुह से कहो कि इस विशाल नदी को पार करने के लिए एक नाव का प्रबध कर दे।"

गुह ने अपने अनुचरो द्वारा राम के लिए एक अच्छी नाव की व्यवस्था करा दी। राम से उसने जाकर कहा कि नाव तैयार है। राम और लक्ष्मण सीता के साथ तैयार होकर नाव मे बैठने को नदी की तरफ जाने लगे, तब सुमत ने राम को प्रणाम किया और पूछा, "मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

रामचद्र ने सुमत के कधे पर हाथ रखकर कहा, "सुमतजी, अब आप शीघ्रता के साथ अयोध्या लौट जाय। महाराज के पास पहुच जाय। अब उनको ही सम्हालने की आवश्यकता है।"

सुमत बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने श्रीराम से कहा, "मैने अब देख लिया कि इस दुनिया मे भले लोगो का—सच्चरित्र और सुशिक्षित लोगो का—कुछ नही बनता, नही तो आप लक्ष्मण और सीता-सहित वन क्यो जाते ? मै अब क्या करूगा ? कैकेयी के राज मे हम कैसे रह पायगे ?"

श्रीरामचद्र ने प्यार से उनके आसुओ को पोछा। बोले, "आपसे बढकर हमारे कुटुब का घनिष्ठ मित्र और कोई नही। पिताजी को आप सहारा दे। आप जानते है कि उनका दिल टूट गया है। उनकी जो कोई आज्ञा हो उसका तत्काल पालन करें, ताकि उन्हे सतोष हो जाय। इस बात का विचार न करे कि वह स्वय कह रहे है या कैकेयी को खुश करने के लिए कह रहे हैं। हमारे बारे मे आप तनिक भी चिता न करे। पिताजी से

तथा अन्य बधुओ से यही कहे कि हम लोग जगल मे चौदह वर्ष काटकर जल्दी से अयोध्या लौटेगे। भरत को जल्दी से बुलवा ले और उसका राज्याभिषेक शीघ्र हो जाय। उससे मेरी तरफ से कहे कि महारानी कौशल्या और सुमित्रा माता दोनो की अपनी मा की ही तरह देखभाल करे।"

सुमत का रोना बद न हुआ। बोले,"मुझसे यह कैसे होगा ? इस खाली रथ को किस हिम्मत से चलाकर अयोध्या ले जाऊ ?"

राम ने उन्हे अनेक प्रकार से समझाया और विदा किया। गुहराज से राम कहने लगे, "हे मित्र, मै तुम्हारे साथ बडी खुशी से चौदह साल निकाल सकता हू। किंतु वैसा करू तो मै यह दावा नही कर सकता कि अपनी प्रतिज्ञा का मैंने ठीक तरह से पालन किया। मुझे तो ऋषि-मुनियो का-सा जीवन बिताना होगा। स्वादभरे भोजन मेरे लिए वर्जित होगे। शास्त्रो मे जो निषिद्ध नही है उस आहार के अतिरिक्त मै और कुछ खा नही सकता और यह भोजन हमे अपने आप ढूढ लेना होगा। होमाग्नि के अलावा दूसरे प्रकार से पकाया अन्न भी हमारे लिए वर्जित है।" इस प्रकार राम ने गुह को अच्छी तरह समझाया। वही तीनो ने वटवृक्ष के दूध को केशो मे लगाकर अपनी-अपनी जटाए बनाई। सीताजी को पहले ठीक तरह से नाव मे बिठाकर दोनो राजकुमार बाद मे चढे। गुह ने अपने आदमियो को नाव चलाने का आदेश दिया।

नाविक लोग तेजी से नाव चलाने लगे। बीच नदी मे सीताजी ने भगवती भागीरथी को श्रद्धाजलि समर्पित की और कहने लगी, "देवि, हमे आशीर्वाद दो कि हम अपना व्रत पूरा करके फिर तुम्हे इसी प्रकार निर्विघ्न पार करके कुशलपूर्वक अयोध्या लौटे।"

बातचीत करते हुए सब गगा के दूसरे किनारे पहुचे। अब राम, लक्ष्मण और सीता तीनो पहली बार अकेले हुए। राम बोले, "लक्ष्मण, आज तुम्ही मेरी सेना हो। तुम आगे-आगे चलो। सीता बीच मे रहेगी। मैं पीछे-पीछे चलूगा। इससे सीता की हम पूरी तरह से रक्षा कर पायगे। अब हम लोगो की भीड नही देख सकेगे। खेलकूद, मनोरजन आज से बद।"

राम को उस दिन अपनी मा कौशल्या की बहुत याद आती रही। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, मै तो अब भी कहता हू कि तुम अयोध्या लौट जाओ, मेरी और अपनी माता का विचार करो। मै किसी तरह अपने को और सीता को सम्हाल लूगा।" किंतु लक्ष्मण थोडे ही माननेवाले थे। उन्होने कह दिया, "क्षमा करे, मुझसे यह न होगा।"

हम आगे भी जगह-जगह देखेगे कि राम मे सामान्य मानव के स्वभाव के अनुसार भावनाए उठती है, और वह उदास हो जाते है। रामायण की यही खूबी है। सर्वशक्तिशाली ईश्वर अपने निजी रूप मे सारा काम करके दिखा दे तो फिर अवतार कैसे ? सामान्य लोगो को धर्म का ज्ञान भी कैसे होता ? आदि-अवतारो मे और बाद के अवतारो मे यही भेद है। रामावतार मे हमे मानव-स्वभाव की प्रबलता और धर्म, इन दोनों का विशद परिचय मिलता है। जब रावण के साथ युद्ध समाप्त हो चुका था और सीता से उन्होने अग्नि मे प्रवेश करने को कहा तब राम कहते है :

'आत्मान मानुष मन्ये
राम दशरथात्मजम्।"

"मै तो अपने को दशरथ-पुत्र राम ही समझता हूं। मै वास्तव मे कौन हू ? किस कारण से पैदा हुआ, यह मै कैसे जानू ? यह आप ही जान सकते है।"

वाल्मीकि लिखते है कि राम ने इस प्रकार ब्रह्मा से पूछा था।

गगा के दक्षिण तट पर राम जब उदास हो गये तब लक्ष्मण ने उनको धीरज दिलाया।

वह रात तीनो ने एक वटवृक्ष के नीचे बिताई। दूसरे दिन प्रात काल वहा से निकलकर सूर्यास्त होते-होते वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुचे। उनका आतिथ्य स्वीकार किया और मुनि से पूछा, "इस वन मे कोई ऐसा एकात का स्थान हमे बताए, जहा हम रह सके।"

मुनि ने आशीर्वाद देकर कहा कि चित्रकूट आश्रम बडा उपयुक्त है।

तीनो ने वही जाने का निश्चय किया।

: २७ :

चित्रकूट में आगमन

राम-लक्ष्मण-सीता ने रात भरद्वाज मुनि के आश्रम मे बिताई। सुबह वे बहुत जल्दी उठ गये और महर्षि को प्रणाम किया। उनसे विदा लेकर वे जाने को उद्यत हुए। महर्षि ने तीनो को अपनी ही सतान समझकर प्यार किया और मत्रोच्चार के साथ आशीर्वाद दिया। मुनि ने उन्हे चित्रकूट जाने का मार्ग ठीक तरह से बताया।

मुनि के बताये रास्ते से तीनो जने जाने लगे। त्वरित-गामिनी कालिदी को पार करने के लिए उन लोगो ने बास और पेड की डालो का एक सुदर तथा मजबूत बेडा बनाकर पानी मे छोडा। उसमे पहले सीताजी को बिठाया। सीता पहले तो कुछ डरी, फिर बैठ गईं। लक्ष्मण ने पेड की कोमल डालिया तथा पत्ते बिछाकर उनके लिए नरम आसन तैयार कर दिया था। तत्पश्चात् सीताजी के वस्त्राभूषणादि, कुदाली और टोकरी नाव मे रख दिये। सीताजी के बैठ जाने पर राम और लक्ष्मण भी बैठ गये। आहिस्ता-आहिस्ता उन्होने नदी पार की। बीच नदी मे सीताजी ने कालिंदी को प्रणाम किया और यात्रा-व्रत की सफलता के लिए प्रार्थना की।

इस प्रकार तीनो ने मार्ग मे आनेवाली अन्य नदियो को भी पार किया। अत मे उन्होने भरद्वाज महर्षि के बताये हुए वृक्ष को देखा। सीता ने उस वृक्ष की प्रदक्षिणा और पूजा की और अपने पति के कल्याण और कुशलता-पूर्वक यात्रा की समाप्ति के लिए प्रार्थना की।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम आगे-आगे चलो, मै पीछे हथियार लेकर चलूगा। मार्ग मे सीता जो कुछ मागे, फल-फूलादि तोडकर लेना चाहे, तो उसको देते रहना, ताकि वह प्रसन्न रहे।"

सीता भी रास्तेभर पूछती और बताती रही, "यह कौन-सा पेड है ? उन फूलो को देखिये।" क्योकि वन मे सीताजी ने कई ऐसे वृक्ष, फल-

फूलादि को देखा, जिन्हे उन्होने पहले कभी न देखा था। आगे चलते-चलते उन्हे एक नदी मिली। उसके किनारे वे ठहर गये। वहा नाना प्रकार के पशु-पक्षी आदि थे। सीताजी उन्हे देखकर प्रसन्न हुई। यहा भी, और अन्य स्थानो पर भी, राम-लक्ष्मण कभी-कभी शिकार करते थे, और ऐसे मास को, जिसका निषेध न था, होमाग्नि मे पकाकर खा लेते थे।

वाल्मीकि ने इस बात को छिपाया नही। इसलिए हमे इस विषय को लेकर विवाद मे न पडना चाहिए। मास खाना क्षत्रियो के आचार-विरुद्ध काम नही था। देश-काल और स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए उचित मार्ग से प्राप्त मितान्न मे हमारे भारतीय धर्म ने दोष नही देखा।

दूसरे दिन प्रात काल होते ही रामचद्रजी ने लक्ष्मण को जगाया और कहा, "भैया, उठो। चिडिया मधुर कठ से चहकने लगी है। अब यहा से प्रस्थान करने का समय हो गया।"

वाल्मीकि रामायण मे यह नही कहा गया कि लक्ष्मण सारे वनवास मे जागते ही रहे। सबेरे जब लक्ष्मण की नीद पूरी तरह से खुली न थी, राम ने उनको जगाया। लक्ष्मण तुरत जग पडे। सब स्नान, जपादि कार्यो से निवृत्त होकर प्रस्थान के लिए तैयार हो गये।

भरद्वाज के बताये हुए मार्ग से तीनो चलने लगे। उन दिनो वसत ऋतु छाई थी। सारे रास्ते मे पेड फूलो से लदे हुए थे। फूलो के विविध रग मन को मोह लेते थे। कही-कही उनकी लालिमा अग्नि की तरह चमकती थी। कही-कही नव-पल्लव और फलो से पेड झुके हुए प्रतीत होते थे। कही पेड के नीचे भूमि फूलो से ढकी रहती थी। "यह देखो मधु के छत्ते! इन पर किसी मनुष्य का हाथ नही गया। इन फूलो को देखो! पक्षियो के कलरव को सुनो। एक-दूसरे से कुछ कहते हुए कितने आनदमग्न है! इनके बीच हमारा वनवास का काल योही निकल जायगा।"

राम इस प्रकार कभी लक्ष्मण से, कभी सीता से बात करते चलते थे। तभी तीनो को चित्रकूट पर्वत के दर्शन हुए। वे बडी प्रसन्नता से पर्वत की ओर कदम बढाने लगे।

राम कहने लगे, "इस प्रदेश की सुदरता को देखते-देखते जी ही नही भरता। कद-मूल-फलो की कमी नही दिखाई देती। पानी कितना स्वच्छ और मीठा है! शायद ऋषि-मुनि इन्ही कारणो से इस प्रदेश को पसद करते है। हम भी उन लोगो के साथ इसी स्थान मे आनद से वास करेगे।"

रहने के लिए कुटिया का निर्माण होने लगा। लक्ष्मण इस कार्य मे चतुर थे। उन्होने एक ऐसी मजबूत कुटिया बना दी, जिसमे हर प्रकार की सुविधा थी। आधी और वर्षा से उसे सुरक्षित कर दिया था। खिडकिया और किवाड बनाकर उन पर हाथ से बुनकर चटाइया मढ दी। अकेले लक्ष्मण ने यह सारा कार्य कर डाला।

कबन और वाल्मीकि दोनो ने इस खड का सुदर वर्णन किया है। उसे पढते हुए ऐसा लगता है मानो दोनो कवियो मे प्रतिस्पर्धा हो रही है। कबन कहते है कि कुटिया को देखकर रामचद्रजी ने भाई लक्ष्मण को एकदम गले लगा लिया। बोले, "प्यारे लक्ष्मण, तुमने यह कला कब सीखी थी? मुझे तो मालूम भी नही था कि इस कार्य मे तुम इतने कुशल हो। कुसुमो से भी कोमल पैरोवाली जानकी के जगल मे पैदल चलने का चमत्कार मैंने देखा। पर तुम्हारे हाथो का चमत्कार भी उससे कम नही निकला। तुम्हारे कला-कौशल के कारण जगल मे मगल हो गया।"

चित्रकूट की तराई मे यह आश्रम माल्यवती नदी के तीर पर निर्मित किया गया था। तीनो जने उसमे बहुत ही आनद के साथ रहने लगे। वे अयोध्या को भी भूलने लगे। देवगणो के साथ इद्र के समान सीता और लक्ष्मण के साथ राम, आनद से दिन बिताने लगे।

कबन और वाल्मीकि दोनो ने चित्रकूट-आश्रम के सुदर वातावरण को चित्रित करके आगे आनेवाली दु खद घटनाओ के लिए एक अच्छी पृष्ठभूमि तैयार कर दी है।

: २८ :

जननो की व्यथा

जब तक राम, लक्ष्मण और सीता आखो से ओझल न हुए सुमत और गुह उन्हे देखते रहे। उनके आगे निकल जाने पर दोनो को बहुत दु ख हुआ। दोनो निराश गाव की ओर लौटे और सुमत निषादराज से विदा लेकर अयोध्या को चल दिये।

जैसे-जैसे वह अयोध्या के पास पहुचते गये, उन्हे बडा रीतापन लगने लगा। लोगो ने सुमत के रथ को घेर लिया और पूछने लगे, "हमारे रामचद्रजी कहा है ? सीताजी कहा हैं ?"

सुमत ने लोगो को बताया, "प्रिय सज्जनो ! राम, लक्ष्मण और सीता गगा पार कर गये है। मुझे वापस जाने की आज्ञा देकर वे तीनो जगल के भीतर पैदल चले गये।"

यह सुनकर सभी लोग जोर-जोर से रोने लगे। स्त्रिया कहने लगी, "अभी-अभी तो हमने राम और सीता को इस रथ मे देखा था। यह खाली रथ हमसे नही देखा जाता।" लोगो के रोने की आवाज सुमत के कानो मे पड रही थी। उन्होने अपने चेहरे को कपडे से ढक लिया और राजभवन के द्वार पर रथ ले जाकर खडा कर दिया। वहा भी लोगो की भीड जमा हो गई। औरतें आपस मे बाते करने लगी "कौशल्या से यह क्या कहेगे ? इनकी बात सुनकर महारानी कैसे जीवित रह सकेगी ?"

सुमत का दु ख इन बातो से और भी बढ गया। वह धीरे-धीरे माता कौशल्या के अत पुर मे गये।

वहा महाराज दशरथ मृत्युशैया पर पडे थे। राम को वन छोड आने का वृत्तात सुमत ने राजा को धीमी आवाज मे कह सुनाया। राजा बिलकुल नही बोले। चुप रहे।

लेकिन कौशल्यादेवी को असह्य दु ख का अनुभव हुआ। वह दशरथ

को इस प्रकार कटु वचन सुनाने लगी, "हे भाग्यवत, मेरे बेटे ने तो अपनी दृढता से सारे जगत् को चकित कर दिया। आपके मत्री उसे जगल मे छोड-कर आ गये है। वह यहा खडे है। उनसे कुछ बोलिये तो सही। कैकेयी को वरदान आपने बडी सरलता से दे दिया था। अब क्यो शरमा रहे है! क्या आपने यह सोचा ही नही था कि वरदान का बुरा परिणाम भी निकल सकता है? आपने अपने वचन की रक्षा खूब कर ली! आपको किस बात की तकलीफ हो रही है! मेरे दु ख मे कौन भाग ले सकता है? मेरा कष्ट तो मुझको ही भोगना पडेगा। आपको दुखित होने की आवश्यकता भी नही। आपने मौन क्यो धारण कर लिया? कैकेयी यहा पर नही है। आप निडर रहे। राम को वन मे छोड आने का वृत्तात विस्तार से सुमत से पूछें। घबराने की कोई बात नही। मै फिर कहती हू, यहा पर कैकेयी नही है।"

अत्यधिक दु ख के कारण ये शब्द कौशल्या के मुह से निकल पडे। क्रोध, दु ख और पति-भक्ति आदि आवेगो का एक साथ उन पर प्रहार हुआ। यह उनसे सहा नही गया। वह एकदम बेहोश होकर गिर पडी। लोगो ने यही सोचा कि वह मर गई। अत पुर मे हाहाकार मच गया।

पुत्र-वियोग के शोक से कौशल्यादेवी ने अपने पति की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति का खयाल न किया और ऐसी कठोर बाते कह डाली। दशरथ को इससे चोट-पर-चोट पहुची। जब वह सम्हले तब उन्होने सुमत से सारा हाल पूछा। सुमत ने श्रीराम का सदेशा सुनाकर अपना कर्तव्य पूरा किया।

कौशल्या को सुमत ने बहुत समझाया, लेकिन वह यही कहती रही, "जहा राम को छोडा है, मुझे भी वही छोड आओ। बहू सीता को जगल मे भेजकर मुझे इस महल से क्या लेना है?" उनका रोना बद न हुआ।

"देवि, आपको धीरज रखना चाहिए। राम तो वन मे यहा से भी अधिक आनद मे है। आप बिलकुल चिता न करे। लक्ष्मण राम की सेवा करते हुए अपने जीवन को सार्थक बना रहे हैं। वह भी बहुत प्रसन्न है। सीता तो राम मे ही रमनेवाली और प्रसन्न है। उसे देखकर ऐसा लगता

है मानो उसने बचपन से ही जगल मे जीवन व्यतीत किया हो। चद्रमा के समान उसके चेहरे की काति अभी तक फीकी नही पडी है। राम के आश्रम मे वह एक बालिका की तरह निर्भीक विचर रही है। राम-लक्ष्मण के साथ वह राह के गाव, पुर, नदिया, पेड-पौधे और पुष्पो के बारे मे खूब चर्चा करके जानकारी और आनद प्राप्त कर रही है। जगल को तो वह एक सुदर उपवन समझ रही है। जगल मे इस प्रकार चल रही है, मानो नृत्य कर रही हो। नृत्य करनेवाली स्त्रिया पैरो मे घुघरू बाधती है। सीता के पैरो मे घुघरू नही है, बस यही फर्क है। मै जो कह रहा हूं, सच कह रहा हू। दुनिया-वालो को राम-लक्ष्मण-सीता के आचरणो से शिक्षा मिलेगी। राजा के धर्म की रक्षा उनसे हो रही है। उन तीनो की ख्याति ससार मे हमेशा रहेगी। आप क्लेश करना छोड दे।"

सुमत नाना प्रकार से कौशल्या को समझाने लगे। कौशल्या थोडी देर के लिए शात हो भी जाती थी, लेकिन फिर राम को याद करके वह जोर-जोर से विलाप करने लगती थी। सुमत के राम को वन मे छोडकर लौटने के बाद से कौशल्या का दु ख वेग से उमड पडा था।

: २९ :

एक पुरानी घटना

कौशल्या दशरथ को कोसती रही। मन की व्यथा को वह इस प्रकार बाहर निकाल रही थी। इससे उनकी वेदना कुछ कम हुई। पर बेचारे दशरथ ने तो धर्म-सकट मे फसकर भारी विपदा ही मोल ली थी। उससे बचने का अब उनके पास कोई उपाय न था। श्रीरामचद्र यदि पिता का विरोध करके अयोध्या न छोडने का निश्चय करते, तो दशरथ खुश ही होते। किंतु पिता के आज्ञाकारी धर्मावतार राम ऐसा काम क्यो करते? सीता और लक्ष्मण दोनो ने भी किसी से न कुछ पूछा, न सुना, और स्वय

राम के साथ जाने का निर्णय करके चल दिये ।

ऐसी विषम परिस्थिति मे राजा मृतवत् पडे थे और कौशल्यादेवी अपने दु ख के कारण राजा को व्यग्यपूर्ण बाते सुनाकर, उन्हे न्याय समझाने लगी, जिससे राजा और भी दुखी हो गये ।

कौशल्या कहने लगी, "अब आप चिता करना छोड दे । आपका सत्य सुरक्षित हो गया । आपको और क्या चाहिए ? अब आप अपनी युवा पत्नी के साथ आनद से रहे । लेकिन मै क्या करू ? स्त्री का सब-कुछ पति होता है । जब पति स्त्री का खयाल करना छोड दे, तो वह कहा जाय ? मेरे पति ने तो मुझे छोड ही दिया । उसे अपनी नई पत्नी को ही प्रसन्न करने की लगन है । लडका वन चला गया । मेरे बाप का घर बहुत दूर है । पति जब जीवित हो तब किस मुह से पीहरवालो की शरण मे जाऊ ? मै तो अनाथ हो गई । आपको मेरी क्या चिता है ? बस, आपको तो कैकेयी और भरत के अतिरिक्त दूसरो की चिता क्यो होने लगी ? आप यह न सोचें कि राम जब लौट आयेगा, तब क्या होगा ? चौदह वर्ष पूरे करके जब लौटेगा, तब भी मेरा पुत्र भरत के राज्य को हाथ न लगायेगा । दूसरे पशुओ का जूठा व्याघ्र नही छूता । जैसे मछली अपने बच्चो को खा जाती है, इसी प्रकार, हे स्वामी, आपने अपने पुत्र को नष्ट कर डाला है ।"

कौशल्या के इन अप्रिय वचनो से राजा दशरथ अत्यत दुखी हुए । सोचने लगे, पता नही, यह सब किन दुष्कृत्यो का परिणाम है ? आखे मूद-कर बीती बातो को याद करने लगे । एक बहुत पुरानी घटना याद आई । आखे खोली, टटोलकर देखा, कौशल्यादेवी पास ही बैठी थी । राजा ने हाथ जोडे और कहा, "प्रिये, मेरे ऊपर दया नही करोगी ? तुम्हारा स्वभाव तो सदा दूसरो के अपराधो को क्षमा करने का था । आज क्यो मुझे ये अप्रिय बाते सुनाकर सताने लगी हो ? मेरी परिस्थिति को अच्छी तरह समझते हुए भी तुम्हारे मुह से ऐसे कटु वचन क्यो निकल रहे है ? तुम तो स्त्री-धर्म को खूब जानती हो । सकट मे पडे हुए मुझको और न सताओ । मुझसे गलती हो गई । क्षमा करो । मुझसे और कुछ न कहो ।"

कौशल्या शर्म और दु.ख से पीडित होकर रो पडी। बोली, "राजन्, बाहरी दुश्मनो के आक्रमण से आतरिक क्लेश अधिक कष्टप्रद होता है। मेरे हृदय का सताप असह्य हो रहा है। उसके कारण मेरे मुह से कुछ-का-कुछ निकल जाता है। क्षमा करे। सुनती हू कि राम को बन गये आज पाच दिन हो गये, मुझे तो ऐसा लग रहा है कि पाच वर्ष हो गये। उसी को सोचते हुए मेरा दु ख हर घडी नदी के प्रवाह की तरह बढता चला जा रहा है। मै क्या करू ? ऐसी हालत मे मै आपे से बाहर हो जाती हूं। आप मुझे क्षमा करे।"

कौशल्या के इन प्रिय वचनो से दशरथ को कुछ सात्वना मिली। तभी सूर्य अस्त हुआ, रात्रि हुई और राजा थोडी देर निद्रा के वशीभूत हो गये।

आधी रात हुई। राजा जग पडे। पास ही मे देवी कौशल्या थी। राजा बोले, "प्रिये, तुम मेरे पास हो न ? कर्म-फलो को कोई नही बदल सकता। क्षणिक सुख के लिए लोग बडे-बडे कुकर्म कर बैठते है। उसका फल बाद मे भोगते है। मै जब जवान था, शब्द-वेधी विद्या जानता था, अर्थात् लक्ष्य को आखो से देखे बिना ही शब्द जिस स्थान से आता हो, वहा सफलता के साथ तीर चला लेता था। इसको जानने के अभिमान के कारण मुझसे एक अन्यायपूर्ण घटना हो गई। सुनो, मै तुम्हे बताता हू कि क्या हुआ ?

"तब मेरा और तुम्हारा विवाह नही हुआ था। एक दिन शाम को रथ मे सवार होकर मै सरयू के किनारे जगल मे शिकार खेलने चला गया। वर्षा के कारण पहाड की धातुओ के साथ नई मिट्टी के मिल जाने से रग-बिरगा पानी चारो दिशाओ मे बह रहा था। रात हो गई थी। पक्षियो ने मौन धारण कर लिया था। ऐसा मालूम होता था कि सारा जगल निद्रा मे लीन हो गया है। मैने यही सोचा कि रात मे विचरनेवाले शेर, चीते आदि जानवर पानी पीने आयगे और उनकी आवाज की दिशा को लक्ष्य करके शिकार कर लूगा। घनघोर अधकार छाया था। तब मुझे एक ऐसी आवाज सुनाई दी मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। उस आवाज की दिशा मे मैंने लाघवता के साथ तीर चला दिया। मेरा बाण अचूक होता

था। फौरन मैने एक मनुष्य की पुकार सुनी, 'हाय, मै मर गया !' क्या मैने एक निर्दोष आदमी को मार डाला ? मै चौका और शब्द जिधर से आया था, उधर पहुचा।

" 'मैने किसी का कुछ न बिगाडा। मुझसे यह द्वेष क्यो किया गया ? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे किसने मार डाला ? मेरे मरने से उसको क्या मिलने वाला है ? मै तो व्रती तापस हू। मेरे अधे मा-बाप मेरे बिना क्या करेगे ? मै उनका एकमात्र सहारा था। अब उनका जीना असभव है। हाय, व्यर्थ ही मुझे किसी ने मार डाला।' इस प्रकार का करुण विलाप जब मैंने सुना तो मै बहुत ही घबरा गया। हाथ से धनुष-बाण नीचे गिर पडा।

"भागा-भागा मै जहा से आवाज आ रही थी, वहा पहुचा। वहा मैंने एक ऋषिकुमार को तडपते हुए देखा। उसके शरीर से खून की धारा बह रही थी। सिर की जटा खुलकर चेहरे पर बिखर गई थी। सारा शरीर खून और कीचड से सना हुआ था। पास ही पानी का घडा लुढका हुआ था। उसकी आखो के प्रकाश से मै जल-सा रहा था।

" 'पापी, मुझे तूने मारा है ? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे मारकर तुझे क्या मिला ? आश्रम मे मेरे अधे मा-बाप प्यासे मेरी राह देख रहे होगे। हे ईश्वर, मैंने ऐसा क्या अपराध किया ? मेरे वेदाध्ययन-व्रत का यही फल मिलना था ? प्रतिक्षण मेरी प्रतीक्षा करनेवाले मेरे वयोवृद्ध माता-पिता अब क्या करेगे ? तू तो कोशल का राजा दशरथ है न ? हे दुष्ट राजन्, तू जा, मेरे मा-बाप के पास जा, और उनके पैरो मे पडकर क्षमा माग, नही तो उनके क्रोध से तू भस्म ही हो जायगा। यह पगडडी सीधी आश्रम तक जाती है। इसी मार्ग से मेरे मा-बाप के पास पहुच जा, और उनसे क्षमा मागकर अपने प्राणो को बचा ले। हाय, इस बाण को तो निकाल। बडा दर्द हो रहा है।' ऋषिकुमार मुझसे बोला। मै सोचने लगा कि इसके शरीर से बाण को निकाल दू तो अवश्य इसकी पीडा कम होगी, किंतु साथ-ही-साथ प्राण भी निकल जायगे। हिम्मत नही हुई। तब ऋषि

कुमार बोले,'राजन्, किस सोच मे पड गया ? इस तीर को निकालकर मेरी वेदना को कम कर। मै अब निश्चित हो गया हू । मरने की तैयारी है। हिम्मत दिखा और मेरे शरीर से इस बाण को बाहर निकालकर मुझे आराम से मरने दे।'

"मैने धीरे-धीरे बाण को शरीर से बाहर खीच लिया। मेरी तरफ निगाह करते हुए और छटपटाते हुए उस तपोधन ने प्राण छोड दिये।

"बस, उसी पाप-कर्म का फल मै आज भोग रहा हू । उन अधे माता-पिता ने भी पुत्र-शोक मे अपने प्राण छोडे थे । मै भी अपने पुत्र के वियोग से तडप रहा हू।

: ३० :

दशरथ का प्राण-त्याग

"आगे क्या-क्या हुआ, यह मै तुम्हे बताता हू । सुनो ।" दशरथ कहने लगे, "मुझसे बडा भारी पाप बन पडा था। ऋषिकुमार ने मेरे देखते-देखते प्राण छोड दिये। मै सोचने लगा—अब क्या करू ? अत मे यही निश्चय किया कि जैसे ऋषिकुमार ने कहा था, वैसे ही करू। घडे को उठाकर मै पानी भर लाया। पगडडी के सहारे आश्रम पहुचा। वहा दोनो बूढो को देखा। बुढापे के कारण उनका शरीर चिडिया की भाति सिकुड गया था। उनसे बिलकुल चला-फिरा तक नही जाता था। अधे तो थे ही । आपस मे यही बाते कर रहे थे कि लडका पानी भरने गया था। मगर अभी तक वापस क्यो नही आया ?

"मैने सोचा—हे भगवान् किस तरह ये बेटे की प्रतीक्षा मे बैठे है। अब ये अनाथ हो गये। मै किसी प्रकार डरते-डरते उनके पास पहुचा। मेरे पैरो की आहट सुनकर बूढे बाप ने कहा, 'बेटा, तुझे इतनी देर कैसे हो गई ? कही खेल मे लग गया था क्या ? तेरी मा तो प्यास के मारे मरी जा

रही है। आज तू कुछ बोल क्यो नही रहा ? हम दोनो से नाराज हो गया है क्या ? नही, तू हम पर नाराज न हो। तू तो समझदार और बडा ही अच्छा बेटा है। तू ही तो हमारा एकमात्र सहारा है। हम तो आखो से देख भी नही पाते। तू ही हमारी आखे है, तू ही हमारा प्राण है। तो भी तू क्यो चुप है ? मेरी बातो का तू बुरा मान गया है क्या ?'

"बिना दात के उस वृद्ध के मुह से निकले इन अस्पष्ट शब्दो को सुनकर मेरा शरीर शाप के डर से कापने लगा। किसी तरह हिम्मत करके मैने कहा, 'स्वामिन्, मै दशरथ हू। आपकी आज्ञा पालनेवाला क्षत्रिय ! मै आपका पुत्र नही। किसी पूर्वजन्म के कर्म-फल के कारण मुझसे एक भयकर पाप-कर्म बन गया है। आपके सामने सिर झुकाकर क्षमा-प्रार्थना करता हू। भगवन्, किसी जगली जानवर के शिकार के लिए मै रात को नदी-तट पर गया था। घडे मे पानी भरने की आवाज को सुनकर मैने समझा कि कोई जगली हाथी पानी पी रहा है। उस दिशा मे मैने तीर चला दिया और वह आपके पुत्र की छाती मे लग गया। आपका पुत्र मेरी इस भूल से चल बसा। मैने जब आपके पुत्र को घायल देखा तो मुझे बडा ही पछतावा और शोक हुआ। मै किकर्तव्यविमूढ हो गया। आपके पुत्र ने मरने से पहले मुझसे कहा कि मै उसकी छाती से बाण को खीचकर निकाल दू। मैने वैसा ही किया। आपका पुत्र इस लोक से चला गया। यह भूल मैने जान-बूझकर नही की, गलती से हो गई। जो कुछ हुआ, मैने आपको साफ-साफ बता दिया। अब आपकी इच्छा ! जो कुछ शाप या दड देना चाहते हो, दे दे। मै उसे भोगने को तैयार हू।'

"मेरे मुँह से यह भयकर वृत्तात सुनकर दोनो वृद्ध-वृद्धा सन्न रह गये। उनकी आखो से आसू बहने लगे। बूढे बाप बोले, 'राजा, तूने तो बडा भयकर पाप-कर्म किया, पर स्वय अपना अपराध कबूल किया, इसलिए तुझे तो हम छोड देते है। अब हम दोनो को शव के पास ले चल। हम उसके शरीर पर हाथ फेरेगे। यमदेव के पास भेजने से पहले उस प्यारी देह को हम स्पर्श करना चाहते है। हमे उसके पास ले चल।'

"मै उन बूढे मा-बाप को हाथ से उठाकर नदी-तट पर ले गया, जहा उनका पुत्र मरा पडा था। बेटे के शरीर से लिपटकर वे दोनो खूब रोये। उसे आशीर्वाद दिये। मेरी मदद से उसकी दाह-क्रिया की। फिर बोले, 'राजा दशरथ, तू भी हमारी ही तरह पुत्र-शोक से तडप-तडपकर मर जायगा। तूने जो दु ख हमे पहुचाया है, उसका अनुभव स्वय भी करेगा।' और यह कहते-कहते वे दोनो उसी चिता मे चढकर भस्मीभूत हो गये।

"रानी, उस दिन का किया हुआ मेरा पाप-कर्म आज मुझे सता रहा है।

"अपथ्य आहार से जैसे रोग बढकर मनुष्य को अत मे मार डालता है, उसी प्रकार मेरा यही पाप-कर्म अब मुझे मारे डालनेवाला है। अधे और बूढे बाप ने जो शाप दिया था, वह आज फलीभूत होनेवाला है। मैने अपने हाथो से निर्दोष पुत्र को वन भेजा। उसी के वियोग से आज मेरे प्राण निकलने वाले है। जो अद्‌भुत और स्वभाव-विरुद्ध घटनाए घटी है, उन सबका कारण मेरा पूर्वकर्म ही है, नही तो मैं क्यो इस तरह फसता ? राम ने भी क्यो एकदम हठ पकड लिया कि वन जाये बिना न रहूगा। कौशल्या, मेरी आखे भी अब काम नही दे रही। मै अधा हो गया हू। तुम मुझे दिखाई नही पड रही। मेरे बिलकुल समीप आओ। ऐसा लगता है कि अब मैं चला। मेरा काम समाप्त हुआ। यमदूत जल्दी मचा रहे है। क्या राम वापस आ जायगा ? क्या मै उसे एक बार और नही देख सकूगा ? मरने से पहले बस एक बार उसे देख लेता। मेरा दम घुट रहा है। अब कुछ बाकी नही रहा। दीपक मे तेल चुक गया। कौशल्ये ! सुमित्रे !"

राजा की बोली धीमी पड गई, और श्रीराम की याद मे तडपते हुए उन्होने उसी रात प्राण त्याग कर दिये।

रामायण-कथा के प्रारभ मे वाल्मीकि ने दशरथ को 'दीर्घदर्शी, महा तेजस्वी, प्रजा का प्रीति-पात्र, धीर, महर्षि-तुल्य, यज्ञ-तप आदि करके इद्रियो को वश मे रखने मे समर्थ, तीनो लोको मे नामी, धन-ऐश्वर्य-सपन्न होकर इद्र और कुबेर-तुल्य, राज्यपालन मे मनु के समान न्यायशील' आदि

बताया है। ऐसे दशरथ भी कर्म की गति को बदल न पाये। अत मे उन्होने असह्य पुत्र-वियोग के शोक का अनुभव किया और उसी मे शरीर त्याग दिया।

दशरथ बार-बार बेहोश हो जाते, फिर होश मे आ जाते थे। इसलिए कौशल्या और सुमित्रा को पता न चला कि राजा मर गये है। जागरण और शोक से थककर एक कोने मे दोनो पडी थी। जब सुबह होने लगी, अत पुर की प्रथा के अनुसार, गायक लोग नियमानुसार सुप्रभात गाने और वाद्य बजाने लगे। पर राजा उठे नही। सेवको ने, जो राजा के निजी कामो को देखते थे, काफी देर तक राह देखी कि राजा अब उठे, अब उठे। जब बहुत देर हुई तो उन्हे चिंता हुई और वे अदर कमरे मे आये। उन्होने देखा कि दशरथ तो परलोक सिधार चुके थे।

महल मे हाहाकार मच गया। महा प्रतिभाशाली सम्राट् दशरथ की पत्निया अनाथ बच्चो की तरह विलाप करने लगी।

: ३१ :

भरत को संदेश

कौशल्या दशरथ के मृत शरीर से लिपट गई। रोते-रोते कहने लगी, "मै तो राजा के साथ ही चिता पर चढूगी। मेरा पति मर गया। लडका भी मेरे पास नही। मै जिदा नही रह सकती।" राजमहल के बडे-बूढे और अन्य कर्मचारी बडी मुश्किल से उन्हे छुडाकर दूसरी ओर ले गये।

आगे की क्रियाओ के बारे मे सबने मिलकर सोचा कि क्या हो? राजा के चारो पुत्रो मे से एक भी उस समय वहा न था। राम और लक्ष्मण वन मे थे और भरत-शत्रुघ्न ननिहाल मे थे। कैकय राज्य काफी दूर था। वहा से उनके आने मे विलब अनिवार्य था। सबने यही निश्चय किया कि भरत को तत्काल खबर भेज दी जाय और जब तक वह न आये तब तक राजा

के शरीर को औषधियुक्त तेल मे रखा जाय, जिससे उसको क्षति न पहुचे।

सारे जगत् मे जिसकी ख्याति फैली थी, जिसने निर्विघ्न रूप से सैकडो वर्ष राज्य का सचालन किया था, उस सम्राट् का शव एक तेलभरे पात्र मे रखा गया ! अयोध्या की शोभा एकदम गायब हो गई। सब जगह अधेरा-सा छा गया। चारो ओर लोगो का करुण विलाप सुनाई देता था। नर-नारी कैकेयी को कोमने लगे। मारा नगर चितामग्न हो गया। जो युवराज बनने वाला था उसे तो राज्य से बाहर निकाल दिया, भरत भी विदेश मे है, अब राज्य को कौन सम्हालेगा ! राजा के बिना राज्य-सचालन उस समय के लोगो की कल्पना से बाहर की चीज थी।

एक रात किसी तरह बीती। दूसरे दिन सुबह सचिवगण तथा कर्मचारी और अन्य बडे-बूढे सब सभा-मडप मे इकट्ठे हुए। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वासुदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम, जाबालि तथा अन्य द्विजोत्तमो-सहित सुमत ने वसिष्ठ को प्रणाम किया और कहा, "भगवन्, एक रात्रि एक युग के समान बीती है। महाराज तो स्वर्ग चले गये। राम-लक्ष्मण वन मे है। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए है। यहा की स्थिति नाजुक है। अराजकता की हालत हो गई है। शीघ्रता से अब राज्य-भार किसी को ले लेना चाहिए, नही तो अराजकता से राज्य की बुरी दशा हो जायगी।"

वह कहने लगे, "उस देश मे, जहा कोई राजा नही रहता, न्याय कहा से मिल मकता है ? वहा बाप का कहना बेटा नही मानेगा। पति-पत्नी का बधन कमजोर हो जायगा। अधर्म के फैलने से वर्षा भी पूरी तरह न होगी। सब जगह लूटमार फैलेगी। लोगो को अपने मे भरोसा न रहेगा। अराजकता मे कृषि और अन्य व्यापार सब-कुछ धीमे पड जायगे। राजा के बिना यातायात, व्यापार अथवा कृषि-कार्य ढग से कैसे चल सकते है ? राज्य मे धन की कमी हो जायगी। मदिरो मे पूजा-विधिया या उत्सवादि कौन करेगा ? लोगो के जीवन मे बडा भारी उत्पात पैदा हो जायगा। जहा अराजकता हो, वहा इतिहास-पुराण कौन मुनेगा ? कौन सुनायेगा ?

किवाडो को खुला रखकर सोने की कोई हिम्मत न करेगा। सभ्यता का नाश हो जायगा। तप, व्रत, आनद वहा टिक न पायगे। शास्त्रो का अध्ययन कौन करेगा ? जहा राजा न हो, वहा शाति कैसे हो सकती है ? राजा ही तो राज्य मे शाति स्थापित करता है। अराजकता बहुत ही बुरी चीज होती है। वहा स्त्रिया अपने स्वाभाविक रूप को खो देगी। उनके अलकारादि भी विकृत हो जायगे। किसी को भी अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा का अनुभव न होगा। लोग सदा डरते रहेगे कि पता नही कब कौन छीनकर ले ले। प्रजा आपस मे लडने लगेगी और मर कटेगी। अत्याचार और क्लेश बढता जायगा और देश का सत्यानाश हो जायगा। राज्य के कल्याण के लिए एक राजा का होना अनिवार्य है।"

इस प्रकार सभा मे बडे-बूढे अराजकता की हानिया बताने लगे। वाल्मीकि ऋषि ने इसका बहुत सुदर वर्णन किया है। सबने एक साथ वसिष्ठ से कहा कि सारे देश मे अधकार छा गया है। इसलिए एक राजा का नियुक्त हो जाना नितांत आवश्यक है।

मुनिवर वसिष्ठ ने तत्काल दूतो को बुलाया और उनसे कहा, "आप लोग तुरत निकल पडे। कहीं भी रुके नही। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी कैकय राज्य पहुच जाय। अपने मुख पर अथवा व्यवहार मे शोक की छाया तक न पडने दे। भरत से यह सहा नही जायगा। राजा की मृत्यु की खबर उन्हे न लगने दे। भरत से बस इतना ही कहा जाय कि 'कुल-गुरु और सचिव लोग आपको फौरन अयोध्या बुलाते है। आप हमारे साथ तुरत चलिये।' राम-सीता के वनवास के बारे मे अथवा सम्राट् के स्वर्ग-वास के बारे मे भरत से किसी प्रकार की भी बात न की जाय। हमेशा की तरह कैकयराज के लिए वस्त्र और आभूषण भेट-रूप मे ले जाये जाय।"

इस प्रकार वसिष्ठ मुनि ने दूतो को आदेश दिया।

दूतो को रास्ते के लिए कपडे, खाना और आवश्यक वस्तुओ के साथ बिना विलब के रवाना कर दिया गया। वे कैकयराज के लिए नाना प्रकार की भेट अपने साथ ले गये। अति शीघ्र चलनेवाले घोड़ो पर सवार होकर

दूत जगल, नदी और पहाडो को पार करके कैकय राज्य की दिशा मे जाने लगे ।

कैकय राज्य अयोध्या से काफी दूर पर था। आजकल का पजाब और उससे भी आगे का पश्चिम प्रदेश कैकय राज्य कहलाता था। जब दूत लोग कैकय देश की राजधानी राजगृह पहुचे तब वे तथा उनके घोडे एकदम थक गये थे। यात्रा का मार्ग कठिन था और वे घोडो को बहुत तेज दौडाते हुए आये थे।

जिस दिन वे राजगृह पहुचे, उस रात को राजकुमार भरत ने बडे भयकर सपने देखे। उस दिन वह अशात चित्त से बिस्तर से उठे। उनका मुखमडल मुरझा-सा गया। यह देखकर भरत के मित्रो ने उनके मन को बहलाने के लिए नृत्य, गायन तथा हास्य-विनोद आदि का प्रबध कराया, किंतु किसी अज्ञात कारण से भरत के मन मे किसी चीज के लिए उत्साह पैदा नही हुआ।

प्रेम के वेगो का भेद हमे अभी तक पता नही। सभव है कि राजा दशरथ की मनोव्यथा, मृत्यु-वेदना भरत के हृदय तक पहुच गई हो।

"मैंने बहुत सबेरे आज एक सपना देखा है। कहते है कि सुबह के समय का सपना सच होता है। मुझे लगता है कि हम चारो भाइयो मे से किसी को कुछ होगा। मेरे मन मे एक अजीब तरह के क्लेश का अनुभव हो रहा है। मुझे बडा डर-सा लग रहा है। समझ मे नही आता कि मै क्या करू?" भरत ने अपने मित्रो से कहा। ठीक उसी समय अयोध्या से दूत वहा पहुच गये और उन्होने महल मे प्रवेश करने की अनुमति मागी।

कैकय के राजा तथा उनके पुत्र युधाजित ने दूतो का आदरपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। दूतो ने भी उन दोनो का, उचित रूप मे, सम्मान किया। फिर वे भरत से कहने लगे, "कुलगुरु और मत्री सबने आपको मगल-कामनाए भेजी है और हम लोगो से कहा है कि एक बहुत आवश्यक काम आ पडा है। आप एकदम अयोध्या लौट चले। आप इन वस्त्र और आभूषणादि का स्पर्श करे। इन्हे कैकयराज को समर्पित करना है।"

भरत ने वैसा ही किया। दूतो से भरत ने पूछा, "पिताजी कुशल से है न ? भाई श्रीराम और लक्ष्मण कैसे है ? वे स्वस्थ है न ? सब माताए कैसी है ?"

दूतो ने उत्तर दिया, "सब ठीक है, राजकुमार ! आपका मगल हो। आप जल्दी वापस घर चले। सबको आपको देखने की तीव्र इच्छा है।" दूतो ने सत्य को छिपाते हुए कहा। उनकी बात से कुछ ऐसा लग रहा था कि राज्याभिषेक के लिए अथवा ऐसी ही किसी महत्वपूर्ण वार्ता के लिए भरत को बुलाया जा रहा है।

राजकुमार विलब किये बिना अयोध्या लौटने को तैयार हो गये। उन्होने अपने नाना और मामा से तथा अन्य मित्रो से विदा ली। कैकयराज और उनके पुत्र युधाजित ने महाराजा दशरथ और रामचद्र के लिए अनेक बहुमूल्य वस्तुए रथो मे रखवा दी। यात्रा के लिए आवश्यक चीजो का भी प्रबध करा दिया।

और सब-के-सब अयोध्या की ओर तेजी से जाने लगे।

: ३२ :

अनिष्ट का आभास

भरत और उनके साथी अयोध्या का पथ बडी शीघ्रता के साथ तय करने लगे। घोडो को आराम देने के लिए ही उन्हे कही-कही रुकना पडता था। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे आठवे दिन अयोध्या आ पहुचे। अयोध्या की दशा भरत को कुछ विचित्र-सी लगी। उन्होने पूछा, "सारथी, नगर मे पहले-जैसी चहल-पहल क्यो नही दिखाई दे रही है ? लोगो मे प्रसन्नता का कोई चिह्न नही दीख पडता। नगर के बाहर उद्यानो मे आनद के साथ घूमते हुए प्रसन्न नर-नारियो के स्थान पर मैं सभी जनो को उदास मुखमुद्रा मे देख रहा हू।

"मगल वाद्यो की ध्वनि कही भी सुनाई नही दे रही। लोगो ने गध इत्यादि को क्यो त्याग दिया है? क्या बात है? अपशकुनो के ही चिह्न चारो ओर दिखाई दे रहे है। मेरे मन की अशाति प्रबल होती जा रही है।"

भरत यो सारथी से पूछते रहे। उनका रथ वैजयत नामक दुर्ग-द्वार से नगर के अदर प्रविष्ट हुआ। वहा भी भरत ने देखा कि मुख्य बाजार, महल और मदिर शोभाहीन हो रहे है। न सडको पर छिडकाव किया गया था, न घरो के सामने की भूमि लीपी गई थी, न अल्पना द्वारा चित्र बनाकर उस भूमि को अलकृत किया गया था। लोगो के चेहरे ऐसे दीख पडते थे मानो कई दिनो से भूखे हो। भरत ने समझ लिया कि कोई बडी भारी दुर्घटना हो गई है और इसी कारण उन्हे वापस बुलाया गया है।

भरत दशरथ के महल मे गये। वहा पिता को न पाकर वह घबराये। माता कैकेयी का दर्शन करने के लिए वह उसके महल मे गए। उन्हे देखते ही कैकेयी अपने स्वर्ण-आसन से उछलकर उतरी और पुत्र को छाती से लगा लिया। भरत ने मा के चरण छुए। पुत्र को प्यार से आलिगन करके उसका मस्तक चूमकर कैकेयी बोली, "बेटा, दीर्घायु हो। यात्रा कैसी रही? तुम्हारे मामा और परिवार के सब लोग कुशल से है न? वहा की सारी खबरे सुनाओ।" पुत्र को अपने साथ आसन पर बिठाकर कैकेयी पूछने लगी।

"मुझे यहा पहुचने मे पूरे सात दिन लग गये। सब आनद है। नानाजी ने और मामा युधाजित ने आपके लिए नाना प्रकार की चीजे भेजी है। मैं पहले पहुच गया। और लोग उन चीजो को लेकर पीछे आ रहे है। पर मा, यहा यह क्या बात है? मुझे एकदम क्यो बुलावा भेजा गया? पिताजी को प्रणाम करने के लिए उनके भवन मे गया तो वह वहा नही थे। यहा भी उनका आसन खाली देख रहा हू। मैने सोचा कि यही होगे। बडी मा के भवन मे है क्या? मैं पहले जाकर उन्हे प्रणाम करना चाहता हू।"

बेचारे भरत को बिलकुल पता न था कि यहा क्या-का-क्या घटित

हो चुका है। कैकेयी राज्याधिकार के लोभ से पागल हो गई थी। वह अपने पुत्र से कहने लगी, "वत्स, तेरे पिता ने ससार के उच्चतम सुखो का अनुभव कर लिया। उनके समान भाग्यशाली, यशस्वी राजा दुनिया मे दूसरा कौन हो सकता है? कोई यज्ञ, दूसरा कोई पुण्य-कर्म उन्होने बाकी न रखा। सदाचारियो के वह आश्रय-स्थान थे। वह अपने लिए सर्वथा उपयुक्त परम-पद को प्राप्त हुए।"

"हाय! आप यह क्या कह रही है?" यो कहकर भरत आसन से गिर पडे। सम्राट् की शून्य शैया को देखकर भरत फूट-फूटकर रोने लगे। अपने रेशमी उत्तरीय से चेहरे को ढककर बहुत देर तक वह विलाप करते रहे। कभी भूमि पर लोट जाते तो कभी बैठकर रोने लगते। यह आघात उनके लिए असह्य था। तरुण हाथी के समान शरीरवाले, पूर्ण चद्र जैसे मुखवाले, आजानुबाहु भरत पृथ्वी पर ऐसे गिरे, जैसे एक बडा वृक्ष कटकर गिर गया हो।

कैकेयी अपने पुत्र से फिर स्नेहपूर्वक बोली, "मेरे बेटे, यह क्या कर रहे हो? उठो। इस प्रकार क्लेश करना एक राजा को शोभा नही देता। सबके मान और आदर के पात्र होकर तुम अच्छी पदवी पा गये हो। ज्योतिर्मय सूर्य के समान तुम तेजयुक्त और प्रज्ञावाले हो। तुम्हे धैर्य नही छोडना चाहिए। उठो, खडे हो, तुम्हे किसी प्रकार की कमी नही है।"

भरत तो एकदम अकलुष मन के थे। कैकेयी की बाते सुनकर भी उन्हे कल्पना न हुई कि क्या-क्या घटनाए हो गई है। सिसकते-सिसकते मा से उन्होने पूछा, "मै तो इसी आशा मे था कि पिताजी भाई श्रीराम का युवराजाभिषेक धूमधाम से करेगे और मुझे उसमे शामिल होने का सौभाग्य मिलेगा। यही आशा लेकर मामा के घर गया था। मै कैसा अभागा निकला! ओह, मुझसे यह सहा नही जा रहा! पिताजी को क्या कष्ट था? उनकी मृत्यु कैसे हुई? मैं पास नही रह पाया। भाई श्रीराम और लक्ष्मण दोनो ने उनकी सेवा की होगी। उनकी मरण-यातना को वे अपने उपचारो से कम कर सके होगे। दोनो बडे भाग्यशाली है। मेरे शरीर

की धूल को वे बार-बार कितने प्यार से हाथ फेरकर पोछते थे! उनके स्पर्श से मै कैसा पुलकायमान हो जाता था! मै उनके लिए कुछ न कर सका। बडा निकम्मा निकला मै। मा, भैया राम कहा है? अब राम ही मेरे लिए पिता है। वही मेरे गुरु होगे। उनके चरणो को पकडकर मै आशीर्वाद लेना चाहता हू। मेरी प्यारी मा, पिताजी प्राण-त्याग करते हुए क्या कह गये थे? उनके मुह से जो वाणी निकली हो, मै उसे वैसी ही सुनना चाहता हू।"

कैकेयी भी भरत को सारी बाते सुना देना चाहती थी। अपनी मनो-कामना की पूर्ति ही उसका एकमात्र ध्येय था। पुराने सस्कार के कारण उसको कुछ हिचकिचाहट हुई, किंतु वह एक क्षण के लिए ही। किंतु लोभ ने विजय पाई। बोली, "तुम्हारे पिता 'श्रीराम' कहते-कहते मरे। 'हे राम, हे लक्ष्मण, हे जानकी!' वह यही रट लगाते रहे, 'मै बडा अभागा निकला, जो राम, लक्ष्मण और वैदेही को फिर से देखे बिना ही चला जा रहा हू।'"

"क्यो, ऐसा क्यो हुआ? राम और लक्ष्मण उस समय कहा थे? उन्हे पिताजी क्यो नही देख पाये?" भरत ने प्रश्न किया। उन्हे इससे और भी दु ख हुआ।

कैकेयी ने सोचा कि सारी बाते बताने का यही अवसर है। बोली, "मेरे प्यारे भरत, राम तापस के वेश मे दडकारण्य वन चला गया। सीता और लक्ष्मण भी दोनो उसके साथ चले गये।"

यह सुनकर भरत को बडा आश्चर्य हुआ।

"मेरी कुछ समझ मे नही आ रहा। भाई से क्या अपराध हो गया था? किसी ब्राह्मण का धन उन्होने चुराया था? किसी निरपराधी को सताया था? किसी स्त्री के प्रति अनुचित इच्छा दिखाई थी? राम को दडकारण्य वन क्यो जाना पडा? किसने उन्हे यह दड दिया?" भरत ने एक सास मे पूछ डाला।

उन दिनो बडे भयकर पाप करनेवाले अपराधियो को ही वन भेजा जाता था।

कैकेयी अब और भी खुलासा करने लगी। उसने कहा, "राम ने कोई बुरा काम नही किया, न किसी की चोरी की, न किसी को तग किया, न किसी की स्त्री की तरफ बुरी निगाह डाली। बात यह थी कि राजा राम को युवराज बनाना चाहते थे। उसकी सब तैयारिया होने लगी। मुझे जब इस बात का पता चला तो मैने राजा से दो वर माग लिये। यद्यपि राजा को मालूम नही था कि मै क्या मागूगी, राजा ने मुझे वर दे दिये। मेरी पहली माग तुझे युवराज बनाने की थी और दूसरी राम को देश-निकाला देने की। राजा वचनबद्ध हो गये थे। वह उसमे पीछे कैसे जा सकते थे! सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन चला गया। उसके वियोग मे राजा ने प्राण-त्याग कर दिये। अब तुझे यही सोचना चाहिए कि आगे के क्या-क्या काम बाकी है। तू धर्म को समझता है। राज्य-भार उठानेवाला है। मैने जो कुछ किया, तेरे लिए किया है। बुद्धि को स्थिर रख और क्लेश छोड दे। यह अयोध्यापुरी और कोशल राज्य तेरे हाथ मे अनायास आ गये है। अब कुलगुरु वसिष्ठ के कहने के अनुसार पहले पिता की क्रियाए कर डाल। उसके बाद तेरा राज्याभिषेक होगा। तू वीर क्षत्रिय है। पिता के हाथ से तुझे राज्य मिला है। उसे सम्हालना तेरा कर्तव्य है।"

: ३३ :

कैकेयी का कुचक्र विफल

भरत ने देखा कि उनकी अनुपस्थिति मे कितना भयकर काड हो गया है। उन्हे कैकेयी पर इतना क्रोध आया कि उसका वर्णन करना कठिन है। बोले, "तुमने यह क्या कर डाला? मुझे राजगद्दी लेने के लिए कहते हुए तुम्हे लज्जा नही आई? हाय, मैंने पिताजी और बडे भाई को खो दिया। मैं राज्य लेकर क्या करूगा? मेरे पिताजी की मृत्यु का कारण तुम ही हो! तुमने ही भाई को राज्य से बहिष्कृत किया है! अब मुझसे कहती

हो—'राजा बन जाओ।' मेरे घावो पर नमक छिडक रही हो! तुमसे राजा ने शादी क्यो की? उन्होने भूल से आग को अपने आचल मे बाध लिया! हाय, मेरे पिता को तुमने मार डाला!

"मा कौशल्या और सुमित्रा का अब क्या हाल होगा? राम तुम पर सदा कितना प्रेम करते थे, उन्हे जगल मे भेजने की तुम्हे सूझी कैसे? बडी मा कौशल्या हमेशा तुमसे अपनी छोटी बहन की तरह बर्ताव करती थी। उनके बेटे को चोर-डाकू की तरह राज्य से निकाल देने की तुम्हे हिम्मत कैसे हुई? क्या तुम्हे इस बात का बिलकुल पता न था कि मै राम को कितना चाहता हू!

"दुर्भावना से पागल होकर तुमने यह क्या कर डाला? तुम्हारी बुद्धि को क्या कहू? महापराक्रमी मेरे पिता राम-लक्ष्मण को अपना बडा भारी सहारा समझते थे। उन्हे जगल मे छोडकर मैं गद्दी पर बैठ जाऊ? मुझसे यह कैसे हो सकता है? क्या इसे मैं कभी मान सकता हू? तुम्हारी इच्छा कभी पूरी नही होगी।

"इतना भयकर कुकर्म करनेवाली को मैं अपनी मा नही मान सकता। परपरा से राजकुलो मे यही नीति चली आई है कि ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी मिलनी चाहिए। उस नीति का तिरस्कार करने की बात तुम्हे सूझी कैसे?

"तुमने यह भी सोचा कि दुनिया हमे क्या कहेगी? सभी राजकुलो मे तथा हमारे अपने कुल मे भी बडे पुत्र के ही राजा बनने की प्रथा है। मै उसी का पालन करूगा। मैं जगल से अपने बडे भाई को वापस लाऊगा। उन्हे ही राजा बनाऊगा। जीवनभर उनकी सेवा करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूगा।"

भरत इस प्रकार गुस्से से कहने लगे। ज्यो-ज्यो वह बोलते गये, उनके मन का दु ख भी बढता गया। वह कहने लगे, "मा, तुमने यह क्या कर डाला? अब लोग मुझसे घृणा न करेगे तो और क्या करेगे?"

इस प्रकार आवेश मे आकर भरत भूल गये कि कैकेयी उनकी मा है और वह उसके पुत्र हैं। यह भावना ही उनके मन से निकल गई। इस

कारण वह बडी बुरी तरह से मा की निदा करने लगे। राम पर उनका अटूट प्रेम, पिता के मरण का दुःख और लोगो की अप्रीति, ये सब एक साथ आ पडने से भरत को दु ख हुआ होगा, उसे हम तनिक सोचे और समझने का प्रयत्न करे। इन्हीं कारणो से माता के प्रति उनके मुह से निदा के वचन निकल पडे। कठोर हृदयवाले और पढे-लिखे समालोचको के मापदड से हम भरत की परीक्षा न करे।

भरत अपने क्रोध को दबा न पाये। जोर-जोर से मा को सुनाने लगे, "तुम देश के लिए अहितकारिणी हो। तुम्हे राज्य से बाहर कर देना चाहिए। तुम भ्रष्ट आचरणवाली हो। मुझे तुम अपने कामो के लिए मृतवत् ही समझो। राजा को यमलोक भेज दिया और राम को दडकारण्य मे! अब तुम्हे कौन प्यार कर सकता है? तुम तो हत्यारी होगई। कुल का नाश कर डाला। तुम नरक मे ही जाओगी। मेरे प्यारे पिता जहा होगे, उस उत्तम स्थान पर तुम न जा सकोगी।

'तुम्हे देखकर ही मेरा शरीर काप उठता है। आज से तुम्हारा-मेरा सबध टूट गया। मेरे नाना राजा अश्वपति की तुम लडकी नही हो। तुम एक राक्षसी हो। सत्य एव धर्म के स्वरूप मेरे भाई राम को तुमने वन भेज दिया। उसी दु ख मे पिता मर गये। मेरे लिए इससे बुरा और क्या हो सकता है?"

भरत आगे कहने लगे, "राम कौशल्या का एकमात्र बेटा है। मा होकर भी तुम्हे उस पर दया नही आई। तुमने यह नही सोचा कि लडके को जगल मे जाते देखकर वह कैसी तडपेगी? लडका तो मा के शरीर का ही एक अश है। मा-बेटे के इस गहन सबध को जानते हुए भी कौशल्या के प्राणप्रिय पुत्र को तुमने कौन-से हृदय से घोर जगल मे भेज दिया? तुम्हारे लिए बडे-से-बडा दड भी कम ही होगा।

"सुनने मे आता है कि कामधेनु के करोडो पुत्र होने पर भी जब उसने अपने दो पुत्र—बैलो को हल मे जोते और एक दुष्ट किसान द्वारा सताये जाते देखा तो वह रो पडी। उसकी आखो के आसू देवेंद्र के शरीर पर गिर

पडे । उसकी सुगध से ही देवेंद्र समझ गये कि ये आसू सुरभि कामधेनु के होने चाहिए। इद्र को भी बहुत दु ख हुआ। करोडो पुत्रवाली सुरभि को जब अपने दो पुत्रो के दु ख से इतना कष्ट हुआ तो एक ही सतानवाली कौशल्या का क्या हाल होता होगा ?

"तुमने सोचा होगा कि मुझे राजा बनाकर मै और तुम दोनो आराम से दिन बिताएगे ? पर यह कभी न होगा। तुम्हारे राक्षस-स्वभाव को धिक्कार है ! तुम्हे सुख के बदले दु ख-ही-दु ख भोगना पडेगा। पिता की क्रियाए करना मेरा पहला काम है। उसके बाद दडकारण्य जाऊगा। राम के चरणो मे मस्तक रखकर यह राज्य उनको सौप दूगा। फिर तुमने मेरे लिए जो पाप का सचय कर रखा है उसे मिटाने के लिए वनवास मैं स्वय करूगा।

"तुमने जो अपराध किया वह बहुत ही भयकर है। उसके लिए कौन-सा प्रायश्चित्त हो सकता है ? अपने-आप गले मे तुम फासी क्यो नही लगा लेती ? या अग्नि मे कूदकर जल मरो न ! स्वय जीवनभर दडकारण्य मे रहने का निश्चय कर सकती हो ! कुछ भी हो, मै तो राम के पास जाने ही वाला हू। उन्हे वापस राज्य सौपकर ही मेरे मन को शाति मिलेगी।"

भरत ने क्रोध के आवेश मे आकर मा के प्रति बहुत बुरे वचन कह डाले। वह नये पकडे गये जगली हाथी की तरह दीर्घ निश्वास लेने लगे। उनकी लाल-लाल आखो मे आसुओ की धारा ऐसी लगती थी जैसे रक्त बह रहा हो। कबन कहते है, भरत बोले, "इस महल मे तुम्हारे पास अब मुझसे नही रहा जाता है। मै मा कौशल्या के पास जाऊगा। उनके चरण-कमलो को प्रणाम करके उनके पास अपना दु ख रोकर कुछ सात्वना पाऊंगा।"

कैकेयी का स्वप्न इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया। वह भूमि पर लोटकर जोर-जोर से रोने लगी।

० ० ०

रामायण के पात्रो मे भरत सर्वोत्तम है। रामायण का अति सुदर खड

चित्रकूट मे राम-भरत-मिलाप है। यह एक बडी महत्वपूर्ण घटना है। दुनिया मे चाहे कितना ही पाप चलता हो, एकाध ऐसे होते है, जिनसे धर्म की रक्षा होती रहती है। लोभ, छल, कपट आदि से पूरित इस दुनिया मे कुछ आदमी ऐसे भी होते है, जिनसे ससार मे परस्पर विश्वास, धैर्य और प्रेम का स्रोत भी प्रवाहित होता है, जिनसे लोगो को धर्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती रहती है। धर्म आखिर कभी नही मिट सकता।

: ३४ :

भरत का निश्चय

सारे अत पुर मे भरत के लौटने की खबर फैल गई। कौशल्या अपने पति तथा पुत्र-वियोग के शोक को भूल नही पाती थी। जब उन्होने सुना कि भरत लौट आया तो सुमित्रा से कहने लगी, "चलो, भरत से मिल आये।" सुमित्रा के साथ वह कैकेयी के महल जाने को निकल ही रही थी कि इतने मे भरत स्वय दु ख से पागल की-सी दशा मे माता कौशल्या के पास दौडते आते दिखाई दिये।

कौशल्या ने सोचा कि राजा हो जाने की उत्सुकता मे भरत इतनी जल्दी आ पहुचा है, नही तो कैकय राज्य तो यहा से बहुत दूर है, लेकिन उन्होने भरत को गलत समझा। उन्हे पता था कि कुलगुरु और सचिवो ने ही यह निश्चय किया था कि भरत को बुलवाकर पहले सम्राट् की अतिम क्रियाए सपन्न की जाय, तत्पश्चात् भरत का राज्याभिषेक भी हो। इन कारणो से भरत को देखते ही कौशल्या का वियोग ताजा हो उठा। बोली, "भरत, यह लो राज्य-पदवी तुम्हारे लिए तैयार पडी है। अब तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। कैकेयी ने तुम्हारे लिए सब-कुछ करा दिया है। खूब आराम से राज्य-पालन करना। बाप के लिए तुम जो चिता जलाओगे, उसमे मै भी कूदकर जल मरूगी और अपने राजा के पास पहुच जाऊगी।"

कौशल्या के ये वचन सुनकर भरत एकदम नीचे गिर पडे। उन्होने मा के चरणो को पकड लिया। वह कुछ बोल न पाये।

"भरत, मुझे मेरे राम के पास छोड आओ। मुझे और कुछ नही चाहिए।" कौशल्या रुदन करने लगी।

भरत बेचारे दु ख से लगभग बेहोश-से थे। बोले, "मैने तो कुछ नही किया, मा! मुझ पर क्रोध मत करो। मुझे तो इस बात का तनिक भी आभास न था कि यहा कैसे-कैसे कुचक्र चलाये जा रहे है। भाई राम के प्रति मेरा प्रेम आपसे छिपा नही है। क्या आप मानती है कि मै इस कुचक्र मे शामिल था? यदि इसमे मेरा जरा भी हिस्सा हो तो मेरी सारी विद्या, ज्ञान, सब-कुछ नष्ट हो जाय और दुनिया के समस्त पापियो के कर्मफलो के दुष्परिणाम मुझे मिले। मै सच कहता हू, मा, कि इस षड्यत्र मे मेरा कोई हाथ नही था।"

भरत ने दोनो हाथ ऊपर करके शपथ लेते हुए कहा, "जो कुछ बुरा काड यहा हुआ, उसमे यदि मैने कोई भाग लिया हो तो मुझे उसके लिए बुरे-से-बुरा दण्ड मिले।" मनुष्यो से नाना प्रकार के अपराध हो सकते है, भरत ने उनका वर्णन किया और कहा कि यदि राम को वन भेजने मे उनका जरा भी हाथ रहा हो तो उन सब भयकर पापो का जो भी दण्ड नियत हो उसे भोगने के लिए वह तैयार है।

वास्तव मे कैकेयी ने अपने स्वार्थ के कारण जो चाल चली थी, उससे जो परिस्थिति बन गई थी, उसमे लोगो की निगाहो मे अपने को निरपराध साबित करना भरत के लिए कोई आसान बात न थी।

भरत का स्वच्छ मन कौशल्या के कठोर वचनो से बहुत दु खी हो गया। राजा की आज्ञा सुनकर रामचद्र को दु ख नही हुआ था, किंतु भरत इसके लिए तैयार न थे कि कोई उनसे कहे कि तूने राम को वन भिजवा दिया। कौशल्या ने जब यह आरोप उन पर लगाया तो भरत को असह्य चोट लगी। वह जोर-जोर-से रोने लगे। वह सोचने लगे, 'हमेशा प्यार करनेवाली

माता कौशल्या भी अब मुझ पर सदेह करने लगी। इससे बुरा मेरे लिए और क्या हो सकता है ?'

किंतु कौशल्या आवेश मे आकर ऐसा बोल पडी थी। उन्हे यह समझते देर न लगी कि वास्तव मे भरत कितने ऊचे हृदयवाले है। कौशल्या को अपने बर्ताव पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होने भरत के सिर को अपने हाथो मे उठाकर प्यार से गोद मे रख लिया और बोली, "बेटा, रो मत। तेरा दु ख मुझसे सहा नही जाता। प्यारे पुत्र, हम सब भाग्य के हाथ की कठ-पुतली है। लाचार है। मै तेरे सद्गुणो को जानती हू। तुझे इस लोक मे और परलोक मे दोनो जगह बहुत ऊचा स्थान मिले।"

भरत को उन्होने आश्वासन और आशीर्वाद दिया। शुरू मे भरत पर जो सदेह हुआ था, वह कौशल्या के मन से हट गया। भरत से मिलकर उन्हे कुछ शाति मिली। सोचने लगी कि राम के न होने पर भी भरत तो मेरे पास है। कबन के कहने के अनुसार उस समय कौशल्या ने यही समझा मानो राम ही उनके पास वापस आ गये। उतने ही प्यार से उन्होने भरत को हृदय से लगा लिया।

कौशल्या भरत मे बोली, "मेरे प्यारे भरत, तुम्हारे पूर्वज राजा कई हो चुके है। किंतु धर्म के सामने इतने बडे राज्य को तुच्छ समझनेवाला तेरे-जैसा पुरुष आज तक कोई नही हुआ। तू राजाओ का राजा है।" यो कहकर वह फूट-फूटकर रो पडी।

महारानी कौशल्या और भरत का कवि कबन ने अपने कल्पना-नेत्रो से खूब दर्शन किया। हम भारतवासियो के हृदय मे भी वे सदा वास करे, उनकी सस्कृति हमारे लिये अमर रहे।

उसके बाद मृत राजा की उत्तर-क्रियाए विधिवत् की गई। शोक-विह्वल भरत और शत्रुघ्न को वसिष्ठ आदि गुरुजन आश्वासन देते रहे।

दशरथ के निधन को चौदह दिवस हो गये। तब सभी अमात्यो ने एक सभा की और भरत को झुककर नमस्कार करके बोले, "हमारे प्रतिष्ठावान राजा इस दुनिया से चल दिये। राम-लक्ष्मण भी राज्य के बाहर है। अनाथ

देश को आप न सभालेगे तो कौन सभालेगा ? इसमे हम कोई अनुचित बात नही देखते, आप इन्कार न करे। अभिषेक के लिए सारी सामग्रिया तैयार रखी है। अन्य सभी प्रबध भी हो चुके है। नगर के प्रमुख तथा राजकुल के लोग राह देख रहे है कि आप कब गद्दी पर बैठेगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार करे और देश की रक्षा करे।"

भरत ने जब यह बात सुनी तो उन्होने सब सभा-सचिवो का अभिवादन किया और अभिषेक-सामग्रियो की ओर दृष्टिपात करके आदरपूर्वक उनको नमस्कार किया। फिर शात स्वर मे सभासदो को सबोधित करके कहने लगे, "ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार छुडवाकर मुझसे राज्य लेने का आग्रह करना हमारे कुलाचार के विरुद्ध बात है। आप सबका मगल हो। आप लोगो की माग ठीक नही। श्रीरामचद्र मेरे बडे भाई है। वह जहा कही भी होगे मै वहा जाऊगा और वही पर उनका अभिषेक कराकर सीता और लक्ष्मण-सहित उन्हे वापस अयोध्या ले आऊगा। यह मेरा दृढ सकल्प है। इस काम के लिए हमे बडी सख्या मे वन मे जाना होगा। आप उस सबकी तैयारी करे। जाते-जाते हम वन का मार्ग ठीक कराते जायगे। मजदूर लोग हमारे साथ जायगे। राज-परिवार के सभी लोग चलेगे। हमारी सेना भी साथ जायगी। हम श्रीराम को वापस ले आयगे। मैने प्रतिज्ञा की है कि मै राजा नही बनूगा। मेरा यह दृढ सकल्प आप लोग समझ लीजिये।"

भरत के वचनो से सभा मे सम्मिलित सभी लोगो को बडे उत्साह और आनद का अनुभव होने लगा। सब भरत का कहना मान गये। एक वृहत् परिवार और सेना के साथ राजकुमार भरत की वन-यात्रा की तैयारी होने लगी। श्रीराम से मिलने की, उन्हे वापस राज्य मे लाने की और उनके अभिषेक की सभावना की आशा से लोगो मे असाधारण उत्साह पैदा हो गया।

वन-प्रदेश को जाननेवाले, कुए, तालाब की खुदाई करनेवाले, नाव बनानेवाले बढई, यत्रो की जानकारी रखनेवाले, शीघ्रता से बडे-बडे पेडो को काटने, गिराने और मार्ग को सुगम बनाना जिन्हे आता है, ऐसे लोगो

का एक विशाल दल तैयार हो गया। वे लोग आगे-आगे चलकर मार्ग ठीक करते हुए राज-परिवार के लिए ठहरने आदि की व्यवस्था करते गये।

राजा राम को वापस लाने के उत्साह मे सारे कठिन-से-कठिन काम आश्चर्यजनक तेजी के साथ होने लगे। कही पुल बाँधे गये तो कही सडके बनाई गई। ऊची-नीची जमीन समतल की गई। जहा पानी जमा होकर मार्ग दुर्गम हो गया था वहा पानी वहाकर निकालनेवाले नाले खोदे गये। पीने के पानी तथा अन्य आवश्यकताओ के सभी प्रबध किये गये। भरत के आदेश से जब ये सब तैयारिया होती रही तब वसिष्ठ और मत्री लोगो ने फिर से एक सभा की। उसमे भरत को बुलाने के लिए भरत के महल मे वाद्य-घोष के साथ दूतो को भेजा गया। भरत ने जब देखा कि बाजे-गाजे के साथ उनके लिए बुलावा आया है तो वह बहुत ही दु खी हुए। बोले, "मैंने कह दिया है कि मै राजा नही हू, फिर यह सब आडबर क्यो किया जा रहा है? कृपा करके बाजे बद करे।" और फिर भाई शत्रुघ्न से बोले, "देखो तो शत्रुघ्न, मा कैकेयी ने यह क्या कर डाला? उनकी करतूतो से मुझे कितना कष्ट भोगना पड रहा है! पिता मर गये। देश अनाथ हो गया। वह अब बिना केवट की नाव के समान डगमगा गया है।"

उधर भरत के निर्मल हृदय से मुग्ध लोग प्रतिक्षण उनकी राह देख रहे थे कि कब वह सभा मे आये। जैसे ही वह वहा पहुचे, ऐसा लगा मानो रात्रि मे चद्र का उदय हुआ हो। सबको नमस्कार करके भरत अपने आसन पर बैठ गये।

वसिष्ठ आदि गुरु तथा विप्रजन भरत से फिर कहने लगे, "देखिये, आपके पिता और हमारे दिवगत महाराजा ने आपको यह राज्य सौपा था। श्रीरामचद्र ने प्रसन्नता से आपको राज्य दिया था। आप सकोच न करे। राज्य-भार उठाने के लिए तैयार हो जाय और लोगो की रक्षा करे।"

वसिष्ठ के मुह से यह सुनते ही भरत का मन राम के पास पहुच गया। राम की याद से उनकी आखो से आसू बहने लगे। उनका आवेग बढता गया। राजकुमार जोर-जोर से रोने लगे। अब कुलगुरु वसिष्ठ की बात

पर उन्हे गुस्सा-सा आया। वह बोले, "मै कुलीन ढग से बडा हुआ हू और पाला-पोसा गया हू । उच्चकुल के सस्कार मुझे मिले है। जो वस्तु मेरी नही है, उसकी लालसा मै कैसे करू ? आप लोगो के मुह से ऐसी बाते सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। महाराज दशरथ का पुत्र ऐसा नीच काम कैसे कर सकता है ? श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र है। यह राज्य उन्ही का है। श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र होने के अलावा बडे ही धर्मात्मा है और महाराज दिलीप और नहुष के तुल्य है। हर प्रकार से सिहासन के लिए वही योग्य है । आप लोग मुझसे ऐसा कार्य क्यो करवाना चाह रहे है, जो एक आर्य के लिए हीन है ? श्रीराम जिस दिशा मे है, उस दिशा मे हाथ जोडकर मै प्रणाम करता हू । वही राजा होने के योग्य है और वही राजा है । मैं नही ।"

भरत के उदार निर्मल हृदय से निकले इन वचनो को सुनकर लोगो के मन पिघल गये । उनके गुण की चारो ओर प्रशसा-ही-प्रशसा सुनाई देने लगी।

भरत ने आगे कहा, "यदि राजा राम मेरी बात नही मानेगे तो मै वन मे ही रह जाऊगा। वही तप करने लगूगा। अत आप बडे-बूढे लोगो का भी कर्तव्य है कि किसी भी उपाय से राम को वापस लाए। उनका राज्याभिषेक कराना चाहिए और यह काम आप लोगो के ऊपर ही निर्भर है ।"

इसके बाद भरत ने सुमत से कहा कि यात्रा के लिए जल्दी निकलने की तैयारी करे। सारे नगर मे फिर से आनद का स्वर सुनाई देने लगा । उन्हे ऐसा लगा, जैसे रामचद्र वापस आगये है। उनको पूरा विश्वास था कि भरत किसी-न-किसी प्रकार राम को वापस ले ही आयेगे ।

: ३५ :

गुह का संदेह

निषादराज गुह ने देखा कि गगा के सामनेवाले किनारे पर बहुत ही शोरगुल हो रहा है। उन्होने पता लगाया कि एक बडी भारी सेना ने वहा डेरा डाला हुआ है। अपने आदमियो से गुह ने पूछा, "यह किस देश के राजा की फौज होगी ? उसके यहा तक आने का क्या कारण हो सकता है ? झडा तो अयोध्या का दिखाई दे रहा है। मालूम होता है, कैकेयी का पुत्र भरत भारी सेना के साथ आया हुआ है। रथ के ऊपर अयोध्याधीशो का कोविदार ध्वज दिखाई दे रहा है। अयोध्या का राजा तो अब भरत हुआ है न ? राज्य उसे अनुचित युक्ति से प्राप्त हो गया। अब शायद वह रामचद्र को मारने के इरादे से आया है। हमारे हथियारबद सैनिक तथा सारा निषाद-कुल इकट्ठा हो जाय। अपनी तरफ के गगा-तट की रक्षा मे आप सब सावधान होकर खडे रहे। नावो मे सशस्त्र सैनिक युद्ध के लिए तैयार रहे। देखते है, भरत की क्या मशा है ? यदि उसके दिल मे राम के प्रति विरोध न हो तो हम उसको गगा पार करने मे सहायता करेगे, अन्यथा उसे और उसकी सेना को यही रोक दिया जायगा।"

यो कहकर तथा सारा प्रबध करके राजा गुह भरत के लिए भेट आदि लेकर एक नाव मे उनसे मिलने के लिए चल पडा।

उधर सुमत भरत से कहने लगे, "देखिये, सामने राजा गुह आ रहा है। वह रामचद्र पर अपार प्रेम रखता है। अपने परिजनो के साथ वह हमारा सत्कार करने आ रहा है। इस प्रदेश का वही अधिपति है। गुह और उसके आदमी यहा के वनो के कोने-कोने से परिचित है। वह हमे अवश्य ही बता सकेगा कि श्रीरामचद्र इस समय कहा पर है। इसके आदमी हमे आराम से श्रीराम के स्थान पर पहुचा भी देगे।"

इतने मे निषादराज उनके पास पहुच गये। उन्होने भरत को नमस्कार

किया और कहने लगे, "आप लोगो के यहा पधारने की मुझे कोई सूचना नही मिली । इसकी कोई चिंता नही। यहा जो कुछ है, सब आप अपना ही समझे । जो सेवा हो, बताये । मेरा अहोभाग्य है कि आपका तथा राज-परिवार का स्वागत करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ ।" इस प्रकार गुह ने भरत से आदर-सूचक वाक्य कहे ।

भरत बोले, "धन्यवाद, आपकी सद्भावना ही काफी है, और हमे क्या चाहिए ! मै अपने बडे भाई श्रीराम के पास पहुचना चाहता हू । भरद्वाज-आश्रम कहाँ पर है ? वहा पहुचने का मार्ग कौन-सा है ? हमे बताने की कृपा करे ।"

गुह ने हाथ जोडकर नमस्कार किया और कहा, "मै अपने आदमियो के साथ आपको श्रीराम के पास ले चलूगा। यह कौन-सी बडी बात है ! आपको या आपके परिवार को किसी भी प्रकार की असुविधा न होने दूगा। हा, एक बात है । क्षमा करे । मेरे मन की शका का निवारण कर दे तो अच्छा हो । हे राजकुमार, आप राम से मिलने आये है, यह ठीक है । किंतु इतनी भारी सेना को अपने साथ लाने का क्या उद्देश्य है, क्या यह मै जान सकता हू ?"

भरत गुह के इन शब्दो को सुनकर अपमान और लज्जा से विचलित हो उठे । बोले, "हाय, अब मुझे लोग कैसी-कैसी बाते सुनाते है । लोग मुझे श्रीराम का दुश्मन समझते है। सोचते है, मै उन्हे मारने जा रहा हू । इससे बुरी बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ? हे गुह, निश्चित रहो । पिता तो मेरे मर गये । अब मेरे पिता राम ही है । किसी भी उपाय से उन्हे मनाकर मैं अयोध्या वापस ले जाना चाहता हू । मेरा यहा आने का केवल यही उद्देश्य है । मेरी बात पर विश्वास करो ।"

भरत के चेहरे और बातो से गुह ने जान लिया कि उनका राम पर कितना अगाध प्रेम है । उनसे मिलकर गुह को बहुत ही आनद हुआ । बोला, "राजकुमार, आपके समान उत्तम और कौन हो सकता है ? अनायास प्राप्त हुई राज्यश्री को ठुकराने की हिम्मत और किसमे है ? इतना बडा त्याग आप ही कर सकते है । आपकी जय हो ।"

शाम हुई। बृहत् राज-परिवार के लिए खाने-पीने, सोने आदि का सारा प्रबध निषादराज ने किया। सब सोने लगे।

गुह से मिलने के बाद भरत का दु ख और भी बढ गया। अत्यत निर्मल स्वभाववाले भरत के मन मे रामचद्र के ही विचार आते रहे। उन्हे जरा भी नीद नही आई। पिता के मरने तथा भाई के राज्य से निकलकर वन मे जाने का दु ख उनके मन को जलती हुई आग की तरह तपाने लगा। भरत को बार-बार करवट लेते और लबी-लबी सासे छोडते हुए देखकर गुह ने उनको बहुत समझाया। दोनो राम के भक्त थे। 'राम कहा बैठे थे ? कहा सोये थे ? उन्होने क्या खाया ? क्या बोले थे ?' इस प्रकार भरत गुह से राम के विषय मे ही पूछते रहे। गुह भी भरत को अपने स्वामी की सभी बाते विस्तार और प्रेम से बताने लगे।

गगातट पर इन दोनो भक्तो के मिलने का और राम-चर्चा करने का वर्णन पढना सत-महात्मा लोगो को बहुत ही प्रिय लगता है।

सब-कुछ बताकर गुह ने भरत को वह स्थान भी बताया, जहा श्रीराम और सीता धरती पर सोये थे। यह देखकर लक्ष्मण रोने लग गये थे और सारी रात सो नही पाये थे। गुह ने कहा, "सारी रात लक्ष्मण ने धनुष-बाण लिये राम-सीता की रखवाली मे काटी।"

यह वर्णन सुनकर भरत भी रो पडे। अपनी माताओ को उन्होने वह स्थान दिखाया। कहने लगे, "यही पर, मेरे कारण से, भैया राम जमीन पर सोये थे। यहा की घास भी कुछ दबी दिखाई दे रही है।"

जब भरत ने गुह से पूछा कि उस दिन राम ने क्या खाया था, तो गुह ने कहा, "राम-सीता ने उस दिन व्रत किया था। मैने जो भोजन भेजा था, उसे उन्होने लौटा दिया था। लक्ष्मण के हाथ से थोडा पानी पिया था, बस। दूसरे दिन सुबह केशो की जटा बना ली और पैदल ही चल दिये।"

राम को किसी तरह भी वापस लाने के निश्चय से भरत अयोध्या से निकले थे। उस उत्साह मे वह दु ख को कुछ भूल-से गये थे। किंतु जगल मे गुह से वार्तालाप करने के बाद, राम के तापसी जीवन का हाल सुनकर,

फिर से उनमे उदासी आ गई । बोले, "मेरे कारण राम को कितना कष्ट सहना पडा ! हाय, मैं अभी तक क्यो जीवित हू ! मा को मुझे मुकुट पहनाने की बात क्या सूझी !

"मैं तो जैसे भी हो, श्रीराम को वापस लाकर सिहासन पर बिठाऊगा । आवश्यकता हुई तो चौदह वर्ष का वनवास का व्रत उनकी जगह मैं पूरा करूगा । इससे व्रत भी भग न होगा । राम इसका विरोध कैसे कर सकेगे ? उन्हे मेरी बात माननी ही पडेगी ।"

सुबह होने लगी । भरत उठ गये और शत्रुघ्न को जगाकर बोले, "भाई, उठो ! अभी तक कैसे सो रहे हो ? हम सबको जल्दी से नदी पार करनी है । गुह से कहो कि इसके लिए प्रबध कर दे ।"

शत्रुघ्न बोले, "भाई, मैं सो नही रहा । जागा हुआ ही हू । सारी रात मुझे भी श्रीराम के ही विचार आते रहे है ।"

इतने मे गुह स्वय वहा पहुच गये । पूछने लगे, "रात को आप लोगो को नीद ठीक आई कि नही ? आशा करता हू कि आप सबकी थकावट कुछ दूर हुई होगी । आपके परिवार के सब लोग कैसे है ? मैं अभी जाकर गंगा पार करने का प्रबध किये देता हू ।"

गुह की व्यवस्था सचमुच कमाल की थी । छोटी-बडी कई नावे तैयार हो गई । सारी सेना, सारे सामान के साथ, नावो मे चढकर गगा पार चली । भरत, राजमाताए और वसिष्ठ आदि गुरुजन दूसरी नावो मे बैठे । एक बहुत बडे मेले के समान वहा खूब शोर मच रहा था । लोगो मे अब नया उत्साह भरा हुआ था । भरत का दृढ निश्चय था कि श्रीरामचंद्र को वापस लाना ही है । इसलिए राम-वियोग और राजा के निधन का दु ख लोग कुछ भूल-से गये थे । एक भरत का हृदय अब भी व्याकुल था ।

वाल्मीकि-रामायण मे भरत और अयोध्या के जन-समुदाय के गगा पार होने के वर्णन से मालूम होता है कि उस दिन वहा ऐसी हलचल मच रही थी, जिस प्रकार कि आजकल किसी महत्त्वपूर्ण उत्सव पर रेल के प्लेटफार्म पर हुआ करती है । जब सारी सेना गगा-पार हो गई तब भरत

एक अलग नाव मे बैठे। सबने गगा नदी को पार किया और भरद्वाज मुनि के आश्रम मे पहुचे।

० ० ०

रामायण की कथा मे भरत का चरित्र ही हमारे उद्धार के लिए पर्याप्त है। लोग रामावतार की वास्तविकता पर विश्वास करे या न करे, भले ही रामचरित को ऋषि की कल्पना समझे, किंतु रामायण के सृष्टि-कर्त्ता ऋषि वाल्मीकि मदिर मे रखकर पूजने के योग्य है, इसमे कोई सदेह नही। भरत-जैसे पात्र की सृष्टि करने के लिए कितना ज्ञान, कितनी भक्ति और कितना वैराग्य चाहिए। हमे क्यो भरत-चरित्र को पढकर इतना आनद होता है? उसका यही कारण हो सकता है कि हम सभी के अत करणो मे ज्ञान और भक्ति का भाव किसी कोने मे अवश्य है, यद्यपि हमे उसका पता नही। अन्यथा हम पशुओ से भिन्न नही होते। शरीर-बल मे हमसे भी कही अधिक पशुओ के शिकार होकर हम सब कभी के मिट गये होते।

: ३६ :

भरद्वाज-आश्रम में भरत

भरत और उनके साथी भरद्वाज मुनि के आश्रम को जाते हुए प्रयाग-वन पहुचे। वहा से कुछ दूर उन्हे एक मनोरम उपवन दिखाई दिया। उसके बीच एक पर्णशाला दीख पडी। भरत ने अनुमान लगाया कि वही भरद्वाज मुनि की कुटी होगी। अपने परिजनो और सेना को आश्रम के बाहर ही छोड भरत ने वसिष्ठादि विशिष्ट जनो के साथ आश्रम मे नम्रतापूर्वक प्रवेश किया। उन्होने अपने धनुष, बाण और खड्ग आदि उतार दिये और पैदल ही आश्रम मे प्रविष्ट हुए। वहा भी अपने अन्य सचिवो को रोककर वह केवल वसिष्ठ ऋषि के साथ कुटिया की ओर

चले। वसिष्ठ ऋषि को देखते ही भरद्वाज मुनि अपने आसन से उठे। शिष्यो द्वारा जल मगाकर उन्होने वसिष्ठजी का स्वागत किया। भरत ने ऋषि को प्रणाम किया। वह समझ गये कि यह राजकुमार भरत है। उन्होने एक राजकुमार के योग्य उनका आदर-सत्कार किया, कुशल-प्रश्न पूछे। दशरथ के निधन की बात वह सुन चुके थे। इसलिए उस बारे मे विशेष कुछ नही पूछा।

० ० ०

'दशरथ-नदन श्रीराम' वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा जा रहा है। वाल्मीकि के कथनानुसार भरद्वाज मुनि भी भरत के वहा आने के उद्देश्य पर सदेह करते है। उस सदेह-निवारण के लिए भरत से कुछ प्रश्न पूछते है।

तुलसी-रामायण मे इस प्रकार का कोई उल्लेख देखने मे नही आता, गोसाई तुलसीदासजी की रामायण मे तो आदि से अत तक भक्ति-ही-भक्ति है। गोसाईजी ने यही माना होगा कि ऋषि लोग सर्वज्ञ होते है। वे क्यो भरत पर शक करने लगे?

पर तमिल कवि कबन ने सर्वत्र वाल्मीकि का ही अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। एकाध जगह उन्होने भी कुछ थोडा-सा परिवर्तन किया है, वह भी बहुत कम। इसका कारण यह मालूम होता है कि वह टीका करनेवालो को कम-से-कम मौका देना चाहते थे।

सत तुलसीदास की बात दूसरी है। श्रीरामचद्र के ऊपर उनकी अनुपम भक्ति है। राम तो उनके अपने ही थे। उन्हे पूरा अधिकार था कि वह रामायण मे जहा चाहे, वहा परिवर्तन कर दे।

जो हो, हमे भी यह बात नही जचती कि भरद्वाज मुनि भरत पर अविश्वास करने लगें। गुह राजा की बात अलग थी। रामायण मे इसका यही समाधान मिलता है कि बाद मे भरद्वाज मुनि कहते है, "वत्स, तुम्हारे गुणो को मै खूब पहचानता हू। तुम्हारे उद्देश्य की पवित्रता को सिद्ध

करने और लोगो की तुम्हारे ऊपर श्रद्धा बढाने के लिए ही मैंने तुमसे ये प्रश्न किये थे।"

हमारे युग मे ऋषियो के प्रति भावना मे और वाल्मीकि के जमाने की भावना मे भी अतर था। विष्णु के अवतार होने पर भी वाल्मीकि ने श्रीरामचद्र को सामान्य मनुष्य के रूप मे ही चित्रित किया है। उसी दृष्टि से राम के ऊपर प्रेम के कारण 'राघवस्नेह बधनात्' भरद्वाज के मन मे सदेह होता है। पर उस पर भरतजी की प्रतिक्रिया देखते है तो उन्हे भरत की सच्चाई समझ मे आ जाती है और तब वह समाधान के शब्द कहते हैं। वाल्मीकि-रामायण के सभी पात्र अपूर्व गुणसपन्न है, किंतु है मनुष्य। उनका तेज प्रात काल के सूर्य के समान बहुत तीव्र नही होता। उनमे मनुष्य-स्वभाव भी ठीक मात्रा मे पाया जाता है। लेकिन तुलसी-रामायण के पात्रो का तेज मध्याह्न के सूर्य की तरह प्रखर होता है और खूब चमकता है।

० ० ०

भरद्वाज ने भरत से यथोचित कुशल-क्षेम पूछा और बोले, "हे भरत, अपना राजकाज छोडकर तुम्हारा यहा आना कैसे हुआ? तुम्हारी जिम्मेदारी तो अयोध्या मे रहने से पूरी हो सकती है? तुम्हारा उद्देश्य क्या है? तरुण पत्नी के कहने मे आकर दशरथ ने राम को वनवास दे ही दिया। अब राम से तुम्हे कोई अडचन नही हो सकती। अपने राज्य को एकदम निष्कटक बनाने के उद्देश्य से निकल पडे हो क्या?"

भरद्वाज मुनि के इन शब्दो को सुनकर भरत की आखो से आसुओ की धारा बह निकली। उनके मुह से शब्द न निकल सके।

"मेरा सर्वनाश हो गया!" भरत बोले, "आप भी मुझ पर शक करने लगे! भगवन्, ऐसा न करे। मुझ पर दया करे। मेरी सम्मति या जानकारी के बिना मेरी मा ने जो कुछ किया, उसके लिए मैं लाचार हू। उसमे मेरा कोई दोष नही। मेरा एकमात्र उद्देश्य श्रीराम को अयोध्या वापस ले जाकर, उन्हे राजा बनाना और जीवनभर उनका सेवक बने रहना है। मै तो आपसे यह जानने के लिए आया हू कि मेरे भाई श्रीराम इस

समय कहा पर है ? आप मुझे बुरा न समझे।" कहते-कहते भरत फूट-फूटकर रोने लगे।

भरत की दीन दशा से द्रवित होकर भरद्वाज बोले, "हे भरत, मै तुम्हारे अत करण को खूब पहचानता हू। रघुवश मे पैदा होकर तुम उससे पृथक् कैसे हो सकते हो ? राम पर तुम्हारी भक्ति अटल रहे। तुम्हारी कीर्ति की वृद्धि होती रहे। अब तुम शोक छोड दो। दशरथ-नदन श्रीराम चित्रकूट मे रह रहे है। आज रात तुम अपने परिवार के साथ मेरे आश्रम मे ठहर जाओ। कल सुबह अपने मत्रियो के साथ चित्रकूट जाना। तुम्हारे यहा ठहरने से मुझे बडा ही आनद होगा।"

"स्वामिन्, आपसे मैने अर्घ्यपाद्य तो पा ही लिया। क्या यह काफी नही है ? मुझे तो उसी मे बडा सतोष हो गया।" भरत ने उत्तर दिया।

भरद्वाज मुनि समझ गये कि भरत उन्हे और उनके शिष्यो को कष्ट नही देना चाहते। मुसकराकर वह राजकुमार से बोले, "नही-नही, तुम रामभक्त हो। राजा दशरथ के पुत्र हो। मेरा धर्म है कि तुम्हारा यथोचित सत्कार करू। तुम अपने परिजनो को बाहर ही खडा क्यो कर आये हो ? उन्हे अदर बुला लो।"

"ऋषि के आश्रम मे शोर करना-कराना उचित नही। इसलिए मैने उन्हे बाहर ही रोक दिया। मेरे साथ बहुत ज्यादा लोग है। उनके अदर आने और रहने आदि से आपको कष्ट होगा।" भरत ने नम्रता के साथ कहा।

लेकिन भरद्वाज मुनि ने नही माना। उन्होने कहा कि सब-के-सब अदर आ जाय। मुनि की बात भला भरत कैसे टालते ! सबको अदर बुला लिया।

हवनशाला मे भरद्वाज गये। उन्होने तीन बार मत्रोच्चार किया और आचमन करके देवासुर शिल्पी विश्वकर्मा और मय का आह्वान किया। यम, वरुण, कुबेर, अग्नि आदि देवताओ को भी बुलाकर उन्होने कहा, "देखिये, मै भरत और उसके परिजनो का स्वागत करना चाहता हू। इनकी सख्या बहुत बडी है। भोजनशाला का निर्माण और सभी प्रबध तुरत हो जाय। सबके ठहरने, सोने और विश्राम करने की व्यवस्था भी

करा दीजिये। मैं भरत का अतिथि-सत्कार, आप सबकी मदद से, किसी तरह की त्रुटि के बिना, सपन्न करना चाहता हू।"

बहुत पहले विश्वामित्र के लिए ऋषि वसिष्ठ ने जो चमत्कार करके दिखाया था, वही इस समय भी हुआ। किंतु तब दोनो मुनियो के बीच भयकर युद्ध छिड गया था। इस बार वैसा कुछ नही हुआ। राज-परिवार के लिए सुदर भवन तैयार हो गये। गधमाल्यादि मौजूद थे। खाने-पीने की इतनी वस्तुए इकट्ठी हो गई थी कि उनका वर्णन करना कठिन है। कही अप्सराए नृत्य करती थी तो कही गधर्व गान करते थे। उस दैवी ढग के प्रबध की कल्पना करना भी मुश्किल है। भरत के सैनिक खा-पीकर ऐसे मस्त हुए कि वे अब दण्डकारण्य भी जाना नही चाहते थे। न अयोध्या लौटने के लिए ही उनका मन होता था। वे सोचने लगे कि उन्हे भरद्वाज-आश्रम मे ही रोज-रोज ऐसा आनद प्राप्त करने का अलभ्य लाभ मिलता रहेगा। उन्हे इस बात का पता न था कि भरद्वाज मुनि ने यह सब तो अपने तपोबल से केवल एक दिन के लिए ही सुलभ किया था, और प्रात होते ही सब लोप हो जायगा।

सुबह हुई। सबने देखा कि रात की बात सपना हो गई थी।

: ३७ :

राम की पर्णकुटी

दूसरे दिन सवेरे भरद्वाज मुनि ने भरत को बताया, "यहा से कोई ढाई कोस पर मदाकिनी नदी बहती है। उसके दूसरे तट पर एक बहुत ही घना निर्जन वन है। उस वन की दक्षिण दिशा मे चित्रकूट पर्वत है। उसकी तराई मे राम लक्ष्मण ने अपने लिए पर्णशाला बनाई है। उसमे ही सीता, राम और लक्ष्मण का वास है।"

राजा दशरथ की तीनो रानियो ने भरद्वाज ऋषि की प्रदक्षिणा करके

नमस्कार किया। तब मुनि ने भरत से कहा, "आप लोगो का परिचय तो कराये।" भरत ने हरेक का नाम बताकर परिचय दिया। बोले—

"यह जो दु खी, उपवास करते रहने से बहुत ही कृश-शरीर हो गई है, मेरे पिता की पटरानी कौशल्यादेवी है। भैया राम की जननी होने से देवेंद्र की मा अदिति के समान है। इनको सहारा देकर दायी ओर मुरझाई पुष्पलता के समान शोकमुद्रा मे जो खडी है, वे है महाराज दशरथ की द्वितीय भार्या सुमित्रादेवी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्ही के सुपुत्र है। यह खडी है, मेरी मा कैकेयी, जो हमारे सारे दु खो की जड है। आर्य स्त्री के आवरण मे छिपी अनार्या!" यो भरत ने कठोर वचनो से अपनी मा का परिचय दिया।

कैकेयी ने भी लज्जित मुख से, जैसे अन्य दोनो रानियो ने किया था, उसी प्रकार ऋषि की प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया।

भरद्वाज मुनि ने भरत को समझाया कि मा के प्रति कटुवचन बोलना अनुचित है। जो कुछ हुआ है, वह ससार के कल्याण के लिए हुआ है।

० ० ०

भरत ने माताओ का जैसा परिचय दिया, उसका सुदर वर्णन कबन ने भी दिया है, किंतु कबन ने उसका स्थान बदल दिया है। भरद्वाज-आश्रम के बदले वह इस घटना को भरत जहा निषादराज से मिले, वहा ले गये है।

० ० ०

भरत अपनी सेना तथा परिजनो के साथ भरद्वाज मुनि द्वारा बताये गये मार्ग से चित्रकूट की ओर जाने लगे। जब चित्रकूट पर्वत दिखाई देने लगा तो सब उत्साह के साथ आगे बढे। पर्वत की तराई मे श्रीराम की पर्णशाला को खोज निकालने के लिए उन्होने दृष्टि दौडाई। पर्वत के नीचे के भाग मे उन्होने एक स्थान पर कुछ धुआ उठता देखा। उस निर्जन स्थान मे वह राम के आश्रम के सिवा और क्या हो सकता है? सब एक स्वर मे चिल्ला उठे, "देखो, वह रहा श्रीराम का आश्रम!"

भरत ने साथ के समस्त लोगो को वही रोक दिया। केवल सुमत और

वसिष्ठ को अपने साथ लेकर जिधर धुआ दिखाई दे रहा था, उस ओर धडकते दिल से चलने लगे।

बिगडी हुई को बनाने का दृढ सकल्प करके इधर भरत राम के पास जा रहे थे, उधर चित्रकूट मे राम अपनी प्रिया सीता से कह रहे थे—

"सीते, उन पक्षियो की ओर देखो। कैसे मगन होकर क्रीडा कर रहे है! उस चट्टान को तो देखो! धातुओ के मिश्रण से उसका रग किस प्रकार नीला, पीला और लाल चमक रहा है! ये कैसी सुदर वन-लताए है! ऐसे फूलो को तुमने कभी देखा है? हमने सोचा था कि वनवास बहुत कठिन होगा। यहा तो हम उलटे आनद का अनुभव कर रहे है। साथ ही पिता के वचन पालन करने का अनुपम सतोष भी हमे है। मुझे यह सोचकर तो और भी खुशी हो रही है कि भाई भरत राजा होने जा रहा है।"

सीता और लक्ष्मण के साथ राम सुखपूर्वक वनवास कर रहे थे। प्राकृतिक शोभा ने उनका मन मोह लिया था। वह मदाकिनी के तट पर जाते, उसमे नहाते और नदी के सौदर्य का आनद लेते हुए सीता से कहते, "प्रिये, कैसी मुलायम रेती है! हस और सारस कैसे आनद से कल्लोल कर रहे है! कमल कैसे खिल रहे है! मालूम होता है कि नदी तुम्हारे सौदर्य से प्रतिस्पर्धा कर रही है! कैसा अद्भुत नदी-तट है! जहा पशु पानी पीते है, वहा का जल लाल हो रहा है। क्या कुबेर का सौगधिक सागर इसकी बराबरी कर सकता है? वह देखो, ऋषि-मुनि स्नान करके सूर्य भगवान् की उपासना कर रहे है। पेडो से झडकर फूल पानी मे गिर रहे है। मोतियो जैसा फेन उछालती हुई मदाकिनी दौडती आ रही है। इन वस्तुओ के सामने नगर मे रहना किनना फीका लगता है! हम सचमुच भाग्यशाली है! ऋषि, मुनि एव सिद्ध-पुरुषो के स्नान-जप आदि का दर्शन नगर मे भला किसको मिल सकता है? इसी पर्वत को हम अयोध्या और इन विहगो को ही अयोध्या की प्रजा समझेगे। मदाकिनी को सरयू मान लेगे। लक्ष्मण और तुम मेरे साथ हो। मुझे और कुछ नही चाहिए। जब जानवर अपनी प्यास बुझाने के लिए यहा आते है, और एक-दूमरे से निर्भीक होकर पानी पीने है, तो उन्हे

देखकर मुझे बडा ही आनद आता है। तुम्हारे साथ कदमूल खाकर जगल मे घूमते हुए जो खुशी होती है, वह मुझे राजपद पाने या अयोध्या मे रहने से नही मिल सकती।"

इस प्रकार श्रीरामचद्र का चित्रकूट मे बहुत ही अच्छी तरह समय व्यतीत हो रहा था।

एक दिन तीनो जने पेड के नीचे बैठकर आनद से बाते कर रहे थे। एकाएक उन्होने देखा कि आसमान मे बडी धूल उडने लगी है। समुद्र की लहर की तरह आवाजे आने लगी। भरत की बडी भारी सेना के घुसते ही जगली जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। जब राम ने यह हल-चल देखी तो लक्ष्मण से कहने लगे, "भाई, सुनो! कही कोई भारी शोर हो रहा है। हाथी और जगली भैसे डर के मारे इधर-उधर भाग रहे है। देखना, क्या बात है? हो सकता है कि कोई राजा शिकार खेलने आया हो या सिह, व्याघ्र-जैसे घातक जानवर का आक्रमण हुआ हो। देखकर मुझे बताओ, क्या बात है?"

लक्ष्मण ने एक ऊचे वृक्ष पर चढकर देखा। उत्तर दिशा मे एक बडी भारी चतुरग सेना चली आ रही थी। पेड के ऊपर से ही उन्होने राम को चेतावनी दी, "भैया, एक भारी सेना ध्वजा फहराती हुई, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले सैनिको के साथ हमारी तरफ चली आ रही है। सावधान हो जाइये। एकदम आग बुझा दीजिये और सीताजी को गुफा मे छिपा दीजिये। हम दोनो कवच पहनकर धनुष और बाण लेकर आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार हो जाय।"

पर श्रीराम इस समाचार से घबराये नही। बोले, "देखो तो सही, रथ के ऊपर किस देश के राजा का ध्वज है?"

लक्ष्मण ने ध्यान से देखा। देखा क्या, देखते ही क्रोध के मारे उनका चेहरा एकदम लाल हो गया। वह आवेश मे बोले—

"भैया, भरत को राज्य पाने से ही सतोष नही हुआ। अब वह हमे मार डालने को निकल पडा है। भरत का ही रथ है। रथ के ऊपर हमारा कोवि-

दार ध्वज फहरा रहा है। आज मेरे हाथ मे कैकेयी का लडका अच्छी तरह आ गया है। उसे मै जिदा न छोडूगा। अधर्मी को मार डालने मे मै कोई पाप नही देखता। बताइये, उस सेना का मुकाबला यही से करे, या पहाड के ऊपर से ? आज मै भरत को मारकर कैकेयी की नीच आशाओ को मिट्टी मे मिला दूगा। इस वन मे खून की नदी बहनेवाली है। हाथी से धकेलकर गिराये जाने पर जैसे एक पेड गिर पडता है, वैसे ही भरत मेरे हाथ से मरकर गिरनेवाला है। मै इस सेना को भी निर्मूल कर दूगा। इस वन के मृत मास खानेवाले जानवर आज तृप्त होगे।"

क्रोध से उन्मत्त लक्ष्मण यो अपने को भूलकर न जाने क्या-क्या कहे जा रहे थे।

: ३८ :

भरत-मिलाप

लक्ष्मण के उत्तेजित वचन सुनकर श्रीराम शातिपूर्वक बोले, "तुम बडे शक्तिशाली और पराक्रमी हो। भरत की सेना तुम्हारे लिए कुछ भी नही। किंतु मेरी एक बात सुनो और उस पर विचार करो। क्रोध के कारण तुम्हे गलत बाते सूझ रही है।"

श्रीराम ने कहा, "मान लो कि भरत हमसे लडने आ रहा है, तब भी मेरे धनुष-बाण उठाने का कोई कारण नही। पिता को दिए गये वचन को भग करके, सगे भाई को मारकर, राज्य लेने से क्या राज्य मिलनेवाला है ? बधु बाधवो को मारकर प्राप्त की हुई लक्ष्मी विष मिले हुए अन्न की तरह होती है। जिनके लिए हम धन अथवा राज्य-लाभ करना चाहते है, उन्ही को हम मार डाले तो हमे खुशी किस चीज की रहेगी ? अधर्म-मार्ग से हमे कुछ नही चाहिए। यदि मेरे सुख मे तुम और भरत-शत्रुघ्न भाग न ले सके, तो वैसा सुख मुझे कदापि नही चाहिए।"

लक्ष्मण को समझाते हुए उन्होने कहा, "मेरी बात सुनो। मै अच्छी तरह समझता हू कि भरत यहा किस उद्देश्य से आ रहा है। तुमने कभी उसको हम मे से किसी को कष्ट देते हुए देखा है? निश्चय ही वह मुझे राज्य वापस देने आ रहा है। इसमे कोई सदेह नही कि भरत ने महाराज को किसी तरह मना लिया है और माता कैकेयी को डाट-डपटकर और शात करके मुझे वापस ले जाने को ही आ रहा है। भरत को मै अच्छी तरह जानता हू। भरत के विरुद्ध जो कुछ तुमने कहा, वह धर्म-विरुद्ध और अन्यायपूर्ण है। राज्य की तृष्णा तुम्हे है क्या? जरा भी मन मे हो तो मुझे बता देना। यहा आते ही मै भरत से कह दूगा कि लक्ष्मण राजा बनना चाहता है, उसे अपना राज्य दो। भरत मेरी बात सुनकर उसी क्षण तुम्हे राज्य दे देगा। इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नही।"

यो कहकर श्रीरामचद्र मुसकराये। लक्ष्मण श्रीराम के इन वचनो को सुनकर लज्जा से झुक गये।

"सभव है कि पिता महाराज दशरथ स्वय हमसे मिलने आ रहे हो।" लक्ष्मण ने कहा।

पहले असाधारण शोरगुल और सेना को देखकर लक्ष्मण ने सोचा था कि भरत आक्रमण करने आ रहे है, लेकिन रामचद्र की बातो से वह विचारने लगे कि महाराज दशरथ का यहा आना भी तो सभव है। राजा अपने परिवार और पूरी फौज के साथ श्रीराम को लेने निकल पडे हो, यह भी स्वाभाविक ही है।

लक्ष्मण लजा गये थे। उन्हे अपने आवेश पर पश्चात्ताप हो रहा था। प्रारभ मे उन्होने जो कुछ सोचा और कहा था उससे अब उनके विचार भिन्न थे।

राम भी लक्ष्मण की मनोदशा समझ गये। बोले, "तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है। हम किस तरह रह रहे है, यह देखने और कम-से-कम जानकी को वापस ले जाने के विचार से ही शायद महाराज आ रहे हो। किंतु देखो तो, महाराज का श्वेत छत्र ऊपर नजर आ रहा है क्या? पिताजी अगर

आ रहे होगे तो उनका छत्र जरूर होगा।"

लक्ष्मण जहा पर राम बैठे थे, वहा पर हाथ जोडे खडे थे।

° ° °

सेना को कुछ दूरी पर रोककर, जहा से धुआ निकल रहा था, वह जगह ठीक से देख आने के लिए, भरत ने कुछ आदमियो को भेजा। कुछ देर बाद वे लौटे। उनकी बातो से भरत को पता चल गया कि जहा से धुआ आ रहा था, वही श्रीराम की पर्णकुटी है। वह उसी ओर बढने लगे। चलते-चलते उनके मन मे तरह-तरह के विचार आने लगे। सोचने लगे—'श्रीराम से मिलते ही मै इस प्रकार प्रणाम करूगा, यो बोलूगा।' किंतु जैसे ही उन्होने राम को घास पर बैठे देखा, सारी बाते भूल गये और दौडकर उनके पास जा पहुचे।

एक शब्द भी उनके मुह से नही निकला। उनकी आखो से केवल आसुओ की धारा ही बह निकली। "भैया!" कहकर वह एकदम श्रीराम के चरणो मे गिर पडे और फूट-फूटकर रोने लगे।

श्रीराम ने देखा कि भरत शोक और उपवास के कारण एकदम दुर्बल हो गये है। उन्होने शरीर पर मूल्यवान वस्त्रो की जगह वल्कल पहन रखे है। उन्हे पहचानना भी कठिन हो रहा था। भरत को दोनो हाथो से उठाकर रामचद्र ने एकदम छाती से लगा लिया, प्यार किया, बाहो मे भर लिया और बोले, "प्यारे भाई, पिताजी को अकेले छोडकर तुम यहा इतनी दूर कैसे आ गये? ऐसे दुर्बल क्यो हो रहे हो?"

भरत के मुह से एक शब्द भी न निकल पाया। राम ने धीरे-धीरे उनसे राज्य के बारे मे राजाओ की परपरा के अनुसार कुशल-प्रश्न किये। राज्य-पालन-कार्य का वर्णन करके पूछा कि सब नियमो का पालन हो रहा है न? भरत ने कोई उत्तर नही दिया। कुछ देर बाद शात होकर वह बोले, "राजा के धर्मो से मेरा क्या वास्ता? सिहासन पर बैठकर राज्य-धर्म का पालन करना तो भैया, तुम्हारा ही कर्तव्य है। मुझे तुम्हारी चाकरी के अतिरिक्त और कुछ नही चाहिए। हमारे कुल की तथा अन्य राजकुलो की यही

परपरा रही है कि पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बनता है। मेरे साथ तुम अयोध्या वापस चलो और राजमुकुट धारण करके अपने कुल को और प्रजा को सुखी बनाओ। पिताजी तो इस ससार मे अपने कर्तव्यो को पूरा करके स्वर्ग को सिधार गये। मै तो कैकय देश मे ही था। तुम्हारे वियोग का आघात पिताजी से नही सहा गया। तुम दुखी न हो और पिताजी की आत्मा के लिए जो तर्पण-सस्कार आदि करना है, वह करना चाहिए। मैने और शत्रुघ्न ने तो कर लिया है। आखिरी दम तक पिताजी तुम्हारी ही याद करते रहे। तुम्हारे हाथ के दिये हुए तिल और जल से उन्हे शाति मिलेगी।"

भरत को पहले कौशल्यादेवी को, फिर गुह और बाद मे भरद्वाज मुनि को समझाना पडा था कि वह निर्दोष है। कहना पडा था कि जो कुछ हो गया, उसमे उसका कोई हाथ न था। किंतु राम से मिलने पर भरत को उनका ऐसा समाधान करने-कराने की कोई आवश्यकता ही नही हुई। श्रीराम ने तो भरत के चितातुर मुख को देखा, उनके शरीर को देखा और सब समझ लिया। भरत के हृदय को तो श्रीराम जानते ही थे। भरत भी श्रीराम को अयोध्या ले जाने का कहने के अलावा अपने बारे मे कुछ भी न बोले।

पिता की मृत्यु की खबर सुनते ही राम धडाम-से नीचे गिर पडे। कबन का वर्णन है कि राम यो प्रलाप करने लगे—

"आप तो सारी प्रजा के पिता थे। आपकी प्राण-ज्योति कैसे बुझी? दया और धर्म के स्वरूप, हे मेरे पिता! राजाओ के राजा! आप कैसे स्वर्ग-वासी हुए? अब सत्य का स्थान कहा रहेगा?"

दोनो राजकुमारो, सीता और सुमत सबने नदी मे जाकर स्नान किया। पिता का ध्यान करके हाथ मे जल भरकर तर्पण-क्रिया की। बाद मे पर्ण-शाला लौटे। पिता की याद करके सभी पुत्र एक-दूसरे के हाथ पकडकर खूब रोये। उससे उनका मन कुछ हल्का हुआ।

० ० ०

यहा पर एक विषय का उल्लेख करना आवश्यक है। वाल्मीकि के अनुसार जब भरत राम से मिले, तब राम ने भरत को राजधर्म का एक

लबा उपदेश दिया। हमारे ऐतिहासिक और पौराणिक ग्रथो मे नीति और धर्मोपदेश के ऐसे प्रसग बार-बार आते है। आधुनिक लेखक कहानियो के लिए तीव्र गति और उत्तेजना आदि को आवश्यक समझते है। पुराने ग्रथो मे भी ये बाते पाई जाती है। किंतु साथ ही लोगो के शील को बढानेवाली बाते उनमे बडी उदारता के साथ जोडी जाती है। पुराने ही टीकाकार कहते है कि इस जगह पर वाल्मीकि-रामायण मे अध्याय कुछ आगे-पीछे हो गये है।

इस राम-भरत के मिलाप का वर्णन वाल्मीकि-रामायण मे जैसा है, उससे अधिक स्वाभाविक रूप से कबन की रामायण मे दिया गया है। आधुनिक मन पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पडता है। तुलसी-रामायण मे तो इस अवसर पर भक्ति की लहरो का ही दर्शन मिलता है। वर्षाकाल की सरिता की तरह वह भक्तिरस से भरपूर है। उलझनो के लिए वहा स्थान है ही नही।

: ३९ :

भरत का अयोध्या लौटना

चारो राजकुमार और तीनो माताए फिर से इकट्ठे हो गये। यह मालूम होते ही उन्हे एक साथ देखने के लिए सभी लोग, जो अब तक आदरपूर्वक बाहर खडे थे, पर्णशाला की तरफ दौडकर आने लगे। खुशी की लहर दौड गई। सबने यही सोच लिया कि श्रीरामचद्र अयोध्या लौटेगे। इससे उनमे आनद का सागर उमड पडा, और वे एक-दूसरे का आलिगन करने लगे, जैसे आमतौर पर मगल अवसरो पर किया जाता है।

पिता के देहावसान के कारण दोनो राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण तथा पुत्रवधू सीता दु खसागर मे डूबे हुए थे। परतु जन-समुदाय श्रीराम के दर्शन करके बहुत खुश हो रहा था।

वसिष्ठ तीनो रानियो को रामचद्र की कुटी की ओर ले जा रहे थे। रास्ते मे मदाकिनी नदी का उन्होने दर्शन किया। वसिष्ठ ने जब उन्हे बताया कि राम-लक्ष्मण अपनी जरूरत के लिए वही से पानी भरकर ले जाते होगे तो कौशल्या और सुमित्रा दोनो रो पडी।

"हे सुमित्रे! तुम्हारा बेटा कितना भला है! मेरे लडके के लिए वह रोज यहा से आश्रम तक पानी ले जाता है। अपने बडे भाई के लिए लक्ष्मण क्या नही कर सकता?" कौशल्या ने सुमित्रा से कहा।

नदी के किनारे, जहा राम-लक्ष्मण ने दिवगत पिता को श्रद्धाजलि दी थी, वह जगह उन्होने देखी। दर्भ की नोक दक्षिण की तरफ रखी हुई थी। श्राद्ध के समय का तिलान्न रखा हुआ था। उससे कौशल्या को अपने पति का स्मरण ताजा हो उठा। "महाराजाधिराज, तुम्हे आखिर यही खाकर सतुष्ट होना पडा। हाय, मै मर क्यो नही गई? तुम कहा चले गये?" यो दशरथ को याद करके और सुमित्रा का हाथ पकडकर कौशल्या रोने लगी।

सब लोग पर्णशाला पहुचे। दैवी तेजवाले राजकुमार घास की कुटिया मे बैठे हुए थे। राजमाताए मन मे उत्पन्न अनेक प्रकार के आवेगो के कारण कमजोर होकर गिरने लगी थी कि राम-लक्ष्मण ने उन्हे पकड लिया। कौशल्या राम की पीठ पर अपने कोमल हाथ बार-बार फेरने लगी। उन्हे समझ मे नही आया कि खुशी का अनुभव हो रहा है या दु ख का? वह बेहोश-सी थी। सीता को छाती से लगाकर कौशल्या बोली, "बेटी, जनक के घर मे तुमने जन्म लिया, राजा दशरथ की पुत्रवधू बनकर मेरे घर मे आई। बचपन से वैभव के सिवा तुमने कुछ न देखा था। अब किस प्रकार इस घोर वन मे और ऐसी झोपडी मे वास कर रही हो? मेरी प्यारी बहू! मुरझाये हुए कमल की तरह, धूल लगी सोने की मूर्ति की तरह, तुझे देखकर मुझसे यह दु ख सहा नही जा रहा। मेरा दिल आग मे पडी लकडी की तरह जल रहा है।"

सामने बृहस्पति-तुल्य ऋषि वसिष्ठ खडे थे। श्रीराम ने उनके चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। उन्हे बिठाकर स्वय भी उनके पास बैठे। विनय

के अवतार भरत राम के सामने बैठे। अन्य बधुजन सभी सामने बैठे। सब यही देखना चाहते थे कि भरत के अनुरोध का श्रीराम क्या उत्तर देते है।

"भाई भरत, राज्यभार तुम्हारे ऊपर है, उसे छोडकर मृगचर्म और जटा धारण करके क्यो निकल पडे ? मुझे समझाओ।" राम ने भरत से पूछा।

भरत ने दो-तीन बार कुछ बोलने का प्रयत्न किया, पर हिम्मत हार गये। थोडी देर बाद किसी प्रकार अपने दिल को कडा करके बोले, "भैया, तुम्हे वन भेजकर उसी खेद मे पिता मर गये। मेरी मा ने भी देख लिया कि उसका षड्यत्र निष्फल साबित हुआ। अब सारी दुनिया का अपवाद सुनती हुई अति लज्जित होकर वह नरक-यातना भोग रही है। अब सब बात बिगड गई है। आपके सिवा उसे कोई ठीक नही कर सकता। अब आप राजमुकुट धारण करने को 'हा' कह दीजिये। इसी काम के लिए हम सब, अयोध्या की सारी प्रजा, सेना, विधवा माताए, सभी यहा आपके पास इकट्ठे हुए है। हमारी इस छोटी-सी माग को ठुकराये नही। लोगो के दु ख को दूर कीजिये। कुल-धर्म की रक्षा कीजिये। हमारा राज्य अनाथ होकर एक विधवा की तरह कातिहीन हो गया है। उसको आप ही फिर से समृद्ध कर सकते है। चन्द्रमा जैसे अधकार को हटा देता है, वैसे ही लोगो के म्लान हृदयो को फिर से आप चमका दीजिये। देखिये, ये सारे मत्रिगण खडे है। उन सबके साथ मै आपके पैर पडता हू। हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये।" यो कहकर भरत ने राम के चरणो को पकड लिया।

श्रीराम ने भरत को बडे वात्सल्य से छाती से लगा लिया और कहा "भैया, हमने बहुत अच्छे कुल मे जन्म लिया है। अच्छी शिक्षा पाई है। माता-पिता ने उचित ढग से पालन-पोषण करके हमे बडा किया है। हमसे बुरे काम होना असभव है। तुमने कोई गलती नही की। व्यर्थ की चिता मत करो। दु ख छोड दो। अपनी मा को बुरा कहना हमारे शील के विरुद्ध है। इसलिए मा कैकेयी को कोसना बद करो। हमारे पिता जो भी चाहते थे, हमसे करा सकते थे। उन्हे इसका पूरा अधिकार था। वह हमे राजगद्दी पर बिठा सकते थे, तो वनवास भी दे सकते थे। माता-पिता की आज्ञा

को हमे आदर और प्रसन्नता से मान लेना चाहिए। मरने से पहले पिताजी ने आज्ञा दी थी कि तुम राज्य-पालन करो। मुझसे कहा था कि चौदह वर्ष वन मे बिताओ। हमारा धर्म पिता के वचनो का पालन करना ही है। तुम्हे राज्य-भार सभालना ही चाहिए। उसमे किसी प्रकार का दोष मैं नही देखता। मेरा धर्म जगल मे चौदह वर्ष बिताना है। देवेंद्र के समान पिता-जी की अतिम आज्ञा का हम निरादर नही कर सकते। उनकी आज्ञा पूरी किये बिना सारी पृथ्वी का राज्य मिलता हो, तो भी वह मुझे नही चाहिए, उससे मैं प्रसन्न नही हो सकता।"

भरत फिर भी न माने। बार-बार राम से विनती करने लगे कि अयोध्या वापस चले। उन्होने कहा कि उनकी अपनी सम्मति के बिना अयोध्या मे जो अनर्थ हो गया है, उसे ठीक करना अब राम का काम है। वह स्वय अपनी भी खूब निदा करने लगे। तब राम ने उन्हे रोका और कहा कि ऐसा नही करना चाहिए। बोले,"भाई भरत, नियति को हम जीत नही सकते। शोक छोडो। जो कुछ होना था, सो हो गया। अब अयोध्या लौट जाओ। राज्य का भार सभालो। 'हम दोनो का कर्तव्य पिता के वचन का पालन करने मे ही है। उसके विरुद्ध हम चल नही सकते।"

रामचद्र के अटल निश्चय को देखकर सब लोगो को एक ओर बहुत खुशी हुई, तो दूसरी ओर दु ख भी हुआ। भरत के अनुपम प्रेम, भक्ति और निर्मल हृदय को देखकर सब सोचने लगे, 'हम कैसे भाग्यशाली हैं, जो ऐसे सद्गुणी राजकुमारो को हमने पाया है।'

रामचद्र ने निश्चयपूर्वक कह दिया, "मै तो पिताजी के कहे को पूरा किये बिना न लौटूगा। तुम अपना यह व्यर्थ प्रयत्न छोड दो। देखो, शत्रुघ्न होशियार भाई है। वह तुम्हे राज्य-पालन मे मदद करेगा। मेरे पास भाई लक्ष्मण है। तब हमे किस बात की कमी है ? हम चारो पुत्र पिताजी का कहना मानेगे।"

भरत के साथ जो ब्राह्मण आये थे उनमे एक विद्वान् पडित ऋषि जाबालि थे। वह राम और भरत का सवाद सुन रहे थे। वह राम को

दुनियादारी की बाते समझाने लगे, "क्यो बार-बार 'पिता की आज्ञा, पिता की आज्ञा' कहते रहते हो ? सुनो राम, आखिर दशरथ कौन थे ? एक शरीर था, जिसका नाम दशरथ था। वह शरीर तो अब नष्ट हो गया। पचतत्त्व को प्राप्त हो गया। उनका अस्तित्व अब कहा रहा ? उस बीते शरीर से अब तुम्हारा क्या सबध रहा ? इसे मै मूर्खता कहूगा। सामने जो आराम की वस्तुए हैं, उनका भोग न करके धर्म, परलोक आदि की बाते करना बेवकूफो का काम है। आज अयोध्या बिखरे केशोवाली विधवा की तरह अनाथ है, दु खी है। जाओ, उसकी रक्षा करो। राज्यभोगो का उपयोग करो। भरत का कहना मान जाओ। 'पिता की आज्ञा' को भूल जाओ।"

जाबालि की इन बातो से राम को दु ख हुआ। वह बोले, "आपको तो सत्य की कोई परवाह नही है। मै आपकी इन बातो से सहमत नही हू। आप नास्तिकवाद की बात करते है। मै तो सत्य को दुनिया की समस्त वस्तुओ से बढकर मानता हू। इसलिए आप मुझे समझाने का प्रयत्न छोड दीजिये।"

तब वसिष्ठ ने राम से कहा, "राम, जाबालि नास्तिक नही है। किसी भी प्रकार से तुम्हे अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होने यह बात कही है। इसलिए उन पर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हे ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्त्व को मैं खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते है। पर भरत तुम्हारी शरण मे आया है। तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहा पर फैला दीजिये। मैं उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगे। तब भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उस पर बैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो।

तुम्हारा कर्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है । क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो ।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया ।

भरत उठ खडे हुए । एकत्र जन-समुदाय से बोले,"हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चले ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तब सबने कहा,"श्रीरामचद्र को हम जानते है, वह सत्यव्रती है । पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे । हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा ।"

तब श्रीराम बोले,"भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की बात मान जाओ । हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले है । हम दोनो का हित चाहनेवाले है ।"

तब भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया । भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है । भैया राम की जगह मैं वनवास-व्रत पालूगा । वह अयोध्या लौटे और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करे ।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे । बोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी बच्चो-की-सी बात करते हो ! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे है जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही बात पलट दे । व्रतो के साथ यह नही चल सकता । हा, किसी विपदा के समय मे या कोई बीमारी हो या शरीर से दुर्बल हो तो, बडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है । पर यहा तो ऐसी कोई बात नही है । सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते है कि मै वनवास का व्रत पूरा करने मे असमर्थ हू ? और उसके लिए भरत को आना चाहिए ?"

लोग क्या उत्तर देते ? आखिर भरत से बोले, "भरत, सुनो । राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो । वैसा करने मे तुम्हारे ऊपर कोई दोष नही आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा ।"

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद मे बिठाया और प्रेम की

वर्षा-सी करते हुए बोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैने तुम्हे राज्य-भार सौपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये है, वैसे ही हमे चलना है।"

भरत बोले,"भैया, अब आप ही मेरे पिता और प्रभु है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा बनी रहे। आप अपनी दोनो पादुकाएँ मुझे दे दे। उन्हे मै आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हे अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के बाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग को इन्कार न कर सके। अपने पैरो की दोनो पादुकाए उन्होने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओ को हाथ मे लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सब वापस चले। लौटते हुए मार्ग मे ऋषि भरद्वाज से मिले। सारा वृत्तात सुन उन्होने भरत की बहुत प्रशसा की। बोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी प्रकार तुम्हारे कुल का शील सीधे तुम्हे आकर प्राप्त हो गया है। तुम्हारे पिता दशरथ धन्य है! वह मरे नही है। तुम्हारे रूप मे उन्होने अमरत्व प्राप्त कर लिया है।"

वहा से चलकर वे सब गुह के स्थान पर गये। वहा गुह से विदा ली और गगा पार करके अयोध्या पहुचे। भरत को पिता दशरथ और बडे भाई श्रीराम के बिना नगर बहुत ही बुरा लगा। अमावस्या की रात्रि की तरह चारो ओर अधकार-सा छाया हुआ लग रहा था। जब भरत कैकय राज्य से लौटकर अयोध्या मे आये थे, उस समय उनके मन मे कुछ आतक-सा बैठ गया था। पर अब तो सारी बाते मालूम हो गई थी। सब बातो को सोचते हुए उनका हृदय बहुत ही व्यथित हुआ।

वह राजमहल मे गये। सूने भवन मे माताओ को उतारा। उनसे विदा ली। सभामडप मे राजगुरु वसिष्ठ और अमात्य लोग बैठे थे। उनसे भरत

ने कहा, "मेरा दु ख कितना भयकर है, यह आप सब जानते है। मैं अब नदीग्राम मे रहकर उस दु ख को सहन करता रहूगा। जैसा मैने श्रीराम को बताया है, उसी प्रकार वहा से मै राजकीय कार्यो को करता रहूगा। आप इसका समुचित प्रबध कर दे।"

इसके अनुसार सभी प्रबध कर दिया गया। भरत ने सभा बुलाई और कहा, "यह राज्य राम का है। उन्होने उसे कुछ समय के लिए मेरे हाथो मे सौंपा है। गद्दी पर भैया श्रीराम की दोनो पादुकाए रहेगी। उनका दास होकर मै राज्यभार चलाने की प्रतिज्ञा लेता हू।"

सबके सामने भरत ने इस प्रकार प्रतिज्ञा ली।

मत्रियो की मदद से नदीग्राम मे रहते हुए भरत बहुत ही अच्छे ढग से राज्य का सचालन करते रहे। श्रीराम के व्रत पूरा करके लौटने तक भरत ने राज्य-पालन के कार्य को एकदम अनासक्त रूप से, नि स्वार्थ भावना के साथ, मन को सदा प्रभु के ध्यान मे रखकर, लोगो के कल्याण के लिए कर्तव्यो का बहुत ही उचित रीति से पालन किया। तप की व्याख्या भी तो यही है। जितना समय रामचद्र ने वनवास का व्रत लिया, उतना ही समय भरत ने नदीग्राम मे ऐसी ही उत्तम तपश्चर्या करते व्यतीत किया।

° ° °

चित्रकूट मे भयकर राक्षसो का वास था। उन सबका बडा नेता रावण था। उसका छोटा भाई था खर। यह राक्षस राम से बहुत द्वेष रखता था। इसी कारण से खर और उसके साथी अब बार-बार चित्रकूट मे आकर ऋषियो को सताने लगे। ऋषि लोग इससे तग आ गये। उन्होने राम से कहा, "अब इस वन मे रहना हमारे लिए अशक्य हो रहा है। हम और कही जाकर रह लेगे। राक्षसो का उपद्रव दिन-पर-दिन बढता चला जा रहा है।" राम ने उन्हे बहुत समझाया किंतु तापस लोग डरे हुए थे। चित्र-कूट छोडकर वे दूसरी जगह जाकर रहने लगे।

जब से भरत विदा लेकर गये तब से श्रीरामचद्र का मन भी कुछ उदास रहने लगा। माताओ की उन्हे बडी याद आने लगी। उसी स्थान मे,

जहा वे सब मिलकर गये थे, रहने के कारण रामचद्र को उनकी याद बार-बार सताने लगी। जब ऋषि लोग भी वहा से जाने लगे तो राम, लक्ष्मण तथा सीता ने भी और कही जाकर रहने का विचार किया और निश्चय भी कर लिया।

जब मन मे चित्रकूट छोडने का निर्णय कर लिया तब तीनो महर्षि अत्रि से मिले। प्रणाम कर उन्हे अपना विचार बताया। महर्षि अत्रि की पत्नी थी महासती अनसूया। सीता ने अनसूया के चरण छुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। "पति के साथ वन जाने को तैयार होकर तथा वन के कष्ट सहन कर दुनिया के लिए तुम मार्गदर्शिनी बनो।" यो अनसूया ने सीता से कहा। सीता को बहुत प्यार किया। अपने स्मरण के रूप मे मगल वस्त्र और आभरण, हल्दी, कुकुम आदि अनसूया ने सीता को दिये। महा-पतिव्रता, महासती अनसूयादेवी के आभूषण और वस्त्रो से सीता की शोभा और शक्ति असाधारण और अक्षय रही। सीता इन उपहारो को ग्रहण करके ऋषि-पत्नी से बोली, "मेरे पति श्रीराम मुझ पर मा की तरह प्रेम की वर्षा कर रहे है। ऐसे पति के साथ मुझे भला किस बात का दु ख हो सकता है!"

इस प्रकार तीनो ऋषि और ऋषि-पत्नी से विदा लेकर वहा से चले।

: ४० :

विराध-वध

सीता, राम और लक्ष्मण घने दडकारण्य मे चलते गये। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान पर पहुचे, जहा कुछ हवन-सामग्री, वल्कल, मृग-चर्म आदि वस्तुए दिखाई दी। शात वातावरण था। राम-लक्ष्मण समझ गये कि यहा पास ही कोई-न-कोई आश्रम है। पशु-पक्षी चारो ओर निर्भय होकर घूम रहे थे। पेड फल-फूलो से लदे थे। कुछ दूर चलकर वयोवृद्ध मुनि भी दिखाई दिये। अचानक श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को अपने बीच पाकर वे बहुत

प्रसन्न हुए। बोले,"राजन्, तुम हमारे रक्षक हो। तुम राजभवन मे रहो या जगल मे, हम तुम्हे ही अपना राजा मानेगे।"

ऋषियो ने तीनो थके अतिथियो का भली प्रकार सत्कार किया और रात वही बिताने की व्यवस्था कर दी।

आश्रम मे शातिपूर्वक रात बिताकर तीनो जने ऋषियो से अनुमति लेकर, बडे सवेरे ही, फिर चल दिये। आगे बडा भयकर घना जगल था। सिह, व्याघ्र, चीते और भेडिये आदि खूनी जानवर तथा विचित्र पक्षियो से वह भरा हुआ था। हमारे ये यात्री खूब सचेत होकर और इधर-उधर निगाह रखते हुए सावधानी से आगे बढे जा रहे थे कि कुछ आहट-सी हुई। तीनो ने देखा कि उनके सामने पहाड के समान शरीरवाला एक भयकर राक्षस खडा हुआ है। राक्षस भी उन्हे देखकर बादल की तरह गरजा। उसकी शक्ल बहुत ही घिनौनी थी। मास और खून से चिपके कच्चे-गीले व्याघ्र-चर्म से उसने अपना शरीर ढका हुआ था। उसके हाथ मे शूलायुध था, जिसकी नोक मे हाल ही मे मारे गये तीन शेर और एक हाथी के सिर खुसे हुए थे।

राक्षस ने अपने शूलायुध को एक हाथ से ऊपर की ओर उठाये रखा और दूसरे हाथ से सीता को उचककर उठा लिया। सीता को पकडे-ही-पकडे उसने राम-लक्ष्मण से गरजकर पूछा, "अरे छोकरो, कौन हो तुम दोनो? बच्चो-जैसी तो तुम्हारी शक्ले है। वेश तापसियो का धारण कर रखा है! कधे पर क्षत्रियो के शस्त्र लटक रहे है। साथ मे, यह सुदरी युवती भी है! वाह, कैसे लोग हो तुम दोनो! ऋषियो के आवरण मे बडे दुराचारी मालूम होते हो। शर्म नही आती! धोखेबाज युवको, जानते हो कि मै कौन तुम्हारे सामने खडा हू? मै हू राक्षस विराध! ऋषि-मुनियो को मारकर उनके मास से अपनी भूख मिटाता हू। पापीजनो, ठहरो, तुम दोनो का खून भी अभी चूसे लेता हू। फिर यह युवती मेरी स्त्री बनेगी ही।"

क्रूर राक्षस के हाथ मे फसकर सीता पत्ते के समान काप रही थी। इस प्रकार की परिस्थिति मे पडने का यह पहला अनुभव था। राम स्वय

घबरा गये। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, सीता का अब क्या होगा ? क्या हमे इसी तरह फसाने के लिए कैकेयी को वनवास के दड की बात सूझी थी ? अब क्या करे ?"

ऐसे अवसरो पर राम को सदा लक्ष्मण का सहारा रहा। लक्ष्मण ने राम को समझाया, "भैया, आपको हो क्या गया है ? अपनी शक्ति को पहचानिये। इद्र के समान बली होकर यह आप सोचने क्या लगे है ? आपकी मदद के लिए मै जो खडा हू। यह देखिये मेरे बाण क्या-क्या कर सकते है। यह मूर्ख राक्षस अभी मरकर गिरनेवाला है। धरती इसका खून पीकर तृप्त होनेवाली है। आपने मेरे क्रोध को अयोध्या मे दबा दिया था। दबा हुआ क्रोध अब फूटकर इस राक्षस की ओर ही टूट पडनेवाला है। जैसे पर्वतो के पखो को छेदकर इद्र ने उन्हे गिराया था, उसी प्रकार मै इस निशाचर को मार गिराता हू।" क्रोध के मारे लक्ष्मण उत्तप्त सासे लेने लगे। उनके नथुने फूल गये।

विराध ने फिर ललकारकर पूछा, "अरे लडको, बोलते नही ! बताओ, तुम कौन हो ?"

इस बीच राम सम्हल गये। उनके मुह पर फिर से काति आ गई। बोले, "हम इक्ष्वाकु-वश के राजकुमार है। हमने वनवास का व्रत लिया है, इसीलिए यहा पर है। तुम अपना परिचय तो दो कि कौन हो ?"

"अच्छा, तो तुम यह जानना चाहते हो कि मै कौन हू ? लो, बताता हू। मेरे बाप का नाम है जय। माता का नाम शतह्रदा। राक्षस लोग मुझे विराध के नाम से पुकारते है। तुम लोगो के शस्त्रो से मेरा कुछ नही बिगड सकता। मुझे ब्रह्मा से वर मिला हुआ है। इस लडकी को यहा छोड-कर तुम यहा से भाग निकलो।"

विराध की गर्जना से राम की आखे क्रोध मे लाल हो गई। "ले, तुझे अभी यमधाम पहुचाता हू।" कहकर उन्होने एक अति तीक्ष्ण बाण राक्षस के ऊपर चलाया। बाण उसके महाकाय शरीर को भेदता हुआ खून से आग की तरह लाल होकर बाहर निकल गया। किंतु राक्षस जैसा-का-तैसा खडा

ही रहा। वह घायल हो गया। दर्द से उसका रोष और बढा। सीता को तो उसने जमीन पर उतार दिया और अपने शूलायुध को ऊपर उठा, मुह फाडकर रामचद्र पर टूट पडा। दोनो राजकुमारो ने उस समय राक्षस के ऊपर तीक्ष्ण बाणो की वर्षा कर डाली। उसके समस्त शरीर मे तीर लगे हुए थे। राक्षस ने हँसकर अगडाई ली और शरीर को हिला डाला। सारे तीर शरीर से बाहर गिर पडे। राक्षस और जोर से हँसा। शूलायुध को ऊपर उठाकर वह खडा ही रहा। राम-लक्ष्मण दोनो ने दो शरो से शूलायुध को भेद दिया और बडे खड्ग लेकर राक्षस को मारने दौडे। विराध ने दोनो राजकुमारो को सहज ही उठाकर कधे पर चढा लिया और जगल के भीतर भागने लगा। दोनो भाइयो को इस तरह राक्षस द्वारा उठा ले जाते देखकर सीता डर के मारे जोर-जोर से रोने लगी।

राक्षस के कधे पर चढे राम-लक्ष्मण ने देख लिया कि शस्त्रो से विराध का वध होना असभव है। तब उन्होने अपनी भुजाओ के बल से ही राक्षस के दोनो हाथो को धड से अलग खीचकर फेक दिया। राक्षस असहाय होकर नीचे गिर पडा। दोनो भाइयो ने मुक्को और लातो से उस पर प्रहार किये। उसे खूब लथेडा। फिर भी उसके प्राण नही गये, यद्यपि पीडा के कारण वह बुरी तरह चिघाडता रहा। वर के प्रताप से मृत्यु जल्दी से आकर उसे शाति नही दे रही थी। उसने अब समझा कि ये साधारण मनुष्य नही है। तेजस्वी पुरुष है। तब वह राम से बोला, "भगवन्, अब मै समझा। आपका चरण-स्पर्श मुझे हुआ है। मेरी गर्दन पर अच्छी तरह खडे हो जाइये। तब मेरा शापमोचन होगा। असल मे मै राक्षस-कुल मे पैदा नही हुआ था। मै तो गधर्व हू। मेरे शाप के कारण ही मुझे कोई मारकर पुराना रूप नही दे सकता था। अब भी मै मरा नही हू। मेरी मोक्ष का एक ही उपाय है। आप मेरे टुकडे-टुकडे करके भूमि मे गाड दीजिये, तभी मेरी मुक्ति होगी, और मैं अपने लोक पहुच सकूगा।"

राम-लक्ष्मण ने वैसा ही किया। विराध ने अपना पूर्व-रूप पा लिया और गधर्व-लोक चला गया।

विराध को मुक्ति देकर दोनो भाई फिर सीता के पास पहुचे और उन्हे सारा हाल कह सुनाया। फिर तीनो जने वहा से ऋषि शरभग के आश्रम की ओर गये। वहा पर देवेद्र स्वय मुनि से चर्चा करने के लिए देवगणो-सहित आये हुए थे। रामचद्र को देखते ही वह अदृश्य हो गये। राम ऋषि के पास पहुचे और पत्नी सीता तथा अनुज लक्ष्मण के साथ मुनिवर के चरण छुए।

वयोवृद्ध मुनि ने कहा, "हे राम, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा मे ही रुका हू। इस शरीर को छोडकर जाने का मेरा समय आगया है। तुम्हे एक बार देख लेने की चाह ने मुझे अभी तक जीवित रखा है। अब मेरी मनोकामना पूरी होगई। मेरे पुण्य कर्मो के सभी फल तुम्हे मिल जाय।"

श्रीराम बोले, "भगवन्, आपके पुण्य-कर्मो का फल भोगने का मुझे क्या अधिकार हो सकता है? मुझे तो अपने ही सत्कर्मो द्वारा अच्छे फल मिलने चाहिए। मैं तो त्याग-वृत्ति से ही वनवास करने आया हू।"

ऋषि श्रीराम के अवतार-रहस्य को जानते थे। उन्होने राम से कहा, "मुनि सुतीक्ष्ण तुम्हे यहा रहने के लिए अच्छा-सा स्थान बतायेगे। उनसे तुम्हे यहा की सारी जानकारी मिल जायगी।"

उसके बाद बूढे ऋषि ने आग जलाई और उसमे प्रवेश करके देह त्याग दी। अग्नि की ज्वालाओ मे से एक युवक का दिव्य रूप ऊपर की ओर जाता हुआ दिखाई दिया।

जगल के ऋषियो को जब पता लगा कि क्रूर राक्षस विराध का वध होगया तो बडी सख्या मे वे रामचद्र के दर्शन के लिए जमा होगये। श्रीराम को उन लोगो ने विस्तार के साथ बताया कि राक्षसो से उन्हे कैसे-कैसे कष्ट होते रहते है। उन्होने कहा, "हे दशरथात्मज, अब तुम्हारे आने से और हमारे बीच मे वास करने के कारण हमारा भय मिट गया। अब हम यज्ञ, तप और व्रतादि निर्विघ्न रूप से कर पायेगे। यह देखो, इधर हड्डियो के ढेर पडे है। ये ढेर ऋषियो की हड्डियो के है। राक्षस ऋषि-मुनियो को निर्दयता से मारकर खा जाते थे। पपा और मदाकिनी नदी के तटो पर

वास करनेवाले तापम लोग राक्षसो के उपद्रवो से बहुत ही त्रस्त थे। तुम अब हमारे राजा हो। हमारी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो वह अधर्मी होता है। गृहस्थ लोग राजा को कर देते है। हमारे-जैमे विरक्त लोग अपने तपोबल का चौथा भाग राजा को देकर उसे बलवान बनाते है। देवेद्र के समान कातिवाले राम, अपने कष्टो को मुह से बताना कठिन हे। हम तुम्हारी शरण आये है। तुम हमारी रक्षा करो।"

"गुरुजनो, आप यह क्या कह रहे है? आप लोग जो आज्ञा देगे, वह मै करूगा। पिता के आदेश से वन मे मेरा आना हुआ। यदि मेरे द्वारा आप लोगो को आराम पहुचता हो तो उससे बडा भाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है? आप लोग चिता एकदम छोड दे। राक्षसो को मारकर मैं आप लोगो की सेवा करूगा।"

इम प्रकार रामचद्र ने विनयपूर्वक ऋषियो को आश्वासन दिया। सब बडे खुश हुए। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर गये। पास ही मे एक पर्वत दिखाई दिया। वह एक घने जगल से घिरा हुआ था। राम-लक्ष्मण ने सोचा कि मुनि सुतीक्ष्ण का आश्रम वही होना चाहिए। उस वन के अदर तीनो ने प्रवेश किया। वहा उन लोगो ने ऋषियो के सूखने के लिए टगे हुए वल्कल देखे। ऋषि को ढूढने मे उन्हे देर न लगी। उन्हे प्रणाम करके राम ने कहा, "मेरा नाम राम है। आपके दर्शनार्थ यहा आया हू। मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

ऋषि ने राम को गले से लगा लिया। बोले, "हे धर्मरक्षक, तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे आने से आश्रम मे प्रकाश आगया है। समझ लो कि तुम्ही इस प्रदेश के स्वामी हो। बस, तुम्हारी ही प्रतीक्षा मे हम दिन गिन रहे थे। मेरे कानो तक बात पहुच गई थी कि तुम राज्य से निकाले गये हो और चित्रकूट मे वास करने लगे हो। मेरे सारे पुण्य कर्म के फल तुम्हारे काम मे आए। उससे तुम्हारी धर्मपत्नी सीता को और भाई लक्ष्मण को भी लाभ हो।"

उस जमाने मे ऋषि लोग इसी प्रकार आशीर्वाद दिया करते थे। उग्र

तपश्चर्या से प्रज्वलित मुखमडलवाले सुतीक्ष्ण मुनि से राम ने कहा, "महर्षि, आपका आशीर्वाद पाकर मै अच्छे कर्म करने लगूगा। मेरे किये कर्मो के फल का ही मै अधिकारी हो सकूगा। मै वनवास के दिन यहा काटना चाहता हू। महात्मा शरभग ने मुझे आपसे मिलकर आशीर्वाद पाने को कहा था। इसी हेतु आपकी सेवा मे पहुचा हू।"

ऋषियो मे आशीर्वाद पानेवाले लोग भी इसी प्रकार उत्तर दिया करते थे। यह उन दिनो की सभ्यता के अनुसार प्रचलित एक सुदर प्रथा थी।

राम से मिलकर मुनि बहुत प्रसन्न थे। बोले, "राम, तुम यही मेरी कुटिया मे ही क्यो नही रह जाते ? यहा आस-पास कई मुनि लोग वास करते है। कद-मूल-फलादि की भी यहा कोई कमी नही। हा, कुछ जगली प्राणियो से ऋषियो को काफी कष्ट होता रहता है। बस, इसके अतिरिक्त और कोई कष्ट यहा नही है।"

राम समझ गये कि मुनिवर क्या चाहते है।

धनुष मे प्रत्यचा चढाकर राम ने कहा, "भगवन्, इस तपोवन से दुष्ट प्राणियो को मै हटा दूगा। मेरा अब यही काम है। आप निश्चित रहे। मेरे पास जो तीक्ष्ण शस्त्र है, वे इसी काम के लिए है। हम लोगो का आपकी कुटिया मे रहना ठीक नही। उसमे आपके तप मे बाधा होगी। इसलिए क्षमा करे। हम यही पास मे रहने के लिए कोई और जगह ढूढ लेगे।"

उस रात तीनो जने सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम मे ही ठहरे। दूसरे दिन वे बहुत जल्दी उठ गये। उन्होने ठडे और स्वच्छ जल मे स्नान किया। हवन करने के पश्चात् ऋषि को प्रणाम करके उनसे विदा मागी और कहा, "हे मुनिवर, आपकी कृपा से हमने रात आराम से बिताई। यहा रहनेवाले अन्य तापसो से भी मिलकर हम उनसे आशीर्वाद लेना चाहते है। ये सज्जन जो (कुछ तापसी लोग उस समय वहा आ गये थे) हमारे साथ है, उन लोगो के पास हमे ले जाने को तैयार है। धूप चढने से पहले ही चल पडना ठीक रहेगा। हमे आज्ञा दीजिये।" यो कहकर तीनो ने ऋषि को प्रणाम किया।

ऋषि ने भी उन्हे प्यार से आशीर्वाद देकर विदा किया, "और ऋषियो से अवश्य मिले और उनके आशीर्वाद प्राप्त करें। यहा कई तपो-सिद्ध महात्मा रहते है। यहा का प्रदेश भी बहुत ही सुदर है। हिरण और सुदर पक्षियो से यह वन भरा हुआ है। सरोवरो मे कमल खूब खिले हुए मिलेगे। पहाडी झरनो के पास मोर नृत्य करते रहते है। हे लक्ष्मण, तुम्हे तो यह सब अवश्य ही बहुत अच्छा लगेगा। भाई और भाभी के साथ खूब घूमना। जब चाहो तब मेरी कुटिया मे आ जाना।"

ऋषि से अनुमति लेकर तीनो चल पडे। सीता ने दोनो भाइयो को शस्त्र उठाकर दिये। दोनो ने उन्हे अच्छी तरह से धारण कर लिया। तीनो जनो के चेहरो पर अपूर्व तेज चमक रहा था। महात्मा सुतीक्ष्ण के आशीर्वाद की बडी महिमा थी।

: ४१ :

दण्डकारण्य में दस वर्ष

आरण्यकाड के प्रारभ मे ही कवि वाल्मीकि हमे सीता पर आनेवाली विपदाओ की कुछ सूचना दे देते है। दडकारण्य मे पहुचते ही दशरथनदन श्रीराम ने अपने ऊपर एक नई जिम्मेदारी ले ली। उन्होने ऋषियो की हिसा करनेवाले राक्षसो को मार डालने का निश्चय किया। धर्मज्ञाता सीता के मन मे इस बात से कुछ शका, असतोष और भय उत्पन्न हुआ। वह राम से बोली, "नाथ, हम लोगो ने तापस-वृत्ति ग्रहण की है। पिता के आदेश से चौदह वर्ष वनवास करने आये है। वन मे ऋषि-मुनियो की रक्षा करना देश को पालनेवाले राजा का कर्तव्य है। दुष्टो को दड देना क्षत्रिय-धर्म अवश्य है, किंतु यह काम शासन करनेवाला राजा ही अपने ऊपर ले सकता है। हम यहा तप करने और नियम पालने आये है, या राक्षसो की हत्या के लिए? जो हमारे ऊपर आक्रमण करता है, हम उसी को मार सकते है।

जो हमारे बीच मे नही आते, उन्हे मार डालना वनवास-धर्म के विरुद्ध होगा। आपने तो ऋपियो से कह दिया कि दुष्ट राक्षसो की हत्या करूगा, लेकिन मालूम नही यह कार्य हमे कहा ले जायगा !" सीता ने अत्यत मधुर वाणी मे अपने प्रियतम से कहा, "मेरे स्वामी, आप नाराज न हो कि मै कोई टीका कर रही हू। मेरे मन मे जो बाते उठी, उन्हे मैने आपको बता दिया। आप स्वय धर्माधर्म की बात सोच ले, फिर निर्णय करे कि हमे क्या करना चाहिए। अज्ञान और लोभ के वश होकर मनुष्यो से तीन अकृत्य हो जाते है—झूठ बोलना, परस्त्री की अनुचित चाह और जो हमारा कुछ बिगाड न करे, उन्हे सताना। असत्य तो आपके निकट आयेगा नही। सत्य के कारण ही आप सारे सुखो को छोडकर वन मे रहने आये है। मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि आप स्वप्न मे भी पर-स्त्री के प्रति बुरा विचार न करेगे। मुझे बस तीसरी बात का ही डर है। अर्थात् जो हम पर आक्रमण नही कर रहा हो, उसका वध हम कैसे कर सकते है ? मुझे तो लगता है कि आपने ऋषियो को जल्दी मे वचन दे दिया। जो काम शासक का है, वह काम क्षत्रिय होने पर भी हर कोई नही कर सकता। हमने तो चीर, वल्कल, जटा-जूट धारण करके व्रत-नियम ले रखे है। अत मुझे लगता है कि आप इस हत्याकाड मे उतरे, उससे पहले अच्छी तरह से सोच ले।" जनकसुता श्रीराम से इस प्रकार कहकर चुप होगई।

अपनी प्रिय पत्नी की इन धर्मयुक्त बातो से राम की सीता के ऊपर प्रीति और भी बढी। वह मधुर स्वर से बोले, "प्रिये, तुम तो राजर्षि जनक की पुत्री हो न ! तुम्हारे विचार अवश्य ऊचे ही होगे। सीते, जो पीडित होकर शरण मे आता है उसकी रक्षा करना हर क्षत्रिय का काम है। हमारे आते ही मुनियो ने हड्डियो का ढेर दिखाकर हमसे प्रार्थना की कि दुष्टो का दमन करो। तुमने स्वय ही देखा था। ऋषियो की इस करुण दशा को देखकर मै चुप कैसे रह सकता हू ? तुमने जो कहा, वह बिल्कुल ठीक है। उसका मै विरोध नही करता हू। किंतु वास्तव मे पीडित सदाचारी ऋपियो की रक्षा करना शासक न होते हुए भी मेरा क्षत्रिय-धर्म है। वे मेरी शरण मे

आये हैं। मैंने उनकी रक्षा करने का वचन दिया है। अब मैं उनकी न्यायपूर्ण माग से हट नही सकता। वचन-पालन हम-तुम दोनो मिलकर करेंगे। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो। मुझसे तुम भिन्न कैसे हो सकती हो?"

इस प्रकार सीता और राम वार्तालाप करते हुए आगे बढते गये। जोर की ठडी हवा मे हमे वर्षा की सूचना मिल जाती है। इस राम-सीता-सवाद से सीता के निर्मल हृदय के आतक से महर्षि वाल्मीकि आगे आनेवाले सकटो का सकेत कर देते हैं। इस सवाद का उल्लेख इसी विचार से उन्होने किया होगा, न कि पृष्ठो की सख्या बढाने के लिए।

० ० ०

दडकारण्य मे राम, लक्ष्मण एव सीता का दस वर्ष का निवास-काल बडी अच्छी तरह बीत गया। वहा अन्य कई ऋषियो की पर्णशालाए थी। उस तपोमय वातावरण मे, उसी प्रदेश मे, कही एक महीना, कही तीन महीने, कही कई महीने और कही-कही पर कई वर्ष रहकर तीनो ने दस वर्ष आनद से बिता दिये। वन का सौंदर्य अवर्णनीय था। वृक्ष और लताए, कमल के फूलो से ढके सरोवर, पशु-पक्षियो से भरा-पूरा वन अति मनोहर था।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करने मे वाल्मीकि विशेष रुचि और सामर्थ्य दिखाते है। वन-वर्णन से परिपूर्ण वाल्मीकि के श्लोक भी वन की तरह ही बहुत गभीर और सुदर हैं।

जब दस लबे वर्ष बीत गये और लगा कि वनवास की अवधि लगभग पूरी होने को है तो राम सोचने लगे कि अगस्त्य मुनि के दर्शन कर आना चाहिए।

ऋषि अगस्त्य भी विश्वामित्र की तरह तीनो लोको मे प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि तराजू के एक पलडे मे हिमालय से लकर विध्याचल तक का तमाम ज्ञान एक ओर रखा जाय, दूसरी ओर ऋषि अगस्त्य को रखा जाय तो अगस्त्यजी का ही पलडा भारी होकर नीचे जायगा। शिव-पार्वती-विवाह की कई कथाए हैं। उनमे एक कथा मे ऐसा वर्णन है कि दुनियाभर

के ऋषि इस पुण्य विवाह मे शामिल होने के लिए कैलास पर्वत पर जब जमा होगये तो पृथ्वी का भार उत्तर की ओर बहुत अधिक झुक गया। उसका सतुलन ठीक करने के लिए ऋषि अगस्त्य दक्षिण भाग मे ही टिके रहे।

एक दूसरी कथा भी है। विध्य-पर्वत ऊचा-ही-ऊचा बढता जाता था, इतना कि उससे सूर्य भगवान् की दक्षिणायन-उत्तरायण की गति मे रुकावट पड गई। देवता लोग घबराये। अगस्त्य के पास जाकर उन्होने प्रार्थना की कि वह कुछ करे। मुनि विध्य के पास पहुचे। विध्य पर्वत ने आदरपूर्वक मुनि को दडवत् प्रणाम किया। मुनि ने झट आशीर्वाद दिया कि उसका आकार उसी प्रकार बना रहे। तब से विध्य पर्वत ऊचा न उठकर लबा ही लेटा पडा है।

एक तीसरी कथा है कि वातापि और इल्वल दो बडे दुष्ट राक्षस थे। उनसे ऋषि लोग काफी परेशान रहते थे। वातापि को ऐसा वर मिला था कि उसके टुकडे-टुकडे भी कर दिये जाय तो भी वह फिर से जुडकर जीवित हो जाता था। इल्वल ब्राह्मण वेश धारण करके ऋषियो के पास पहुच जाता था और उनसे प्रार्थना करता था कि ऋषि उसके घर आकर श्राद्ध-भोजन स्वीकार करे। शास्त्र के अनुसार ऐसी प्रार्थना को कोई इन्कार नही कर सकता था। जाना ही पडता था। वहा वातापि बकरे के रूप मे होता था। उसे काट-पकाकर इल्वल ब्राह्मणो को खिला देता था। भोजन के पश्चात् इल्वल ब्राह्मणो से पूछता, "आप लोग तृप्त हुए ?" ब्राह्मण कहते, "हा, हमारी भूख अब मिट गई।" तब इल्वल पुकारता, "वातापि, बाहर निकल आओ।" और ब्राह्मणो के पेट चीरकर वातापि बाहर निकल आता था। इस प्रकार कई ब्राह्मणो की हत्या इन दोनो राक्षसो ने कर डाली थी। एक बार इल्वल ने इसी प्रकार अगस्त्य को भोजन के लिए बुलाया। अगस्त्य के पेट के अदर वातापि बकरे के रूप मे प्रविष्ट होगया। ऋषि समझ गये। उन्हे गणेशजी की उपासना से एक विशेष शक्ति प्राप्त थी। उसकी महिमा से अगस्त्य के पेट मे वातापि एकदम चूर्ण होगया।

इल्वल ने भोजन के बाद अगस्त्य से प्रथा के अनुसार पूछा "आप तृप्त हुए ?"

"पूर्ण रूप से तुम्हारा भोजन मैने हजम कर डाला है।" अगस्त्य बोले।

"वातापि, बाहर आओ !" इल्वल ने पुकारा।

अगस्त्य ने हँसकर उत्तर दिया, "तेरा भाई मेरी जठराग्नि मे भस्म होगया। वह अब वापस नही आयगा।"

"है, आपने मेरे भाई को मार डाला !" इल्वल अगस्त्य के ऊपर टूट पडा, किंतु उनकी आखो की क्रोधाग्नि से वह जलकर वही भस्म होगया।

अगस्त्य जहा कही भी होते थे, राक्षसो को वहा पहुचने की हिम्मत न होती थी। इससे उनके आस-पास रहनेवाले मुनियो की भी बडी रक्षा होती थी।

राम अगस्त्य के छोटे भाई के आश्रम मे गये। वहा मुनि को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया। उधर से और दक्षिण की दिशा मे अगस्त्याश्रम की ओर जाने लगे। दूर से ही देखा कि वहा पशु-पक्षी किसी प्रकार के डर के बिना घूम रहे थे। पक्षियो का कलरव सुनाई देने लगा। विप्र लोग पूजा के लिए फूल तोड रहे थे। राम, लक्ष्मण तथा सीता को बहुत ही आनद हुआ। लक्ष्मण से राम ने कहा, "जाओ, मुनि से पूछ आओ कि हम अदर प्रवेश कर सकते है क्या ?"

लक्ष्मण अगस्त्य के एक शिष्य के पास पहुचकर पूछने लगे, "दशरथ के पुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी जनकसुता के साथ मुनि के दर्शनार्थ आये है। वे आ सकते है क्या ?"

खबर पाते ही मुनि स्वय बाहर आ गये। राम का आलिगन करके उनका स्वागत किया और सत्कार करके बोले, "आप लोगो के चित्रकूट पहुचते ही मुझे खबर मिल गई थी। मैं जानता था कि आप लोग एक दिन यहा अवश्य आयगे। आप लोगो का व्रत अब पूरा हो जानेवाला है। बाकी के दिन आप लोग यही रहे। यहा राक्षसो का कोई डर नही।"

राम ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "आपका कहना बिलकुल ठीक है।

किंतु मै दडकारण्य-निवासी ऋषियो को वचन दे चुका हू। इसलिए उन लोगो के बीच मेरा रहना अनिवार्य है। आपसे आशीर्वाद लेकर उनके पास मुझे वापस जाना ही होगा।"

अगस्त्य मुनि मान गये। उन्होने रामचद्र को प्यार से आशीर्वाद दिया। उन्होने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित धनुष, एक अक्षय तूणीर और एक खड्ग राम को उपहार-रूप मे दिये। बोले, "राम, इन दैवी शस्त्रो से दुष्ट राक्षसो को मारकर ऋषियो की रक्षा करो।"

श्रीरामचद्र ने अगस्त्य मुनि की सलाह से पचवटी मे एक पर्णशाला बनाकर वनवास के शेष दिन वही बिताने का निश्चय किया। फिर मुनिवर से विदा ली। विदा देते हुए ऋषि बोले, "हे राजकुमार राम और लक्ष्मण, मैं आप लोगो को विदा दे रहा हू। जनकनदिनी सीता की खूब रक्षा करे। राज-कुमारी सीता जगल मे वास करने योग्य थोडे ही है। राम, तुम्हारे ऊपर उसका जो असीम प्यार है, वही उसको कष्ट सहन करने के लिए शक्ति दे रहा है, नही तो स्त्रियो का स्वभाव कष्ट सहन करने का नही होता। स्त्रिया अक्सर बिजली की तरह अस्थिर देखने मे आती हैं। उनका स्वभाव अति तीक्ष्ण तथा वायु और गरुड की तरह एक जगह से दूसरी ओर तेजी से पहुचने की शक्तिवाला होता है। साधारणतया स्त्रियो को भगवान् ने इसी प्रकार का बनाया है। किंतु सीतादेवी तो असाधारण गुणवती स्त्री है। वह अरुधती के समान पतिव्रता हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ तुम जहा भी रहोगे, वह स्थान अपने-आप सुदर बन जायगा। पचवटी बहुत रमणीय प्रदेश है। वह स्वादिष्ट फलो से युक्त है। कदमूल की भी वहा कमी नही रहेगी। गोदावरी-तट पर सीता को बहुत ही अच्छा लगेगा। वहा रहकर तुम दोनो भाई सीता और ऋषियो की रक्षा करना। दशरथ राजा ने तुम्हे जो चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा दी थी वह समय अब पूरा होने को आया। दशरथ ने भी ययाति की तरह अपने ज्येष्ठ पुत्र द्वारा बहुत ही ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया है।"

इस प्रकार महाज्ञानी अगस्त्य ऋषि ने सीता और राम-लक्ष्मण को बारबार आशीर्वाद दिया और पचवटी जाकर रहने की सलाह दी ।

: ४२ :

जटायु से भेंट

अगस्त्य ऋषि के बताये रास्ते से तीनो जने पचवटी की ओर चले । चलते-चलते रास्ते मे उन्होने एक महाकाय गिद्ध को देखा । इतना बडा पक्षी उन लोगो ने पहले कभी नही देखा था । इसलिए राम-लक्ष्मण ने सोचा कि वह पक्षी-रूप मे कोई राक्षस होगा । उन्होने उससे पूछा, "तुम कौन हो ?"

गिद्ध ने प्यार से उत्तर दिया, "वत्स, मै तुम्हारे पिता दशरथ का पुराना मित्र हू ।" इसके बाद उसने अपने कुल का परिचय देते हुए कहा, "गरुड का छोटा भाई अरुण है, अरुण का बडा पुत्र सपाती है और उसका छोटा भाई मैं हू जटायु ।"

जटायु ने आगे कहा, "तुम लोग यहा आराम से रहो । जब तुम शिकार के लिए जाया करोगे और बहू सीता अकेली रह जाया करेगी तो मैं उसकी रक्षा के लिए उपस्थित रहा करूगा ।"

अपने पिता के प्रिय मित्र जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को बडा आनद मिला । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन्हें जगल मे एक बडा सहारा मिल गया । आदर से उन्होने गिद्धराज का आलिगन किया ।

ऋषि वाल्मीकि ने यहा जटायु का इतना ही परिचय थोडे-से श्लोकों मे दिया है । सीता के लिए उनका रावण के साथ लडना, बुरी तरह घायल हो जाने पर भी राम-लक्ष्मण के आने तक उन्हे सीता का हाल बताने के लिए किसी तरह प्राणो को रोके रखना, फिर मृत्यु पाना, और उनकी मृत्यु पर राम-लक्ष्मण का विलाप आदि का वर्णन बाद मे आता है । परतु मालूम

होता है कि कबन ने जटायु के बारे मे प्रारभ के इस सक्षिप्त वर्णन को एक कमी समझा और उसे ठीक करने के लिए अपनी रामायण में उसके लिए काफी स्थान दिया। कवि के दिव्य चक्षुओ से इस दृश्य को उन्होने खूबी से देखा और अद्भुत ढग से गाया।

हम जरा कबन का वर्णन भी पढें। जटायु को देखकर राजकुमारों को सदेह होता है कि यह प्राणी कोई राक्षस होगा। पास जाकर देखने लगते है। उसी समय उन्हे देखकर जटायु भी सोचते है कि ये वल्कलधारी तेजस्वी युवक कौन होगे ? स्वर्ग के देवता लगते है। फिर सोचते है कि मैने स्वर्ग के देवताओ को अनेक बार देखा है। ये देवता नही मालूम पडते। फिर राम को देखकर उन्हे मन्मथ का शक होता है। और भी ध्यान से जब दोनो राजकुमारो को उन्होने देखा तो अपने परम मित्र दशरथ से उन्हे बहुत मिलता-जुलता पाया। जटायु ने पूछा, "आप लोग कौन है ?" राम-लक्ष्मण ने बताया कि हम राजा दशरथ के पुत्र है। यह सुनते ही खुशी के मारे जटायु ने अपने विशाल पखो को फैलाकर राजकुमारो का आलिंगन किया और पूछा, "मेरे मित्र, तुम्हारे पिता, राजा दशरथ कुशल से तो है न ?"

इस पर दोनो भाइयो ने बताया, "पिता ने बडी हिम्मत दिखाकर सत्य वचन का पालन किया। अब वह इस लोक मे नही है। परमधाम पहुच गये।"

यह सुनते ही गिद्धराज मूर्च्छित हो गये। राम-लक्ष्मण की आखो से भी आसू बहकर जटायु के शरीर पर गिरने लगे। आसुओ के गिरने से उनकी मूर्च्छा भग हुई। वह प्रलाप करने लगे, "दशरथ शरीर थे तो मैं उनका प्राण था। यम को चाहिए था कि मुझे भी ले जाते।"

जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को ऐसा जान पडा, मानो वे अपने स्वर्गीय पिता से ही मिल रहे है।

जटायु को लक्ष्मण ने सारा वृत्तात कह सुनाया। रामचद्र का जटायु ने बार-बार आलिगन किया, उनकी सराहना की। राम बोले, "अपने नगर, बधुजनो और माताओ को छोडकर हम वन मे रह रहे है। आज आपके दर्शन से हमे बडा सतोष मिल रहा है।"

जटायु ने राजकुमारो से कहा, "आप लोग जब तक इस वन मे है, मैं आपकी रक्षा करता रहूगा । जब आप यहा से चले जायगे तो मै भी अपने मित्र राजा दशरथ के पास पहुच जाऊगा ।"

सीता पास मे खडी रही । पक्षिराज के पूछने पर राम ने अपनी पतिव्रता भार्या सीता का परिचय दिया । जटायु बहुत ही प्रसन्न हुए । स्वय साथ जाकर तीनो को अगस्त्य के बताये पचवटी स्थान तक छोड आये ।

यह है कवन का खीचा हुआ चित्र । ऋषि वाल्मीकि के वर्णन से हटे बिना, जो बाते छूट गई थी, उन्हे वह बता देते है । वाल्मीकि की रामायण को आज लगभग पाच हजार वर्ष हो गये है । स्वाभाविक है कि उसके कई पृष्ठ गायब हो गये हो । उस कमी की पूर्ति भक्त कवि कबन कर देते है । कुछ कवि ऐसे भी है, जो कही-कही अपनी मनपसद बातें जोड भी देते है । हमे इस बात की चिता नहीं करनी चाहिए ।

: ४३ :

शूर्पणखा की दुर्गति

राम, सीता और लक्ष्मण चलते-चलते पचवटी पहुचे । वहा का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर तीनो बहुत ही प्रसन्न हुए । राम बोले, "लक्ष्मण, अगस्त्य ऋषि ने हमारे लिए सचमुच बहुत ही बढिया जगह बताई है । यहा पर मैं सीता और तुम्हारे साथ कितने ही वर्ष आनद से बिता सकता हू । ये जो पहाड है वे न तो बहुत पास हैं, न बहुत दूर । अरे, हिरणो के झुडो को तो देखो । पक्षियो के कठो से कैसे मधुर स्वर फूट रहे है । नदी का बालूवाला तट कितना साफ-सुथरा और मुलायम है । पानी मे तैरकर खेलनेवाले पक्षी कैसे मौज से विचरण कर रहे है । सीते, इन फूलो को देखो । लक्ष्मण, यहा पर ठीक जगह देखकर एक अच्छी पर्णशाला बनाना शुरू कर दो ।"

और जैसी चित्रकूट मे बनाई थी, उससे भी अधिक कला-कौशल से लक्ष्मण

ने एक पर्णशाला तैयार कर ली। वाल्मीकि ने इसका खूब विस्तार से वर्णन किया है। पर्णशाला को देखकर रामचद्र बहुत ही आनदित हुए। अपने छोटे भाई पर उन्हे बडा गर्व हुआ और उनकी आखे भीग आई। बोले, "लक्ष्मण, तुम्हारे रहते हुए मुझे पिता के अभाव का पता नही चल पाता।"

महल मे पोषित राजकुमार को जगल मे पाये जानेवाले साधनो से राज और बढई का काम करना कैसे आया होगा? अवश्य ही उन दिनो के राजकुमारो की शिक्षा-प्रणाली मे ये विद्याए भी शामिल रही होगी।

लक्ष्मण की स्नेह से परिपूर्ण सेवाओ के कारण राम और सीता पचवटी मे बहुत ही आनद के साथ रहने लगे।

० ० ●

शिशिर ऋतु का प्रारभ हुआ ही था। एक दिन स्नान तथा सध्या-वदन करने और बरतनो को माजकर पानी भर लाने के लिए वे तीनो गोदावरी-तट पर जा रहे थे। रास्ते मे मौसम की सुदरता का वर्णन भी करते जा रहे थे। 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' भगवान् ने अपने मुह से ही तो इसकी प्रशसा की है। मार्गशीर्ष का महीना था। लक्ष्मण को भरत की याद आगई। राम से बोले, "भैया, आज मुझे भरत की बहुत याद आ रही है। कितनी बडी त्याग-वृत्तिवाला है वह! महल के आराम को उसने स्वेच्छा से त्याग करके व्रती का जीवन धारण कर लिया है। आज इस सर्दी मे वह सरयू के ठडे पानी से नहा रहा होगा। हमे कितना प्यारा और अच्छा भाई मिला है! उसकी एक-एक बात की मुझे आज याद आ रही है। कितना स्वच्छ हृदय है उसका! उस बेचारे को क्यो इतने कष्ट भोगने पड रहे है? उसका स्वभाव बिलकुल पिताजी-जैसा है। लोग तो कहते है कि लडके तो मा के ऊपर होते है, किंतु दुष्ट कैकेयी और भरत मे कोई समानता ही नही।"

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्यारे लक्ष्मण, मा कैकेयी के विरुद्ध कुछ न कहो। यह उचित नही है। हा, भरत की बाते अवश्य करो। उनके बारे मे कितना ही कहो, कम ही होगा। मुझे भी उसकी बडी याद आती रहती है। लगता है, इसी क्षण जाकर उससे मिल लू। लक्ष्मण, मालूम

नही, हम कब अपने प्यारे भाई से मिल पायेगे। भरत की अमृत-तुल्य मीठी बोली मेरे कानो मे अब भी गूज रही है। हम चारो भाई फिर कब एक साथ होगे ?"

गोदावरी के पुण्य-तीर्थ मे स्नान करते-करते तीनो को घर की याद आ गई। यह वर्णन पढते हुए हमारा हृदय भी विचलित हो जाता है।

स्नान के पश्चात् रामचद्र ने पितरो और देवताओ के लिए तर्पण किया, सूर्य को नमस्कार किया। फिर जटाधारी महादेव के समान तेजस्वी राम अपनी प्रिय भार्या वैदेही और लक्ष्मण के साथ आश्रम लौट आये।

० ० ०

प्रात काल का सारा कार्यक्रम पूरा हो चुका था। तीनो शाति से बैठकर इतिहास-पुराणो की बाते करते रहे। रामचद्र का मुखमडल चैत्र महीने के पूर्ण-चद्र की तरह चमक रहा था। वे बातो मे लीन थे कि एकाएक राक्षस-कुल की एक स्त्री, रावण की बहन, शूर्पणखा वहा आ पहुची।

रामचद्र के मनमोहक रूप पर वह एकदम मुग्ध होगई। रामचद्र देव-पुरुष के समान अति सुदर थे। कुरूपिणी शूर्पणखा का मन विकृत हो गया। काम के आवेग से वह उन्मत्त हो गई। पूछने लगी, "ऋषि के वेश मे बैठे हुए तुम लोग कौन हो ? यह स्त्री तुम्हारी कौन है ? तुम लोग तो शस्त्र बाँधे हुए हो ! राक्षसो के इस जगल मे तुम लोगो का आना कैसे हुआ ? मुझे साफ-साफ सारा हाल बता दो।"

उस युग की सभ्यता यह थी कि ऐसे अवसरो पर प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देकर फिर प्रश्नकर्ता के नाम, कुल, कार्य आदि के बारे मे पूछताछ की जाती थी। उसी ढग से राम ने कहा, "महाशौर्यशाली सम्राट् दशरथ का मै ज्येष्ठ पुत्र हू। मेरा नाम राम है। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। यह मेरी सहधर्मिणी सीता है। पिता के वचन से हम यहा आये है। कृपा करके बताओ कि तुम्हारा क्या नाम है ? किस कुल मे उत्पन्न हुई हो ? देखने से राक्षस-जाति की मालूम हो रही हो। मेरी कुटिया की तरफ किस काम से तुम्हारा आना हुआ ?"

शूर्पणखा ने उत्तर दिया, "विश्रवा के पुत्र और राक्षसो के अधिपति महापराक्रमी रावण का नाम तुमने सुना होगा। मै उसकी बहन हू। मेरा नाम शूर्पणखा है। मेरे दो भाई और है। उनके नाम है विभीषण और कुभ-करण। दोनो महाबली है। इसी जगल मे रहनेवाले खर और दूषण भी मेरे भ्राता है। उनके शरीर-बल और पराक्रम को यहा हर कोई जानता है, किंतु मै उनके अधीन नही हू। स्वाधीन हू। मुझसे इस वन के सभी प्राणी डरते है। पर राम, तुम्हे तो देखते ही मै तुम्हारे ऊपर मुग्ध हो गई हू। मुझे तुम अपनी ही समझो। तुम्हारे योग्य पत्नी तो मै ही हू। चीटी-जैसी तुम्हारी इस स्त्री मे तुम्हे क्या लाभ ? इस भीषण वन मे तो मै ही तुम्हारे लिए उप-युक्त स्त्री हू। तुम्हे सब जगह घुमाऊगी। चाहे जैसा रूप मै धारण कर सकती हू। तुम्हे घबराने की आवश्यकता नही। तुम्हारे भाई लक्ष्मण को और इस स्त्री को अभी खा-पीकर खत्म कर दूगी। चलो, मेरे साथ चले चलो। सोचो मत। अभी चलो।" यो कामाध शूर्पणखा अपनी राक्षसी पद्धति के अनुसार बोलती गई।

राम के लिए राक्षसी का इस प्रकार का व्यवहार एक नई चीज थी। उन्हे हँसी आई। बोले, "हे सुदरी, मुझ पर इच्छा रखना तुम्हारे लिए दु:ख की बात हो जायगी। मेरी स्त्री तो मेरे पास ही, तुम्हारे सामने ही, यह खडी है। दो-दो पत्नियो को सभालना मेरे वश की बात नही। यह देखो, मेरा भाई लक्ष्मण खडा है। अकेला है। रूप या बल मे मुझसे किसी प्रकार कम नही है। तुम्हारे लिए यह हर प्रकार से योग्य हो सकेगा। मुझे छोड दो। इसे पाने का प्रयत्न करो।"

राम को निश्चित रूप से पता था कि लक्ष्मण अपने-आपको सभाल सकता है।

अब राम को छोडकर राक्षसी लक्ष्मण के पास दौडी। देखने मे लक्ष्मण भी राम-जैसे ही थे। लक्ष्मण से शूर्पणखा बोली, "चलो, हे वीर पुरुष, मेरे साथ अभी चलो। हम दोनो इस वन मे साथ-साथ घूमेगे-फिरेगे, मौज करेगे।"

लक्ष्मण राम से कम न निकले। बोले, "पगली कही की! तू ठहरी राजकुमारी! मै हू एक सेवक। कहा मैं और कहा तू! मेरे साथ अपने को बाधकर तुझे क्या मिलनेवाला है! राम तुझे बहका रहे है। राम की दूसरी स्त्री बन जा। सीता से तुझे क्या भय? सीता को तो वह भूल जाएगे। फिर तू मौज से रहने लगेगी।"

पढे-लिखे लोग चर्चा कर सकते है कि प्रेम मे उन्मत्त एक स्त्री के साथ राम-लक्ष्मण का यह व्यवहार उचित था या नही। किंतु उन्हे यह सोचना चाहिए कि राम-लक्ष्मण एक स्त्री से नही, किंतु एक अति प्रबल प्रलोभन-रूपी दुष्ट पाशविक आक्रमण से अपने को बचा रहे थे।

शूर्पणखा को अपने काम से मतलब था। लक्ष्मण के पास से वह राम के पास पहुची। सीता वही खडी थी। उस पर दुष्ट राक्षसी को असह्य चिढ हुई। बोली, "इस कीडी-जैसी औरत से क्यो डर रहे हो? पेट तो इसका पिचका हुआ है। इससे क्यो तुम्हारा प्रेम है? तुम्हारे देखते-ही-देखते मै इसे खा जाऊगी। तुम्हे प्राप्त किये बिना मैं मर जाऊगी। इस स्त्री के कारण ही मेरा काम नही बन रहा है, नही तो तुमने मुझे अब तक अवश्य ही स्वीकार कर लिया होता। लो, इसे अभी समाप्त करती हू।"

यो कहती हुई वह राक्षसी एकदम सीता के ऊपर टूट पडी। राम ने उसे वही रोक न लिया होता तो शायद सीता की जीवन-लीला समाप्त हो गई होती। राम ने देख लिया कि अब हास्य-विनोद बद करके राक्षसी को दड दिये बिना काम नही बनेगा। उन्होने लक्ष्मण से कहा, "इसे कुछ सबक सिखा दो।"

जैसे ही शूर्पणखा फिर सीता को मारने के लिए लपकी, लक्ष्मण ने अपनी तलवार खीचकर शूर्पणखा को घायल कर दिया। लक्ष्मण के प्रहार से उसके नाक और कान कट गये। दर्द और अपमान से जोर से चीखती-चिल्लाती वह राक्षसी वहा से भागकर जगल के भीतर चली गई। शूर्पणखा के मुह से खून की धारा बह रही थी। वह सीधे अपने भाई खर के पास

पहुची। बादल की गरज की तरह जोर से 'हाय' करती हुई वह उसकी गोद मे गिर पडी।

राक्षस खर अपने अन्य निशाचरो से घिरा हुआ बैठा था। अपनी बहन की दुर्दशा देखकर वह चौंक उठा। बोला, "उठो, बहन, सीधी बैठो और बताओ, क्या बात हुई है?"

शूर्पणखा का रोष और बढ गया। वह उठकर खडी हो गई और बोली, "देखो तो, मेरी क्या दशा हो गई है। तुम्हारे रहते हुए इस जगल मे राम, लक्ष्मण नाम के दो पुरुषो ने मेरा यह हाल कर डाला है!"

खर ने पूछा, "बहन, जरा विस्तार से बताओ कि ऐसा क्यो हुआ। वे दो पुरुष कौन है? उन्होने मेरा वैर मोल लेने का साहस कैसे किया? किसे चील और कौवो को अपना मास खिलाने की जल्दी हो रही है? किसने इस काले नाग खर को छेडा है? वह मूर्ख है कहा? मुझे जगह बता दो। अभी जाकर पहले उसकी हत्या करके फिर दूसरा काम करूगा। देख लेना वहा की धरती अभी उसका, जिसने तुम्हारा रूप बिगाड दिया है, खून चूसकर पीनेवाली है।"

शूर्पणखा अपने भाई को बताने लगी, "राम और लक्ष्मण दो राजकुमार है। तापसो का वेश धारण करके इस वन मे रहने आये है। दशरथ के लडके है। साथ मे राम की स्त्री भी आई है। उस स्त्री को खुश करने के लिए दोनो ने मेरा यह हाल कर दिया। मै अभी उन लोगो का लहू पीना चाहती हू। भैया, तुम अभी जाओ। उन दुष्टो को मारना ही तुम्हारा पहला काम होना चाहिए।"

खर ने तत्काल अपने चौदह सेनापतियो को बुलाकर आदेश दिया कि उसी क्षण राम-लक्ष्मण को मारकर उनके मृत शरीर ले आए। जिस औरत की बात शूर्पणखा ने अभी बताई थी, उसे भी खीचकर ले आए।

खर के चौदह सेनापति राम-लक्ष्मण को मारकर सीता को बलपूर्वक लाने के लिए चल पडे।

खेत मे कोई गधा आकर नुकसान करने लगे तो जैसे किसान लोग उसे

डडे से पीटकर भगा देते है, उसी प्रकार राम-लक्ष्मण ने शूर्पणखा को पर्ण-शाला से मारकर भगा दिया था। वाल्मीकि ऋषि ने इस घटना का सक्षिप्त रूप मे वर्णन करके छोड दिया है। किसी चर्चा के लिए स्थान नही रखा।

किंतु कवि कबन ने इस घटना को एक छोटे-से नाटक का ही रूप दे दिया है। उस नाटक मे सभी प्रकार के रस आ जाते है। कबन की रामायण मे इस भाग को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। वहा शूर्पणखा एक सुदरी युवती का रूप धरकर आती है। नदी-तट पर जब राम और सीता परस्पर मुग्ध होकर वार्तालाप मे लगे रहते है, तब वह पहले-पहल राम को देखती है। राम के मनमोहक रूप पर पागल हो जाती है। उन्हे बहकाने के लिए अपना राक्षसी रूप बदलकर मानव-रूप बनाकर बडी नम्रता से राम से वार्तालाप शुरू कर देती है। अपना परिचय देकर नाना प्रकार से राम को बहकाने लग जाती है। यहा तक कहती है कि सीता एक राक्षसी है। उसका यह असाधारण सौदर्य सच्चा नही है। उसे मारकर मेरे साथ गाधर्व-विवाह कर लो। फिर उसका आवेग बहुत प्रबल हो उठता है। सीता को वह जोर से डाटती है। जिस प्रकार बादल से बिजली लिपट पडती है उसी प्रकार सीता घबराकर राम से खूब जोर से चिपटकर खडी हो जाती है। राम शूर्पणखा को वहा से निकल जाने को कहते है, उसे चेतावनी देते है कि यदि तुम हटोगी नही तो लक्ष्मण कुछ-न-कुछ कर बैठेगे।

इसके बाद सीता को लेकर राम पर्णशाला मे आ जाते है। शूर्पणखा रातभर वही छिपी रहती है। सुबह उसने राम को पर्णशाला से बाहर सध्या-वदन करने के लिए आते हुए देखा। वह सोचने लगती है कि यह बहुत ही अच्छा अवसर है, सीता को मारकर राम की दृष्टि से उसे हटा दूगी तो मेरे कार्य की सिद्धि हो जायगी। वह सीधे पर्णशाला मे घुसती है। बाहर खडे लक्ष्मण पर उसका ध्यान नही जाता। जैसे ही वह सीता को पकडने गई, लक्ष्मण ने ललकारकर उसे रोका। तब वह सीता को छोडकर लक्ष्मण पर जा टूटी। लक्ष्मण अपनी तलवार खीचकर उसकी नाक-कान काट देते है और राक्षसी घोर हाहाकार करती हुई अपने असली राक्षस-रूप मे अपने

कुटुबवालो के पास पहुचती है। कहती है, "हे मेरे भाई रावण, हे राक्षसो के देव रावण, हे मेरे भतीजे इद्रजित, तुम लोगो के जीते-जी मेरे ऊपर यह कैसा अन्याय हो गया! देखते क्यो नही! तुम लोग सब मर गये क्या!" इस प्रकार चिल्लाती हुई वह खर के दरबार 'जनस्थान' मे पहुचती है।

यह कवि कबन का वर्णन है। आधुनिक पडित श्रीरामचद्र के कुछ कार्यो की टीका करते हुए कहते है कि राम का बालि को मारना, शूर्पणखा के रूप को विकृत करना, इत्यादि काम न्याय-विरुद्ध थे। हमारे देशवासियो की बुद्धि काफी तेज है, इसमे कोई शक नही, किंतु उनमे प्रेम और भक्ति-पूर्ण ज्ञान की बडी कमी है। राम मे वे दोष देखते है तो भले ही देखे। राम से भी बढकर वे अपना जीवन यदि बिताना चाहते हो तो राम के अच्छे गुणो का अनुसरण करे। जो अवगुण वे राम मे देखते हो, उन्हे स्वय न करे। इसमे किसी को कोई आपत्ति नही हो सकती। रामचद्र और रामभक्त ऐसे सपूर्ण सदाचारियो से सदैव प्रसन्न रहेगे।

: ४४ :

खर का मरण

'जनस्थान' से खर के चौदह सेनापतियो को साथ लेकर शूर्पणखा राम की कुटिया के सामने राम-लक्ष्मण से बदला लेने आ पहुची। सेनापतियो से उसने कहा, "देखो, वे खडे है राम और लक्ष्मण, आदमी के बच्चे, जिन्होने मेरी नाक काट डाली। नष्ट कर डालो इन दोनो को!"

राम ने लक्ष्मण को सीता की रक्षा मे तत्पर रहने की आज्ञा दी और स्वय धनुष-बाण ले सामने आकर खडे हो गये।

युद्ध-धर्म का पालन करते हुए उन्होने आक्रमण के लिए आनेवालो को अपना परिचय दिया और पूछा, "आप लोग यहा क्यो आये है? हमने तो

ऋषियो की रक्षा करने और उनकी हिसा करनेवाले राक्षसो को मारकर हटाने का व्रत लिया हुआ है। यदि आप लोग अपने प्राण बचाना चाहते है तो यहा से एकदम चले जाय।"

राक्षसो ने भी उसी प्रकार तेजी से उत्तर दिया और दोनो मे घोर युद्ध छिड गया। जरा-सी देर मे खर के सारे सेनापति राम के अचूक बाणो के शिकार होगये।

शूर्पणखा अपने भाई खर के पास दुबारा पहुची और विलाप करने लगी। जमीन पर लोटी हुई अपनी बहन से खर कहने लगा, "काल के दूतो जैसे वीर राक्षसो को मैंने राम को मारने के लिए भेज दिया है। अब तक राम उनके हाथो कभी का मारा गया होगा। अब तुम क्यो रो रही हो? जब तक मै जिदा हू, तुम्हारा कौन क्या बिगाड सकता है? आसू पोछ लो और उठ खडी होओ।"

शूर्पणखा उठ खडी हुई और रोना-धोना बद करके बोली, "भाई, मैं कहा इन्कार करती हू? तुमने जरूर चौदह वीरो को भेजा था, किंतु इस समय तो वे राम की कुटिया के सामने मरे पडे है। उनकी लाशे वहा है। मेरी बात का भरोसा न हो तो तुम आओ और देख लो। यदि तुम्हे अपने कुल का मान रखना हो तो इसी क्षण निकल पडो और राम से युद्ध मे विजय प्राप्त करो, वरना समझ लो कि हमारे कुल का नाश हो गया।"

शूर्पणखा की बाते खर के हृदय मे शूल की तरह चुभ गई।

"बहन, एक तुच्छ मनुष्य से तुम क्यो इतना डरने लगी हो! लो, यह मैं चला। एक ही क्षण मे तुम उस आदमी का खून पी सकोगी।"

"सुनो भैया, तुम अकेले मत जाओ, अपनी सेना को साथ ले चलो।" शूर्पणखा ने कहा।

और एक भारी राक्षस-सेना के साथ रथ मे बैठकर खर निकल पडा। जाते-जाते सबने अनेक अपशकुन देखे। लेकिन खर ने हंसकर अपने सैनिको से कहा, "इन अपशकुनो को देखकर आप लोग घबराये नही। आपने आज

तक कभी मुझे हार खाते देखा है ? हम उस कीडे के समान मनुष्य राम को दबाकर ही मार डालेगे ।"

उसके सैनिक, जो कुछ डर गये थे, खर के इन उत्तेजना देनेवाले वचनो से धीरज और उत्साह पाकर फिर आगे बढे । सेना का शोरगुल सुनकर राम-लक्ष्मण फिर युद्ध के लिए तैयार हो गये । राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, समझ लो कि 'जनस्थान' के राक्षसो का समय आ गया । अब इनसे निपट लेना होगा । तुम सीता को किसी गुफा मे बैठाकर शस्त्रो से सज्जित होकर द्वार पर खडे रहो । वहा सीता की रक्षा का ही ध्यान रखना । मै अकेला इन राक्षसो को देख लूगा । तुम मेरी चिता न करना । तुम जल्दी ही सीता को लेकर यहा से चले जाओ ।"

राम ने कवच पहन लिया और युद्ध के लिए तैयार होकर पर्णशाला के बाहर खडे हो गये । लक्ष्मण बडे भाई की आज्ञानुसार सीताजी को पर्वत की एक गुफा मे छिपाकर उनकी रक्षा मे तत्पर हो गये ।

ऊपर आकाश-मडल मे देव, गधर्व, सिद्ध और चारण राम-राक्षस-युद्ध देखने के कुतूहल से आकर जमा हो गये । उन्होने स्वस्ति वचनो द्वारा राम-चद्र की विजय की कामना की ।

ऋषिगण हैरान हो गये । सोचने लगे कि अकेले राम इतने बली राक्षसो का मुकाबला कैसे कर सकेंगे ! धनुष को लेकर अमित कातिमान् श्रीराम ऐसे खडे थे, मानो पिनाकपाणी भगवान् रुद्र स्वय खडे हो ।

राक्षस-सेना तेजी के साथ वहा आ पहुची । उनके सिंहनादो और धनुषो की टकारो से वहा का वायुमडल भर गया । राक्षस लडाई के समय के बाजे और ढोल बजाते आ रहे थे । जगली जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे । आकाश को जैसे बादल घेर लेते हैं, उसी प्रकार धनुर्धारी रामचद्र को राक्षस-सेना ने घेर लिया ।

देखते-देखते घमासान युद्ध छिड गया । राक्षसो के शरो से रामचद्र का सारा शरीर घायल हो गया । देवताओ को अब सचमुच चिता होने लगी कि राम ऐसे विशाल राक्षसो से कैसे बच सकेंगे !

पर राम के बाणो से हजारो राक्षस मरकर गिर पडे। खर का भाई दूषण स्वय राम पर आक्रमण करने लगा। राम अद्भुत तत्परता के साथ चारो ओर बाण छोड रहे थे। यह देख पाना अशक्य था कि कब वह बाण को तूणीर से निकालते थे और कब उसे छोड देते थे। जैसे तेजोमय सूर्य की चारो ओर किरणे निकलती है, रामचद्र के आठो ओर से चमकते हुए बाण राक्षसो की ओर जा-जाकर गिरते थे। उनके अचूक प्रहारो से आहत होकर राक्षस सैनिक रथो से मरकर गिरते। उनके रथो का बुरा हाल हो गया। रथ को खीचनेवाले घोडे और सेना के हाथी घायल होकर पृथ्वी पर गिरते जाते थे। राम के बाण आकाश-मार्ग से जाकर राक्षसो के शरीरो को बीध-कर उनके खून से लथपथ हो अग्नि-ज्वाला के समान चमकते हुए बाहर आते थे। सारी राक्षस-सेना नष्ट हो गई। काल-भैरव के समान राम मैदान मे अब भी खडे थे।

राक्षस दूषण ने अब भी राम को जीतने की आशा न छोडी। सेना की एक नई टुकडी के साथ उसने राम पर आक्रमण किया, लेकिन राम के बाणो से उसका रथ टूट गया और घोडे और सारथी हताहत हो गये। तब नीचे खडे होकर उसने दडायुध से राम के ऊपर प्रहार करने का यत्न किया। पर राम के अचूक बाणो ने उसकी दोनो भुजाओ को काट डाला और मरते हुए हाथी की तरह राक्षस पृथ्वी पर गिरकर निष्प्राण हो गया।

दूषण को मरा देखकर उसकी सेना के बचे हुए सारे सैनिक एक साथ राम को मारने दौडे, लेकिन वे भी एक-एक करके राम के कोदड से निकले बाणो के शिकार हो गये।

इस प्रकार राक्षस खर की सारी सेना नष्ट हो गई। जिस ओर से युद्ध का कोलाहल सुनाई दे रहा था उधर अब सन्नाटा छा गया। सारी भूमि राक्षसो की लाशो, टूटे शस्त्रो और रथो से पटी पडी थी। राक्षसो मे अब खर और त्रिशिर ये दो बच रहे थे। महाक्रोध से खर राम से द्वद्व-युद्ध करने चला, लेकिन त्रिशिर ने उसे रोका और कहा, "पहले मुझे जाने

दो। मै राम को मार गिराऊगा। यदि मैं भी दूषण की तरह लडते-लडते मर गया तब तुम आना।"

यो कहकर तीन सिरवाला राक्षस त्रिशिर रथ मे बैठकर राम के पास पहुचा और उन पर आक्रमण करने लगा। रामचद्र पर उसने बाणो की वर्षा कर डाली, पर राम ने बडी चतुराई से उन बाणो को रोक लिया और जवाब मे अपने बाणो का प्रयोग किया। हाथी और सिह की तरह दोनो एक-दूसरे पर गरज के साथ प्रहार करने लगे। अत मे त्रिशिर भी खून की फुहारें छोडता हुआ नीचे गिरकर मर गया।

खर का दर्प धूल मे मिल चुका था। फिर भी राम के साथ लडने का उसका निश्चय दृढ ही रहा। इधर-उधर बचे कुछ राक्षस हिरणो की तरह भागने लगे थे। उन्हे खर ने रोका और रथ में बैठकर राम के साथ युद्ध करने निकल पडा। दोनो मे घोर युद्ध छिड गया। दोनो के बाणो से आकाश ढक गया। खर महाकाल की तरह रथ पर चढकर रामचद्र पर शरो की वर्षा करता गया। रामचद्र एक क्षण के लिए अपने धनुष के महारे खडे रहे कि इतने मे खर के बाण उनके कवच पर आकर गिरे। कवच टूटकर उनके शरीर से अलग गिर पडा। अब उनका अति सुदर शरीर एकदम खुल गया। तब राम ने विष्णु-धनुष उठाकर उससे बाणो का प्रयोग प्रारभ कर दिया। वह दैवी धनुष था और चलानेवाले थे श्रीराम। खर का रथ टूटकर एक ओर जा गिरा। उसके हाथ से धनुष भी टूटकर गिर पडा। वह गदा से राम का मुकाबला करने लगा। देवता बहुत घबराये। हाथ जोडकर श्रीराम की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

राम ने अपने सामने खडे खर से कहा, "हे खर, निर्दोषो को सताना ही तेरा काम रहा है। हे दुष्ट, क्या तू नही जानता कि कितना ही बलिष्ठ क्यो न हो, दुष्ट व्यक्ति को एक-न-एक दिन मरना ही पडता है। व्रत पालनेवाले कितने ही निरीह तापसो को आज तक तूने मार डाला है। उसका फल तू आज पायगा। अपने पाप-कर्मो से तू जन-समुदाय का वैरी बन गया है। अपना नाश आज निश्चित समझ ले। तेरा अत देखने के लिए

उन ऋषियो की आत्माए, जिनकी तूने हत्या की है, ऊपर आकाश मे आकर इकट्ठी हो गई हैं। तेरे-जैसे कुकर्मियो को मार डालने का मैंने प्रण किया है और तू मेरे साथ लडने आया है। अच्छी बात है, भले ही तू मुझसे लड़ ले, लेकिन देखूगा कि मेरी मार से तू कैसे बचता है ?"

खर भी चुप न रहा। बोला, "हे मानवी कीडे, दशरथ के बच्चे, नीच मनुष्य होकर तुझमे इतना दर्प है ! सीधे-सादे गरीब राक्षसो को मारकर तू घमड मे फूल गया मालूम होता है। यदि तू सच्चा वीर होता तो अपनी बडाई आप कभी न करता। अच्छे कुल के क्षत्रिय कभी आत्म-प्रशसा नही करते। व्यर्थ बकवास छोड दे, और चल, लड मेरे साथ। तेरी वीरता का तो आज ही पता चल गया, जब तूने स्वय अपने मुह से ही अपनी तारीफ की ! जगल की घास जब जलने लगती है तो उसकी ज्वाला बहुत चमकने लगती है, हालाकि जरा-सी देर मे वह मिटनेवाली ही होती है। तेरा भी अत इसी प्रकार अब निकट ही है, ऐसा समझ। तभी तो तू यो बकने लगा है। मैं तुझे मारकर ही छोडूगा। अब शाम भी होनेवाली है। युद्ध के लिए ज्यादा समय नही बचा है। तुरत लडने को तैयार हो जा। देर न कर। जितने राक्षसो की तूने हत्या की है, मै उन सबका बदला लिये बिना थोडे ही रहूगा।"

यो कहकर राक्षस खर ने अपनी गदा को तेजी से घुमाते हुए राम के ऊपर फेकी। पराक्रमी राम ने अपने बाणो से उस गदा के दो टुकडे करके नीचे गिरा दिया।

"हे राक्षस, शात हो जा। आज तेरा मरण निश्चित है। आज से यहा पर ऋषि-मुनियो को आराम हो जायगा। यहा की धरती तेरे खून को चूसनेवाली है।" राम बोले।

राम इस प्रकार कह ही रहे थे कि खर ने पास के एक बहुत बडे साल वृक्ष को जड से उखाड डाला और दात पीसते हुए उसे राम के ऊपर जोर से फेका, पर राम ने उस विशाल वृक्ष को भी अपने बाणो से टुकडे-टुकडे कर डाला। अब तक राम आत्मरक्षा करते रहे थे। अब उन्होने देखा कि

खर को मारना ही होगा। उन्होने राक्षस पर बाणो की वर्षा कर दी। राक्षस बहुत घायल हो गया। उसके शरीर से खून की धारा बहने लगी। घावो की पीडा से क्रुद्ध होकर राक्षस राम पर एकदम टूट पडा। राम जरा रुके। उनके लिए धनुष चलाने की जगह न रही थी। वह कुछ कदम पीछे हटे और राक्षस खर की छाती पर इद्र-बाण चला दिया।

खर वही गिरकर तत्काल मर गया। देवताओ मे जयघोष उठा। उन्होने श्रीरामचद्र पर पुष्पो की वृष्टि की। इतने थोडे समय मे 'जनस्थान' के खर-दूषणादि समस्त राक्षसो का सामना करके उन्हे मारकर जो चमत्कार दिखाया, उसके लिए श्रीरामचद्र की उन्होने भूरि-भूरि स्तुति की। ऋषि-मुनियो के मन मे शाति हुई। राम को एक-एक ने आकर गले लगा लिया और आशीर्वाद दिया। पर्वत की गुफा से लक्ष्मण भी सीता को बाहर लाकर राम से बडे प्यार से मिले।

'देवी सीता और अनुज लक्ष्मण की आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। इससे रामचद्र के राक्षसो के रुधिर से सिचित पैर धुल गये।' यह सत कबन की कल्पना है।

कोई पूछ सकता है कि राम ने अकेले इतने राक्षसो के आक्रमण को कैसे रोका होगा ? हम सब जानते है कि अपने बछडे को बचाने के लिए गो-माता जब मनुष्यो की भीड मे हुकार करती हुई सीग मारने दौडती है तब सब लोग डर के मारे इधर-उधर भाग जाते है। सच्ची भावना हृदय मे हो तो वहा असाधारण बल और उत्साह की शक्ति अपने-आप आ जाती है। परमात्मा स्वय आर्त्तो की रक्षा के लिए लग जाय तो क्या चमत्कार नही हो सकता !

वाल्मीकि और कबन ने राम के रूप मे किये गये परमात्मा के अद्भुत चमत्कारो के वर्णन जगह-जगह किये है। कही-कही राम स्वय अमानुषिक शक्ति का प्रदर्शन करते है, कही-कही दैवी प्रसादो के कारण वह सफलता पाते है। यह सब होते हुए भी कवियो ने राम को अपने को ईश्वर समझकर कुछ कहते या करते नही दिखाया है। राम ने सदा अपने को एक

क्षत्रिय वीर ही समझा और उसके अनुसार धर्म और सत्य का पालन किया। अपने को उन्होने एक धर्मनिष्ठ, तत्पर और असीम शक्तिवाला जितेद्रिय ज्ञानी पुरुष ही सिद्ध किया है।

: ४५ :

रावण की बुद्धि भ्रष्ट

रामचद्र से डरकर और अपने प्राण बचाने के लिए कुछ राक्षस भाग निकले थे। उनमे से एक का नाम था अकपन। वह सीधा लका मे रावण के पास पहुचा। रावण से कहने लगा, "जनस्थान मे हमारे परिवार के लगभग सब-के-सब लोग मारे गये। जनस्थान अब रहा नही। मै किसी तरह अपने को बचाकर आपको समाचार देने के लिए आया हू।"

यह सुनकर रावण आगबबूला हो गया। पूछने लगा, "वह कौन है, जिसने मेरे सुदर जनस्थान का सत्यानाश कर डाला? वह यम था क्या? या अग्नि? अथवा स्वय विष्णु ने यह काम किया? मै यम को मार सकता हू। अग्नि और सूर्य दोनो का एक साथ नाश करूगा। वायु को चलने से रोक दूगा। मेरे रहते हुए जनस्थान की सुदरता बिगाडने की हिम्मत किसे हुई? मुझे अभी बताओ!"

राक्षसेद्र का क्रोध देखकर अकपन थर-थर कापने लगा। बोला, "मुझे अभयदान दे, महाराज! आपको सारा हाल बताऊगा।"

उसने रावण को सारा वृत्तात इस प्रकार सुना डाला, "अयोध्या का राजकुमार राम बडा पराक्रमी और वीर है। सिह के समान गभीर और यशस्वी मनुष्य है वह। उसके समान आज तक दूसरा कोई नही हुआ। पचवटी मे खर और दूषण दोनो भाई उसके साथ लडाई मे मारे गये।"

यह सुनकर रावण काले नाग की तरह आवेश मे आ गया। बोला,

"क्या बक रहा है तू ? कौन है वह राम ? क्या देवगणो के साथ इद्र उसकी सहायता के लिए आये थे ?"

"राजाधिराज, यही तो खूबी है। राम के साथ दूसरा कोई नही था। हमारी सारी सेना तथा दलपति खर और दूषण को अकेले राम ने मार डाला। उसके बाणो ने विषैले पचमुखी सर्प की भाति किसी को भी न छोडा। सबको मारकर शात हुए।" यो कहकर अकपन ने श्रीरामचद्र के पराक्रम का विस्तृत वर्णन किया। अत मे कहा कि आजकल राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन मे वास कर रहा है। युद्ध मे राम ने किसी की मदद नहीं ली।

अकपन के वर्णन से रावण का क्रोध और भी भडक उठा। उसने कहा, "देखता हू, मेरे साथ वह कीडा कैसे लडता है! मै इसी क्षण वहा पहुचता हूं।"

अकपन ने रावण को रोककर कहा, "नही, आप वहा न जाय। राम एक अद्भुत पराक्रमी व्यक्ति है। उससे लडकर विजय पाना किसी के लिए भी सभव नही हो सकता। आपसे भी नही हो सकेगा। आपने मुझे अभय वचन दिया है, इसलिए साफ-साफ बताने की धृष्टता करता हू। राम को मारने का एक ही उपाय है। राम के साथ उसकी स्त्री है। ओह, उसकी सुदरता का मै क्या वर्णन करू! तीनो लोको मे वैसी सुदर स्त्री शायद ही कही देखने मे आयगी। किसी उपाय से उसे उठा लाओ। राम उसके वियोग से तडपकर मर जायगा, इसमे कोई शक नही। पत्नी पर उसका प्यार बहुत ही अधिक है—प्राणो से भी बढकर। मेरी बात माने। आप युद्ध करने न जाय। मेरे बताये हुए उपाय से राम का प्राण-हरण करे।"

अकपन के मुह से देवी सीता के सौदर्य का वर्णन सुनकर रावण के मन मे सीता को पाने की कामना पैदा हो गई और वह बढने लगी। उसने कहा, "अच्छा, अकपन, तेरी बात मान लेता हू। कल ही रथ पर चढकर सीता का हरण करने यहा से निकल पडूगा।"

० ० ०

दूसरे ही दिन रावण खच्चरोवाले अपने रथ पर बैठकर आकाश-मार्ग

से पचवटी की ओर चल पडा। उसका रथ सोने का बना हुआ था। बादलो के बीच मे से जब वह गुजरता था तब बिलकुल चाद-जैसा दिखाई देता था। रावण पहले अपने सबधी मारीच के पास गया। मारीच ने एक आश्रम बना रखा था। उसी मे वह रहता था। रावण को अपने घर पर एकाएक आया देखकर मारीच उठ खडा हुआ और राजा का यथोचित सम्मान करके पूछा, "आपका यो अचानक कैसे आना हुआ?" रावण ने उत्तर दिया, "प्रिय मारीच, मै तुम्हारी शरण मे आया हू। मेरा काम तुमसे ही बनेगा। तुम्हे शायद अब तक मालूम हो गया होगा कि जनस्थान का नाश हो गया। वहा की हमारी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। यह सब दशरथ के लडके राम ने किया है। उसका बदला लिये बिना मै नही रह सकता। उसकी स्त्री सीता को उडा लाने की मै सोचता हू। उसके लिए बस मुझे उपाय बताओ। ऐसे कार्यो मे तुम्हारी बुद्धि खूब चलती है।"

मारीच ने उसे ऐसा करने से रोकते और समझाते हुए कहा, "रावण, तुम्हारे किस वैरी ने मित्र का बहाना करके तुम्हे ऐसा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया है! यह तो तुम अपने लिए सर्वनाश का द्वार ही समझो। ऐसा काम कभी मत सोचना। जिस किसी ने भी तुम्हे सीता के हरण करने की सलाह दी है, वह अवश्य ही राक्षस-कुल का अत चाहनेवाला होगा। भला कोई जान-बूझकर साप के मुह मे हाथ डालेगा? तुम वापस घर लौट जाओ, अपनी पत्नियो के साथ आराम से रहो। राम की स्त्री को पाने की पागलपन-भरी इच्छा मत करो। बुरी तरह मारे जाओगे। राम के क्रोध को छेडोगे तो हमारा एक भी व्यक्ति यहा जीवित न रह सकेगा।"

दशग्रीव रावण ने मारीच की बात मान ली। वह वापस लका चला गया। उसे मारीच की बात ठीक लगी। सभव है उसे याद आ गया हो कि जब ब्रह्मा से उसने अमरत्व का वरदान मागा था तब उसने मनुष्य के हाथ से अमरत्व नही मागा था। हो सकता है कि जनस्थान मे खर-दूषण आदि का जो बुरा हाल हो गया था, उसका विचार करके सचेत हो गया हो, किंतु विधाता ने बात यही समाप्त न करनी चाही।

रावण अपने सिहासन पर बैठा हुआ था। उसकी काति घी से प्रज्वलित अग्नि की भाति चमक रही थी। अब तक उसने किसी से भी हार नही खाई थी। देवासुरो के युद्ध मे शामिल होते रहने के कारण उसके शरीर मे कई घावो के निशान थे। कभी चक्रायुद्ध से, कभी हाथियो के दातो से हुए घावो से उसके शरीर की शोभा और भी बढ गई थी। उसके बल-पराक्रम या कुकर्मों की कोई सीमा न थी। देवताओ को सताने मे, यज्ञ-हवनो को बिगाडने मे अथवा पर-स्त्रियो पर जोर-जबरदस्ती दिखाने मे उसका कोई सानी न था। देवासुर गण उसके नाम-मात्र से कापने लगते थे। दूसरो के दु ख मे उसे आनद आता था। उसके ऐश्वर्यो का क्या कहना था! राजा कुबेर से बढ-चढकर धन-सपदा उसके पास थी और वह लका मे बिना मृत्यु के भय के मनमानी रीति से राज्य करता था। उसके दस मुख थे। उन दसो मुखो पर लबी-लबी आखे थी। उसके शरीर के अन्य अग भी ठीक हिसाब से बने थे और बलयुक्त थे। बहुमूल्य वस्त्रो तथा आभूषणो से सुसज्जित होकर दरबार मे वह बैठा था। उसके दोनो ओर उसके सचिव-गण अपने-अपने आसनो पर बैठे थे। एकाएक सबको ऐसा लगा, मानो भूकप आ गया हो। भूकप-जैसी भयकर शूर्पणखा भडभडाती हुई सीधे सिहासन के सामने अपने भाई रावण से अपना दुखडा रोने चली आ रही थी। उसकी नाक और दोनो कान कटे हुए थे। वैसे भी वह बहुत कुरूपा तो थी ही, पर नाक-कान कट जाने से और भी भद्दी लग रही थी।

सबके सामने ही वह अपने भाई रावण को फटकारने लगी, "अरे मूर्ख रावर्ण, तू तो बडा प्रसन्न दिखाई दे रहा है। मालूम होता है कि अपनी धन-दौलत और आमोद-प्रमोद के सिवाय तुझे और किसी बात की चिन्ता ही नही है। अपने मे ही मस्त जान पडता है। पर तू कोई सामान्य व्यक्ति नही, जो अपनी सपत्ति के घमड मे फूलकर बैठा रहे। तू तो राजा है! और राजा को चाहिए कि वह आनेवाली विपत्ति को पहले से ही मालूम कर ले और उसे रोके। तू तो सिर पर आफत आने पर भी बडे निश्चित भाव से बैठा हुआ है। अपने ही आराम मे मस्त रहनेवाले राजा को प्रजा कभी नही

चाहेगी। तुझे इस बात का घमड हो गया है कि ब्रह्मा ने तुझे देवासुर-दानवो से अमरत्व का वरदान दे दिया है। पगले कही के ! उसी से सतुप्ट न हो जा। यदि तू अपने राज्य की देखभाल मे उदासीनता दिखायेगा तो तेरा राज्य कभी नही टिक सकता। तुझे सदा अपने भेदियो द्वारा राज्य के कोने-कोने की खबरो से जानकारी रखनी चाहिए, नही तो तेरे राज्य का अवश्य ही सत्यानाश हो जाएगा। तुझे इसका बिलकुल पता नही कि जन-स्थान मे, तेरे राज्य मे, क्या-क्या हो गया ! बडे आराम से सिंहासन पर बैठा हुआ तू मौज कर रहा है और वहा पर तेरा बधु-बाधव कोई भी नही बचा। समझ ले कि अब तेरा भी समय आ गया। शत्रु तो तुझे मारने के लिए दाव देख रहे है। तेरे सचिवो को हो क्या गया है ? ऐसे अविवेकी मत्री मैंने आज तक नही देखे। क्या तुझे मालूम है कि हमारे बधु, जिनसे वैरी सदा कापते रहे, और जो तेरी आज्ञा से जनस्थान की देखभाल करते थे, आज मरे पडे है ? जरा तो सोच ! जनस्थान की हमारी सेना का आज नामोनिशान नही रहा। राम नामक एक मामूली-सा आदमी है। उसने अकेले ही, बिना रथ के, बिना हाथी के, यह असभव-सा काम कर डाला है। तुझे यह सुनकर शर्म नही आती क्या ? देख तो तेरी बहन का क्या हाल हो गया ! फिर भी यह नही पूछ रहा कि यह सब कैसे हुआ ! अब तो ऋषि-मुनियो को राम ने अभयदान दे दिया है। तुझसे अब वे डरकर छिपेंगे नही। अब तक तू यही समझता रहा है कि तेरे-जैसा पराक्रमी तीनो लोको मे कोई हो नही सकता। पर अब यह बात नही रही। तेरे नाश का समय आ गया। अब प्रजा का तुझ पर से भरोसा हट जायगा। जैसे जीर्ण वस्त्रो को लोग उतारकर फेक देते है, वैसे ही अब प्रजा तुझसे थककर तुझ राज्य से भगा देगी।

"राजा वही है, जो अपने गुप्तचरो द्वारा राज्य की सारी बातो से परिचित रहता है और आलस्य-रहित होकर समय पर जो काम करना चाहिए, उसे करता रहता है। पर तेरे गुप्तचर निकम्मे है। तुझे इस बात की बिलकुल परवाह नही है कि राक्षसो का क्या हाल हो रहा है ! तुझे गुस्सा

भी तो नही आ रहा। जिस राजा को क्रोध नही आता, वह राजा कैसा ?

"खर, त्रिशिर और दूषण को मारनेवाले राम के एक स्त्री है। उसका नाम है सीता। वह अकेली राम के साथ रह रही है। उसकी सुदरता का क्या बखान करू ? देव-गधर्व, यक्ष, किन्नर मनुष्य आदि मे मैने उसके-जैसा रूप आज तक नही देखा। तेरे लायक स्त्री वही है। जैसे ही मैने उसे देखा, मुझे सूझा कि यह तो मेरे भाई के ही योग्य है। मेरा तो राक्षस-स्वभाव ठहरा ! मन मे किसी बात की इच्छा पैदा हुई नही कि तत्काल उसे पाने के प्रयत्न मे जुट गई। तेरे लिए मैने सीता को उडा लाने का प्रयत्न किया। पर राम का भाई लक्ष्मण पास ही खडा था। उसने एकदम तलवार खीच-कर मेरी यह हालत कर दी। मेरा ऐसा अपमान तेरे कारण ही हुआ है। अब तुझे बदला लेने की सूझती हो तो इसी क्षण मेरे साथ निकल पड !

"यदि अपनी बहन के लिए कुछ नही करना चाहता तो भी, अपने ही लिए सीता को पाने का प्रयत्न तो तू अवश्य ही कर। भला यह कैसे हो सकता है कि सीता-जैसी सुदरी रावण के अतिरिक्त और किसी की भार्या बनकर रहे ? यदि तू सीता को उठा लायेगा तो वही राम के लिए योग्य दड होगा। उससे हमारे मृत वीरो की आत्माओ को भी कुछ सान्त्वना मिल सकेगी। अपनी शक्ति को तू भूल गया जान पडता है, पर सीता को पाना तेरे लिए बहुत ही सरल काम है। अपने कुल का जो अपमान हुआ है, उसका बदला चुकाने का यही मौका है। खर, दूषण और त्रिशिर का वध हो गया है, इसका विचार कर। मेरा जो अपमान हुआ, उसे तू अपना ही समझ। अपनी सगी बहन के अपमान पर भला तू चुप कैसे रह सकता है ? अपने गौरव की तू रक्षा कर।"

शूर्पणखा ने अपना लबा व्याख्यान समाप्त किया।

रावण का दिमाग सारी बाते सुनकर चकराने लगा। जब से उसने सीता की सुन्दरता के बारे मे सुना उसका चित्त और कही लगा ही नही। उसने सभा विसर्जित कर दी और एकात मे जाकर सोचने लगा। मारीच ने जो सलाह दी थी, वह भी उसे याद आई। खूब सोच-विचारकर अत मे वह

एक ही निर्णय पर पहुचा। वाहनशाला मे गया और सारथी से वाहन तैयार करने के लिए कहा। बोला, "एक जगह जाना है। बहुत जल्दी पहुचना जरूरी है। किसी को बताना नही।" पैशाचिक मुखवाले मोटे-ताजे खच्चरो को सोने के रथ मे जोतकर सारथी ने रावण के आकाशगामी वाहन को सामने खडा कर दिया। रावण उस पर सवार होकर नदी, पहाड, समुद्र और नगरो को पार करता हुआ गगन-मार्ग से जाने लगा। नीचे वसतकालीन प्राकृतिक दृश्यो से उसकी कामवासना तीव्र होती गई।

वह मारीच के आश्रम मे पहुचा। नियम और आचार से युक्त जटा-वल्कल-धारी मारीच का उसने यथोचित अभिवादन किया। मारीच रावण का सबधी था। मारीच ने प्रश्न किया, "हे राजा, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये दुबारा मेरी कुटिया मे कैसे पधारे ?"

रावण भी वाक्पटु तो था ही। उसने कहा, "मारीच, मै भारी सकट मे फसा हू। तुम्ही मेरी रक्षा कर सकते हो। तुम्हारी शरण मे आया हू। मेरी अनुमति से मेरे दोनो भाई जनस्थान मे राज करते थे, यह तो तुम जानते हो। इतने दिनो से अपने लोगो के साथ वे शातिपूर्वक वहा राज्य कर रहे थे, पर हाल ही मे राम नाम के एक आदमी ने खर, दूषण, त्रिशिर और उनकी सारी सेना का खात्मा कर दिया है। एक मामूली आदमी ने बिना रथ, बिना किसी वाहन और बिना किसी बाहरी सहायता के हमारे सारे कुल का नाश कर डाला। कहते है कि दडकारण्य मे ऋषि लोग अब चारो ओर बेखटके घूम रहे है। यह भी सुनने मे आता है कि राम को उसके पिता ने राज्य से भगा दिया है। वेश उसने तापसो का बना रखा है और अपनी पत्नी के साथ जगल मे रहता है। इद्रिय-निग्रह तो क्या करता होगा। बडा नीच और दुष्ट मालूम होता है। क्रूर भी बडा है। बिना किसी कारण के मेरी बहन के उसने नाक-कान काट डाले। इससे बुरी चीज और क्या हो सकती है ? बेचारी शूर्पणखा मेरे पास आकर रोने लगी। यह सब देखते हुए भी यदि मैं चुप रहू तो मै राजा कैसा ? मैं राम से बदला लिये बिना न रहूगा। दडकारण्य से उसकी स्त्री को अवश्य ही उठा लाऊगा।

अब यह मेरा धर्म हो गया है। तुम्हे मेरी मदद करनी होगी। तुम हो ही, मेरे दो भाई और है। फिर मुझे डर किस बात का ? शौर्य, बल, युक्ति और माया मे तुम्हारी बराबरी कौन कर सकता है ? इसीलिए मै तुम्हारे पास आया हू। इन्कार मत करना। मेरी बात सुनो। तुम एक सुनहरे हिरण का वेश बनाओ। तुम्हारी सुनहरी खाल मे चादी की चमकती बिंदिया होगी। बहुत ही लुभावना रूप धरकर राम की कुटिया के आस-पास घूमना। तुम्हारी मनमोहक चाल और आखो को देखकर सीता को तुम्हे पकडकर अपने पास रखने की इच्छा होगी। वह तुम्हे पकड लाने के लिए राम और लक्ष्मण को, अवश्य अपने पास से भेज देगी। बस उसी समय उसका हरण कर लेने का मुझे अवसर मिल जायगा।

"सीता अनुपम सुदरी है। उसे खोने के शोक मे राम दुर्बल हो जायगा। ऐसी हालत मे मै उसे आसानी से मारकर बदला ले लूगा और प्रसन्न होऊगा।"

मारीच ने रावण की बात सुनी। उसका गला सूख गया। मुह से बोल न निकल पाया। रावण की ओर देखता-भर रहा। मारीच को रामचद्र की शक्ति का अनुभव पहले ही हो गया था और उसने अपना जीवन सुधार लिया था। तप एव व्रतादि के पालन से उसमे भगवद्-भक्ति आ गई थी। उसने देखा कि रावण गलत दिशा मे जा रहा है। वह समझ गया कि रावण के गले मे यम का फदा पड चुका है। बस, खीचने-भर की देर है। रावण ने अपने कुल के गौरव, राज्य-नीति, शूर्पणखा के प्रति अन्याय आदि की कई बाते कही थी, किंतु सच यह है कि उसका मन एक ही चीज मे अटका हुआ था—सीता को किसी-न-किसी प्रकार उडा लाना। मारीच यह समझ गया।

० ० ०

हम शूर्पणखा की वृत्ति को भी देखे। कामोन्मत्त हो जाने से उसके ऊपर सकट पडे। उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूप बनानेवाला तो असल मे लक्ष्मण था। फिर भी वह लक्ष्मण से नही चिढी। उसका राम के प्रति

मोह था। सीता के कारण उसकी इच्छा सफल नही हुई। उसने अपने को यो समझाया कि सीता न होती तो राम उसका हो जाता। सीता के गर्व को भग कर उसने बदला लेना चाहा। रावण के दुर्बल मन को वह खूब अच्छी तरह जानती थी। सीता के सौदर्य का वर्णन करके रावण के मन मे उसने बहुत बडा प्रलोभन पैदा कर दिया। और भी उसने हजार बाते कही थी, किंतु वे तो यो ही थी। पर अत मे उसने रावण के मन मे काम-वासना जागृत करानी चाही और वह उसमे सफल हुई। रावण उसके बिछाये जाल मे फस गया।

: ४६ :

माया-मृग

मारीच रावण की बाते सुनकर थोडी देर चुप रहा। फिर बोला, "हे रावण, राक्षसो के राजा, तुम्हारी बाते मैने सुन ली। उससे मुझे बडा दु ख हो रहा है। मन को अच्छी लगे, ऐसी सलाह देना बहुत आसान होता है, किंतु अप्रिय सलाह देने का साहस प्रायः कोई नही करता। यदि कोई दे भी तो सलाह लेनेवाला उसका पालन नही करता। जो हो, मै हित की दो बाते कह देना चाहता हू। मैं नही चाहता कि तुम्हारे सामने तुम्हे जो अच्छी लगे, वैसी बाते करके, तुम्हे गलत सलाह दू और अपने को बचा लू।

"राम के बारे मे अभी तुमने कुछ बाते कही। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हे भ्रम हुआ है। मूर्खो की बाते सुनकर धोखे मे मत आओ। राम बहुत ही उत्तम गुणोवाला वीर पुरुष है। उसका क्रोध मोल लोगे तो तुम्हारा सारा कुल और लकापुरी का नाश अवश्यभावी ही समझना। कही ऐसा तो नही है कि ब्रह्मा ने सीता को तुम्हारे नाश के लिए ही बनाया हो? मुझे तुम्हारी बाते जरा भी पसद नही आई। ससारभर के राक्षस तुम्हारे कारण

मर मिटेंगे। जिमने तुम्हे ऐमा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया, वह अवश्य ही तुम्हारा कोई दुश्मन होगा।

"राम ने कोई गलती नही की थी, जिमसे उमे राज्य छोडना पडा। तुमने जो कुछ उमके बारे मे कहा है, सब गलत है। उसके पिता ने अपनी पत्नी को वचन दे दिया था। उमका पालन राम के वन गये बिना हो नही सकता था। राम ने अपनी इच्छा से राज्य-त्याग कर वनवास का व्रत लिया है। वह धर्म का अवतार और इद्रियो को वश मे रखनेवाला है। देवो मे इद्र के समान राम मनुष्यो मे अग्रगण्य है। ऐसे महान् व्यक्ति की पत्नी पर तुम कैसे बुरी निगाह डाल सकते हो? यह असभव बात है। सीता कभी तुम्हारे वश मे नही होगी। सूर्य को बहकाकर उसका तेज कही चुराया जा सकता है? जनकसुता देवी सीता की पवित्रता पर तुम हाथ नही लगा सकोगे। ऐमी धृष्टता की बात मन से दूर कर दो, नही तो तुम जलकर राख हो जाओगे। राम के बाणो की बलि मत बनो। राम को अपने लिए क्यो काल बनाना चाह रहे हो? वह सीता-रूपी अग्नि की रक्षा कर रहा है। उमे छेडकर सर्वनाश की ओर मत जाओ।

"और सुनो। बिना सोचे-समझे क्यो किसी काम मे हाथ डाल रहे हो? राम को युद्ध मे तुम कदापि नही जीत सकते। मेरा कहना मान जाओ। मै भी किसी जमाने मे अपने देह-बल के दर्प मे बहुत अत्याचार करता फिरता था। ऋषियो को मारकर उनका मास खाता रहता था। एक समय ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ को बिगाडने के लिए पहुचा था। उस समय राम बालक ही थे। ऋषि उन्हे अपने यज्ञ की रक्षा के लिए बुला लाये थे। यज्ञ की अग्नि को मैं बुझाने लगा तो मुझे राम का एक ऐसा बाण लगा कि मै क्या बताऊ। उसके वेग से मैं बहुत दूर समुद्र-तट पर जा गिरा। वहा पर काफी समय तक बेहोश पडा रहा।

"राम को अपना दुश्मन मत बनाओ। तुम्हे कमी किस बात की है? अपार धन के तुम स्वामी हो। भोगो मे मस्त राक्षसो को क्यो व्यर्थ मे मरण की ओर घसीटते हो? सीता को पाने की झूठी लालसा मे आकर वैभव-

शालिनी लका को क्यो खडहर बना देना चाह रहे हो ? मै तुम्हारी बाते सुनकर अभी से राक्षसो के आर्तनाद और जलती लका की कल्पना कर रहा हू। देखो, अब भी समय है। सर्वनाश से अपने को बचा लो। तुम्हारी पत्निया एक-से-एक बढकर सुदर हे। सीता पर अपना मोह छोड दो।"

मारीच ने रावण को हिताहित की बहुत-सी बाते बताई, पर रावण कहा माननेवाला था ! उसे मारीच का उपदेश पसद नही आया। जैसे रोगी को दवाई नही भाती, उसी प्रकार रावण को भी मारीच के सदुपदेश अच्छे नही लगे। शूर्पणखा ने उसके मन मे सीता के प्रति विकार जो पैदा कर दिया था। अत मारीच की बातो पर उसने ध्यान ही नही दिया। कहने लगा, "कोई राजा जब किसी से सलाह मागे तो उसे सलाह देना उचित ही है, पर मै तुमसे सलाह लेने थोडे आया हू ! मैने एक काम करने का मन मे निश्चय कर लिया है। उसमे मुझे तुम्हारी मदद चाहिए, सलाह नही। फिर तुम यह भूल गये कि मै तुम सबका राजा हू। मैं जो चाहू, वही मुझे मिलना चाहिए।

"यह समझ लो कि मै अपना विचार नहीं बदलूगा। मेरा-जैसा पराक्रमी यदि राम-जैसे अधम एव मूर्ख मनुष्य से, जो अपने राज्य से भागा हुआ हो, बराबरी का युद्ध करे तो वह बडी शर्म की बात होगी। इसी कारण मै राम के सामने खडा होकर नही लडना चाहता। राम की पत्नी का हरण करके राम के दभ को ठीक करना ही उसके लिए योग्य सजा होगी। अब मुझे उपदेश देना बद करो और मैं जो कह रहा हू वह करने मे लग जाओ।

"सुनो, तुम एक सुदर-से मृग का वेश बनाकर सीता का ध्यान अपनी ओर खीचो। बस, यही मै तुमसे चाहता हू। सुवर्ण की कायावाले मृग को पकड़ लाने के लिए सीता राम को अवश्य भेजेगी। तब तुम राम को बहुत दूर तक भगा ले जाना। तुम छल-विद्या मे निपुण हो। जब बहुत दूर निकल जाओ तो बिलकुल राम की आवाज मे खूब जोर से पुकारना, 'हे सीते ! हे लक्ष्मण !' राम की ऐसी आवाज सुनकर सीता बहुत घबरायेगी। सोचेगी

कि राम किसी विपदा मे फस गया है। वह राम की मदद के लिए लक्ष्मण को भेज देगी और मेरा दाव लग जायगा। मैं तत्काल मीता को उठाकर ले आऊगा और लका मे छिपा दूगा। तुम्हे यह काम करना ही होगा। बोलो, 'हा' या 'नही'। यदि 'नही' कहोगे तो मै अभी तुम्हारा मिर उडा दूगा।"

मारीच ने देख लिया कि रावण किमी प्रकार से माननेवाला नही है। उसने सोचा कि अब रावण का अत बहुत निकट है। तो फिर इस पाखडी के हाथ से क्यों मरू ? दुश्मन के हाथो मरनेवाला अमर पद पाता है। राम राक्षस-कुल का वैरी है। उमी पुण्यात्मा के हाथो मरना अधिक अच्छा होगा। इस प्रकार निराश होकर मारीच रावण से बोला, "ठीक है। जैसा तुम कहते हो वैमा ही करूगा, क्योकि तुम्हारी बात न मानू तो तुम मुझे मार ही डालनेवाले हो। इसलिए जब मरना ही निश्चित है तो राम के हाथो ही मरना पसद करूगा। यह न सोचना कि उसके बाद तुम बहुत दिन तक जीवित रहोगे। तुम भी मरनेवाले हो। तुम्हारी लका भी खत्म होनेवाली हैं। तुम्हारे इस वैभव से किसी को ईर्ष्या हुई है। उसके कारण ही तुम्हे ऐसा काम करने की बुरी सलाह दी गई है। और तुमने भी उस सलाह को मान लिया ! लेकिन मेरा क्या ? मैं तो मरने को तैयार हो गया। चलो, जहा ले जाना चाहो, मै तैयार हू।"

रावण बहुत खुश हो गया। मारीच का आलिंगन करके बोला, "अब तुम सही रास्ते पर आये।"

० ० ०

दोनो जने गगनगामी रथ पर सवार हुए और रथ दडकारण्य की ओर आकाशमार्ग से चलने लगा। कई नगरो, पहाडो, नदियो और राज्यो को उन्होने पार किया। फिर वे दंडकारण्य के ऊपर उडने लगे। केले के बाग के बीच राम का छोटा-सा आश्रम उन्हे दिखाई देने लगा।

रावण ने विमान को नीचे उतारा और मारीच को बताया, "देखो, वह राम का आश्रम मालूम होता है। जैसा मैंने बताया है, वैसा ही करो। सब याद है न ?"

मारीच तब तक अपना असली रूप छिपाकर माया-मृग बन गया था ।

उस माया-मृग के रूप का क्या वर्णन करे ! उसके अग-अग मे विशेषता थी । रग-बिरगे इद्रधनुष की भाति उसका शरीर दमकता था । सोना, चादी, हीरा और माणिक आदि के समान उसकी खाल चमकने लगी । 'कनकदेह मनिरचित'—ऐसे अद्भुत लावण्यवाले हिरण को कभी किसी ने देखा न था । आश्रम के बहुत पास जाकर आगे-पीछे, इधर-उधर वह छली मृग घूमने लगा । कभी चलता, तो कभी बैठता । कभी उछलकर भागने लगता तो कभी चुपके से घास चरने लग जाता । अन्य मृगो के झुड मे कभी-कभी शामिल हो जाता, तो दूसरे असली मृग उसे सूघकर कुछ शका करने लग जाते । उस समय वह चतुराई से अलग हो जाता ।

सीता अपने आश्रम मे फूल तोड रही थी । एकाएक उनकी दृष्टि इस कपटी हिरण पर पडी । उसके रूप और लावण्य से वह ऐसी मुग्ध हो गई कि अपनी आखे उस पर से हटा न सकी । मृग भी अब इधर-उधर दौडकर, खडे होकर, देखकर अपनी छवि विशेष रूप से प्रदर्शित करने लगा ।

"राम, जल्दी मे आना । लक्ष्मण, तुम भी आओ । जरा देखो तो सही ! हमारे आश्रम के बिलकुल पास ही कैसा सुदर हिरण खेल रहा है । कही भाग न जाय ! जल्दी आओ दोनो ।"

राम-लक्ष्मण दौडकर आये और माया-मृग को देखकर विस्मित हो गये ।

लक्ष्मण को कुछ सदेह हुआ । उनको यहा तक लगा कि यह राक्षस कही मारीच ही न हो ! क्योकि बहुत वर्ष पूर्व मारीच हिरण का रूप धरकर छिपा रहता था और जो जगल मे शिकार खेलने आते थे उन्हे मारकर खा जाता था । लक्ष्मण ने कहा, "इस मृग का रूप स्वाभाविक नही मालूम पड़ता । यह अवश्य ही कृत्रिम है । इसमे कुछ छल हो सकता है ।"

लक्ष्मण की बात पर सीता ने ध्यान न दिया । उस माया-मृग पर से सीता की दृष्टि अथवा मन किसी दूसरी चीज पर खीचना असभव था । सीता राम से कहने लगी, "सुनिये, किसी तरह भी इस मृग को पकड लाइये । इससे यहा आश्रम मे हमारा दिल बहल जायगा । आज तक हम

लोगो ने अपने राज्य मे अथवा वनो मे जितने प्राणी देखे, उन सबसे अधिक सुदर है यह। वह देखिये, कैसा मन लुभानेवाला रग है उसका! कैसे-कैसे करतब दिखा रहा है!

"अब तो हमारे अयोध्या लौटने के अधिक दिन नही रहे है। मै सोच ही रही थी कि यहा से कौन-सी अनोखी वस्तु अयोध्या ले जाय। बस, अब इस मृग को मैने देख लिया। भरत भैया को मै इसे भेट करूगी। उन्हे यह बहुत ही पसद आयगा।"

सीता ने देख लिया कि मृग को पकड लाने के लिए लक्ष्मण को बिलकुल उत्साह नही है, इसलिए उन्होने सीधे राम से ही कहना शुरू किया कि किसी-न-किसी उपाय से उस मृग को वह अवश्य पकड लाए।

हमारे बधु-बाधुवो मे से जब कोई हमारा काम करने से इन्कार कर देता है, तो वह हमे चाहे कितना ही प्यारा क्यो न हो, हम उस पर क्रोध करने लग जाते है। सीता लक्ष्मण से चिढने लगी। राम से बोली, "देखिये, उसके शरीर से सोना चमक रहा है। चादी की बिंदिया कितनी सुदर लग रही है! यह पकडने मे भी न आये तो भी इस पर बाण चला दीजिये। इसका चर्म ही हम अयोध्या ले चलेगे। नीचे बिछायेगे तो कितना सुदर लगेगा! देखो, वह भाग रहा है! यहा से निकल जाय उससे पहले या तो जीवित अथवा मरा यह मृग मुझे जरूर चाहिए। उसके सीग देखे आपने? मुझ पर अप्रसन्न न हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करे।"

सीता की असाधारण इच्छा देखकर राम ने सोचा—क्या हानि हो सकती है? यह यदि सच्चा मृग हो तो हम सबको आनद ही मिलेगा। यदि कोई राक्षस छल कर रहा हो तो उसे मार डालूगा। सीता की एक मामूली-सी इच्छा क्यो न पूरी करू? यह सोच लक्ष्मण से बोले, "भाई लक्ष्मण, मेरा धनुष-बाण लाकर देना। चिंता न करो। सीता की रक्षा ध्यान से करते रहना। यदि कोई राक्षस हमे धोखा देना चाह रहा होगा तो जैसे वातापि को अगस्त्य ने खत्म किया था, वैसे ही मैं भी इसे सीधे यमलोक पहुचा दूगा। यदि वैसा न हो और यह सच्चा मृग ही हो तो और भी अच्छा।"

लक्ष्मण की तनिक भी इच्छा न हुई। फिर भी बडे भाई के आदेश का उल्लघन कैसे करते ? चुपचाप धनुष-बाण लाकर राम के हाथ मे पकडा दिया।

राम ने लक्ष्मण से एक बार फिर कहा कि सीता का अच्छी तरह ध्यान रखना। वन मे कभी भी कुछ हो सकता है। खूब सावधान रहना। ऐसा कहकर रामचद्र वहा से हिरण के पीछे-पीछे चलने लगे। माया-मृग ने पहले तो बिलकुल पास रहकर राम को धोखा दिया। जब उसे पकडने की राम की आशा बढ गई तो वह उन्हे खूब दूर खीचकर ले गया, जैसे नियति आदमी को कही-का-कही ले जाती है।

कभी वह धीरे-धीरे कदम उठाता था तो कभी रुककर राम की ओर देखता था। कभी अपने चारो खुरो को पेट से चिपटाकर खूब जोर से छलाग मारता हुआ जगल के भीतर छिप जाता था और थोडी देर छिपकर फिर किसी ऊची जगह पर खडे होकर दिखाई देने लगता था। कभी इतना निकट आ जाता कि राम सोचते कि बस अब इसे हाथ से ही उठा लूगा। पर दूसरे ही क्षण वह बहुत दूर भाग जाता। इस प्रकार काफी समय बीत गया। मारीच ने अपने मन को मृत्यु के लिए तैयार कर लिया था। राम पीछा करते-करते थक गये। उन्होने सोचा कि अब तो इस पर तीर चला ही देना चाहिए, यह हाथ तो आता ही नही। जैसे ही राम का बाण हिरण के लगा, वह बडे जोर से, बिलकुल श्रीरामचद्र की आवाज मे चिल्ला उठा, "हाय सीते ! हाय लक्ष्मण !" उसका माया-रूप नष्ट हो गया। उसकी जगह बहुत ही लबे-चौडे शरीरवाला राक्षस, जिसके शरीर से खून की धारा बह रही थी, नीचे गिरा और तडपकर मर गया।

अब राम चौके। सोचने लगे, 'लक्ष्मण ने बिलकुल ठीक कहा था। यह तो बडा धोखा हो गया ! अब मेरी आवाज सुनकर सीता चिता के मारे पागल हो जायगी। फिर भी कोई डर नही। लक्ष्मण तो उसके पास है ही। लक्ष्मण के रहते किसी बात का भय नही। मेरे लक्ष्मण-जैसा दूसरा कौन

हो सकता है ! उसके-जैसा सहायक और किसको मिल सकता है ! सचमुच मैं बडा ही भाग्यवान हू ।'

बेचारे राम यो मन मे लक्ष्मण के प्रति अभिमान और प्रेम का अनुभव करने लगे, किंतु हाय, उमी समय लक्ष्मण आश्रम मे सीता के मुह से बहुत ही कडुवे वचन सुन रहे थे ! सब-कुछ विधाता का खेल था। और राम को किसी बात का पता न था।

: ४७ :

सीता-हरण

सीता ने राम की आवाज सुनी और सुनी—"हाय सीते, हाय लक्ष्मण !" की पुकार। उन्होने सोच लिया कि हो-न-हो, राम किमी भयकर विपत्ति मे फम गये। आधी मे जैसे केले का पेड कापता है, मीता चिंता से वैसे ही काप गई। लक्ष्मण से बोली, "लक्ष्मण, सुन रहे हो कि नही ? खडे क्यो हो ? दौडकर देखो भाई को क्या हुआ है।" उनका डर बढता गया। लक्ष्मण से फिर बोली, "मेरे प्रियतम की पुकार है। लक्ष्मण, जाओ, देखो कि उन्हे क्या हुआ। उन्हे कुछ हो जायगा तो मैं मर जाऊगी। जल्दी जाओ, देर न करो।"

लक्ष्मण चुपचाप खडे रहे।

"मेरे पति किसी विपदा मे फसे है। कितनी जोर मे चिल्ला उठे थे ! क्या तुमने सुना नही ? जाते क्यो नही ?" सीता ने फिर पूछा।

लक्ष्मण फिर भी चुप ! वह राक्षसो की अनेक कपट-विद्याओ को समझते थे।

"तुम्हारे भाई राक्षमो के बीच फस गये है। दौडकर उन्हें बचाने के बदले यहा क्यो खडे हो ?" वैदेही ने लक्ष्मण से कडककर पूछा।

जानकी के क्रोध का पार न रहा। वह चिल्लाकर बोली, "अरे सुमित्रा के लडके, तू मेरा बैरी बन गया क्या ? अब तक इतना

ढोग करता रहा ! मालूम होता है कि तू इसी प्रतीक्षा मे था कि कब राम मरता है, और कब उसकी स्त्री तुझे मिलती है ! अरे दुष्ट ! राम का आर्तनाद सुनकर भी पत्थर की तरह यहा खडा है ! हे पापी लक्ष्मण, अब मैने तुझे पहचाना है !''

शूल से भी तीखे इन शब्दो को सुनकर लक्ष्मण ने हाथो से अपने कानो को बद कर लिया ।

सीता तडप रही थी । आसुओ से उनका सारा शरीर भीग गया था ।

लक्ष्मण धीमी आवाज मे और कुछ रुक-रुककर मिथिलेशकुमारी, राम की देवी सीता से बोले, 'हे वैदेही ! देव, असुर, राक्षस और मनुष्यो मे तुम्हारे पति श्रीराम-जैसा पराक्रमी कोई नही, तुम यह जानती ही हो । राम का कोई कुछ नही बिगाड सकता । वह अभी विजयी होकर लौटते है । मेरी बात पर विश्वास करो । तुम्हे मै अपनी मा समझता हू । अपनी बुद्धि को खोओ मत । डरो भी मत । हमारे राम को कोई राक्षस, कोई पक्षी, कोई जानवर या कोई पिशाच मार नही सकता । तुम मेरे बारे मे बुरा-भला न कहो । मा, राम-बल को मै जानता हू । तीनो लोको मे राम को कोई नही जीत सकता । जरा धीरज धरो । भैया अभी लौटते है । मरे हुए हिरण को लेकर वह आयेगे । उन्हे तुम अवश्य देखोगी । यह आवाज, जो अभी सुनाई दी, भैया की नही थी । मेरी बात मानो, यह किसी राक्षस का छल मालूम होता है । तुम धोखे मे न आओ । घबराना छोडो । राम ने तुम्हे मुझे सौपा है । तुम्हे अकेली छोडकर मै यहा से नही जा सकता । यह असभव है । जनस्थान के सारे राक्षसो का भैया राम ने अकेले ही खात्मा कर दिया है । उसी का बदला लेने के लिए राक्षस लोग तरह-तरह के जाल बिछा रहे है । हमे सावधान रहना चाहिए । मै फिर से कहता हूं कि यह आवाज भैया की नही थी, किसी राक्षस की थी ।''

पर सीता कहा माननेवाली थी ! गुस्से से लाल-पीली आखे करके ऐसे बुरे शब्द, जो कभी मुह से निकालने न चाहिए थे, लक्ष्मण को सुनाने लगी, ''अरे दुष्ट, अब बहाना करने लगा है ! भाई को जान-बूझकर मरने

दे रहा है। हे नीच, पापी, तेरे-जैसे पर मैने और मेरे पति ने विश्वास किया! अब तू खुश हो रहा है। सोचता है कि मै तेरे वश मे हो गई! अब मै समझी कि हमारे साथ तू क्यो वन चला आया! हे पापी, यह तुझे किसने सिखाया? जरूर भरत ने ही बताया होगा। तुम सब मेरे पति के दुश्मन हो, दुश्मन! यह नही सोचा कि मै कभी तेरी ओर आख उठाकर भी नही देखूगी। मै राम की भार्या हू। उनके मरने के बाद एक क्षण भी जीवित न रहूगी। यह तू देख लेना।"

स्वभाव से आग के समान रोषवाले लक्ष्मण हाथ जोडकर बोले, "हे मा, हे देवि, जनक-नदिनी, तुम्हारे मुह से ये कैसे शब्द सुन रहा हू! ऐसा लग रहा है, मानो कोई गरम लोहे की शलाका मेरे कानो मे घुसेड रहा है। तुम जो मेरे बारे मे सोचती हो, वह एकदम असत्य है, झूठ है। देवताओ की कसम, मुझ पर शक न करो। आज मैने तुम्हारे अदर स्त्रियो की बुद्धि-हीनता देखी है। मेरे ऊपर आरोप लगाने की तुम्हे खूब सूझी! मालूम होता है, कोई बडा अनर्थ होनेवाला है। तुम्हारे मुह से ये जो अनुचित शब्द निकले, उनका फल तुम्हे मिले बिना कैसे रहेगा?"

यह सुनकर सीता ने डाटकर कहा, "राम की आवाज जिस दिशा से आई, वहा जाता है या नही? व्यर्थ की बाते क्यो बनाता है? तू नही जाता तो मै अभी मर जाऊगी। आग जलाकर उसमे कूद पडूगी, गले मे फासी लगा लूगी, गोदावरी मे डूब मरूगी, पहाड से नीचे कूदकर जान दे दूगी, जहर पीकर प्राण दे दूगी। सोचता क्या है?"

सीता फिर चीखने-चिल्लाने लगी। यह लक्ष्मण को असह्य हो गया। सीता को नमस्कार करके बोले, "मा सीते, मै जाता हू। तुम्हारे कहने से भैया की आज्ञा का उल्लघन करके, तुम्हे अकेली छोडकर चला जा रहा हू। तुम्हारा मगल हो। वन के देवता तुम्हारी रक्षा करे। हाय, ये बुरे शकुन क्यो दिखाई दे रहे है? मेरे मन मे ऐसी घबराहट क्यो हो रही है? मै कुछ कह नही पा रहा हूं। मैं वापस आकर

तुम्हे भैया के साथ देख सकूगा कि नही ? तुम ही मुझे धकेल रही हो तो मै जाता हू ।"

लक्ष्मण ञ्चल पडे । जाते-जाते अनेक बार मुड-मुडकर पर्णशाला की ओर देखते गये ।

० ० ०

राजकुमार लक्ष्मण सारे वैभव और सुख के जीवन को त्याग करके बडे भाई के साथ वन चले आये थे । सीता के भयकर आरोपो से उन्हे जो सताप हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है । उनका दिल टूट गया । जिस रास्ते से राम गये थे, उसी रास्ते वह चल पडे ।

रावण तो ताक मे बैठा ही था । झट काषाय वस्त्र धारण किया, हाथ मे भिक्षापात्र लिया और हृदय मे नीच-पापपूर्ण विचार रखकर, मुह से वेद-मत्रो का उच्चारण करता हुआ, राम की पर्णशाला के द्वार पर पहुचा ।

सीता अकेली कुटिया के द्वार पर, राम का ध्यान करती हुई खडी थी । रावण ने देवी को देखा । देखा क्या, उसकी बहन शूर्पणखा ने जो विकार उसके मन मे पैदा कर दिया था, वह सीता के सौन्दर्य को देखते ही विकराल रूप मे बढ गया । उस नीच ने तय कर लिया कि वह सीता का अपहरण करके ही रहेगा ।

काषाय वस्त्रधारी, हाथ मे कमडलु और त्रिदड लिये, परिव्राजक, कपटी सन्यासी सीता की कुटिया के सामने आकर खडा हुआ । राजा जनक की पुत्री ने शास्त्रो मे बताये गये शिष्टाचार के अनुसार आगतुक का सत्कार किया । उसको बैठने के लिए आसन दिया और उसके सामने फल और कद एक पत्ते पर रख दिये ।

उस काल मे शिष्टाचार का पालन करना अनिवार्य कर्तव्य समझा जाता था । उससे कोई चूकता न था ।

कपटी सन्यासी देवी सीता के बिछाये आसन पर बैठ गया । बैठकर वैदेही को भली प्रकार निहारने लगा । सीता के प्रति उसकी वासना बढती गई ।

राक्षस होने पर भी सीता के प्रति रावण की चाह केवल पाशविक न थी। महापापी होने पर भी, कच्चा मास खानेवाले कुल मे पैदा होने पर भी, उसने यही सोचा कि पहले सीता की सम्मति लूगा, उससे विवाह करूगा और उसे अपने हृदय तथा सारे वैभवो की रानी बनाऊगा। ऐसी सुदर रमणी राम के साथ वनवास करते हुए क्या सुख पाती होगी! मुझ-जैसे पराक्रमी और कुबेर से भी अधिक धनी राजा जब इससे शादी करने की प्रार्थना करे तो वह इन्कार भी क्यो करेगी? वह तो खुशी से मान जायगी। राम के लिए यही उपयुक्त दड होगा।

मूर्ख तथा घमडी रावण ने सीता को भी उन सामान्य स्त्रियो की तरह ही समझा था, जो उसके धन को देखकर मोहित होकर उसके वश हो गई थी।

आसन पर बैठकर पत्ते पर जो फलादि रखे गये थे, उन्हे चखते हुए रावण निर्लज्ज भाव से सीता के सौन्दर्य की प्रशसा करने लगा। बोला, "हे सुदरी, तुम कौन हो? डरावने राक्षसो और जानवरो से भरे इस वन मे अकेली कैसे रहती हो?"

शिष्टाचार के अनुसार सीता भी प्रश्नो के उत्तर तो देती जाती थी, पर उनका एक-एक क्षण प्रतीक्षा मे बीत रहा था कि दोनो राजकुमार कब लौटते है। राक्षस भी धीरे-धीरे अपना परिचय देता जा रहा था। उसने अपना नाम बताया और अपने कुल की महिमा का गान करने लगा। अपनी शक्ति और ऐश्वर्य का उसने विस्तृत वर्णन किया। अपनी खूब प्रशंसा करके वह अब राम के बारे मे हलकी बाते करने लगा। अत मे उसने कहा, "हे कामरूपिणि, तुम मेरी रानी बन जाओ। हम-तुम बडे आराम से लका मे रहेगे।"

देवी सीता ने समझ लिया कि वह अचानक कितनी बडी विपत्ति मे फस गई है। वह महापतिव्रता और धर्मिष्ठा थी। राजर्षि जनक की पुत्री थी। इस कारण घबराई नही, उल्टे गरजकर रावण से बोली, "हे नीच,

दुष्ट, मरने आया है क्या ? जान बचानी हो तो दूर हो जा, इसी घडी निकल जा यहा से !"

राक्षसराज रावण को ऐसी बाते सुनने की आदत नही थी। उसे बडा गुस्सा आया। सन्यासी का वेश वही उतार फेका और अपने असली विकराल रूप मे उठ खडा हुआ। सीता के केशो को एक हाथ मे पकड लिया और दूसरे हाथ से उन्हे उठाकर तैयार खडे रथ मे बिठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा।

"हाय मेरे नाथ ! हे राम, तुम कहा हो ? हे लक्ष्मण, हे उत्तम भक्त, मैंने क्यो हठ करके तुम्हे भेज दिया ?" सीता जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगी। राक्षस ने उन्हे एक हाथ से पकड रखा था ताकि गिर न पडे। सीता हरेक पेड-पत्ते को, पशु-पक्षियो को पुकार-पुकारकर कहने लगी, "तुम राम को बता देना कि सीता को रावण आकाश-मार्ग से उडा ले जा रहा है।" गिद्धराज जटायु एक पेड पर अर्धनिद्रा मे बैठा हुआ था। उसने तेजी से भागते हुए रथ को देख लिया। सीता की आवाज भी सुनी और पहचानी। सीता ने भी जटायु को देखा।

"हे पक्षिराज, तुम क्या कर सकते हो ? लका का राजा रावण मुझे पकडकर ले जा रहा है। इस क्रूर राक्षस के पास तरह-तरह के हथियार है। तुम उसके साथ मुकाबला करोगे तो तुम्हे वह खत्म कर देगा। इस-लिए मुझे बचाना तुम्हारे लिए शक्य नही है। मेरे राम को बता देना कि रावण सीता को ले गया।" यो दीन स्वर मे सीता जोर से चिल्लाई।

जटायु ने भी रथ मे बैठे रावण को देखा। बोला, "हे लकेश, रुक जाओ। मेरी बात सुनो। मैं भी एक जमाने मे तुम्हारी ही तरह एक राजा था। इसलिए मेरा कहना मानने मे तुम्हारे गौरव की कोई हानि नही हो सकती। तुम यह जो कर रहे हो, वह सर्वथा निंदनीय है। विशेषकर एक राजा के लिए तो ऐसा करना बिलकुल अनुचित है। अबलाओ की रक्षा करना राजाओ का काम होता है। एक राजकुल की स्त्री का तुम अपहरण कैसे कर सकते हो ? सीता को छोड दो, नही तो उसके क्रोध से तुम भस्म

हो जाओगे। तुम्हे मालूम नही, सीता कौन है। तुमने काले नाग को अपनी गोद मे बिठाया है। काल का पाश ही तुम्हारे गले मे पडा है, यह समझो। अरे दुष्ट, अब भी तू बच सकता है। अपने से न सभाला जा सकनेवाला बोझ तूने अपने कधे पर उठा लिया है। तू उसके नीचे दबकर मर जानेवाला है। जहर पीकर कोई जिदा रह सका है भला! मै बहुत ही बूढा हू। तू नौजवान है और कवच पहने हुए है। तेरे पास हथियार भी है। किंतु मेरे जीवित रहते तू वैदेही को कदापि नही ले जा सकता। जब राम आश्रम मे नही थे तब छिपकर तूने यह नीच काम किया। तुझे राम पर क्रोध हो तो उनसे लड। पर मै जानता हू, तू कायर है। तो आ, मेरे साथ लड। मेरे जीते-जी राम की पत्नी को तू नही ले जा सकता। तू रथ मे बैठकर अपने को सुरक्षित समझता है क्या? तेरे दसो सिरो को काट-काटकर मै नीचे गिरा सकता हू। जरा ठहर तो।"

बाधा आ जाने से रावण को बडा गुस्सा आया। उसने झट पक्षी पर आक्रमण कर दिया।

राक्षस और गिद्धराज के बीच घोर युद्ध छिड गया। ऐसा लगता था, मानो आधी और बादलो मे सग्राम हो रहा हो। पखवाले पर्वत के समान जटायु ने अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध किया। रावण बहुत ही तेज बाणो की वर्षा जटायु पर करता रहा। गिद्धराज ने बाणो की परवाह न करके रावण के शरीर को अपने पजो से फाड डाला। बाणो की चोट की असह्य वेदना सहन करता हुआ गिद्ध राक्षस के साथ लडता रहा। एक तरफ उसकी शारीरिक वेदना, दूसरी तरफ सीता का रोता-बिलखता चेहरा। गिद्धराज के हृदय मे भी बडी वेदना हुई। अपने सीमित शरीर-बल को वह जानता था। आखिर कितनी देर रावण से लड सकता था! अपनी सारी शक्ति उसने लगा दी। रावण के शरीर को अपने नखो से चीर डाला, पखो से उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे मिट्टी मे गिरा दिया, पजो से उसके धनुष को तोड दिया।

रावण ने दूसरा धनुष उठाया और बाणा की बौछार कर दी, पर

पक्षिराज ने उसके दूसरे धनुष को भी तोड डाला और पखो को जोरो से फडफडाकर अपने शरीर मे लगे बाणो को निकाल फेका।

लेकिन जटायु जान गया था कि अब उसकी मृत्यु निश्चित है। एकबारगी अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने रथ पर आक्रमण कर दिया। रावण का रथ चकनाचूर हो गया। सारथी आहत हो गया। पैशाचिक मुख वाले खच्चर भी जटायु की चीर-फाडो से मर गये। रावण रथ से नीचे गिर पडा। अब उसके पास न रथ था, न सारथी। यह देखकर भूतगण भी 'वाह, वाह' करके गिद्धराज की सराहना करने लगे।

वृद्धावस्था और बेहद थकावट के कारण जटायु से सास भी नही ली जा रही थी। वह क्षणभर के लिए रुका। रावण ने इस मौके का लाभ उठाया और बिना रथ के ही सीता को लेकर आकाश मे उडकर जाने लगा। यह देख जटायु गरजा, "अरे दुष्ट, चोर, नीच, भाग जाना चाहता है! तेरी तो मौत ही आ गई है। ले, भागने से पहले मेरे साथ लडते-लडते अपने भाई खर की तरह मर। तभी अच्छी गति पायगा। कायर और चोर की तरह भाग मत।"

ऐसा कहकर जटायु रावण के कधे पर चढ बैठा। अपनी चोच और पजो से रावण का उसने बुरा हाल कर डाला। रावण के तो बीस भुजाए थी। उनमे से कुछ भुजाओ से उसने सीता को पकड रखा था। शेष भुजाओ से जटायु को हटाने का प्रयत्न करता जाता था। जटायु ज्यो-ज्यो उसकी भुजाओ को काट-काटकर गिराता था, त्यो-त्यो नई-नई भुजाए उगती जाती थी। बहुत समय तक इस प्रकार की लडाई होती रही। आखिर रावण ने अपनी कमर मे लटकती हुई तलवार से जटायु के पखो और टागो को निर्दयता से काट डाला। बेचारा बूढा पक्षी अब क्या कर सकता था! अधमरा होकर नीचे गिर पडा।

जानकी उछलकर पक्षिराज के पास गईं। बडे प्यार से उसका आलिगन किया और बोली, "हे गिद्धराज, तुम तो मेरे पिता के समान थे। राम ने भी तुम्हे अपने पिता दशरथ का ही दूसरा रूप समझा था। हाय, मेरे कारण

तुम्हारी यह गति हो गई ।" सीता जटायु की दशा देखकर बडी दुखित होकर रोती हुई बोली, "राजा दशरथ के समान ही तुमने युद्ध किया ।" लेकिन रावण बडा खुश हुआ । वह सीता को पकडने दौडा । बेचारी वैदेही इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगी । पेडो के तनो को पकडकर राम और लक्ष्मण को पुकारने लगी । रावण ने उन्हे जबरदस्ती पकड लिया और गगन-मार्ग से लका की ओर उड चला ।

रावण के शरीर का रग काले बादलो की तरह था । उसके साथ सीता का रूप बिजली की तरह चमक रहा था । जिस समय रावण सीता को उठाकर उडता जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता था मानो घने जगल मे दावानल शुरू हो गया हो । देवी सीता के शरीर की काति से उडता हुआ रावण एक अनर्थ-सूचक धूमकेतु की तरह दिखाई देता था ।

इस प्रकार देवी सीता का रावण के हाथो अपहरण हुआ । उस समय भगवान् सूर्य का तेज कम हो गया । सब जगह अधकार छा गया । सभी प्राणी रो रहे थे । "हाय, धर्म का नाश हो गया । सत्य का लोप हुआ । नीति, न्याय, दया, धर्म, अब कुछ न रहा ।" इस प्रकार की बाते सबके मुह मे निकल रही थी ।

नीचे खडे वन के मूक प्राणियो की आखो से भी आसुओ की धारा बहने लगी ।

गगन-पथ से रावण निर्दय भाव से माता सीता को लेकर तेजी से अपने विनाश की ओर जा रहा था । देवी के केशो से फूल नीचे गिर रहे थे । मालूम होता था, मानो वह रावण की सारी सपत्ति के गिरकर लोप हो जाने की पूर्व-सूचना हो ।

: ४८ :
सीता का बंदीवास

बहुत रोने और क्रोध के कारण सीता की आखे लाल हो गई थी। उन लाल-लाल नेत्रो से उन्होने रावण को देखा और बोली, "अरे नीच, अपने पराक्रमो का तूने खूब बखान किया है। अपने नाम और कुल की खूब महिमा गाई है। अपनी शूरता का भी बडा सुदर प्रदर्शन किया। अरे म्लेच्छ, शरम नही आ रही तुझे अपने कृत्य पर! जब आस-पास कोई न था, मौका देखकर एक अबला को तू उठाकर भाग आया। तेरी वीरता मैने देख ली। डर के मारे राम के सामने न आकर तू चोरी से मुझे उठाकर ले जा रहा है।

"अरे धूर्त, तेरा पराक्रम यही है कि एक बूढे पक्षी को, जो मेरी रक्षा करना चाहता था, तूने मार डाला। यह भला किसी वीर का काम हो सकता है! इसे तो तेरे-जैसा कायर ही कर सकता है। धिक्कार है तुझे और तेरे कुल को!

"तूने जरा सोचा भी है कि इस प्रकार मुझे ले जाने का क्या परिणाम हो सकता है? तू तो अब यही समझ ले कि तेरी आयु समाप्त हो गई है। जल्दी ही मेरे प्रियतम के शर तेरे प्राणो को हर लेगे। एक बार तू मेरे स्वामी के सामने आ जाय तब देख लेना कि क्या होता है। यह कभी मत सोच कि तू राम से बच सकेगा। तेरा नाश अवश्यभावी है। अपने इस कार्य से तुझे कोई लाभ न होगा। मुझे पाने की तेरी आशा किसी भी हालत मे सफल नही हो सकेगी। मैं प्राण दे दूगी, पर तेरे वश मे कभी नही आऊगी। मेरे प्यारे राम के क्रोध से तू बच नही सकता। शीघ्र ही तू नरक-लोक की वैतरणी नदी को देखनेवाला है। समझ ले कि आग मे तपाई गई लोहे की तप्त मूर्ति तेरी प्रतीक्षा कर रही है। उसका तू आलिंगन करेगा। लोहे के काटोवाला पेड भी तब तक यमलोक मे तेरे लिए तैयार होगा। देखते-देखते ही जनस्थान के चौदह सेनानायको के चौदह हजार सैनिको को मेरे स्वामी ने मार गिराया था। तुझे वह थोड़े ही छोड देंगे।"

इस प्रकार देवी सीता लकाधिपति रावण को डाटती थी, धमकाती थी, और चेतावनी देती जाती थी कि उसके कुकर्म का क्या नतीजा निकलनेवाला है, किंतु रावण ने सीता की एक न सुनी। आकाश मे वह तीर की तरह तेजी से वैदेही को लिये भागा जा रहा था।

कई पहाडो के ऊपर से रावण गुजरा। कई नदियो को उसने पार किया। एक पहाड के ऊपर जानकी ने कुछ लोगो को देखा। झट उन्होने अपना उत्तरीय उतारकर उसमे अपने कुछ आभूषणो को बाधकर ऐसे पटक दिया कि वे उन लोगो के बीच ही मे गिरे। उन्होने सोचा कि राम अवश्य उन्हे ढूढते हुए उस तरफ आयेगे और इन आभूषणो तथा उत्तरीय को अवश्य पहचान लेगे। उन्हे यह भी पता चल जायगा कि कोई उन्हे उसी मार्ग से ले गया होगा। पहाड के ऊपर कुछ वानर थे। सीता ने उन्हे देख लिया। वानरो ने भी जोर-जोर से रोती-बिलखती सीता को देख लिया।

रावण पपा नदी के ऊपर से उडा और लवण सागर को पार करके लकापुरी पहुचा। मनोव्यथा मे तडपती सीता को लेकर उसने अपने अत - पुर मे प्रवेश किया। उस मूर्ख ने अपने मन मे सोचा होगा कि बस ले आया सीता को। अब तो वह मेरी ही है। पर उस मूर्ख को यह पता न था कि काल भगवान् को ही वह अपने महल के अदर ले जा रहा है।

पिशाचियो-जैसी डरावनी राक्षसियो को बुलाकर रावण ने कहा, "देखो, इसकी अच्छी तरह रक्षा करना। मेरी अनुमति के बिना कोई भी, स्त्री या पुरुष, इसके पास न पहुचे। यह जो कुछ भी मागे, फौरन लाकर देना। वस्त्र, आभूषण, सोना आदि चाहे कितने ही मूल्यवान हो, इन्कार न करना। इसके चित्त को खूब प्रसन्न रखना। मेरे मान और सत्कार से कम इसका न किया जाय। यदि मुझे पता चला कि इसे किसी ने किसी प्रकार से भी तग किया है तो तत्काल ही उसे मरवा डालूगा। सावधान रहना।"

सीता को अत पुर के एक भाग मे इस प्रकार बदी करके रावण सोचने लगा कि अब आगे क्या किया जाय। अपने विश्वस्त और चतुर गुप्तचरो को बुलाकर उसने आदेश दिया कि वे निडर होकर जनस्थान पहुचे और राम

के एक-एक कार्य का पता रखे, उसे अपना परम शत्रु समझे। किसी-न-किसी प्रकार से उसे मार डालना होगा। जब तक राम जीवित रहेगा, मै चैन की नींद नही ले सकूगा।

सीता ने यह देख लिया था कि वह जिस प्रदेश मे है, उसके चारो ओर समुद्र है, किंतु उन्हे यह अदाज न हो सका कि पचवटी और इस प्रदेश मे कितनी दूरी है। उनका दृढ विश्वास था कि उनके प्राणप्रिय राम किसी-न-किसी प्रकार उन्हे इस कारावास से छुडा लेंगे। दुःख की अति भयकर अवस्था मे भी राम के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही वह जीवित रह पाई। उन्होने यह भी देखा कि रावण का व्यवहार एकदम पाशविक न था। उससे भी सीता को कुछ सात्वना मिली।

अपने गुप्तचरो को जनस्थान मे राम की चहल-पहल पर निगाह रखने के लिए भेजकर रावण फिर अतःपुर मे सीता के पास पहुचा। शोकमग्ना बेचारी वैदेही की आखो से आसुओ की धारा बह रही थी। रावण ने देखा कि उसकी राक्षस-दासिया अपना काम सावधानी से कर रही है। उसने सोचा कि जब सीता उसका वैभव पूरी तरह से देख लेगी तो अवश्य राम को भूल जायगी और उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेगी।

राक्षसियो ने सीता को रावण के विशाल राजभवन मे खूब घुमाया। विभिन्न प्रकार की विशिष्ट वस्तुए दिखाई। रावण के समान सपन्न राजा दुनियाभर मे कोई दूसरा नही था। सीता को सभी-कुछ उन लोगो ने दिया। उसके ऐश्वर्य की किसी और के ऐश्वर्य से तुलना नही हो सकती थी। जहा देखो, वहा मोती, प्रवाल, सोना और माणिक बिखरा पडा था। राजमहल के द्वार, खिडकिया और आसन सोने के बने थे। अद्भुत मणिया उनमे जडी थी। बहुमूल्य रेशमी आवरण सब जगह दिखाई देते थे। महल की कारीगरी मन को चकित करती थी। नाना प्रकार व आकार के मडप, विमान और चबूतरे थे। दास-दासियो की गिनती करना असभव था। राज्याधिकार और अपरिमित धन से जो कुछ पाना सभव था, वह सब लकाधिपति रावण के भवन मे सीता ने देखा किंतु पतिव्रता का मन

किसी भी वस्तु की ओर आकर्षित न हुआ। रावण ने अपनी सपूर्ण सपत्ति सीता को दिखा डाली। अपनी विशाल सेना भी दिखाई।

पर सीता की निगाह मे तो रावण बहुत ही निम्नकोटि का व्यक्ति था। उसके विषय मे अपनी राय वह पहले ही बता चुकी थी। फिर भी मूर्ख रावण उन्हे अपना सैन्य-बल विस्तार से समझाते हुए कहने लगा, "सीते, मेरी हरेक चीज की तुम्ही मालकिन बनोगी। सब-कुछ अपना ही समझो। मेरी अनेक पत्निया है। उन सबकी तुम पटरानी बनो। मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर न्यौछावर है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। मेरी पटरानी बन जाओ। चारो ओर समुद्र से सुरक्षित लका अजेय है। यहा किसी का भी प्रवेश नही हो सकता। देवासुरो मे कोई भी मेरे समान वीर नही है। यह सब कोई जानते है। राज्य से निर्वासित एक अनाथ मनुष्य से भला तुम्हे क्या सुख मिलनेवाला है? तुम्हारे रूप के लिए तो मैं ही योग्य हू। अपने यौवन को क्यो व्यर्थ गवा रही हो? राम को फिर से देखने की आशा छोड दो। तुम उससे अब कभी नही मिल पाओगी। यह निश्चय समझो। राम लका के पास कभी भी नही पहुच सकता। मेरा सारा राज्य तुम अपना समझो। मैं और मेरे अधीन सारे देवगण तुम्हारे दास बनकर रहेगे। मैं तुम्हारा पटरानी का अभिषेक करा दूगा। तुम किसी भी प्रकार की कमी अनुभव नही करोगी। आज तक तुमने जो कष्ट अनुभव किये वे अपने किसी पूर्व-कर्मो के कारण थे। अब तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो जानेवाला है। लका का परिपालन तुम्हारे हाथो से होगा। कुबेर को जीतनेवाले लकाधिपति की प्रधान भाया बन जाओ। हम दोनो पुष्पक विमान मे बैठकर जहा की इच्छा होगी, वहा की सैर करेगे। देखो, अपने सुदर वदन पर शोक की रेखाए न पडने दो। तुम्हे अब खूब प्रसन्न रहना चाहिए।"

रावण का अनर्गल प्रलाप सुनकर सीता और भी दुःखित हुई। अवि-रल अश्रुधारा उनकी आखो से बह चली। अपने आचल से उन्होने अपना मुह ढक लिया।

"सीते, शरमा रही हो क्या? अरे, इसमे शरम की कौन-सी बात है?

तुम मुझे पति मानने लगो। इसमे कोई पाप नही है। नियति के अनुसार परिस्थिति को स्वीकार करने मे कोई दोप नही। शास्त्र मे ऐसा ही बताया गया है। हे सुदरी! तुम्हारे चरणो पर अपना मस्तक रखकर मै यह माग कर रहा हू। मुझ पर दया करो। मै तुम्हारा दास हू। राक्षसेद्र महाराजा रावण अपने वैभव को भूलकर तुमसे याचना कर रहा है। आज तक मैंने कभी ऐसा किया नही।"

यो रावण सीता के सामने गिडगिडाने लगा। वह सोचता था कि सीता अवश्य मान जायगी। बुद्धि स्थिर हो तो कैसी भी विषम परिस्थिति मे मनुष्य अपने को बचा सकता है। शोक-पीडित सीता को अब रावण से बात करने मे डर न रहा। एक तिनके को अपने और रावण के बीच रखकर और उसकी ओर दृष्टि करके वह रावण से बोली, "अरे दुष्ट, तू जानता है मै कौन हू? तीनो लोको मे राजा दशरथ का नाम सुविख्यात है। सत्य और धर्म के विधान के अनुसार राजा दशरथ ने वर्षो तक राज्य का पालन किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र राम की मैं पत्नी हू। देवता के समान बली राम मेरे नाथ है। पुरुषो मे वह सिह है। वह और उनके अनुज लक्ष्मण तुझे मारकर ही छोडेगे। तू जानता नही क्या कि खर, दूषण और जनस्थान के अन्य राक्षसो का कैसा बुरा हाल हुआ? जैसे गरुड एक क्षण मे सर्प को मार डालता है, मेरे स्वामी श्रीराम ने जनस्थान की तेरी सारी सेना को खत्म कर दिया। तूने देव और असुरो से अमरत्व पाया है, यह मै जानती हू, किंतु मेरे पति से तू बच नही सकता। तुझे मिला वरदान श्रीरामचद्र के आगे काम न देगा। यज्ञ के समय खभे से बधे बकरे के समान तेरी स्थिति है। बचकर निकल कहा सकता है? राम चाहे तो समुद्र को भी सुखा सकते है। चद्रमा को आसमान से नीचे उतार सकते है। मुझे छुडाने के लिए वह सब-कुछ करेगे। यह तू सच मान। तेरे पाप से तू और तेरी लका नष्ट हुए बिना न रहेगी।

"मेरे पराक्रमी पति दडकारण्य मे राक्षसो के बीच मे ही रहते थे। उन्हे कभी डर का अनुभव नही हुआ। कोई राक्षस लडने आता था तो उसे तुरत

मार डालते थे। तू क्या यह जानता नही है ? तभी तो श्रीराम की अनुपस्थिति मे चोरी से मुझे उठा लाया है। इसका फल तू अवश्य भोगेगा। तू अब कदापि नही बच सकता। तेरा विनाश-काल आ गया। तभी तो तेरी बुद्धि विपरीत हुई है।

"तू चाहता है कि मै तुझे चाहने लगू। यह कभी नही हो सकता। हस कौवे को कभी चाह सकता है ? दुराचारी हवन-कुड के पास कैसे जा सकेगा ? मुझे अपनी प्राण-रक्षा की चिंता नही रही। तेरी होने की अपेक्षा मै अपना प्राण-त्याग कर दूगी। मै तेरी बात कभी नही मानूगी।"

यह सुनकर रावण स्तब्ध हो गया, लेकिन फिर विचारकर बोला, "अच्छा, यह बात है तो तुम्हे मै बारह महीने की अवधि देता हू। तब तक अपने मन को बदलने का प्रयत्न करो और मेरे साथ विवाह कर लेने का निश्चय कर लो, नही तो मेरे लिए भोजन बनानेवाले, बारह महीने पूरे होते ही, अगले दिन सुबह को भोजन मे तुम्हे पकाकर मेरे लिए ले आयेगे।"

इस प्रकार सीता को डराकर रावण सीता की राक्षसी दासियो को अलग बुलाकर कहने लगा, "इस स्त्री का घमड बहुत बढा-चढा है। किसी तरह इसे ठीक करना होगा। इसे अशोक-वन मे अकेली रखो। डराकर, धमकाकर, प्यार से, किसी भी प्रकार से इसे मनाने का प्रयत्न करो। हथिनी को वश मे करने के लिए जिस तरह कई प्रकार के उपाय करने पडते है, उसी प्रकार भाति-भाति के उपायो से इसका मन भी बदलना पडेगा।"

इतना कहकर गुस्से के साथ रावण अत पुर से बाहर निकला और महलो की ओर चला गया।

राजा की आज्ञानुसार राक्षसी दासिया सीता को अशोक-वाटिका मे ले गई। यह रावण के महल का बहुत ही सुदर उद्यान था। पेडो पर कई प्रकार के पक्षी आकर बैठते थे। फूलो को देखकर जी खुश हो जाता था। नाना प्रकार के फल पेडो पर लटक रहे थे। वहा सीता को एकात मे रख दिया गया। चारो तरफ अति भयकर राक्षसियो का पहरा था। उस कारा-वास मे सीता सदा राम के ध्यान मे इसी आशा के सहारे कि पराक्रमी राम

और लक्ष्मण एक-न-एक दिन अवश्य लका पहुचेगे, और उसे छुडायेगे, प्राण धारण किये दिन काटती रही। उन्हे पूरा विश्वास था कि राम दुष्ट रावण से बदला लिये बिना न रहेगे और वह फिर से राम के साथ आनद का जीवन व्यतीत कर सकेगी। राक्षसी दासिया वैदेही से कभी तो बहुत मीठी-मीठी बाते करती और कभी धमकाती, डराती थी, पर सीता ने उनके बहकावे मे अपने को कभी न आने दिया। इस प्रकार एक दिन नही, दो दिन नही, जनकसुता रामवल्लभा सीता ने महीनो तक कारावास मे अनाथ और दुखी होकर दिन बिताये।

वानर-वीर हनुमान का समुद्र लाघकर सीता के पास पहुचना, सीता को दुखी देखकर गुस्से मे उनका लकापुरी को जला देना और सीता को यह कहकर, कि "राम अवश्य ही आयेगे, आप धीरज न खोये", आश्वासन देना आदि कथा हम आगे पढेगे।

हमारे देश की सभी दु खी स्त्रिया देवी सीता की ही अश है। हमारे देश के पुरुषो को चाहिए कि वे हनुमानजी की तरह दुखी बहनो की मदद करे, उनके दुख को हल्का करने का प्रयत्न करे।

राम-लक्ष्मण को छोडकर अब हम बहुत दूर आ गये है, इसलिए हमे उनके पास चलना चाहिए।

: ४६ :

शोक-सागर में निमग्न राम

रामचद्र ने देखा कि वह धोखा खा गये। माया-मृग वास्तव मे मारीच निकला। सीता के मन को लुभाकर उसने उनको बहुत दूर ले जाकर थका डाला था। जब राम के अचूक बाण से वह मरा तब उसके असली रूप का पता चला। मरते-मरते भी राक्षस ने चालाकी की। बिलकुल उन्ही की आवाज मे आर्तनाद करके लक्ष्मण और सीता के नामो को पुकारते हुए वह

मरा। राम इस कारण और चिता मे पड गये। सोचने लगे, 'यह तो भारी धोखा हो गया। यदि लक्ष्मण यह समझकर कि मैंने ही विपत्ति मे पडकर उसे पुकारा है, सीता को अकेली छोडकर चला आया तो अनर्थ हो जायगा। कही सीता को उठा ले जाने या उसे खा जाने के लिए ही राक्षसो ने यह कपटभरी चाल न चली हो। सीता ने मेरी आवाज सुनकर लक्ष्मण को अवश्य ही मेरे पास दौडाया होगा। सियार बुरी तरह से चिल्ला रहे है। पक्षी और पशुओ के ढग भी अमगलसूचक प्रतीत हो रहे है। मेरे मन मे धैर्य की जगह कपन हो रहा है। मुझे लगता है कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होने-वाला है।'

राम यो चितामग्न होकर जल्दी-जल्दी कदम उठाकर आश्रम की ओर जाने लगे। सामने से उन्होने लक्ष्मण को आते हुए देखा। बोले, "बस, मैंने जो सोचा था, वही हुआ !

"लक्ष्मण, यह तुमने क्या किया ? सीता को अकेली छोडकर कैसे चले आये ? अब तक तो निशाचर उसे अवश्य निगल गये होगे। तुमने बडी भारी भूल कर डाली ! अब जानकी बच नही सकती।" राम ने कहा। वह बहुत ही घबरा गये। बोले, "यदि वैदेही को मैं आश्रम मे नही पाऊगा तो प्राण-त्याग कर डालूगा। तुम अयोध्या लौटना और परिवारवालो को सारा हाल बताना। हाय, मेरी माता कौशल्या कितनी तडप उठेगी ! कैकेयी खुश होगी। राक्षस लोग हमसे बदला लेने की ताक मे ही थे। अब तक उन लोगों ने अवश्य ही सीता को मारकर खा लिया होगा। तुम क्यो उसे अकेली छोडकर चले आये ? मारीच के बहकावे मे तुम क्यो आये ? अब मैं क्या करूगा ? अपनी सीता को अब नही देख पाऊगा। राक्षसो ने मेरे ऊपर विजय पा ली। मेरा मर जाना निश्चित समझो। तुम्हारे ऊपर मैंने भरोसा रखा। मैने सीता को तुम्हे सौपा था। तुमने बुरा किया, लक्ष्मण, बहुत बुरा किया।" राम के दु ख और घबराहट का कोई पार न था।

लक्ष्मण आसूभरी आखो से भाई की ओर देखकर बोले, "भैया, मैं लाचार हो गया। हम दोनो ने 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' की पुकार सुनी।

बस, सीता डर के मारे पागल-सी हो गई। तडपने लगी। मुझे कहने लगी, 'जा, अभी राम के पास एकदम चला जा। जल्दी से निकलता है कि नही ?' मैने उनको लाख समझाया कि यह राम की आवाज हो ही नही सकती। भैया को कोई जीत नही सकता। यह राक्षसो का धोखा है। भैया राम लडते-लडते ऐसा आर्त्तनाद कभी नही कर•सकते। दीन होकर पुकारने मे उनका मान कैसे टिक सकता है ? आदि-आदि, किंतु देवी सीता ने मेरी एक न मानी। मुझसे कहने लगी, 'तू राम का दुश्मन है, जो उनको मरने दे रहा है। तू चाहता है कि मै तेरी हो जाऊ।' भैया, सीता ने मुझ पर बडे गभीर आरोप लगाये और मुझे डराने लगी कि अगर उसी क्षण मै वहा से न निकल पडा तो वह आत्मघात कर लेगी। मै लाचार हो गया। भैया, आप ही बताइये, मैं क्या करता ? मजबूर होकर वहा से मुझे चला आना पडा।"

राम ने उत्तर दिया, "लक्ष्मण, मै तुम्हारी सफाई से सतुष्ट नही हूं। सीता ने चाहे कुछ भी कहा हो, तुम्हे उसके पास से हटना नही चाहिए था। वह स्त्री ठहरी। डरना और उसके कारण कुछ-का-कुछ बोल देना उसके लिए स्वाभाविक था। तुम्हे उसका कहना नही मानना था। बडी भारी भूल हो गई। मै नही सोचता कि अब हमे सीता मिलनेवाली है !"

दोनो भाई आश्रम की ओर तेजी से चले। सारे रास्ते दोनो ने अपशकुन देखे। जब-जब राम अपशकुन देखते तो कहते, "सीता सुरक्षित नही मालूम पडती।"

दोनो भाई आश्रम पहुचे। कुटिया सचमुच खाली थी। राम का हृदय टूट गया।

एक तरफ मृग-चर्म पडा था। दूसरी ओर चटाई पडी थी। सूनी कुटिया को देखकर राम फूट-फूटकर रोने लगे। पर्णशाला की आस-पास की सारी जगह मे राम ने सीता को ढूढा, नाम ले-लेकर पुकारा, पर सीता वहा हो तब न ! राम की पुकार का उत्तर कहा से आता ? पेडो के पत्ते और फूल भी मुरझा-से गये थे।

"हाय, मै क्या करू ? मेरी प्रियतमा को कोई क्रूर राक्षस खा तो नही गया ? उसे राक्षस तो कही नही उठा ले गया ? शायद नदी-तट पर पानी भरने गई हो। चलो, देखते है।" यो तरह-तरह की बाते सोचते हुए राम-पागल-से हो गये। सोचा कि शायद मुझे चिढाने के लिए कही पेडो की आड मे छिप गई होगी। वह सारे पेडो के पास जा-जाकर देखने लगे। भ्रात-चित्त मनुष्य की तरह बनकर हरेक प्राणी और पेड को सबोधित करके पूछने लगे, "हे अशोक वृक्ष, हे ताड वृक्ष, तुमने तो अवश्य देखा होगा कि मेरी सीता को क्या हुआ ! बताओ, कहा है जानकी ?

"हे व्याघ्र, तुम्हे किसका डर है ? वह देखो, हाथी और हिरण डर के मारे कुछ कहना नही चाहते ! पर तुम तो बहादुर हो। बताओ, तुमने मेरी सीता को किसी तरफ जाते देखा ? 'हे खग-मृग, हे मधुकरश्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी' ?"

राम खूब जोर से रोकर कहने लगे, "सीता, तुम कही छिपी हो, मैं जानता हू। देख लिया मैंने तुम्हे। आ जाओ। बस, बहुत हुआ।" यो राम चिल्लाते थे। कई-कई बार घूमकर उन्होने सारा प्रदेश छान डाला, पर सीता न मिली।

"लक्ष्मण, मेरी सीता कही नही मिल रही। उसके एक-एक अग को राक्षसो ने नोच-नोचकर खा डाला मालूम होता है। मुझसे अब यह दु ख नही सहा जाता। मै क्या करू ? मै अब जीवित नही रह सकता। पिता दशरथ की तरह मैं मर जाऊगा। उनके पास पहुचूगा। पिता कहेगे, 'राम, तुमने चौदह वर्ष का वनवास कहा पूरा किया ? पहले कैसे आ गये ?' तब मै उन्हे क्या उत्तर दूगा ? हाय !" राम दलदल मे फसे हाथी की तरह चिल्लाने लगे।

राम की ऐसी अति करुण दशा को देखकर लक्ष्मण को असह्य वेदना हुई। वह उन्हे समझाने लगे, 'भैया, इस तरह रोना आपको शोभा नही देता। चलिये, फिर ढूढते हैं। सारा जगल छान डालेगे। आप जानते है, सीता को वन मे घूमना, गुफाओ मे घुमकर देखना बहुत ही अच्छा लगता

है। पानी को देखकर झट तैरने-नहाने लग जाती है। कही सुदर फूलो की खोज मे चली गई होगी। हमारी परीक्षा लेने के लिए वह ऐसा कर सकती है। चलिये, ढूढते है। रोइये मत।"

दोनो ने फिर से नदी, पहाड, पेड, सरोवर आदि सारी जगहे ढूढ डाली।

० ० ०

लक्ष्मण राम को अच्छी तरह समझाते रहे, किंतु उनको समझाना बहुत कठिन था। कभी सज्ञाशून्य स्थिति मे, कभी रोते हुए, कभी असबद्ध बाते करते हुए राम की दशा बहुत बुरी हो गई थी। इस शोक को सहना उनके लिए बडी भारी बात थी।

"लक्ष्मण, मै क्या मुह लेकर अयोध्या लौटूगा? लोग मुझे देखकर कहेगे 'देखो, यह कैसा आदमी है। सीता को लेकर चला था। उसकी रक्षा भी न कर पाया! राक्षसो को उसे खाने दिया और आप सही-सलामत लौट आया।' जनक राजा के सामने मैं अपना मुह दिखाने योग्य न रहा। तुम अकेले अयोध्या लौट जाओ। माताओ का ध्यान रखना। मेरी ओर से भरत को आलिंगन करके कह देना कि अब वही राजा रहेगा। राम की आज्ञा है। राज्य-पालन अब भरत को ही करना पडेगा।"

राम किसी तरह भी शात न हुए। लक्ष्मण का प्रयत्न असफल रहा। उनके मन मे निश्चय हो गया कि राक्षसो ने सीता को खा लिया। तरह-तरह की कल्पनाए करते और उसका विस्तार से वर्णन करते वह बराबर रोते रहे।

"मैने घोर पाप किया होगा, नही तो मै क्यो ऐसी विपदाओ मे फसता? मेरे भाग्य मे लिखा था कि प्रिय पत्नी को, जो मेरे साथ वनवास करने आई थी, राक्षसो को उनके आहार के रूप मे देना पडे। मेरे-जैसा पापी, अभागा दुनिया मे दूसरा कौन होगा?"

राम का इस प्रकार विलाप लक्ष्मण से सहा नही गया। बोले, "भैया, आप इस तरह शोक-विह्वल हो जाय, यह ठीक बात नही। मन को स्थिर

रखिये। हिम्मत लाइये। धीरज खोकर आदमी कोई पुरुषार्थ नही कर सकता। मन को एकदम दु ख के सागर मे छोड देने से भला कोई लाभ मिल सकता है? विधि को पुरुषार्थ से जीतने का प्रयत्न करे। अपने मन से निराशा और अधैर्य को हटा दीजिये। तभी कोई सिद्धि होगी। वीर पुरुषो का अनुकरण करे। चलिये, हम और ढूढते है।"

इस स्थल पर कवि ने रामचद्र को बिलकुल एक साधारण मानव के रूप मे चित्रित किया है, यद्यपि वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर उनकी दैवी विभूतियो का भी चित्रण किया है। पर एक उच्च हृदयवाला व्यक्ति जब अपनी अत्यत प्रिय पत्नी को अचानक किसी जगल मे खो दे तो इस पर जो प्रतिक्रिया हो सकती है, वही हम दशरथ-नदन श्रीराम मे देखते है। लक्ष्मण को उन्हे बार-बार समझाना पडा।

० ० ०

रामायण-ग्रथ मे हमे सामान्य धर्म का पाठ मिलता है। यहा पर पत्नी पर धर्मयुक्त प्रेम का पूरा दर्शन हमे मिल जाता है। इससे हमे पता लगता है कि पति का पत्नी पर उतना ही सच्चा और प्रगाढ प्रेम होना चाहिए, जितना कि पत्नी का पति पर होता है।

इस खड की आध्यात्मिक व्याख्या भी की जा सकती है। कोई आत्मा पथभ्रष्ट हो जाय तो परमात्मा को कितना क्लेश पहुचता है। सीता के वियोग को इसी का चित्र माना जा सकता है।

कोई विवाद कर सकता है कि परमात्मा को क्लेश कहां से होता है? यदि हम स्वीकार कर ले कि सब-कुछ उसी की लीला है, तो टीका-टिप्पणियो की आवश्यकता नही रहती। पाप, पुण्य, भक्ति आदि सभी वस्तुए उसी मे समाविष्ट है। हम सबको प्रभु उसी प्रकार प्यार करता है, जैसे प्रियतम अपनी प्रियतमा को करता है। हम रास्ता भूल जाय तो हमारा नाथ अवश्य चिंता करेगा। यह भी उसी की लीला है।

: ५० :

पितृ-तुल्य जटायु की अंत्येष्टि

दोनो भाइयो ने जगल मे कोई जगह शेष न छोडी, पर कही भी सीता का पता न लगा। किकर्त्तव्यविमूढ होकर राम कभी गोदावरी नदी को, कभी देवताओ को, कभी पचभूतो को नाम ले-लेकर पुकारते थे और अपना दुखडा रोते थे। पचभूत और देवता भी रावण से डरे हुए थे। इसलिए किसी ने राम को कुछ भी बताने की हिम्मत न की।

राम ने देखा कि हिरणो का एक झुड दक्षिण की तरफ भाग रहा था। उसे उन्होने एक सकेत समझा। अनुमान किया कि वे कहना चाहते है कि सीता दक्षिण की ओर ही कही पर है। दोनो भाई दक्षिण की ओर चले। रास्ते मे इधर-उधर कुछ फूल बिखरे पडे थे। रामचद्र ने एकदम उन फूलो को पहचान लिया। बोले, "ये फूल तो मैने अपने हाथ से तोडकर सीता को दिये थे। ये अवश्य मेरी सीता के केशो मे ही गिरे है।" निशान पाने पर उन्हे पहले बडी खुशी और उत्साह हुआ, पर दूसरे ही क्षण मन मे भय हुआ, 'सीता कहा गई होगी? उसका क्या हुआ?' जहा पर पुष्प पडे थे, उसके आस-पास की सारी जगह दोनो भाइयो ने देख डाली। उन्हे वहा लकेश के बडे-बडे पैरो के चिह्न दिखाई दिये। सीता के भी पदचिह्न थे। सीता के आभूषणो से निकले सोना और मणिमुक्ता भी इधर-उधर बिखरे पडे थे। राम ने उन्हे पहचान लिया।

"देखो, लक्ष्मण, मालूम होता है कि सीता डरकर इधर-उधर भागी है। राक्षस ने उसे बुरी तरह सताकर खा लिया।" राम को जो दु ख और घबराहट हुई, उसका वर्णन करना कठिन है।

आगे उन्हे और भी चीजे देखने को मिली। टूटे रथ के कई भाग जगह-जगह पडे थे। लकेश का मुकुट और उसके आभूषण भी छिन्न-भिन्न रूप मे पडे थे। 'इसका क्या अर्थ हो सकता है?' दोनो भाई सोच मे पड़ गये।

एक जगह बडा भारी धनुष टूटा पडा था । एक कवच भी नीचे गिरा हुआ दिखा । रथ की पताका फटी हुई दिखाई दी । सारथी का निर्जीव शरीर एक ओर को पडा था । खच्चरो की लाशे भी पास मे पडी थी । इसमे अब कोई शक न रहा कि वहा कोई बडी लडाई हुई थी ।

राम ने लक्ष्मण मे कहा, "दो राक्षसो के बीच सीता के लिए युद्ध हुआ लगता है ।"

राम के मन मे सीता के प्रति भयकर कल्पनाए आने लगी । डर ने अब क्रोध का रूप ले लिया । "मेरी सीता की रक्षा करने के लिए कोई देवता नही आया । देख लिया मैने इस दुनिया को ! अब मै इससे निपट लूगा । देखता हू, मैंने जिन-जिन अस्त्रो का प्रयोग सीखा है, वे सब अब काम आएगे ।" इस प्रकार दु ख मे राम भले-बुरे का विचार करने की शक्ति खो बैठे ।

लक्ष्मण ने स्थिति सभाली । वह बडे भाई को समझाकर कहने लगे, "भैया, भारी दु ख आ पडने पर मनुष्य बुद्धि खो बैठता है । फिर आपको यह शोभा नही देता कि अपने स्वाभाविक कल्याणकारी गुणो को एकदम भूल जाय । दुनिया से क्रुद्ध होकर उसका नाश करने की बात आपको कैसे सूझी ? आप वैसा कर नही सकते । किसी एक से पाप हुआ तो उसके लिए सारी मानव-जाति को कैसे दड दे सकते हैं ? भैया, जरा-जरा-सी बात पर आवेश मे आ जाना तो मेरी कमजोरी है । आप हमेशा मुझको समझाते आये है । सच्चा मार्ग बताते आये है । क्षमा करना, यद्यपि मैं आपसे उम्र मे छोटा हू, मुझे आज आपको समझाना पड रहा है । भैया, देखिये, अब आपको मन मे धीरज रखना ही पडेगा । दुनिया का नाश करने की बात भूल जाइये । दुनिया ने हमारा क्या बिगाडा है ? पहले हम इसका पता तो लगाए कि हमारा असली दुश्मन कौन है । फिर जो कुछ करना उचित होगा, अवश्य करेगे ।"

इस तरह छोटे भाई अपने बडे भाई को, प्यार से, बुद्धिमत्ता से और विनय से समझाते रहे । राम को लक्ष्मण के वचनो से कुछ शाति मिली । वह आगे बढे । दोनो ने देखा कि वहा पृथ्वी पर गिद्धराज जटायु निश्चल

अधमरे-से पडे है। उनके पख कट गये थे, मरण के वह बिलकुल समीप पहुच गये थे, इसलिए राम ने उन्हे दूर से न पहचाना। राम ने सोचा कि कोई राक्षस अपना रूप बदलकर उन्हे धोखा देने के लिए इस प्रकार हिले-डुले बिना पडा है। मारीच के छल के अनुभव के बाद राम का इस प्रकार शका करना स्वाभाविक था।

"वह देखो, यह राक्षस सीता को खाकर नीचे पडा है। मारो उसे।" और उस पर राम तीर चलाने ही वाले थे कि इतने मे गिद्धराज राम से दीन स्वर मे बोले, "भैया, मुझे मत मारो। मेरे शरीर मे ये प्राण अब कुछ क्षण के लिए ही टिकनेवाले है। जिस देवी की खोज मे तुम वन के कोने-कोने मे फिर रहे हो, उसे लकाधिपति रावण उठाकर ले गया है। मेरे प्राणो को भी उसी पापी ने हरा है। जब मैने देखा कि सीता को पकडकर वह रथ मे बैठा हुआ उडा जा रहा है, तो मैने उसे रोका, उसके साथ युद्ध किया। उसके धनुष और रथ को मैने चूर-चूर कर डाला। उसके सारथी को भी मैंने मार गिराया। तुमने उसकी लाश और टूटे रथ को रास्ते मे देखा ही होगा। मैं जब थककर जरा आराम लेने लगा, तो उस दुष्ट राक्षस ने मेरे पखो को काट डाला और मुझे नीचे गिरा दिया। मै फिर कुछ न कर पाया। मेरे देखते-देखते वह सीता को लेकर आकाश मे उडता हुआ चला गया। बस, तुम्हे यही सब बताने के उद्देश्य से प्राणो को किसी तरह रोके रहा हू। अब मै चला।"

जटायु की बाते सुनकर राम ने झट धनुष उतारकर फेक दिया और जटायु से प्यार से लिपट गये। दोनो राजकुमार अब अपने को न सभाल सके। बालक के समान जोर-जोर से रोने लगे।

"लक्ष्मण, मुझसे बढकर अभागा कोई दूसरा भला हो सकता है। अपना देश छोडकर जगल मे आया, वहा अपनी प्यारी पत्नी वैदेही खो गई और जगल मे पिता के सदृश प्यार करनेवाले जटायु भी, मेरे ही कारण, मृत्यु को प्राप्त हुए। सीता को खोने के दु ख की अपेक्षा जटायु के मरण की वेदना मेरे लिए किसी प्रकार भी कम नही है। मेरा भाग्य ही खोटा है। मै मरने

के लिए आग मे कूद पडू तो मेरा दुर्भाग्य पानी का रूप लेकर उस आग को बुझा डालेगा। समुद्र मे गिर पडू तो उसका पानी सूख जायगा। मैं बडा पापी हू। तभी तो मुझे एक के बाद एक दु ख देखने पड रहे है। मुझे यही डर लग रहा है कि कही तुम्हे भी एक दिन न खो दू।"

इस प्रकार विलाप करते हुए राम ने जटायु को प्यार से अपने हृदय से लगाकर रखा और पूछा, "मेरी सीता को तुमने देखा था ?"

जटायु मे अब बोलने की शक्ति खत्म हो चली थी। फिर भी अत्यत क्षीण स्वर मे उसने बताया, "राम, घबराओ नही। तुम अवश्य सीता को फिर से पाओगे। उसको किसी प्रकार की हानि नही हो सकती। धीरज रखो।" इतना कहकर वीर जटायु ने एक बार खून की उलटी की और हमेशा के लिए शात हो गये।

सीता को खोने मे राम और लक्ष्मण दोनो ने ही गलती की थी। उनके सोचने मे कुछ कमी रह गई थी, उसी के परिणामस्वरूप सीता की चोरी हुई।

o o o

अयोध्या मे जब राजा दशरथ मरे थे तब दोनो भाई वन मे थे। उनकी दाह-क्रिया भरत-शत्रुघ्न ने की।

सीता की रक्षा के लिए अपनी चोच, पख और पजो के सिवा दूसरे किसी प्रकार के शस्त्र के बिना जटायु ने रावण से युद्ध किया और ऐसा करते हुए प्राण त्याग दिये। जटायु को पिता से भिन्न न समझकर राम और लक्ष्मण ने उस पक्षिराज की अत्येष्टि-क्रिया विधिवत् की। इससे दोनो के मन को कुछ शाति मिली। इस प्रकार गिद्धराज जटायु ने मुक्ति पाई। जटायु भगवद्-भक्तो मे सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। यह स्वाभाविक है। सामान्य पक्षी होकर भी धर्म की रक्षार्थ उसने महाबली राक्षस के साथ, प्राणो की चिता किये बिना, युद्ध किया। उस समय सीता माता का हृदय ममता और करुणा से भर गया था। उसकी कल्पना की जा सकती है। तब इसमे आश्चर्य की कोई बात नही, जो पक्षिराज जटायु भक्तो मे आज

भी अग्रगण्य माने जाते है। वैष्णव सत भरत और जटायु दोनो को एक ही कोटि का समझते है और उनकी वदना करते है।

इसके बाद तो कई घटनाए घटती है। रावण के साथ राम-लक्ष्मण का बडा ही भयकर युद्ध छिडता है। रावण को मारकर दशरथ नदन उसके गर्व को भग कर देते है। किंतु देवी सीता तब अशोक-वाटिका मे बदिनी थी। उन्होने युद्ध का वर्णन औरो से सुना था, आखो से देखा नही था। हा, जटायु को एकदम निशस्त्र होकर, निडरता के साथ आखिरी दम तक लडते हुए उन्होने स्वय अपनी आखो से देखा था। जटायु की भक्ति की तुलना करना सरल नही। जय हो सत जटायु की!

० ० ०

"भाई लक्ष्मण, सूखी लकडियो की चिता बनाओ। तब तक मैं पत्थर घिसकर अग्नि तैयार करता हू। पिता दशरथ की दाह-क्रिया हम नही कर पाये। जो कार्य हमसे रह गया था वह हम अब करेगे।" राम ने लक्ष्मण से कहा।

"हे जटायु, हवन की अग्नि मे आहुति देकर यज्ञ करनेवाले शील पुरुषो को जो गति मिलती हो, वह तुम्हे मिले। तपस्वी और वानप्रस्थियो की जो सद्गति निर्दिष्ट है, वह तुम्हे प्राप्त हो। दानी लोग जिस पुण्यलोक मे जाते हो, वहा तुम्हारा स्थान हो। हे परम मित्र, हमारे पितातुल्य पक्षिराज, युद्ध मे पीछे न भागनेवाले धीर पुरुषो की गति तुम्हारे लिए भी हो।" यो प्रार्थना करके दोनो राजकुमारो ने जटायु के लिए उदक क्रियाए की। कर्तव्य-पालन से राम के मन मे कुछ समय के लिए सीता के विरह का दु ख कम हुआ, मन मे शाति का अनुभव हुआ।

० ० ०

भारतवर्ष के बालक-बालिकाओ के लिए रामायण केवल एक कहानी नही, हमारे लिए हमारे जीवन की घटनाओ से भी अधिक वास्तविक है। हमारे जीवन के लिए रामायण की बाते उतनी ही आवश्यक है, जितनी पेड-पौधो के लिए सूर्य की किरणे। हजारो नर-नारी रामायण पढकर आतरिक

शाति और शक्ति पाते है। अपने जीवन को बदलते है। हमें चाहिए कि जटायु का उदाहरण सामने रखकर दुखी बहनो की सेवा करे।

राम यद्यपि अवतारी थे, पर सामान्य मनुष्य से भिन्न न थे। दु ख के समय आसू बहाते थे, प्रलाप करते थे। ईसाइयो के पुराण मे भी हम यही देखते है। ईसामसीह को जब सूली पर चढाकर कीले ठोक दी तो प्रभु को उस अवस्था मे बहुत देर तक रहना पडा। तब वह असह्य पीडा के कारण परमात्मा को पुकारकर रो पडते है, "हे मेरे भगवन्, तुम मेरी रक्षा नही करोगे ?"

अवतारी पुरुष अन्य सामान्य मनुष्यो की तरह ही स्वय भी शारीरिक कष्ट पाते है। उनका शरीर-धर्म दूसरो से भिन्न नही रहता।

: ५१ :

सुग्रीव से मित्रता

इस प्रकार जीवन मे राम-लक्ष्मण को एकाएक कई सकटो का सामना करना पडा, जिनकी उन्हे कभी कल्पना न थी। विधाता के निर्णयो के सामने अपने को लाचार देखकर कभी-कभी हिम्मत हारकर वे दुखी हो जाते थे। तब एक-दूसरे को आश्वासन देते हुए फिर मन को समझा लेते थे और आगे चल पडते थे।

दोनो भाई वन के रास्ते से दक्षिण की ओर चलते गये। अचानक उन्होने देखा कि वे एक भयकर राक्षस के चगुल मे फस गये है। राक्षस का शरीर तो दिखाई देता था, पर उसके न पैर थे, न सिर ही कही दिखाई देता था। बडा-सा पेट आगे निकला हुआ था। कधे की जगह से दो बहुत ही लबे हाथ लटक रहे थे, जिसके पजो मे दोनो राजकुमार फस गये। वह राक्षस एक ही स्थान पर, हिले-डुले बिना रहकर अपने हाथो को लबा करके उसके भीतर फसनेवाले शेर-चीते आदि जानवरो को पेट के अदर डाल

लेता था और हजम कर जाता था। पेट मे ही उसका मुह था। ऊपरी भाग मे एक आख थी। उसका आकार अत्यधिक घृणा और डर पैदा करनेवाला था। ऐसे भयकर राक्षस के हाथो मे वे फस गये। थोडी देर तक उनकी समझ मे न आया कि क्या करना चाहिए। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, इस क्रूर राक्षस का एक हाथ तुम काट दो, दूसरा मै काटकर गिराये देता हू।"

दोनो ने वैसा ही किया। दोनो हाथो के कट जाने से राक्षस बेबस हो गया। उस राक्षस का नाम था कबध। कबध बोला, "अपने कुकर्मो के कारण मुझे शाप मिला था कि इस प्रकार कुरूप बनू। पर इद्र ने कहा था कि जब कोई मेरी दोनो बाहो को काटकर जला देगा तो शाप-मोचन हो जायगा। इसलिए, हे राजकुमार, तुम दोनो महाराज दशरथ के पुत्र मालूम होते हो। तुमने मेरी बाहे काट दी। यह बहुत अच्छा किया। अब मुझे जला और दो जिससे मै शाप से छुटकारा पा जाऊ।"

राम और लक्ष्मण ने कबध को उसके कहे अनुसार जला दिया। अग्नि के बीच से वह अपने असली मगल और सुदर रूप मे निकल आया। उसके लिए ऊपर से एक विमान आया। उसमे चढकर वह स्वर्ग की ओर जाने लगा। जाने से पहले उसने राजकुमारो से कहा, "आप लोग सीता को अवश्य पायेगे। पपा नदी के तट पर चले जाइये। वहा ऋष्यमूक पर्वत पर वानरो का राजा सुग्रीव रहता है। उसके भाई बालि ने उसे राज्य से भगा दिया है। सुग्रीव कष्ट मे है। उससे मित्रता कर ले। आप लोगो की कार्य-सिद्धि के लिए सुग्रीव के साथ मैत्री कर लेना अनिवार्य है।" इतना कहकर वह दिव्य पुरुष आकाश-मार्ग से स्वर्ग को चला गया।

दोनो भाई पपा नदी को लक्ष्य करके चलते गये। वह प्रदेश अति मनोहर था। वहा पर वे मतग मुनि की शिष्या शबरी नाम की बहुत ही वृद्धा सन्यासिनी से मिले। उसका आतिथ्य उन दोनो ने स्वीकार किया। शबरी बडी ज्ञानवान स्त्री थी। राम के अवतार-रहस्य का उसे पता था। राम के आगमन की प्रतीक्षा मे ही बैठी थी। बडे यत्न से मीठे-मीठे जगली फल

उसने राम के लिए इकट्ठे कर लिये थे। राम का स्वागत करके उनके चरणो पर मस्तक रखकर और प्रणाम करके वह मुक्ति पाना चाहती थी।

शबरी के दिये मीठे, सादे फलो को दोनो भाइयो ने बडे प्रेम से खाया।

शबरी ने विस्तार से वर्णन करके उस प्रदेश के बारे मे दोनो भाइयो को बताया। फिर उसने आग जलाई और उसमे प्रवेश करके अपना शरीर छोड दिया।

वहा से राम-लक्ष्मण पपा सरोवर पहुचे। सन्यासिनी शबरी के मिलने से और सरोवर मे स्नान करने से दोनो की थकावट दूर हुई। मन मे नवीन उत्साह का अनुभव हुआ। राम ने कहा, "लक्ष्मण, मेरे मन मे अब विजय की आशा पैदा हुई है। अब हमारा पहला काम वानरो के राजा सुग्रीव को खोजना होगा। चलो, उसी कार्य मे लग जाय।"

दोनो पपा नदी की ओर बढे। पपा सरोवर और पपा नदी दोनो की शोभा वसत-काल के प्रभाव से अत्यत वृद्धि पर थी।

प्राकृतिक सौदर्य ने राम की वियोग-वेदना को और उत्तेजित कर दिया। हर सुदर वस्तु को देखकर राम यही सोचने लगे कि सीता यहा पर होती तो उसे कितना आनद आता। सदा तटस्थ बुद्धिवाले राम को इस प्रकार अधीर देखकर लक्ष्मण उनको समझाते थे, "भैया, घबराओ नही। हम सीता को अवश्य ढूढ लेगे, चाहे वह देवो की मां अदिति के गर्भ मे ही क्यो न छिपाकर रखी गई हो। रावण हमसे बच नही सकता। उसे मारकर हम सीता को छुडा लायेगे। आप यो हिम्मत न हारे। यह आपको शोभा नही देता। सतत प्रयत्न से हम अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। अत्यधिक प्रेम के कारण मन का धैर्य खोना स्वाभाविक है। किंतु अधैर्य हमारा शत्रु बन जायगा। अधैर्य और शोक को मन से निकालकर मन मे उत्साह लाइये। मैं आपको क्या समझा सकता हू? उत्साह कार्यसिद्धि के लिए सर्वोत्तम साधन है। इसलिए इस समय आप शोक और अधैर्य लानेवाले प्रेम को भी भूल जाय और आगे के काम के लिए मन मे उत्साह भरे।"

इस प्रकार छोटे भाई बड़े भाई को उपदेश देने लगे। शेषनाग महा-

विष्णु की रक्षा मे तत्पर रहता है। मान्यता यही है कि शेषनाग की तरह ही लक्ष्मण दशरथ-नदन श्रीराम की रक्षा मे सदा तत्पर रहते थे।

० ० ०

अब हम 'किष्किधा काड' मे आते है।

सुग्रीव ने पपा के तट पर आते हुए रामचद्र को देखा। उन्हे तीर-कमान लिये और इधर-उधर घूमते देखकर सुग्रीव तथा उसके साथी वानरो को डर लगने लगा। सुग्रीव अपने भाई बालि द्वारा राज्य से भगा दिया गया था। ऋष्यमूक पर्वत पर बालि नही आयगा यह समझकर सुग्रीव कुछ साथियो के साथ वहा रहने लगा था। राम को देखकर सुग्रीव ने सोचा कि बालि अपना रूप बदलकर आया है या उसने किसी क्षत्रिय राजा से मित्रता करके उनको लडने के लिए भेजा है। सभी वानर मृत्यु के डर से बेचैन हो गये।

हनुमान सुग्रीव का मुख्य मत्री था। उसने कहा, "सुग्रीव, यह बालि नही है। मुझे तो ये दोनो राजकुमार बालि के मित्र भी नही मालूम होते। व्यर्थ क्यो घबरा रहे हो ? मै उन दोनो के पास जाकर मालूम करता हू कि ये किस उद्देश्य से यहा आये है।"

सुग्रीव को हनुमान की बात पसद आई। उसने राम के पास जाकर पता लगाने के लिए हनुमान को अनुमति दे दी और कहा, "सावधानी से बात करना और चतुराई से मालूम कर लेना कि वे कौन है और यहा क्यो आये है। वे किसी व्यक्ति की खोज मे मालूम होते है। इसीलिए मुझे सदेह हो रहा है कि वे यहा से मुझे खोज निकालने और मार डालने के लिए बालि की ओर से न भेजे गये हो।"

एक ब्राह्मण का रूप बनाकर हनुमान राम-लक्ष्मण के पास पहुचा। जैसे ही हनुमान ने राम के दर्शन किये, उसके मन पर एक प्रकार की अनिर्वचनीय भावुकता छा गई। अत्यत आह्लाद का अनुभव हुआ। वह दोनो भाइयो से कहने लगा, "हे मोहन रूपवाले राजर्षियो, आप दोनो कोई देवता हैं क्या ? व्रती तापस दिखाई दे रहे है। यहा पर तप करने आये है क्या ?

इस दुर्गम जगल मे आने का क्या प्रयोजन है ? मुझे कृपा करके बतलाइये कि आप कौन है ? आप दोनो के शुभागमन से इस प्रदेश की शोभा पहले से बढ गई है। आपके अति सुदर शरीर के तेज से जगल के हम प्राणियो मे कुछ डर-सा पैदा हो गया है। आपका पराक्रम अपने-आप प्रदर्शित हो रहा है। देखने से तो लगता है कि आप कोई प्रभावशाली राजा है। तब तापसो का वेश क्यो धारण किये हुए है ? जटा, चीर-वल्कल और तीर-कमान धारे आप दोनो का यहा कैसे आना हुआ ?

"आप मेरे प्रश्नो का उत्तर क्यो नही दे रहे है ? यहा पर सुग्रीव नामक वानर-राजा अपने राज्य से भागकर आया हुआ है और इस वन मे छिपा है। उसका मै मुख्य मत्री हू। मुझे हनुमान कहते है। वायु का मै पुत्र हू। राजा की आज्ञा से ब्राह्मण के रूप मे आप लोगो का परिचय पाने के लिए आया हू।"

हनुमान ने इस प्रकार बहुत ही विनयपूर्वक उनसे बाते की। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, मुझे हनुमान की बातो पर विश्वास होता है। उसकी बातो मे बडी शिष्टता है। शुद्ध भाषा का प्रयोग करता है। वेदो का अध्ययन किया हुआ और व्याकरण-शास्त्र पढा हुआ प्रतीत होता है। दूत इसी को कहना चाहिए। जिस राजा के पास ऐसा दूत हो, उसे किस बात की कमी हो सकती है ? हम जिसकी खोज मे थे, वह स्वय हमारे पास पहुच गया है। सुग्रीव को हम खोज रहे थे और सुग्रीव ने हमारे पास इस दूत को भेजा है। इसका उचित रूप से स्वागत करो और अपनी सारी बाते बताओ।"

हनुमान के साथ राम-लक्ष्मण की खूब बाते हुई। उन्होने अपने कष्टो की बाते बताई। इस बातचीत के परिणामस्वरूप लक्ष्मण को हनुमान पर विशेष प्रीति हो गई। राम को भी लक्ष्मण ने यह बात बताई। हनुमान से वह बोले, "मेरे बडे भाई वैभवशाली राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र हैं। उन्हे राज्य छोडकर जगल आना पडा। तुम्हारे राजा सुग्रीव से उन्हे अपने एक काम मे सहायता चाहिए। शाप के कारण दैत्य-रूप पाया हुआ एक

गधर्व हमारे द्वारा शापमुक्त हुआ था। उसने हमे बताया कि वानरराज सुग्रीव से हम मैत्री करे। उसकी मदद से राक्षस के कारागार मे पडी सीता को फिर से पा सकेगे। इसीलिए सुग्रीव की खोज मे हम यहा आये है और तुम्हारे राजा से मैत्री की आशा रखते है।"

हनुमान लक्ष्मण से बोले, 'सुग्रीव भी अपने बडे भाई बालि से बहुत पीडित हुआ है। अपना राज्य और पत्नी को खोकर वह बडा दुखी है। अब वह अवश्य राज्य और पत्नी को फिर से पा लेगा। आप लोगो से मित्रता करके हमारा राजा सुखी हो जायगा। उसके बदले मे वह आप लोगो की कार्यसिद्धि मे अवश्य सहायता करेगा।"

तीनो जने बडे प्रसन्नचित्त से राजा सुग्रीव के पास पहुचे। मार्ग मनुष्यो के चलने-जैसा न था। छलाग मार-मारकर बदरो की भाति उसे पार किया जा सकता था। इसलिए हनुमान ने अपना निजी वानर-रूप धारण कर लिया और राम और लक्ष्मण को अपने कधो पर बिठाकर कूदते हुए ले गया।

सतो के मन आपस मे सरलता से मिल जाते है। आपस मे मैत्री-भाव अनुभव करने के लिए उन्हे बरसो के साथ की आवश्यकता नही रहती। जैसे ही मिलते है, एक-दूसरे को समझ लेते हैं और गहरे मित्र बन जाते है।

हनुमान की भक्ति और सेवा रामचद्र प्राप्त करे, यह तो पहले ही से निश्चित बात थी। इसलिए पहली भेट के समय ही दोनो जनो के हृदयो मे परस्पर विश्वास और प्रेम का उदय हो गया। बहुत दिनो के बाद मिलने पर प्रेमीजन जिस उमग से एक-दूसरे से आलिंगन करते हैं, वैसी ही उमग के साथ हनुमान राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर चढाकर ले गया।

ऋष्यमूक पर्वत पर राम-लक्ष्मण को ले जाने के बाद हनुमान ने सुग्रीव को बताया कि राम-लक्ष्मण आये हुए है और आपसे मिलना चाहते हैं। राजकुमारो का उसने सुग्रीव को परिचय भी दिया। बोला, "राम महा बुद्धिमान और सभी अच्छे लक्षणो से युक्त राजकुमार हैं। इक्ष्वाकु-वश मे उत्पन्न हुए है। सुप्रसिद्ध राजा दशरथ के पुत्र है। पत्नी और छोटे भाई के

साथ पिता की आज्ञा से वन मे वास करने आये है। जब दोनो भाई आश्रम मे नही थे और सीता अकेली रह गई थी तब रावण उन्हे उठाकर ले गया। उन्हे खोजने के लिए राम आपकी मदद चाहते है। आपकी सहायता पाने के लिए राम सब तरह से अधिकारी है। इन राजकुमारो की मित्रता पाकर आपको भी बहुत लाभ होगा।"

सुग्रीव ने एक सुदर मनुष्य का रूप धारण करके श्रीराम से बाते की। राम की ओर उसने अपना हाथ बढाया और कहा, "हे राजकुमार, मैं ठहरा एक वानर। यदि मेरे साथ दोस्ती चाहते हो तो यह रहा मेरा हाथ, उसको ग्रहण करो।"

श्रीराम ने सुग्रीव के हाथ को ग्रहण किया और उसे आलिंगन मे बाध लिया।

हनुमान ने जल्दी से अग्नि प्रज्वलित की। अग्नि की पूजा और प्रदक्षिणा करके दोनो ने मैत्री की शपथ ली। दोनो ने कहा, "सुख मे, दु ख मे, हम समान हिस्सा लेगे, हमारी मैत्री सदा स्थिर रहेगी।"

पेड की दो बडी-बडी डालो का उन लोगो ने आसन बना लिया और एक पर राम और सुग्रीव तथा दूसरी पर हनुमान और लक्ष्मण बैठकर वार्तालाप करने लगे। सुग्रीव अपना सारा कष्ट राम को सुनाने लगा, "बालि के डर के मारे बेचैन हू। इस वन मे भटकता हुआ उसकी निगाह से बचता हुआ रहता हू। क्या तुम बालि को मारकर मेरा राज्य और मेरी पत्नी दोनो मुझे वापस दिला सकते हो?"

"अवश्य, तुम निश्चिंत रहो। बालि मेरे बाणो से बच नही सकता।" राम ने कहा।

जब राम और सुग्रीव के बीच ये बाते हो रही थी, अशोक-वाटिका मे सीता और राक्षसो के राजा रावण की बायी आख फडकने लगी।

बायी आख का फडकना स्त्रियो के लिए शुभ और पुरुषो के लिए अशुभ समझा जाता है।

सुग्रीव ने देखा कि राम सीता के वियोग से बहुत ही उदास हैं। उसने

राम को आश्वासन देते हुए कहा, "हनुमान ने मुझे सारा हाल विस्तार से सुना दिया है। तुम अब चिता करना छोड दो। हम सब मिलकर सीता को अवश्य खोज निकालेगे। भले ही लकेश ने उसे चाहे कही भी छिपाकर क्यो न रखा हो। इस बात मे तुम जरा भी शका न रखो। यह कार्य शीघ्र ही हो जायगा। हम सब मिलकर तुम्हारे लिए यह काम कर देगे।

"हम लोगो ने एक बार देखा था कि एक राक्षस एक स्त्री को लेकर आकाश-मार्ग से उडता हुआ जा रहा था। वह स्त्री बडी छटपटा रही थी। 'हे राम! हे लक्ष्मण!' इस प्रकार वह चिल्ला रही थी। हमे भी उसने देखा। अपने उत्तरीय मे कुछ आभूषण बाधकर उसने हमारी ओर फेके। हमने उन्हे वैसा ही उठाकर रख छोडा है। अभी तुम्हे दिखाते है। तुम्हारी स्त्री के होगे तो तुम अवश्य पहचान लोगे।"

यह सुनते ही राम ने कहा, "अभी तक तुमने मुझे यह क्यो नही बताया ? जल्दी से उन चीजो को दिखाओ। जल्दी करो।"

वानरो ने सीता की फेकी हुई छोटी-सी पोटली को पर्वत की गुफा मे छिपा रखा था। उसे वहा से निकालकर लाये और राम के सामने रख दी। सीता के वस्त्र को पहचानकर राम दु ख से छटपटाने लगे। उस बधी हुई छोटी-सी पोटली को देखकर और रावण के हाथो मे फसी हुई सीता को याद करके राम के मन मे असह्य व्यथा का अनुभव हुआ।

उन्होने आखे बद कर ली। लक्ष्मण से बोले, "भाई, तुम्ही पोटली को खोलकर देख लो। मुझसे यह न होगा।"

लक्ष्मण ने कपडे की गाठ खोलकर आभूषणो को देखा। सीता के पैरो के नूपुरो को उन्होने झट पहचान लिया और बोले, "भैया, यह तो भाभी के ही हैं। मैंने पहचान लिये। उनके चरणो को स्पर्श करके प्रणाम करते समय इन नूपुरो का मै प्रतिदिन दर्शन करता था।"

कवि लोग लक्ष्मण के इन वचनों पर मुग्ध हैं।

उसके बाद राम ने अपनी प्राणो से प्यारी पत्नी के गहनो को एक-एक करके उठाया, देखा और आखो से लगाया। अनेक प्रिय स्मरण सजीव

हो उठे। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, घास पर गिरने के कारण एक भी चीज बिगडी या टूटी-फूटी नही है, वैसी-की-वैसी है।"

उनका प्रबल दु ख क्रोध मे बदलने लगा। एकदम आवेश मे आकर राम बोले, "जिस राक्षस ने मेरी सीता का अपहरण किया है, उसके घर का द्वार यम के प्रवेश के लिए खुल गया समझो। उसका और उसके सारे कुल का एकदम नाश करके छोडू गा।"

राम के क्रोधावेश को देखकर सुग्रीव घबरा गया।

दोनो ने परस्पर अग्नि-देवता को साक्षी रखकर मैत्री की शपथ ली थी, फिर भी यह बात स्पष्ट नही हुई थी कि पहले राम का कार्य होगा या सुग्रीव का। राम के क्रोध और दु ख को सुग्रीव ने अब ठीक से पहचाना। राम के साथ चर्चा करना उसने हानिकारक समझा। यदि पहले सीता को ढूढने के काम मे लग जाय तो पता नही तब तक बालि क्या-का-क्या कर डालेगा। फिर अधिकार बालि के हाथ मे रहने से सुग्रीव की शक्ति भी बहुत सीमित हो जाती थी। इसलिए उसने सोचा कि अपने और राम दोनो के हित मे पहले बालि पर विजय पाना और राज्य को प्राप्त करना अत्यावश्यक है। राम की मन स्थिति और नीतिशास्त्र को भली प्रकार समझते हुए उसने विचारपूर्वक व्यवहार करने का निश्चय किया। राम से उसने कहा, "राम, मैं इस समय यह नही जानता कि रावण का बल कितना है, वह कहा रह रहा है और उसने सीता को कहा छिपाया है। फिर भी मैंने तुम्हे वचन दे दिया है कि किसी-न-किसी प्रकार से रावण को मारने और सीता का पता लगाने का उपाय करेंगे। इस बात मे तुम तनिक भी शका न करो। दु ख छोड दो। धैर्य धारण करो। ऐसे कामो मे सफलता प्राप्त करने के लिए धीरज रखना अत्यावश्यक है। राक्षस-कुल का हम सब मिलकर नाश करेगे। निराशा छोड दो। तुम्हारी ख्याति सारे ससार मे फैलनेवाली है।

"मुझे देखो, मैं भी अपनी पत्नी खोकर बैठा हू। राज्य से भगाया गया हू। मेरा घोर अपमान हुआ है। फिर भी अपने मन के आवेगो को

रोककर उचित समय की राह देखते हुए बैठा हू। मै ठहरा एक तुच्छ वानर। यदि मुझसे ऐसा हो सकता है तो तुम्हारे लिए दु ख को रोकना कौन-सी बडी बात है ? अब रोना बद करो। तुम जितेंद्रिय हो। मन मे स्थिरता लाना तुम्हारे-जैसो के लिए सरल काम होना चाहिए, नही तो, जैसे प्रचड हवा मे नाव समुद्र मे डूब जाती है, उसी प्रकार हम भी डूब जायगे। शोकमग्न होकर हमसे कोई भी काम नही हो सकेगा। इसलिए मेरे परम मित्र, मै तुमसे प्रार्थना करता हू कि मन से शोक हटाओ और उसकी जगह धैर्य धारण करो, नही तो हम अपने कार्य मे असफल हो जायगे। मैं तुम्हे उपदेश देने योग्य अपने को नही समझता। एक मित्र के नाते तुम्हे समझा रहा हू। बस।"

सुग्रीव के हितकर वचन रामचद्र को उचित लगे। उन्होने अपने आसू पोछ लिये और सुग्रीव का प्यार से आलिगन किया। सीता के वस्त्र और आभूषणो को देखने से उनका जो दु ख उमड पड़ा था, उसे उन्होने रोक लिया और अपने मन मे दृढता ले आये। बोले, "हे सुग्रीव, तुम-सा मित्र पाकर अपने को मै बडा भाग्यशाली समझता हू। तुम जैसा कहोगे, उसी प्रकार मै करूगा। सीता को ढूढने के उपायो को भली प्रकार सोचना। तुम्हारे काम को भी मै अपना ही काम समझकर करूगा। मेरी बात को प्रतिज्ञा समझो। मैं आज तक कभी झूठ नही बोला हू, न आगे कभी बोलूगा। हमारी मित्रता सदा स्थिर रहेगी। तुम्हारा कष्ट दूर करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, यह बताओ। सकोच मत करो। जो कहोगे, तुम्हारे लिए मै वही करूगा।"

राम के वचनो से सुग्रीव और उसके सचिवो को अपार आनद हुआ। उन सबने यही सोचा कि उनके दु ख के दिन समाप्त हुए और सुग्रीव का फिर से राजा बन जाना निश्चित है।

: ५२ :

सुग्रीव की व्यथा और राम की परीक्षा

सुग्रीव ने राम को अपने और अपने बडे भाई बालि के बीच मे हुए विरोध के बारे मे सारी बाते विस्तार से कह सुनाईं। बोला, "मेरा बडा भाई बालि वानरो का राजा है और किष्किधापुरी मे राज करता है। बडा पराक्रमी है। उस पर मेरी बडी भक्ति और प्रेम था। मै युवराज था। बालि और मायावी नामक असुर मे बहुत पुराना झगडा था। एक दिन रात के समय मायावी किष्किधा मे घुस आया और बालि को युद्ध करने के लिए ललकारा।

"रात मे मायावी की गर्जना खूब जोर से सुनाई दी। बालि उस समय सोया हुआ था। गर्जना सुनकर वह उठ बैठा और मायावी मे लडने के लिए बाहर निकल पडा। मैं भी उसके साथ चल पडा। चांदनी रात थी। हम दोनो को एक साथ आते देखकर मायावी भागा और एक गुफा मे घुस गया। उसका पीछा करता हुआ बालि भी उस गुफा के अदर चला गया। मै अदर जाने लगा तो बालि ने मुझे रोक दिया और कहा, 'मैं अकेला ही उस दुष्ट को मार डालूगा, तुम गुफा के द्वार पर खड़े रहो।' इतना कहकर बालि भीतर चला गया। कई दिनो तक वह बाहर नहीं आया। मुझे बडी चिंता होने लगी। फिर भी वही खडा रहा। एकाएक एक साथ कई असुरो का भयानक शोर भीतर से मैंने सुना, साथ ही खून की धारा गुफा के अदर से बाहर बह निकली। मैने सोच लिया कि बालि को मायावी और उसके साथी असुरो ने घेरकर मार डाला। मुझे डर लगा कि अब वे मुझे भी मारने के लिए बाहर निकलेगे। सो एक बहुत बडे पत्थर से मैंने गुफा का द्वार बाहर से बद कर दिया और डर से तथा दु खी मन से किष्किधा लौट आया। मैंने किसी से यह नही कहा कि बालि मर गया। चुपचाप राजकीय कार्यों को देखता-भालता रहा। वानर-प्रजा बडा आग्रह करने लगी कि मुझे अब राजा बन जाना चाहिए। बहुत दिन हो गये, बालि वापस नही आया और

राज्य का बुरा हाल हो रहा था। उनके बार-बार आग्रह करने पर मै मान गया।

"उसके कुछ समय बाद मायावी और उसके साथियो को मारकर बालि वापस आया। उसने जब गुफा का द्वार बद देखा तो मेरा नाम लेकर कई बार पुकारा। मै तो वहा था नही। इसलिए द्वार खोलनेवाला कोई न था। गुस्से मे आकर उसने पत्थर को लात मार-मारकर धकेला और बाहर निकला। मुझे वहा न पाकर वह किष्किधा मे आया। वहा आकर उसने देखा कि मैं उसकी राजगद्दी पर बैठकर राज कर रहा हू। फिर क्या था! गुस्से मे आकर उसने मुझे बडी गालिया दी। मैंने उसको सारा हाल बताया और कहा कि मैने तो यही सोच लिया था कि असुर ने तुम्हे मार डाला है और प्रजा के बार-बार अनुरोध करने पर ही मै राजा बना। अब तुम आ गये हो तो गद्दी तुम्हारी है, सभालो। मै सदा की तरह तुम्हारा सेवक बना रहूंगा। इतना कहकर मै उसके चरणो मे गिर पडा। बालि को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। उसने यही सोचा कि मैने जान-बूझकर गुफा का द्वार बद कर दिया और कपटपूर्वक राजा बन गया हू। उसने मुझे राज्य से भगा दिया और धमकी दी कि राज्य के अदर अगर कभी अपनी सूरत दिखाई तो जान से मारा जाऊगा। उस समय शरीर पर जो कपडे थे, उन्ही को पहने मै राज्य से बाहर भाग आया। जगलो और पहाडो पर भटकता हुआ अपनी जान बचा रहा हू। मेरे पास अब कुछ नही रहा है। बस, ये चार वानर मेरे साथ है। क्रोध मे आकर मेरी बातो पर अविश्वास करता हुआ, मेरा भाई मुझ पर घोर अन्याय कर रहा है। उस क्रूर व्यक्ति से मेरी रक्षा करो।"

सुग्रीव की दयनीय स्थिति देखकर राम के हृदय मे उसके प्रति बडी दया उपजी। वह बोले, "मैंने तुम्हे सहायता करने का वचन दे दिया है। उसका मै अवश्य पालन करूगा। तुम तनिक भी चिंता न करो। तुम्हारा भाई मेरा शत्रु बन गया है। मेरे बाणो से वह अब मरेगा। यह निश्चित समझो।"

बालि और सुग्रीव की कथा से यह सोचने-समझने को मिलता है कि असल मे तो हम न बालि को दोषी ठहरा सकते है, न सुग्रीव को। क्रोध मे बुद्धि मद हो जाती है। क्रोध के वश मे आकर हम सत्य को पहचान नही सकते। बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना विनाश की ओर जाना होता है। शास्त्र यही कहता है। बालि का नाश इसका अच्छा उदाहरण है। सुग्रीव ने बडी विनय से सच्ची बाते अपने भाई को बताई थी। किंतु अत्यधिक क्रोध से वह विवेक खो बैठा था।

सुग्रीव ने भी जल्दी से यह मान लिया कि उसका भाई मर गया। उसे यह डर लग गया कि असुर उसे भी मार डालेगे। इसी कारण उसने गुफा का द्वार बद किया। उसने राज्य का लोभ नही किया। प्रजा ने जब बहुत जोर डाला तब माना। फिर फस गया। बिना सोचे-समझे जल्दी मे आकर कुछ भी कर डालने से हम अनर्थ कर डालते है। सुग्रीव का अनुभव भी इसका अच्छा उदाहरण है।

दूसरो की चीज पर कभी लोभ न करना चाहिए। इस लोभ को दबाना आसान नही। इसमे सपूर्ण सफलता पाने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता होती है। भरत को भी तो अयोध्या की सारी प्रजा और मत्रियो ने कहा था कि वह राजगद्दी ले ले, किंतु भरत ने दृढता के साथ इन्कार कर दिया था। यह भरत का अनुपम श्रेय है। सुग्रीव लोभ के वश मे आ गया और परिणामस्वरूप उसने बहुत दु ख पाया।

रामायण के प्रत्येक खड से हमे कुछ-न-कुछ सीख मिलती है। कही वह साफ दीखती है, कही भक्ति से सोचने-समझने पर जीवन मे अनुकरण करने योग्य शिक्षा दिखाई दे जाती है।

० ० ०

पत्नी और राज्य को फिर से पाने की तीव्र इच्छा सुग्रीव को सताने लगी, पर उसके लिए कोई रास्ता दिखाई नही दे रहा था। बालि का पराक्रम एक पहाड की तरह उसका रास्ता रोककर खडा था।

हनुमान सुग्रीव से बार-बार कहता कि अब राम के साथ मैत्री हो जाने

से बालि को जीतना बहुत ही आसान हो गया है, फिर भी सुग्रीव के मन की शका मिटी नही। वह बालि को एक प्रकार से अजेय समझता था। उसके लोहे के समान शरीर का राम भी कुछ नही बिगाड सकेंगे, सुग्रीव का यही विश्वास था ।

इतने पर भी उसकी एकमात्र आशा अब रामचद्र पर ही आधारित थी। उसने सोचा कि रामचद्र की शक्ति की परीक्षा क्यो न की जाय। लेकिन राम से सीधे यह प्रस्ताव करने मे उसे सकोच हुआ। वह व्यवहार-कुशल था। उसने राम को धीरे-धीरे बालि के शारीरिक बल के बारे मे बताना शुरू किया, "रामचद्र, तुम्हारा आश्वासन पाकर मेरे मन मे अब शाति हुई। तुम्हारा छोडा हुआ बाण तीनो लोको का नाश कर सकता है। बालि उसके सामने भला कैसे टिक सकेगा ? फिर भी महान् पराक्रमी बालि के बारे मे मैं जो कुछ जानता हू, तुम्हे बता देना मेरा कर्तव्य है। बडे सवेरे उठकर एक ही मुहूर्त्त मे बालि चार समुद्र-तटो पर जाता है और सध्या-वदन करके लौटता हैं। पहाडो के बडे-से-बडे पत्थर को हाथ मे लेकर गेद की तरह उछालकर खेला करता है। जगल के बडे-बडे वृक्षो को घास की तरह जड से उखाडकर फेक देता है।

"एक समय की बात मैं बताता हू, सुनो। दुदुभि नाम का भैसे के रूप वाला एक असुर था। उसको एक हजार हाथियो के बल का वरदान मिला था। उतना अधिक बल पा जाने पर वह सोचने लगा कि उसका प्रयोग कैसे किया जाय। उसने समुद्र को युद्ध के लिए ललकारा। सागरराज ने उससे कह दिया कि मै तेरे साथ युद्ध नही कर सकता। तू अपने बराबर के व्यक्ति से लड। उत्तर दिशा मे हिमवान् के साथ टक्कर ले। दुदुभि उत्तर दिशा मे हिमवान् के पास पहुचा और युद्ध करने को कहा। हिमवान् ने उससे कह दिया, 'भाई, मुझसे क्यो लडता है ? मेरे पास तो अनेक ऋषि-मुनि ठहरे हुए है। उन भले और भोले लोगो के साथ मेरा दिन-रात का सहवास रहता है। मैं भला लडना कहा जानू ?' तब दुदुभि ने हिमवान् से कहा, 'तू नही लड सकता तो अपने समान किसी दूसरे बलशाली

को बता जो मुझसे लड सके।' हिमवान् ने उत्तर दिया, 'हे महिषासुर, दक्षिण मे तेरे-जैसा ही बलवान् वानरराज बालि है। तुझमे हिम्मत हो तो उसे अपने साथ युद्ध करने के लिए निमत्रण दे।'

"दुदुभि वहा से किष्किधा पहुचा और जोरो से उछल-कूद करने लगा। बडे-बडे पेडो को उमने तोड गिराया। किले के द्वार को अपने बडे-बडे सीगो से गिराते हुए उसने गरजकर बालि को ललकारा, 'सब कहते है कि तुझमे बडा बल है, तो बाहर निकल और मेरे साथ युद्ध कर।'

"बालि उस समय अत पुर मे आराम से सो रहा था। असुर की गर्जना सुनकर जग पडा और महल के बाहर निकल आया। साथ मे उसकी पत्निया चली आई। बालि ने अमुर से कहा, 'दुदुभि, क्यो व्यर्थ मे शोर मचा रहे हो! जान बचानी हो तो अभी चले जाओ यहा से।'

"बालि की तिरस्कारपूर्ण बातो से दुदुभि को बडा गुस्सा आया। बोला, 'अपनी स्त्रियो के सामने क्यो बढ-बढकर बाते बना रहा है! मै तो तेरे साथ युद्ध करने आया हू। बकवास करना बद कर। अभी तो मालूम होता है तू सोकर उठा है। मदिरा का नशा तेरे दिमाग से उतरा नही है। मै दिन-चढते तक ठहरूगा। तब तक तू तैयार हो जा और जो कुछ भोगादि की इच्छा हो पूरी कर ले। सबसे विदा लेकर मेरे सामने आ जा। मैं तुझे युद्ध मे समाप्त करनेवाला हूँ।'

"दुदुभि की बाते सुनकर बालि जोर से हँस पडा। अपनी स्त्रियो को उसने अदर चले जाने को कहा और फिर राक्षस से बोला, 'अरे दुदुभि, मैं नशे मे नही हू। यही ममझ ले कि युद्ध करने के लिए उत्तेजक पेय पीकर आया हू। मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो तो हो जाओ तैयार!' और यो कहकर बालि ने दुदुभि की पूछ को पकडकर उसके शरीर को जोरो से घुमा-कर उसे दूर फेक दिया। असुर के मुह से खून निकलने लगा। लेकिन इतने पर भी वह दौडता हुआ लौटा और बालि से भिड गया। लेकिन बालि ने अपने मुष्टि-प्रहारो से उसे मार डाला। उस मरे भैसे को उठाकर ऐसे जोर से फेका कि वह एक योजन दूर जा गिरा और उसके शरीर से खून के छीटे

हवा मे उडकर मतग मुनि के आश्रम मे जा गिरे। मतंग मुनि को इसका पता चल गया कि यह कैसे हुआ होगा। उन्हे बडा क्रोध आया। उन्होने बालि को शाप दिया कि 'हे बालि, घमड के मारे मुरदार शरीर को फेककर उसके खून से तूने आश्रम को अपवित्र किया है। इसलिए इस आश्रम मे यदि तू प्रवेश करेगा तो उसी क्षण तेरी मौत हो जायगी।' इसी कारण से बालि यहा आने की हिम्मत नही करता है और मै यहा पर आश्रय लेकर रह रहा हू। इन बडे-बडे साल-वृक्षो को जब बालि हिलाता है तो इनके सारे पत्ते झडकर गिर पडते है। ऐसे बलिष्ठ भाई के शत्रु बन जाने के कारण मै बहुत ही भयभीत हू।"

लक्ष्मण समझ गये कि सुग्रीव को अब भी पूरा विश्वास नही हुआ है कि राम बालि को मार सकेंगे, इसलिए उन्होने सुग्रीव से कहा, "हे सुग्रीव, तुम राम के बल की परीक्षा ले सकते हो।"

सुग्रीव ने कहा, "नही, राम के भुजबल को मै भली-भाति जानता हू। मैंने तो राम की शरण ले ली है। राम अवश्य ही मेरी रक्षा करेगे। लेकिन जब बालि के पराक्रमो का ध्यान आता है तो मेरा शरीर कापने लग जाता है।"

श्रीराम ने सुग्रीव की श्रद्धा और बालि से उसका डर देखकर सोचा कि उसे अपनी शक्ति का कुछ प्रमाण देना आवश्यक है। तभी वह निश्चित हो पायगा।

वही पास मे ही ददुभि का शव एक पहाड की तरह पडा हुआ था। अपने अगूठे से राम ने उसे उछाला तो वह दस योजन दूर जा गिरा।

फिर राम ने अपने धनुष की प्रत्यचा को कान तक खीचकर एक बाण छोडा, जिसने सुग्रीव के बताये हुए शाल वृक्ष तथा उसके पीछे एक कतार मे खडे छः वृक्षो को भेद दिया। भेदकर वह अद्भुत बाण फिर वापस राम-चद्र के तूणीर मे प्रवेश कर गया।

श्रीरामचद्र की शस्त्र-कला के इस आश्चर्यजनक प्रदर्शन से सुग्रीव का सदेह पूर्णतया मिट गया। अब उसको विश्वास हुआ कि राम का बाण बालि

के वज्र शरीर को भेद सकेगा। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने राम को साष्टाग प्रणाम किया और बोला, "हे राम, मैने आपका पराक्रम देखा। इद्र के नेतृत्व मे सारे देवगण भी आकर आप पर आक्रमण करे तो भी आप विजयी होगे। बालि तो आपके सामने कुछ भी नही है। आज मै निश्चित हुआ। बस, आप शीघ्र-से-शीघ्र बालि को मारकर मेरी रक्षा कीजिए। चलिए, आज ही किष्किधा को चल पडे।"

राम-लक्ष्मण दोनो मान गये और किष्किधा के लिए निकल पडे। सुग्रीव आगे गया। राम एक पेड की आड मे खड होकर देखने लगे कि क्या हो रहा है।

सुग्रीव ने जोर से गर्जना की। बालि उसे सुनकर बडे रोष के साथ किले के अदर से बाहर आया। दोनो भाई कमर कसकर भिड गये। जोरो से मुष्टियुद्ध चला।

जब इस प्रकार दोनो भाई लड रहे थे, राम द्विविधा मे पड गये। उनकी समझ मे नही आया कि दोनो मे कौन बालि है और कौन सुग्रीव। दोनो की एक-जैसी वेशभूषा और एक-जैसा ही रूप। राम ने अपना प्राण-घातक बाण नही चलाया।

इसी बीच बालि से सुग्रीव बुरी तरह पिट गया। उसे बडी निराशा हुई कि राम ने कुछ नही किया। किसी तरह वह जान बचाकर ऋष्यमूक पर्वत पर भाग आया। बालि ने भी कहा, "जा भाग जा, आज तो मैने छोड दिया।"

और फिर वह अपने किले के अदर चला गया।

सुग्रीव का बुरा हाल हो रहा था। राम और लक्ष्मण उसके पास पहुचे। राम पर सुग्रीव बहुत नाराज था कि उसे धोखा दिया गया। इसलिए राम की ओर उसने आख उठाकर भी नही देखा। नीचे की ओर देखते हुए राम से बोला, "राम, तुम्हे पहले ही से कह देना था कि तुम बालि को मारना नही चाहते। मुझे तुमने बालि के साथ भिडने को क्यो भेज दिया?"

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्रिय मित्र, शात हो जाओ, मेरी बात

ध्यान से सुनो। मैंने इसी कारण से बाण नही छोडा कि मैं तुम दोनो मे से जान नही सका कि बालि कौन था और तुम कौन थे। तुम दोनो का बिलकुल एक-जैसा रूप-रग और आकार है। हाव-भाव भी एक-सा है। कपडे और आभूषण भी एक ही प्रकार के है। तुम ही बताओ, मै किसके ऊपर बाण चलाता ? यदि बालि समझकर तुम्हे मार डालता तो मेरा क्या हाल होता ? इस हालत मे मै एक पापी और मूर्ख ही सिद्ध होता। इसलिए हे सुग्रीव, मेरे ऊपर क्रोध न करो। लक्ष्मण, फूलो की वह पतली डाल लाओ और उसे सुग्रीव के गले मे माला की तरह बाध दो। और सुग्रीव, अब तुम जाओ, निडर होकर बालि को फिर से ललकारो। अब मै गलती नही कर सकता। हमारी आज विजय होगी।"

सुग्रीव के मन का समाधान हो गया। उसका उत्साह फिर ताजा हो गया। लक्ष्मण ने उसके गले मे पुष्पलता की डाल को खूब अच्छी तरह से बाध दिया। सुग्रीव अब और भी अधिक सुदर लगने लगा। वह किष्किधा के द्वार पर फिर जा पहुचा। राम-लक्ष्मण भी उसके पीछे-पीछे गये।

: ५३ :

बालि का वध

शाम होनेवाली थी। सुग्रीव दुबारा गर्जना करता हुआ नगर के द्वार मे घुसा और बालि को युद्ध के लिए ललकारा। बालि आराम से सो रहा था। चौक उठा। थोडी देर तक तो वह समझ न पाया कि मामला क्या है। फिर उसे पता चला कि सुग्रीव फिर लडने आया है। गुस्से से बालि के चेहरे का रग बदल गया। सुग्रीव को मार डालने का निश्चय करके वह महल से निकल पडा। इतनी जोर से वह कदम बढाता चला कि लगता था, मानो पृथ्वी फट जायगी।

बालि की पत्नी तारा ने उसे रोकते हुए कहा, "नाथ, आज युद्ध के लिए

मत जाओ । कल जाना ।"

तारा बालि की पटरानी थी । बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धिवाली और पति को बहुत चाहनेवाली । प्यार से बालि को आलिगन करते हुए उसने कहा, "जल्दी क्या है ? कल के लिए युद्ध को टाल दो । शत्रु से कल निपट लेना । मुझे सुग्रीव के दुबारा आने मे उसकी किसी चाल का सदेह हो रहा है । अभी तुम्हारे जाने मे खतरा है । मुझे एक अजीब तरह का डर मालूम हो रहा है। सुग्रीव तो अच्छी तरह पिटकर, शर्मिदा होकर भागा था । अब उसमे फिर से आने की हिम्मत कहा से आ गई ? जरूर कोई-न-कोई बात है । बिना सोचे-विचारे इस समय तुम्हारा अकेले निकल पडना उचित नही । प्राण-नाथ, मेरी बात को दरगुजर न करो । आज मत जाओ । सुग्रीव की लल-कार मे जरूर कोई छल है । मुझे तो यही लगता है कि उसे कोई बडी भारी सहायता मिली है । उसी के बल पर वह दुबारा आया है । इसमे कोई सदेह नही । हमारे प्रिय पुत्र अगद की भलाई का विचार करो । मैं सच बता रही हू । यो ही नही कह रही हू । तुम्हे तो पता नही, लेकिन हमारे भेदियो ने अगद को एक बात बताई थी और अगद ने वह मुझसे कही थी । अयोध्या का एक वीर राजकुमार हमारे प्रदेश मे आया हुआ है । उसका सब कोई आदर करते है । उसके साथ तुम्हारे भाई सुग्रीव की बडी दोस्ती हो गई है । इसीलिए अब वह शक्तिशाली और धैर्यवान बन गया है । तुम यह भी तो सोचो कि आखिर सुग्रीव मे भी कौन-सी बुराई है ? वह गुण-सम्पन्न और वीर है । तुम्हारा भाई है । उससे विरोध करके हमे क्या लाभ हो सकता है । मैं तो कहती हू कि सुग्रीव के साथ सधि कर लो । तुम्हारे लिए वह उत्तम सहारा बनकर रहेगा । तुम दोनो की इसी मे भलाई है । मेरी बात मान लो ।"

बालि को असमय का यह उपदेश बिलकुल अच्छा न लगा । समुद्र की लहरो की तरह उसका क्रोध उमड रहा था । अपनी पत्नी की बातो मे वह औचित्य नही देख पाया । उसे तो काल की डोरी खीच रही थी । उसी की ओर वह जा रहा था । तारा-जैसी अति सुदरी अपनी पत्नी को वह

समझाने लगा, "प्रिये, छोटे भाई के द्वारा अपना यह अपमान मै कैसे सहन कर सकता हू ? एक वीर युद्ध के लिए ललकारे जाने पर चुप नही रह सकता। उसकी अपेक्षा प्राण त्याग कर देना अच्छा है। राम की बात तुमने मुझसे अभी कही। ठीक है। वह धर्मवान है। पाप से डरनेवाला है। अन्यायपूर्ण काम वह नही कर सकता। मुझे मत रोको। तुम अन्दर जाओ। सुग्रीव को मै जान से नही मारूगा। मैं तो उसके गर्व को चूर करना चाहता हू। बस, मेरे ऊपर प्रेम के कारण तुम्हे जो ठीक लगा, वह तुमने बताया सो ठीक है। मै सुग्रीव को भगाकर शीघ्र ही वापस तुम्हारे पास आता हू। घबराओ मत। मेरे लिए मगल कामना करके मुझे विदा नहीं करोगी ?"

कवि वाल्मीकि ने बालि के उत्तम स्वभाव का सुदर चित्रण किया है।

अश्रुपूर्ण नेत्रो से तारा ने पति की प्रदक्षिणा की, मगल-वचन कहे और बालि की आयु के लिए प्रार्थना करके वापस अतःपुर मे चली गई।

उसे और उसकी दासियो को अदर भेजकर, गुस्से के साथ जैसे साप अपने बिल से निकल पडता है, बालि सुग्रीव की ओर तेजी से लपका और उसके पास पहुचकर बोला, "अरे सुग्रीव, तुझे मरना है क्या ? इस मुष्टि से अपनी जान बचानी हो तो भाग जा यहा से !"

सुग्रीव ने भी उसी ढग से जवाब दिया। दोनो भिड गए। एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। खून की धारा बहने लगी। पेडो को जड से उखाड-उखाडकर वे एक-दूसरे पर फेंकने लगे। प्रारभ मे दोनो का बल समान था, पर बाद मे सुग्रीव हारने लगा।

राम यह देख रहे थे। जब उन्होने देखा कि सुग्रीव मे शक्ति नही रही और यदि सहायता न मिली तो वह मर ही जायगा तब बालि के वक्षस्थल को ताककर उन्होने अपना अचूक बाण छोड दिया। जिस प्रकार शाल-वृक्षो को उन्होने भेद दिया था, उसी प्रकार उनके बाण ने बालि के वज्र समान वक्षस्थल को भेद दिया। किसी भारी उत्सव के अत मे सजा हुआ ध्वजस्तभ जैसे नीचे पडा रहता है, वैसे ही बालि की देह नीचे लुढककर गिर पडी।

राम के बाण से आहत बालि कुल्हाडी से गिराये गये जगली वृक्ष की तरह जब गिर पडा तब उसने चारो ओर निगाह दौडाई। वह देखना चाहता था कि उसके प्राण को हरनेवाला बाण किधर से आया है ? उसी समय राम और लक्ष्मण हाथ मे धनुष धारण किये हुए उसके पास पहुचे। उसके प्राण निकल रहे थे। बहुत ही धीमे स्वर मे, वडे यत्न के साथ वह बोल पाया, "राम, तुमने यह क्या किया ? तुम्हारे कुल और यश के योग्य तुम्हारा यह काम नही है। मैं जब दूसरे के साथ लड रहा था और जब मेरा ध्यान उसी मे था, तब छिपकर मेरे ऊपर बाण चलाना तुम्हे शोभा देता है ! तुम्हारे बारे मे मैंने यही सुना था कि तुम करुणामय हो। निर्दोष हो। इद्रियो को वश मे रखकर जीवधारियो पर समान प्रेम रखनेवाले हो। धर्म, क्षमा, धृति और शातिप्रिय हो। राम, इनमे से एक भी गुण तुम्हारे अदर नहीं पाया। तुमने अधर्म कर डाला। मेरी पत्नी ने मुझे चेतावनी दी थी। मैंने मूर्खता की, जो उसकी बात न सुनी। मुझे यह नही मालूम था कि तुम ढोगी हो। मै अपने भाई के साथ लड रहा था। तुम्हारा मैंने क्या बिगाडा था ? पेड की आड मे छिपकर यह घोर अन्याय का काम राजकुल मे उत्पन्न भला तुम्हारे योग्य था ? एक निरपराधी को तुमने मार डाला। तुम कैसे राजा होने योग्य हो ? दशरथ के पुत्र होने की क्षमता तुममे नही है। मेरी मृत्यु एक अधर्मी के हाथो हो गई। मै जानता हू, तुम कभी मेरे सामने लड नही सकते थे। अगर मुझसे कहा होता तो एक दिन मे तुम्हारी सीता को मैं तुम्हारे पास पहुचा सकता था। सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए तुमने मुझे मार डाला। रावण को रस्सी से बांधकर, खीचकर मैं तुम्हारे सामने खडा कर सकता था। उसने मैथिली को कही भी छिपा रखा हो, मैं उसका पता लगवा सकता था। मरना सभी को एक-न-एक दिन अवश्य है, किंतु मैं अधर्म से मारा गया। इसमे तुम्हारी भूल साफ दिखाई देती है।"

इस प्रकार देवेंद्रकुमार बालि ने राम को काफी खरी-खोटी सुनाईं। मरणासन्न बालि का मुखमडल तेज से चमक रहा था। उसके वक्षस्थल पर इद्र का दिया हुआ हार सुशोभित था। उस दिव्य माला से, राम के बाण

और उस बाण से हुए घाव से बालि की काति और भी बढ गई थी। अस्त होते हुए सूर्य की किरणो से प्रकाशमान बादलो की भाति उसका शरीर शोभायमान हो रहा था। मिट्टी मे गिर पडने पर भी वह बडा सुदर था। कवि वाल्मीकि ने इस दृश्य का वर्णन बहुत ही सुदर ढग से किया है। प्राण जाते समय शूरो की काति हमेशा से अधिक तीव्र हो जाती है।

रामचद्र ने बालि के आरोपो को सुना। वह क्या उत्तर दे सकते थे! वाल्मीकि रामायण मे लिखा है कि राम ने बालि को ठीक-ठीक उत्तर दिये और बालि का उससे समाधान हो गया। किंतु मुझे वह नीरस मालूम हुआ। इसलिए उन श्लोको को मै छोड रहा हू। पडितो से इसके लिए क्षमा-याचना करता हूं। मनुष्य-जन्म लेने के बाद कुछ-न-कुछ विशेष दु ख और अपवाद का पात्र हरेक को होना ही पडता है। भगवान् राम के लिए यह घटना वैसा ही एक अनुभव है। वैसे तो सुग्रीव ने भी बालि को घायल कर ही दिया था। उस पर राम का बाण उसे लगा था। अब मरणावस्था थी। इन सब को किसी तरह सहन करते हुए बालि बोला, "जो हुआ सो हो गया, राम! मेरे लिए एक काम अवश्य करना। मेरा बेटा अगद मुझे बहुत ही प्यारा है। मेरे मर जाने से वह दुखी होगा। सुग्रीव और तुम उसका ध्यान रखना। उस बालक को मैं तुम्हे सौपकर जा रहा हू। उसकी रक्षा करना अब तुम्हारा कर्तव्य है। तालाब मे पानी के सूख जाने से जैसे कमल की लता मुरझा जाती है, मेरा अगद मेरे बिना वैसे ही सूख जायगा। मेरी पत्नी तारा से कोई बुरा-भला न कहे। सुग्रीव का व्यवहार अगद के प्रति सम्मानपूर्ण होना चाहिए। बस, मेरे लिए इतना काम कर देना। स्वर्ग मे वीर लोग मुझे बुला रहे है।"

इतना कहकर वानरो का राजा महाबली बालि मूर्च्छित हो गया। यह बात तो सच थी कि बालि को कोई सामने युद्ध करके जीत नही सकता था। राम से भी यह अशक्य था। जैसे रावण को देवगण नही मार सकते थे, उसी प्रकार वरदान के कारण बालि की भी ऐसी ही स्थिति हो गई थी।

कबध ने अपने शाप-मोचन के समय राम से कहा था कि वह सुग्रीव से दोस्ती करे। उसकी सहायता से सीता को फिर से पाना सभव हो सकेगा। फिर भी यह सवाल तो रहता ही है कि वालि की हत्या करने की क्या आवश्यकता थी?

सुग्रीव से कोई अक्षम्य अपराध नही हुआ था। फिर भी अपने शरीर-बल के घमड से बालि सुग्रीव को बहुत सताने लगा था। सुग्रीव ने जब राम से इस बात की शिकायत की तब राम ने उसे अभयदान दे दिया था। ऐसी अवस्था मे बालि को मारना अनिवार्य हो गया था। उसको मारना उसी ढग मे हो सकता था, जिस ढग मे राम ने मारा। अपनी प्रियतमा की एक साधारण इच्छा की पूर्ति के लिए राम को माया-मृग के पीछे जाना पडा। उसके बाद राम को एक सकट के बाद दूसरे सकट का सामना करना पडा।

मेरी अल्प-बुद्धि इस विषय पर इससे आगे कुछ नही सोच पाती है।

: ५४ :

तारा का विलाप

किष्किधापुरी मे जब लोगो ने सुना कि बालि एक धनुषधारी पुरुष द्वारा मारा गया तो सब बडे भयभीत हो गये। इधर-उधर भागकर छिपने लगे। जब रानी तारा ने देखा तो वह लोगो को समझाने लगी, "तुम यह क्या कर रहे हो? आज तक जब कभी लडने का अवसर आता था तो तुम लोग बालि के आगे-आगे जाते थे। आज इस प्रकार क्यो भाग रहे हो? तुम लोगो का कुछ नही बिगडा है। राम ने तो सुग्रीव को राजा बनाने के लिए बालि को मारा है। तुम लोगो पर उसका कोई प्रभाव नही पड सकता। सब अपनी-अपनी जगह पर टिके रहो।"

अपने दु ख को दबाकर रानी ने प्रजा के दिल से आतक हटाने के लिए

शब्द कहे। और फिर वह अत पुर से निकलकर, बालि जहा चोट खाकर मरणासन्न अवस्था मे पडा था, वहा जाने लगी। वानरो ने अपनी रानी को रोककर कहा, "हम पहले कुमार अगद का राज्याभिषेक करके उसे राजा घोषित करेगे। गढ को सुरक्षित करेगे। वैरी सुग्रीव और उसके साथियो को दुर्ग के अदर नही घुसने देगे।"

किंतु तारा ने वानरो को फिर समझाया, "मेरे स्वामी अब नही रहे। मुझे किसी पद का अब मोह नही रहा। मुझे उनके पास ले चलो।"

तारा सीधी बालि के पास पहुची। अपने प्राणप्रिय की दीन अवस्था उससे देखी नही गई। बालि अभी निष्प्राण नही हो गया था। कुछ क्षण शेष थे। वह बिलकुल हिल-डुल नहीं रहा था। तारा चीख उठी, "हाय, मेरे शूरवीर स्वामी, कितनो को आज तक तुमने हराया था, पर आज तुम मुझे छोडकर चले जा रहे हो! मैं अब कैसे जिऊगी ?"

वह बालि की देह से लिपटकर रोने लगी। उसका दिल फटा जा रहा था।

उसके शोक मे शामिल होने के लिए बालि का पुत्र अगद भी आ पहुचा। यह देखकर सुग्रीव के मन मे अब सचमुच ही बडा पश्चात्ताप होने लगा।

• ० ०

हम अपने अनुभवो से देखते हैं कि दुनिया मे द्वेष के कारण, बदला लेने के उद्देश्य से और लोभ के कारण जितने कार्य किये जाते है, उनका अतिम परिणाम दु ख, क्लेश और निराशा मे ही ले जाकर पहुचाता है। अपने सकुचित मनोभावो पर हमे बाद मे दु ख होता है, किंतु पहले हमे यह ज्ञान नही होता।

• ० ०

तारा रोती ही गई, 'हाय मेरे सर्वस्व, तुम्हारे साथ मैं भी मर जाऊगी। मेरा अगद क्यो अनाथ हुआ ?"

हनुमान तारा को आश्वासन देने का प्रयत्न करता रहा। बोला,

"महारानी, आप शोक करना बद करे। बालि बडी ऊची पदवी पानेवाला है। अब अगद के युवराजाभिषेक की तैयारी होनी चाहिए। बालि की अतिम क्रियाए उचित रूप से होनी चाहिए। अपने मन को अब इन कामो मे लगाइये।"

'अब मुझे किसी बात का उत्साह नही रहा। उत्तर-क्रिया करना और अगद की सुरक्षा आदि सब काम अब सुग्रीव को देखने है। एक हजार अगद भी मेरे प्रियतम के बराबर नही हो सकते। जिस किसी लोक मे मेरा पति जायगा, मैं उसी के पीछे-पीछे वहा जाऊगी। उसी मे मेरी प्रसन्नता रहेगी।" तारा ने दुखित स्वर मे कहा।

उस समय बालि ने जरा आखे खोली और सुग्रीव को बुलाकर बडी क्षीण आवाज मे बोला, "सुग्रीव, हम दोनो राज्य को भोगते हुए आराम से रह सकते थे, किंतु दुर्भाग्य से वैसा हो न पाया। उसमे मेरा दोष अधिक था। उसकी चर्चा से अब कोई लाभ नही। अगद मेरे लिए और तारा के लिए प्राणो से भी अधिक प्यारा है। उसे मै तुम्हे सौपकर जा रहा हू। तुम-जैसा ही वह भी बहादुर है। तुम मेरे स्थान मे रहकर उसकी रक्षा करना। बस, मैं तुमसे और कुछ नही चाहता।

"मेरी प्यारी तारा बहुत ही बुद्धिमान है। वह जो कुछ कहती है, वह सच निकलता है। बडी सूक्ष्म बुद्धिवाली है। राज-काज के विषय मे तथा अन्य विषयो मे उसकी सलाह हमेशा लिया करना।

"यह लो मेरे गले की इद्र की दी हुई माला। इसे मैं तुम्हे देता हू। उसकी पूरी शक्ति अब तुम्हे मिलती रहेगी। मै अब चला। तुम्हारे प्रति अब मेरे मन मे किसी प्रकार का द्वेष नही रहा। तुम्हारा मगल हो!

"बेटा अगद, मेरे पास तो आओ। सुग्रीव के साथ अच्छा व्यवहार करना। प्रेम और सहिष्णुता न खोना।"

अपने पुत्र को बालि ने उपदेश दिया।

जगली पेड को काटकर गिराये जाने पर उसके ऊपर द्रुम-लताए जिस प्रकार लिपटी रहती हैं, उसी प्रकार तारा बालि के शरीर के साथ लिपटी

रही ।

नील ने बालि के वक्षस्थल मे लगे हुए बाण को धीरे-से बाहर निकाला । पहाड से झरने की तरह बालि के घाव से रुधिर की धारा बहने लगी । बालि के प्राण उसी क्षण निकल गये ।

तारा के अतर से एक करुण चीख निकल पडी । अगद से बोली, "बेटा, अपने पिता को प्रणाम करके अतिम विदा ले लो ।" और फिर रो पडी, "क्या मै सचमुच आज से विधवा हो गई ? मुझसे यह कैसे सहन होगा ? प्रियतम, देखो हमारा अगद खडा है । अपना मुह खोलकर उससे कुछ न बोलोगे ?"

तारा का दु ख देखा नही जाता था। उसका विलाप सुना नही जाता था।

यह सब देखकर सुग्रीव को बहुत ही दु ख हुआ । उसे लगा कि अपराधी वह स्वय है । वह सोचने लगा, 'मेरे मन के भीतर सदा लोभ बसा हुआ था । उससे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई । ठीक तरह से सोचे बिना मैंने गुफा का द्वार बद कर दिया और बडे भाई की सारी सपत्ति अपनाकर आराम से रहने लग गया । मैंने ही उसके क्रोध को बढाने का काम किया था । तब भी बालि ने मुझे जान से नही मार डाला । केवल राज्य से भगा दिया था । मुझे छिपकर जीने दिया था । मैने तो उसे मार डालने का षड्यत्र करके अत मे मरवा ही डाला । मेरे-जैसा पापी दूसरा कोई भी नही हो सकता । मरते समय भी उसने मुझे अपना राज्य दे दिया । उससे बढ-कर देवेंद्र की दी हुई शक्तिमाला मुझे अपने हाथो से दी । कैसा उदार हृदयवाला उच्चकोटि का था मेरा भाई ! मै बडा नीच हू । अपने भाई को मैंने मरवा डाला !'

इस प्रकार सच्चे पश्चात्ताप से सुग्रीव प्रलाप करने लगा ।

हमे पता लगे बिना ही हमारे भीतर के काम अर्थात् लोभ से हमारी चितनशक्ति का लोप हो जाता है । बुरे निर्णयो पर हम पहुच जाते है । बालि के मरने के बाद सुग्रीव यह समझ पाया । अपने अत:करण के लोभ से यह सब हो गया, यह समझने मे उसे देर न लगी ।

सस्कृत भाषा मे 'काम' शब्द का हर प्रकार की इच्छा के लिए प्रयोग किया जाता है। वह हमारा बडा भारी शत्रु है। उसे जीते बिना हमे ज्ञान की प्राप्ति कदापि नही हो सकती। इसलिए गीता मे तृतीय अध्याय के अतिम सात श्लोको द्वारा भगवान् कृष्ण समझाते है, "जहि शत्रु महा-बाहो कामरूप दुरासदम्।" काम के कारण सुग्रीव की बुद्धि भ्रष्ट हुई। बालि ने अपनी विवेक-बुद्धि क्रोध के कारण खो डाली। क्रोध मे आकर उसने सोच लिया कि सुग्रीव ने जान-बूझकर गुफा का द्वार पत्थर से बद कर दिया और गद्दी पर बैठकर मौज करने लगा। बालि का क्रोध बढता गया। सुग्रीव को राज्य से बाहर निकालकर भी उसका क्रोध शात न हुआ। 'मन्यु' अर्थात् क्रोध के कारण उसने कई अनुचित काम किये।

हमे चाहिए कि हम अपने मन-रूपी दुर्ग के अदर इन काम और क्रोध-रूपी दुश्मनो को कभी प्रवेश न करने दे। तभी हमारी रक्षा हो सकती है।

सनातनी लोग कम-से-कम साल मे एक बार कामोऽकार्षीत्, मन्युऽ-कार्षीत्, नारायणाय नम (काम अकार्षीत्—काम ने मुझे खीचकर धोखा देकर पाप कराया, मन्यु अकार्षीत्—क्रोध के द्वारा मै बहक गया, मुझसे क्रोध ने पाप कराया') इस प्रकार जप करते है और क्षमा के लिए प्रार्थना करते है। यह विधि सबके लिए अनुकरणीय है।

० ० ०

राम कुछ हिचकिचाहट के साथ विलाप करती हुई तारा के पास पहुचे। मन मे साहस लाकर वह ऐसा कर सके।

तारा के मुख के भावो मे कोई अतर नही आया। बोली, "हे वीर, जिस बाण से मेरे पति को तुमने मारा, उसी से मुझे भी मार डालो, ताकि मैं भी अपने प्रियतम के पास पहुच जाऊ। स्वर्ग मे भी मेरा पति मेरे बिना सुखी नही होगा। स्त्री-हत्या के पाप मे न डरो। एक वियोगिनी स्त्री को उसके पति के पास पहुचाने का पुण्य ही तुम्हे मिलेगा। तुमने मेरे पति को जिस ढग से मारा, वह धर्मयुक्त न था। उसके बदले मे अब तुम मुझे अपने पति के पास पहुचा दोगे तो वही तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त होगा। मैं

अपने बालि के बिना कैसे जिऊगी ?" ये वचन शूर वानर की पटरानी के सर्वथा योग्य थे ।

• • •

वाल्मीकि रामायण मे यहा पर कहा गया है कि तारा राम की अवतार-महिमा को समझती थी । परपरागत विश्वास यही है कि बालि की पत्नी तारा, लक्ष्मण की मा सुमित्रा की तरह, एक ज्ञानी स्त्री थी । अपने पति की हत्या करनेवाले पर प्रारभ मे तारा को घृणा और क्रोध हुआ था, किंतु राम के जब उसे दर्शन हुए तो उसका मन साफ हो गया ।

हम इन वर्णनो को कहानी समझकर पढेगे तो हमे कुछ रस नही मिलेगा । भक्ति-मार्गवालो को यह सब बहुत ही स्वाभाविक मालूम होता है । गोस्वामी तुलसीदास बताते है कि शिवजी पार्वती से कहते है, "उमा दारु जोषित की नाई । सबहि नचावत राम गोसाई ।" हम असल मे कठ-पुतली के समान ही है, हमे प्रभु अपने मन के अनुसार नचाता है ।

दुनियादारी के ढग से सोचा जाय तो भी तारा ने बडी बुद्धिमानी से अपने क्रोध को रोका । जो काम अब सभालने को था, उसे सभाला । बडी तीक्ष्ण बुद्धिवाली, राजनीति समझनेवाली तारा ने देखा कि बालि तो अब रहा नही । किसी प्रकार से, दैवेच्छा से ही सही, सुग्रीव को राम की मैत्री मिल चुकी है । अगद के लिए सुग्रीव के साथ विरोध करना विनाश की ओर जाना है । नीतिशास्त्र के चार उपायो मे से तारा ने अब 'साम' का ही प्रयोग किया । भावावेश मे आकर उसने सहिष्णुता नही खोई । राम को कटु वचन नही सुनाये । अगद के लिए उसने मार्ग सुगम बनाया ।

बालि की उत्तर-क्रियाए बडे सम्मान के साथ की गईं । मगलस्नान कराकर किष्किधावासियो ने सुग्रीव को राजमुकुट पहनाया और अगद को युवराज घोषित किया ।

० ० ०

वर्षाकाल का प्रारभ हुआ । सुग्रीव और उसके साथी किष्किधा मे मौज से दिन बिताने लगे । राम और लक्ष्मण पर्वत की एक गुफा मे रहने

लगे। नदियो मे बाढ आ जाने के कारण जगली मार्गो मे आना-जाना असभव-सा हो गया था, इसलिए सीता को ढूढने का काम कुछ समय के लिए रुक गया। करने के लिए कुछ भी काम न होने के कारण राम सीता की बहुत अधिक याद करने लगे और याद मे दुखित होने लगे। लक्ष्मण बार-बार राम को समझाते रहे कि वर्षा ऋतु पूरी हो जाय तब तक धीरज रखे।

चाहे जीवन मे बडे-से-बडे दु ख का भी सामना करना पडे तो भी समय एक ऐसा वरदान है, जिससे मनुष्य अपने दु ख को भूलकर अन्य कार्यो मे प्रवृत्त हो जाता है। यदि हम दु ख को कभी न भूलते तो दु ख के ऊपर दु ख पहाड की तरह बढता चला जाता और हम उसके नीचे दबकर नरक-यातना भोगते रहते। इसी नियम के अनुसार सुग्रीव और उसके साथी, तारा आदि सब-के-सब बालि के वियोग को भूलने लगे और आराम से किष्किधा मे उनके दिन बीतने लगे।

केवल हनुमान के मन मे चिंता लगी रही। राम के कार्य को वह नही भूला था। सुग्रीव को उचित समय पर याद दिलाने की राह वह देख रहा था।

वर्षा ऋतु बीत गई। आकाश अब शुभ्र दिखाई देने लगा। बादल हट गये। पक्षीगण अपने-अपने आश्रय-स्थानो से बाहर आकर बोलने लगे। बुद्धिमान तथा धर्मपथ मे रहनेवाला मारुति सुग्रीव के पास पहुचा।

राज्य के सभी कार्य सुग्रीव ने मन्त्रियो को सौप दिये थे। वह निश्चित होकर अन्त पुर मे भोगो मे लिप्त हो गया था। उसके पास जाकर हनुमान ने विनय से अपनी बात निवेदन की। वह जानता था कि प्राणी कितने भी बुद्धि-मान और भले हो, ऐश-आराम मे मस्त हो जाने पर अपना कर्तव्य भूल जाते हैं।

: ५५ :

क्रोध का शमन

हनुमान ने सुग्रीव से निवेदन किया, "आपको अपने पूर्वजो का राज्य

मिल गया। आपका अधिकार अब स्थायी रूप से स्थापित हो गया, पर एक काम अभी शेष है। वह यह कि मित्रो को प्रसन्न करके उनकी मैत्री को और सुदृढ बना लेना चाहिए। तभी आपकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी और राज्य का बल बढेगा। मित्रो को आपने जो वचन दिये है, अपने आराम का त्याग करके भी उनका पालन करना आवश्यक है। तभी आपके प्रति उन लोगो का आदर-भाव हो सकता है। समय से पहले ही मित्रो का काम करके आपको दिखा देना चाहिए। विलब से काम बिगडता है। उसका आनद चला जाता है। वे लोग आपके दिये हुए वचन की याद दिला दे, उससे पहले ही आप उनके कार्य मे लग जाय, इसी मे श्रेय है। बुद्धिमत्ता भी उसी मे है। आप सब-कुछ समझते है। हमे यह कभी नही भूल जाना चाहिए कि राम ने हमारे लिए कितना बडा उपकार किया है। हमे चाहिए कि अब उनके काम मे एकदम लग जाय। इस प्रतीक्षा मे न बैठे रहे कि वह खुद हमे याद दिलाये। वर्षा ऋतु बीत चुकी है। अब विलब का हमारे पास कोई कारण नही रहा। सीता को ढूढने के कार्य मे हम सबको अब लग जाना चाहिए। राम ने काफी सहिष्णुता दिखाई है। अब हमे और देर न करनी चाहिए। राम ने आपके शत्रु को मारा था। उस काम मे काफी खतरा था। उसमे उनको अपवाद का भी सामना करना पडा। फिर भी उन्होने अपने वचन का पालन किया। हमे भी अपने दिये हुए वचन के अनु-सार राम की पत्नी की खोज मे निकल पडना चाहिए।"

बडे विनय के साथ सुग्रीव को हनुमान ने नीति समझाई। सुग्रीव को भी हनुमान की बात उचित लगी। ठीक समय पर याद दिलाने के लिए उसने मारुति को धन्यवाद दिया और सेना इकट्ठी करने की आज्ञा दी।

फिर सुग्रीव ने नील को बुलाकर आदेश दिया, "सारी दुनिया मे सीता की खोज करो। सीता मिलनी चाहिए। चतुर वानरो को एकदम बुला लो। जो एकदम नही आ जाते, उन्हे कठोर दड भोगना पडेगा।" ऐसा आदेश देकर सुग्रीव फिर अपने अत पुर मे चला गया।

उधर राम और लक्ष्मण ने सोचा था कि वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही

सुग्रीव सीता को ढूढने के लिए चारो दिशाओ मे अपने सैनिको को भेज देगा। दोनो भाई आतुरता के साथ प्रतीक्षा मे थे कि कब वर्षा ऋतु समाप्त होती है।

वर्षाकाल निकल गया। सारा वन-प्रदेश फिर से खिल उठा। राम सीता की और भी याद करने लगे, "मालूम नही मेरी प्यारी सीता कहा पर है और कितने कष्ट मे है। मेरे साथ रहकर उसने दडकारण्य को एक उद्यान समझा था। कभी किसी चीज की शिकायत नही की। यह वानर राजा तो अपने अत पुर मे मदिरा और स्त्री के चगुल मे मस्त पडा है। मुझे तो वह बिलकुल भूल ही गया लगता है। बडा नीच प्रकृति का मालूम होता है। लक्ष्मण, अभी किष्किधा जाओ और सुग्रीव से मिलो। उससे पूछो कि मामला क्या है? बालि जहा पहुचा है, वही उसे भी जाने की इच्छा हो रही है क्या? उससे कहना कि मैने यह पुछवाया है। कहना कि वह उपकार को भूल जाने से अधोगति पानेवाला है। यह भी उससे कहना कि वर्षा के चार महीने राम ने चार युग की तरह बिताये है। तू और तेरे साथी भोगो मे मस्त होकर राम के क्रोध को उत्तेजित कर रहे है। और इस प्रकार नाश की ओर जा रहे है।" इनना कहकर आवेश मे राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा।

लक्ष्मण राम के शोक और क्रोध को लेकर सुग्रीव के पास जाने ही वाले थे कि राम ने कुछ विचार किया। लक्ष्मण के स्वभाव को वह अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्हे अपने पास बुलाकर कहा, "सुग्रीव के साथ बात करते हुए कटु शब्दो का प्रयोग न करना। कुछ भी हो, हमने उसके साथ मित्रता की है। उसकी भूलो को उसे समझाओ। क्रोध को शात रखकर बातचीत करना।"

लक्ष्मण ने मान तो लिया, किंतु उनके मन मे भी बडा गुस्सा भरा हुआ था। वह किष्किधा के द्वार पर पहुचे।

सशस्त्र और कोपमुद्रा मे लक्ष्मण को देखकर वानर भयभीत हुए। वह किले की रक्षा करने के लिए उद्यत हो गये। वानरो के इस व्यवहार से

लक्ष्मण का गुस्सा और बढ गया। कुछ वानर सुग्रीव के पास दौडे गये और बोले, "राजन्, लक्ष्मण बडे गुस्से के साथ तीर-कमान लेकर आया हुआ है। हमारे रोकने पर भी रुका नही। नगर के अदर आ गया है।"

वानरेंद्र सुग्रीव भोग मे लिप्त था। वानरो ने उससे जो कहा, उसका मतलब वह समझ ही नही सका।

इस बीच वानर सैनिको की सुरक्षा की व्यवस्थाए खूब जोरो से होने लगी, जो लक्ष्मण की क्रोधाग्नि मे घी का काम कर रही थी। रुकावट की चिता न करके लक्ष्मण नगर के अदर घुस गये। सद्भाग्य से पहले-पहल अगद को उन्होने देखा। उसे देखकर उनका क्रोध कुछ शात हुआ। बडे प्यार से अगद से उन्होने बाते की, "वत्स, वानरराज सुग्रीव को बताना कि राम के दु ख से दु खी उनका भाई लक्ष्मण राजा से भेट करना चाहता है।"

अगद तत्काल सुग्रीव को सदेश सुनाने गया, पर नशे मे चूर सुग्रीव को वह सचेत न कर पाया। मत्रियो को बुलाकर वह सलाह करने लगा कि अब क्या किया जाय। हनुमान और दूसरे मत्री फिर सुग्रीव को बार-बार समझाकर उसे होश मे लाने का प्रयत्न करने लगे।

सुग्रीव बोला, "मैने क्या भूल की है ? राम-लक्ष्मण मुझसे क्यो नाराज हो गये है ? यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य किसी ने मेरे विरुद्ध राम के कान भर दिये है।"

हनुमान ने सुग्रीव को समझाया कि गलती वानरो की तरफ से अवश्य हुई है। वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने पर भी किसी ने राम के पास पहुचकर यह नही पूछा कि वह कैसे है ? उनके किये हुए उपकार को हमने याद नही रखा। उनके दुःख मे सहायता करने की वानरो ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे हम भूले नही तो भी विलब तो कर ही दिया। इसलिए उसके लिए राम से हमे क्षमा मागनी चाहिए।"

सुग्रीव ने लक्ष्मण को महल मे लाने के लिए अपने सेवको को भेजा। लक्ष्मण नगर के भीतर से होकर राजभवन के अत पुर के द्वार तक पहुचे। नगर की विशेषता और शोभा से लक्ष्मण बडे विस्मित हुए। अत पुर के

द्वार पर खडे होकर उन्होने अदर से आनेवाले बाजो और हँसी-विनोद की आवाजे सुनी। उन्हे इससे बहुत चिढ हुई। स्त्रियो से भरी जगह मे प्रवेश करने मे उन्हे सहज ही सकोच हुआ। अपने आगमन की सूचना देने के लिए उन्होने धनुष की प्रत्यचा खीचकर टकार की।

यह टकार कोई मामूली न थी। उसकी गूज से सारी किष्किधापुरी हिल गई। सुग्रीव घबरा गया। उसने तारा से कहा कि वह पहले जाकर लक्ष्मण से मिले।

तारा लक्ष्मण के पास पहुची। व्यवहार-कुशलता, बात करने के ढग तथा रूप-लावण्य मे तारा की तुलना किसी से नही हो सकती थी। वह लक्ष्मण के सामने आई और बोली, "सुग्रीव ने गरीबी और शत्रु के भय से आक्रात होकर बरसो बिताये है। उसकी प्रतिक्रिया ही यह समझ लीजिये। वह अब मदिरा और अन्य भोगो मे चूर पडा है। आप लोगो की सहायता से उसे सब-कुछ मिल गया है। गलती उसकी अवश्य है, किंतु वह अक्षम्य नही। आप उस पर क्रोध न करे। अब उसकी बुद्धि-भ्रष्ट की-सी अवस्था है। प्रज्ञावान होकर आप उसकी त्रुटियो को सहन करे। वह आपको दिये हुए वचन को भूला नही है। चारो तरफ से सैनिको को इसी काम के लिए बुला भेजा है। सीता को ढूढने का काम सफलता से हो जायगा। इसमे आप तनिक भी शका न करे। राजकुमार, आप अदर पधारे और राजा से मिले।"

लक्ष्मण का क्रोध शात हुआ। वह तारा के साथ अदर गया। उसके सौम्य मुखमडल को देखकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ। अपने आसन से उतरकर सामने आया और लक्ष्मण का उचित रूप से स्वागत किया। हाथ जोडकर बोला, "मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो, राजकुमार, मुझे क्षमा करे। राघवेंद्र की मैत्री और शूरता के बिना मै तो कही का न रहता। यह राजगद्दी मुझे राम के कारण ही मिली हुई है, यह मै कभी भूल नही सकता। मैं जानता हू कि मेरी सहायता के बिना ही राम रावण को हराने की शक्ति रखते है। मै और मेरी सारी सेना राम के नेतृत्व मे राम के पीछे-पीछे जायगी। रावण अब बच नही सकता। मुझसे जो विलब हो गया,

उसके लिए क्षमा चाहता हू ।"

सुग्रीव की बातो से लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "सुग्रीव, तुम तो बहादुरी मे राम के बराबर हो। ऋष्यमूक चलो, राम से मिलकर उनके साथ कुछ ऐसी बाते करो, जिससे वह अपना दु ख भूल सके ।"

० ० ०

सुग्रीव और लक्ष्मण एक ही पालकी मे बैठकर राम के पास पहुचे। सुग्रीव ने राम से कहा कि सीता को ढूढने की सारी प्रारभिक तैयारिया हो गई है। राम को सतोष हुआ। सुग्रीव से बोले, "तुम्हारे-जैसा मित्र पाना बडा दुर्लभ है। बादल जैसे पानी बरसाकर और सूर्य जैसे अधेरी रात को हटाकर लोगो के दिलो को आह्लादित करते है, उसी प्रकार मित्र प्रतिफल की अपेक्षा किये बिना, सहायता करता है। अब तुम्हारी सहायता से हम रावण पर अवश्य विजय पायेगे ।"

जब राम इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय सुग्रीव की आज्ञा से वानर-समूह दूर के वन, पहाड और समुद्र-तटो से वहा पर आकर जमा होने लगे। उनमे उठी धूल से आकाश छिप गया। अधेरा-सा हो गया।

बदर तरह-तरह के रगो के और भिन्न-भिन्न आकारो के थे। उनमे विभिन्न प्रकार के रीछ भी थे। असख्य गिनती मे सब आकर जमा होने लगे। सबके ठहराने की व्यवस्था सुग्रीव को करनी पडी। जिसको जो बताना था, वह भी सुग्रीव ने किया। सुग्रीव ने आठ सेनापतियो को चुना। उनके साथ सैनिको को लगाकर आठो दिशाओ मे सीता को ढूढने की आज्ञा दी।

० ० ०

यहा पर एक बात समझाने की आवश्यकता है। पुराने समय मे यह प्रथा थी कि कुछ राजकुलो मे तथा अन्य कुछ जातियो मे भाई के मरने के बाद उसकी पत्नी को, छोटा या बडा भाई, जो कुटुब का मालिक हो, अपना लेता था। समय और आवश्यकताओ के अनुसार प्रथाए चल पडती है। इसलिए हमे इन बातो को पढते समय सकुचित मनोभाव नही रखना चाहिए। वाल्मीकि की कथा के अनुसार बालि की पटरानी तारा सुग्रीव

की रानी बन गई थी। वानर-जाति की रूढ़ि के अनुसार और अगद की भलाई के उद्देश्य से अथवा लोकापवाद से बचने के लिए तारा ने यह किया होगा। हम इस पर नाक-भौ क्यो सिकोडे ? विधुर कितनी ही बार विवाह कर ले, हम उसमे आपत्ति नही देखते। वाल्मीकि के कथनानुसार बालि के मरने के बाद तारा सुग्रीव के अत पुर की रानी बन गई और सुग्रीव और अगद दोनो की अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि द्वारा भली प्रकार देखभाल करने लगी।

किंतु कबन की रामायण मे तारा का दूसरे प्रकार का चित्र है, जो हमे बहुत पसद आ सकता है। वहा तो तारा वैधव्य-व्रत और नियमो को पालती हुई निर्मल चारित्र्यवाली राजमाता के रूप मे ही चित्रित की गई है।

कबन का यह चित्र एकदम निराधार नही है। वाल्मीकि रामायण मे ही बाद मे सुदर-काड (सर्ग १३, श्लोक २८) मे यह कहा गया है कि जब सारी जगह ढूढने पर भी सीता नही मिली तो हनुमान की समझ मे नही आया कि अब क्या किया जाय। यदि वह किष्किधा पहुचकर यह कह दे कि सीता नही मिली तब क्या-क्या हो सकता है, इसका विचार वह करने लगा। वाल्मीकि कहते है, ''हनुमान सोचने लगा कि सीता को न ढूढ पायेगे तो सुग्रीव का मरना निश्चित है। सुग्रीव मर गया तो उसकी पत्नी भी अवश्य मर जायगी। जब से बालि मरा है तब से दुख से दिन-पर-दिन तारा भी क्षीण होती चली जा रही है, और जिदगी से अब ऊब गई है। फिर कैसे जीयेगी ?''

पीडिता भर्तृशोकेन रूमा त्यक्ष्यति जीवितम्।
वालिजेन तु दुखेन पीडिता शोक कर्शिता।।
पचत्व च गते राज्ञि तारा अपि न भविष्यति।

सभव है कि इस श्लोक के आधार पर ही कबन ने पटरानी प्राज्ञी तारा को वाल्मीकि से कुछ भिन्न रूप मे चित्रित किया हो।

: ५६ :

सीता की खोज प्रारंभ

"राम, यह लाखो-करोडो की सेना जो तुम देख रहे हो, समझ लो कि वह तुम्हारी ही है। अद्भुत् बलवाले इन सैनिको को अपने ही सेवक समझ-कर इनसे जो काम चाहो ले सकते हो। तुम्हारा काम करने की ये पूरी शक्ति और इच्छा रखते है।" सुग्रीव ने कहा।

आनदमग्न होकर राम ने अपने मित्र को गले से लगा लिया। बोले, "सुग्रीव, पहले तो हमे इस बात का पता लगाना होगा कि सीता जीवित है या नही। यदि जीवित है तो रावण ने उसे कहा छिपाया है। रावण इस समय कहा पर है, यह भी हमे मालूम हो जाना चाहिए। जब इन बातो का हमे पता लग जाय तब फिर सोचेगे कि आगे क्या करे। सेना को जो कुछ आदेश देना होगा वह तुम दोगे, मै या लक्ष्मण नही दे सकते, क्योकि राजा तुम हो। इस कार्य मे तुम निपुण भी हो। मेरा और लक्ष्मण का अहोभाग्य है कि तुम्हारे-जैसा मित्र मिल गया!"

सुग्रीव ने सेनापतियो को आदेश दिया कि वे कोई भी जगह बिना देखे न छोडे। अलग-अलग सेनापति बडी सेना के साथ अलग-अलग दिशाओ मे निकल पडे और सफलता प्राप्त करके ही लौटे। देर न लगाये। सभी सेनापतियो को इस प्रकार सीता को ढूढने के काम मे नियुक्त कर सुग्रीव ने हनुमान को अलग बुलाकर कहा, "हे पवनसुत, मैंने कइयो को सीता की खोज मे भेज तो दिया है, किंतु मैं इस कार्य की सिद्धि के लिए केवल तुम्हारे ही ऊपर भरोसा रख रहा हूं। यह कार्य तुम्हारे सिवा और किसी से नही हो सकता। अपने पिता वायु भगवान् से तुम्हे अति तीव्र गति प्राप्त हुई है। तुम अपने पिता के समान तेजस्वी भी हो। हे हनुमान, तुम्हारे समान दूसरा कोई नही। बल, पराक्रम, बुद्धि और ज्ञान, ये सभी गुण तुममे विद्यमान है। बस, अब सीता को ढूढने का यह काम तुम अपने ही ऊपर समझो।"

रामचद्र की भी हनुमान पर विशेष आस्था थी। उन्होंने सोचा कि कैसा भी विघ्न आ पडे, हनुमान किसी-न-किसी प्रकार मे उसे दूर कर देगा। अगुली से अपनी मुद्रिका उतारकर रामचद्र ने हनुमान के हाथ मे देते हुए कहा, "हे मारुति, मेरी यह अगूठी अपने साथ ले जाओ। तुम इसे मेरी वैदेही को दिखाओगे तभी वह विश्वास कर सकेगी कि तुम मेरे दूत हो।"

विरह और शोक-सनप्त दशरथ-नदन श्रीराम को पूरा विश्वास था कि मारुति अवश्य सीता से मिलेगा और उससे सान्त्वना के कुछ शब्द कहेगा। इसीलिए उन्होने अपनी नामाकित अगूठी हनुमान के हाथ मे दे दी। उस दृश्य का वर्णन करना कठिन है। पवनसुत ने बडी भक्ति के साथ उसे लिया। श्रीराम के चरणो मे माथा रखकर प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर चल पडा।

सब सेनानायको को सुग्रीव की कडी आज्ञा थी कि कही भी हो, सीता को अवश्य ही ढूढना होगा। एक महीने के अदर ही राजा के पास सीता की खबर पहुचनी चाहिए। छत्तो मे जैसे मधुमक्खिया निकल पडती है, उसी प्रकार वानर उस प्रदेश से सभी दिशाओ मे चल पडे।

शतबली उत्तर दिशा मे गया, विनत पूरब की ओर अपनी सेनासहित कूदता हुआ चल पडा, सुषेण पश्चिम की तरफ और हनुमान, अगद और तारक दक्षिण दिशा मे। एक से बढकर दूसरे को राम के कार्य मे उत्साह था। बडे कोलाहल के साथ वे चल पडे। जब इस प्रकार सब निकल गये तब राम ने सुग्रीव से पूछा, "मित्र सुग्रीव, जब तुम अपने सेनानायको को दुनिया के सभी भागो का वर्णन करके वहा पहुचने की आज्ञा सुना रहे थे, सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। उससे पता लगा कि तुमने तो सारी दुनिया का भ्रमण किया है। तुमने यह सब कब किया था ? मुझे सुनाओ।"

"राम, बालि मुझे एक भी जगह टिकने नहीं देता था। जहा भी जाकर छिपू, वही जाकर वह मुझे मार भगाता था। इस प्रकार मुझे पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक भागते रहना पडा। इसी कारण मैं सभी जगहो से

परिचित हू। आखिर मे मुझे पता चला कि यही पास मे मातग ऋषि के आश्रम के आस-पास बालि नही पहुच सकता था। इसलिए मै यहा आकर रहने लगा।"

o o o

जो वानर उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओ मे गये थे एक महीने की निष्फल खोज के बाद सुग्रीव के पास वापस आकर कह गये, "सीता हमे कही भी नही मिली। मालूम होता है कि इसका यश हनुमान ही को मिलेगा। रावण सीता को दक्षिण की ओर ले गया लगता है। हनुमान अभी वापस नही आया। देखे, क्या खबर लाता है।"

रामचद्र और लक्ष्मण अब हनुमान के लौटने और उससे खबर सुनने की आशा मे रहने लगे।

सेनापति तारक और उसकी सेना तथा अगद और हनुमान दक्षिण का प्रदेश छानते हुए आगे गये। उन लोगो ने विध्याचल की प्रत्येक गुफा मे घुसकर देखा। कोई वन न छोडा। आगे बढते गये। एक रेगिस्तान मे पहुचे। एक ऋषि के शाप से वह स्थान एकदम उजड गया था। पेड-पौधे, पशु-पक्षी कोई जीव वहा देखने मे न आया। वहा से एक दूसरे विचित्र प्रदेश मे पहुचे। वहा एक महाकाय असुर वानरो को देखकर उन्हे पकडकर खाने के लिए दौडा। वानरो ने सोचा कि वही रावण होगा। अगद ने राक्षस के गाल मे एक ऐसे जोर का घूसा जमाया कि वह वही खतम हो गया। वानर बडे खुश हुए कि रावण मर गया। सारे वन मे सीता की खोज की, किंतु न सीता मिली, न उनका कोई चिह्न ही।

कई बार वानर निराशा और थकान से उदास-चित्त होकर बैठ जाते थे। उन सबको अगद और गधमादन नामक वीर साहस दिलाते थे। फिर सब-के-सब खोज मे जुट जाते थे। इस प्रकार कई दिन बीत गये। 'सीता तो मिली नही। न जाने हमे सुग्रीव किस प्रकार का दड दे डालेगा। अब क्या किया जाय ?' सबके मन मे चिता होने लगी। वे अब बहुत दूर दक्षिण मे चले गये थे।

भूख और प्यास मे बेचारे बदर बहुत थक गये थे। तब एकाएक उन लोगो की नजर एक गुफाद्वार पर पडी, जहा मे नाना प्रकार के पानी के पक्षी बाहर आ रहे थे। उनके शरीर पर कमल का पराग लगा हुआ था और कमल की सुगधि भी आ रही थी। उससे सबने यह निष्कर्ष निकाला कि गुफा के भीतर अवश्य कोई जलाशय होना चाहिए। प्यासे तो सब थे ही, अदर घुस पडे। गुफा के भीतर घोर अधकार था। एक-दूसरे का हाथ पकडकर वे भीतर काफी दूर तक चलते गये। उनमे से कई वानर 'हाय, बडी प्यास लगी है' कहकर अति दीन स्वर मे पुकारने लगे। तभी एकदम कुछ प्रकाश-सा दिखाई दिया। प्रकाश बढता गया। कुछ और आगे जाने पर वहा पर एक बडा ही मनोहर उद्यान मिला। उसके बाद वहा पर आश्चर्य-चकित करनेवाले बडे-बडे भवन दिखाई दिये। सडके लबी-चौडी थी। वहा बहुत ही अद्भुत् एक नगर दिखाई दे रहा था। सोना, चादी और धन-धान्य के ढेर लगे थे।

वही एक जगह एक बहुत बूढी तपस्विनी वल्कल धारण किये कृष्णा जिन पर समाधि लगाकर बैठी थी। उसे देखकर सबको कुछ डर-सा लगने लगा।

हनुमान ने हिम्मत की। बोला, "मा, आपको नमस्कार करता हू। आप अपना परिचय दे सकती है ? इस विचित्र गुफा और अपने बारे मे हमे कुछ बताइये। हम बहुत ही भूखे और प्यासे हैं। पानी की आशा मे इस गुफा के अदर घुसकर आये है। यहा के सोने के महलो से हमे कुछ डर-सा लग रहा है।"

तपस्विनी बोली, "हे वानर, इस गुफा मे प्रवेश करके यहा पहुचना आसान काम नही। तुम लोग कैसे आ गये? यहा पर अच्छा ठडा पानी बहुत है। पी लो। स्वादिष्ट फल भी कई प्रकार के है। पेट भरकर खाओ। तुम लोगो की थकावट दूर हो जायगी। यह जो अद्भुत भवन तुम देख रहे हो, सब दानवो के विश्वकर्मा मय के बनाये हुए हैं। उसने यह कला शुक्राचार्य से सीखी। इस निर्माण-कला मे वह बहुत निपुण है। यहा पर वह

कई वर्ष रहा। बाद मे इद्र और मय के बीच युद्ध हुआ। उसमे मय मारा गया। इद्र ने इस भवन को अपनी प्रेयसी हेमा नाम की अप्सरा को दे दिया। हेमा मेरी सखी है। इस भवन और बागो की वही मालकिन है। आजकल हेमा देवलोक गई हुई है। आप लोग कहा से आये है? भूखे-प्यासे क्यो फिर रहे है? पहले कुछ खा-पी लीजिये, फिर बताइये।"

तपस्विनी वृद्धा ने वानर-समूह को खूब खिलाया-पिलाया। सबने पहले तो पानी पिया और फिर भरपेट फल खाये। खूब ताजगी आ गई। बाद मे हनुमान ने तपस्विनी स्वयप्रभा को अपना सारा वृत्तात कह सुनाया।

"महाराज दशरथ-नदन श्रीराम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई के साथ किसी कारण से राज्य-पदवी को छोडकर वनवास कर रहे थे। एक दिन एक राक्षस सीता को उठाकर ले गया। उसको ढूटते हुए राम और लक्ष्मण, हम जहा थे, वहा आये। वानरेद्र सुग्रीव और राम के बीच मे मित्रता हो गई। हम लोगो को सुग्रीव ने सीता को ढूढने के काम मे लगाया है। हमे उसके लिए जो समय दिया गया है वह अब पूरा होने को आ गया है। सुग्रीव बडा कठोर शासक है। अवधि के भीतर हम उसकी आज्ञा का पालन न करेगे तो वह हमे मार-डालेगा। हेमे इधर से बाहर निकलने का मार्ग बताइये। यहीं पर हमारा काफी समय निकल गया है।"

तपस्विनी ने उत्तर दिया, "बाहर से जो भी आदमी यहा आता है, वह जिदा बाहर नही निकलता। इस गुफा की यही विशेषता है। फिर भी तुम लोगो के कार्य की मैं सफलता चाहती हू। अपने तपोबल से तुम लोगो को यहा से बाहर निकाल दूगी। सब आखे बद कर लो।"

सब वानरो ने आखे मूद ली। खोली तो साध्वी के तपोबल से सबने अपने को दक्षिण सागर के किनारे पाया।

: ५७ :

निराशा और निश्चय

वानर-वीरो ने समुद्र-तट के चारो ओर निगाह डाली। उन्हे पता चला कि वर्षा के बाद, सर्दी का मौसम भी समाप्त हो रहा है। वसत का प्रारभ था। इस विलब से वे बडे घबराये। अगद बोला, "सुग्रीव ने जो समय दिया था वह तो कभी का खतम हो गया। अब हम क्या करें ? अब इतनी देर बाद सीता की भी कोई खबर लिये बिना किष्किधा पहुंचे तो सुग्रीव कम-से-कम मुझे तो मार ही डालेगा। मुझे वह दिल से तो चाहता नही है। राम के डर से उसने मुझे युवराज बना दिया है। वहा जाकर उसके हाथ से मैं क्यो मरू ? मेरी तो यही राय है कि यही पर प्रायोपवेशन करके प्राण छोड दू।"

कइयो को युवराज अगद की यह बात पसद आई, पर सेनापति तारक को यह ठीक न लगी। वह बोला, "नही, व्यर्थ ही हम क्यो मरें ? चलो, सब-के-सब वापस तपस्विनी स्वयप्रभा की गुफा में ही चलते है। वहां आराम से हमारे दिन कट जायगे। किसी चीज की वहा कमी नही है। वहा पर सुग्रीव की भी पहुच नही हो सकती। आगे की जिंदगी आराम मे बितायेंगे।"

पर हनुमान को यह बात पसद नही आई। वह बोला, "तारक, तुम्हारी बात अनुचित है। क्या अपने परिवार को किष्किधा मे छोडकर इतनी दूर गुफा मे खा-पीकर मौज करोगे ? उसमे कौन-सा मानसिक आराम तुम्हे मिलेगा ? सुग्रीव को अगद पर कोई रोष नही है। वास्तव मे सुग्रीव बहुत ही भले स्वभाव का है। उससे हम डरे नही। मान लें कि वह हमे प्राणदंड दे देगा। पर गुफा के भीतर भी तो राम-लक्ष्मण की सहायता से उसकी पहुंच हो सकती है। हम सबने लक्ष्मण को क्रोधावस्था मे देखा है। मैं तो कहता हू कि हम सुग्रीव के पास ही वापस चलें। उससे ही क्षमा-प्रार्थना करेंगे।"

अंगद ने यह प्रस्ताव नही माना। बोला, "हनुमान का कहना ठीक नही। सुग्रीव मुझ पर तनिक भी दयाभाव नही दिखायेगा। मुझे तो मार-

कर ही छोडेगा। सुग्रीव बडे ही क्रूर स्वभाव का है। मेरे पिता बालि को उसने जिस प्रकार मरवाया था उमी प्रकार कोई-न-कोई बहाना लेकर मुझे भी मारने का प्रयत्न करेगा, ताकि उसका रास्ता साफ हो जाय। प्रतिज्ञा को भूल जाना उसका स्वभाव है। राम को दी हुई प्रतिज्ञा की उसे याद थी? लक्ष्मण के धनुष के डर से उसका दिमाग दुरुस्त हुआ। मेरी मा तो बेचारी दु खी हो गई। उसके डर के कारण और मेरे भविष्य की आशा से वह सुग्रीव के दबाव मे आ गई है। वह मुझे प्राणो से भी अधिक चाहती है। मेरे ही लिए वह जीवन धारण किये हुए है। हाय, जब वह सुनेगी कि मै भी मर गया तो उसका क्या हाल होगा? लेकिन किष्किधा जाकर मरू, उससे तो यही मरना अच्छा है।"

ऐसा कहकर उसने भूमि पर दर्भ को फैलाया, देवताओ का स्मरण किया और प्राण त्यागने का सकल्प करके पूर्व दिशा की ओर मुह करके बैठ गया।

युवराज अगद को प्रायोपवेशन करते देखकर सभी वानर जोरो से रोने लगे और अगद का अनुकरण करते हुए सब-के-सब उपवास का सकल्प लेकर बैठ गये।

इन निराश वानरो के समूह को गिद्धो के सरदार सपाति ने पास की एक पहाड़ी की चोटी से देखा। सपाति बहुत बूढा हो गया था। उसमे अब उडने की शक्ति नही रह गई थी। आहार की खोज मे न जा सकने के कारण वह भूखा था। वानरो की बाते उसने सुनी। चीलो को तो मुर्दे का मास बहुत ही भाता है। उसे बडी खुशी हुई कि इतने प्राणी एक साथ मर रहे हैं। बहुत समय तक के लिए उसे अब खाने की चिंता नही रहेगी।

उसी समय वानर भी आपस मे वार्तालाप करने लगे, "कैकेयी के कारण दशरथ मरा। राम को वनवास करना पडा। वनवास के कारण सीता को रावण उठा ले गया। वीर जटायु ने सीता को बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए। यदि थोडी देर और जटायु जीवित रहकर रावण को युद्ध मे जुटाये रहता तो राम-लक्ष्मण वहा पहुच जाते और सीता को बच

लेते । जटायु तो मर गया, पर उसका परिणाम यह हुआ कि हमे भी मरना पड रहा है।"

इस बात को सुनकर सपाति चौक पडा । बोला, "है, यह क्या कहा ! मेरा भाई जटायु कब मरा ?" इस विषय मे और जानने की उसे इच्छा हुई ।

सपाति बहुत बूढा था । गरुड के छोटे भाई अरुण के दो पुत्र थे । एक का नाम था सपाति, दूसरे का जटायु । जवानी मे दोनो भाइयो ने ऊपर की ओर उडान की स्पर्धा की । उडते हुए सूर्य का ताप बढने लगा । लगा कि जटायु उससे जलने ही वाला है । तब सपाति ने जटायु को बचाते हुए अपने पखो को फैला दिया । इससे जटायु बच गया, लेकिन सपाति के पख जल गये । वह नीचे पहाडी के ऊपर गिर पडा । फिर उड न सका । तभी से जैसे-तैसे उसका जीवन चल रहा था ।

"हे वानर, क्या तुम मेरे प्यारे भाई जटायु के बारे मे बात कर रहे हो ? तुम लोग कौन हो ? जटायु क्यो और कैसे मरा ? दशरथ का लडका वन मे क्यो रहने लगा ? उसकी स्त्री को रावण क्यो ले गया ? मुझे सब बाते विस्तार से बताओ ।" सपाति ने पूरी ताकत लगाकर चिल्लाकर कहा ।

वानर प्राण त्याग करने बैठे थे । गिद्ध उन्हे खाने की प्रतीक्षा मे था । किंतु हुआ कुछ और ही ।

वानर-समूह के कुछ लोग सपाति की पुकार सुनकर उसके पास उछलकर पहुच गये । पक्षी को धीरे-धीरे चलाकर नीचे ले आये । उसे जटायु का सारा हाल सुनाया । पक्षी ने अपनी भी कथा सुनाई । अगद ने किष्किधा मे जो कुछ हुआ, सब सपाति को बताया और पूछा कि श्रीराम के लिए अब क्या और कैसे किया जाय । सपाति की आखो की शक्ति जैसी-की-तैसी थी । सैकडो कोसो दूर तक उसकी दृष्टि की पहुच थी । उसने कहा, "मुझे जरा देखने दो ।"

सपाति ने दूर दक्षिण मे लकाद्वीप तक निगाह दौडाई । उसने लंकापुरी देखी । वानरो को लका का वर्णन सुनाया । रावण के वैभवो को देखकर

उसका वर्णन किया। राक्षसियो के बीच जानकी को भी देखा और कहा कि सीता राक्षसियो के बीच घिरी बैठी है।

वानर चिल्लाने लगे, "तब तो सीता की खबर हमे मिल गई। हमे अब अपनी जान खोने का डर नही रहा।" और सब-के-सब उछल-कूद मचाने लगे।

सपाति की वर्षो की वेदना दूर हो गई। उसको यह वर मिला हुआ था कि जब वह श्रीराम के कार्य मे सहायता करेगा तो उसके नये पख उग आयेगे। वह सच निकला। जैसे-जैसे वह वानरो को बाते बताता गया, उसके अग पर नये-नये पर उगते गये। उसका दूसरा ही रूप हो गया। पखो को फिर से पाकर सपाति समुद्र के किनारे उडकर जा पहुचा। वहा जाकर उसने अपने मृत भाई जटायु के लिए उदक-क्रियाए की और मन मे सतोष प्राप्त किया।

० ० ०

सपाति के कहने से वानरो को सीता के स्थान का, जो रावण की लकापुरी थी, पता चल गया। किंतु वे सोचने लगे कि राजा सुग्रीव को इतने से सतोष नही हो सकता। प्रत्यक्ष देखे बिना केवल कही-सुनी बातो से कैसे विश्वास किया जा सकता है? सीता को लका मे जाकर देख आने पर ही सपाति की बताई बात के सच-झूठ का निर्णय हो सकता है। समुद्र को लाघे बिना यह काम अशक्य था। अगद सोच मे पड गया कि अब क्या किया जाय। विशाल सागर को देखकर वानर घबराये कि इसे कैसे पार किया जा सकेगा?

युवराज अगद बोला, "चाहे कैसा भी कार्य हो, उसकी सिद्धि के लिए भले ही बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडे, तो भी साहस को नही खोना चाहिए। अधैर्य विनाश का मूल है।"

फिर अगद ने अपनी सेना के अग्रगण्य वानरो से कहा कि वे अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करे। वह बोला, "हे वानर वीरो, आप लोगो की सामर्थ्य मैंने राजा सुग्रीव के मुह से सुनी है। इसमे कोई शक नही कि

आप सभी बहुत ही तेज और वीर्यवान है। हमारा काम महत्त्वपूर्ण है। सीता से मिले बिना हम किष्किधा लौट नही सकते। वैसा करना बडी शरम की बात होगी। फिर इसमे जान खोने की भी सभावना है। आप सब एक-एक करके बताए कि कौन कितनी ऊचाई मे और कितनी दूरी की छलाग मार सकते है।"

यह सुन गज नामक वानर ने नम्रता से कहा, "मैं दस योजन कूद सकता हू।" गवाक्ष बोला, "मै बीस योजन आसानी से जा सकता हू।" तीसरे सेनापति ने कहा, "मै तीस योजन।" इस प्रकार कई वानर बोलते गए। अत मे जो सबसे पराक्रमी माना जाता था, वह जाबुवान बोला, "अब तो मै बूढा होने लगा हू। किसी जमाने मे मै बडा बलिष्ठ था। अब मुझमे जवानी की ताकत नही रही। फिर भी राजाज्ञा है। राज-काज है। इस बुढापे मे भी कुछ करके दिखाना चाहता हू। मैं नब्बे योजन तो अभी भी कूद सकता हू। पर सभव है, लका पहुचने के लिए यह पर्याप्त न हो। मुझे इस बात का खेद हो रहा है कि मैं बूढा क्यो हुआ।"

इस पर अगद बोला, "मै शत योजन लाघकर लका अवश्य पहुच जाऊगा। किंतु मेरी शक्ति वापस आने तक समाप्त हो सकती है। इसीलिए डर रहा हू।"

जाबुवान बोला, "युवराज, तुम्हे अपनी शक्ति के बारे मे शका नही होनी चाहिए। अपने पिता बालि के समान तुम्हारा पराक्रम है। किंतु तुम राजा के स्थान के लिए नियुक्त हो गये हो। ऐसे कामो मे उतरना जोखिम का काम है। उससे तुम्हे बचना चाहिए। तुम हम सबसे काम लो। इसी मे कुशलता है। जो प्रजा की रक्षा मे रहता है, उसे युद्ध मे अथवा अन्य इसी प्रकार की परिस्थितियो मे, सावधानी से कदम उठाना चाहिए। मेरे विचार मे वायु-पुत्र हनुमान, जो मौन धारण किये दूर बैठा है, इस कार्य के लिए सर्वथा समर्थ है।"

इतना कहकर जाबुवान ने हनुमान को पास आने के लिए सकेत किया। सभी चिंतित वानर आतुरता से जाबुवान की बाते सुनने लगे। जाबुवान

बोला, "हे वीर हनुमान, तुम सभी शास्त्रो को जानते हो। आगे आओ। हम सब तुम्हे राजा सुग्रीव के ही बराबर समझते है। हम सबमे अधिक बली तुम्ही हो। पक्षियो के राजा गरुड को समुद्र पार करते हुए मैने देखा है। विनता-सुत गरुड के पखो मे जो शक्ति है, वही तुम्हारी भुजाओ मे है। तीव्र गति मे तुम गरुड से पीछे नही हो। तुम्हे शायद अपनी शक्ति की पहचान अभी तक नही हुई। तुम्हारे-जैसा पराक्रमी ढूढने पर भी नही मिल सकता। तुम्हारी मा अजना देवलोक की अप्सरा थी। एक समय पर्वत की तराई मे वह आनद से विहार कर रही थी। अति रूपवती तुम्हारी मा को देखकर तुम्हारे पिता वायु भगवान् उन पर मुग्ध हो गये थे। वायु के स्पर्श का अपने अगो पर अनुभव करके तुम्हारी पतिव्रता मा ने डाटकर कहा था, 'कौन हो तुम दुष्ट ? मेरा अपमान करना चाहते हो ?' तब वायु भगवान् ने उससे विनयपूर्वक कहा, 'देवि, मैने स्थूल शरीर से तुम्हारा आलिगन नही किया। इस कारण तुम्हारी पवित्रता भग नही हुई। अब भी दूर ही खडा हू। हमारे मानस-सबध से ही तुम्हारे एक पुत्र का जन्म होगा। वह मेरे ही समान अतुल वीर, बली और बुद्धिमान होगा।' यह कहकर वायु ने अजना का समाधान किया।"

जाबुवान आगे बोला, "हे हनुमान, जब तुम छोटे बालक ही थे, सूरज को तुम एक फल समझकर हाथ मे पकडने के लिए ऊपर की ओर आकाश मे लपके। तुम्हे इस प्रकार ऊपर की ओर जाते देखकर देवेंद्र को डर लगने लगा कि यह कहा जा रहा है। तुम्हारे ऊपर उसने अपना वज्रायुध चला दिया। तुम उसकी चोट से नीचे गिर पडे और उससे तुम्हारा दाया गाल दब गया। इससे तुम्हारे पिता वायु भगवान् को बहुत गुस्सा आ गया। उन्होने अपनी गति रोक ली। समस्त जीव-जगत् छटपटाने लगा। सबका दम घुटने लगा। तब देवो ने वायु से प्रार्थना की कि वह शात हो जाय। तुम्हारे पिता का समाधान कराने के लिए ब्रह्मा और इद्र दोनो ने मिलकर तुम्हे यह वरदान दिया कि तुम चिरजीव बनो। किसी भी हथियार से तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। केवल स्वेच्छा से शरीर-त्याग हो सकता है।

इस प्रकार अजना और वायु के तुम मानस-पुत्र हो। वायु के समान बली, पराक्रमी, गतिवान और बुद्धिमान हो। तुम्हारे अदर एक अनोखी विशेषता और है। हे आजनेय, वह यह कि अपने निरुपम बाहुबल का तुम कभी दुरुपयोग नही करते। राम-काज की सफलता तुम्हारे सिवाय और किसी से हो नही सकती। हे विनयशील कपिवर, समुद्र को लाघना तुम्हारे लिए बाए हाथ का खेल है। इस वानर-सेना की रक्षा अब तुम्हारे हाथो मे है। तुम अब अपनी शक्ति को आजमाओ। तुम्हारी विभूति बढे। मारुति, जब मैं जवान था, मैंने इक्कीस बार पृथ्वी की परिक्रमा की थी। मैंने चारो दिशाओ से औषधिया लाकर सागर मे मिलाई थी। पर अब मै बूढा हो गया हू। तुम्हारे सिवाय वानरो की रक्षा और किसी से नही हो सकती। हे पवनसुत, अपनी शक्ति तुमने पहचान ली होगी। अत अब विलब न करो। त्रिविक्रम की तरह एक छलाग मे तुम समुद्र के उस पार पहुच सकते हो। हमारी चिता मिटाना अब तुम्हारे ही हाथ है। तुम्हारी शक्ति एव शरीर दोनो की वृद्धि हो।"

इस प्रकार जाबुवान ने हनुमान को उसकी शक्ति का ज्ञान कराया। उससे हनुमान के अदर सोया हुआ बल जागृत हो उठा।

वर्षाकाल के समुद्र के समान हनुमान का शरीर बढने लगा। वानरो के देखते-देखते हनुमान का आकार बेहद बढ गया। साथ ही असाधारण तेज भी उसमे आ गया। सचमुच अब मारुति त्रिविक्रम महाविष्णु के समान लगने लगा। वानर-समूह को बडा अचभा हुआ। सब-के-सब खुशी से नाचने-कूदने लगे।

इससे आगे अब रामायण की कथा का मुख्य नायक हनुमान ही है। प्रभु के लिए सर्वस्व छोडकर सेवा मे लीन हो जानेवालो में गरुड का नाम प्रथम है। वह कभी भी प्रभु से अलग नही होता। वैष्णव सत गरुड के बाद हनुमान को ही वह स्थान देते है। हनुमान किस प्रकार मा सीता की मनो-व्यथा को मिटाता है, लकेश की पुरी को जला देता है, फिर अपने स्वामी

को यह अमृततुल्य सदेश कि "मैंने सीता को देखा", सुनाता है, इसका वर्णन हम आगे सुदर काड मे पढेगे।

: ५८ :

हनुमान का समुद्र-लंघन

नम्र स्वभाव के कारण अब तक हनुमान को अपनी शक्ति का पता न था। जाबुवान के बताने से वह अब अपनी शक्ति को पूरी तरह पहचान पाया। राम के कार्य को सफलतापूर्वक कर दिखाने का उसने मन मे सकल्प कर लिया। जाबुवान से बोला, "अच्छी बात है। अभी मै उछलकर आकाश-मार्ग से लका मे जाकर उतर पडूगा। सीता को ढूढ लूगा। उनसे मिलूगा। आप लोग शका न करे। अपने पैरो से भूमि को जोर से दबाकर इस महेद्र पर्वत से मैं उछलूगा। सोचता हू कि यह पर्वत मेरा दबाव सहन कर सकेगा।" इतना कहकर हनुमान महेद्र पर्वत पर चढा।

वहा अपनी पूरी ताकत लगाकर, पैरो को जोर से दबाकर, कुछ देर तक चलता रहा। पर्वतवासी प्राणी उसी से घबराने और भयभीत होकर पर्वत छोडकर भागने लगे। पहाड पर से हनुमान ने समुद्र का निरीक्षण किया, मन को एकाग्र किया और सोचने लगा, 'रावण द्वारा अपहृत देवी सीता का दर्शन मै अवश्य करूगा। गगनपथ से इस समुद्र को अभी लाघूगा।' इस प्रकार मन मे दृढ सकल्प करके आजनेय ने सूर्य, इद्र, वायु, ब्रह्मा तथा भूतगणो का ध्यान किया, उनका अभिवादन किया। पूर्व की ओर मुह करके एक बार फिर अपने पिता वायु भगवान् का ध्यान करके प्रणाम किया और अपने शरीर को और भी बढा लिया।

हनुमान ने अपने हाथो से पहाड पर तीव्र प्रहार किया। पैरो को जोर से दबाया। इससे पहाड पर के पेडो के फूल झडकर नीचे गिर गये। मत्त गज के गालो से जैसे मद-जल बहने लगता है, हनुमान के पैरो के दबाव से

पहाड के भीतर से पानी बाहर निकलकर बहने लगा। नाना रग की धातुए पहाड के चारो ओर बिखर गई। गुफाओ के अदर से जानवर बाहर निकल आये। विषैले साप अपने फन फैलाकर दात पीसने लगे। सापो के इस प्रकार दात पीसने से आग की चिनगारिया निकलने लगी।

भावावेश से हनुमान के रोगटे खडे हो गये। खूब जोर से गरजकर, पूछ को जमीन पर पटककर, उसके पृष्ठ भाग को बदन के साथ समेटकर उसने श्वास को रोका, कानो को मोडकर, अपनी शक्ति को एकत्र किया, और जोर से छलाग लगाई। गरुड की-सी तीव्र गति से आकाश-मार्ग से पवनसुत जाने लगा। उसके इस प्रकार छलाग लगाने के वेग से पहाड के बडे-बड वृक्ष जड से उखड गये, पुष्प-वृष्टि करते हुए वे पेड हनुमान जिस रास्ते से गया था, उसी रास्ते कुछ दूर उडकर गिर पडे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो अपने प्रियजन को, थोडी दूर तक साथ जाकर, वे विदा कर रहे हो।

ऐसी कथा है कि पहले जमाने मे पर्वतो के पख होते थे। वे उडा करते थे। उनके गर्व को तोडने के लिए जब देवेद्र ने उनके पखो को काट डाला तब वे जाकर समुद्र मे गिरने लगे। इसी प्रकार महेद्र गिरि के वृक्ष भी उखडकर, समुद्र मे जा गिरे। उनके रग-बिरगे फूलो से समुद्र तारागणो से आच्छादित आकाश के समान लगने लगा।

गगन मे उडते हनुमान के पजे पचमुखी नाग की तरह दीखते थे। ऐसा लगता था, मानो वह आकाश को निगलता हुआ जा रहा है। उसकी तेज आखे दावानल की तरह दिखाई देती थी। मारुति की रक्तवर्ण नाक सध्याकाल के सूर्य के समान थी। उसका दीर्घकाय शरीर धूमकेतु की भाति लगता था। हनुमान के गमन के वेग से हवाए परस्पर टकराई। उसकी छाया समुद्र मे उसके साथ-साथ चलती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई बडा भारी जहाज समुद्र पर जा रहा हो। बादलो के बीच छिपता और बाहर निकलता हुआ हनुमान चाद की तरह लगने अगा। गधर्वो ने उस पर पुष्पवृष्टि की। देवर्षियो ने आशीर्वाद दिया।

भगवान् वाल्मीकि के हनुमान के पहाड पर से उछलकर आकाश मे उडने के इस वर्णन से हमे प्रतीत होता है कि वह दृश्य आजकल के बडे भारी विमान के बादलो के ऊपर से उडने-जैसा रहा होगा ।

साहसी, चतुर और बुद्धिमान हनुमान को इस यात्रा मे कई विघ्नो का सामना करना पडा । विघ्नो का सफलता के साथ सामना करते हुए वह उडता ही गया । एक बार उसने देखा कि समुद्र के भीतर से अचानक एक भारी पर्वत ऊपर की ओर बढता चला आ रहा है और उसका मार्ग रोकने लगा है । हनुमान के वक्षस्थल के साथ टकराने से हवा से जैसे बादल हिल जाता था वैसे ही वह पर्वत भी हिल गया । यह था मैनाक पर्वत । वह बोला, "हे वायु-पुत्र, मेरा नाम मैनाक है । समुद्रराज के आदेश से रामदूत के स्वागत के लिए आया हू । सगर-कुल मे राम उत्पन्न हुआ है । सगरो के कारण ही समुद्र की वृद्धि हुई है । मेरे ऊपर उतर जाओ और कुछ विश्राम करो । आराम करने के बाद दुगुनी शक्ति से फिर उड सकोगे । इद्र जब सारे पर्वतो के पखो को काट गिराने लगा था तब मै समुद्र मे घुसकर छिपा रह गया था । अपने आश्रयदाता समुद्र के कहने से तुम्हारी मदद के लिए आया हूं । तुम्हारे पिता वायु ने मुझे समुद्र तक उड-कर आने मे मदद की थी । उसके लिए भी मै कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हू । थोडी देर मेरा आतिथ्य ग्रहण करो । उससे मुझे और समुद्रराज दोनो को बहुत ही आनद होगा ।"

हनुमान ने कहा, "भैया, तुम्हारे प्रेमभरे वचनो से मुझे बडा सतोष आ, पर मैं किसी भी कारण से बीच मे रुक नही सकता । मैने यही सकल्प कर लिया है । मुझे क्षमा करना ।"

इतना कहकर मैनाक के ऊपर हनुमान ने स्नेह से हाथ फेरा और रुके बिना ही आगे बढ चला ।

कुछ समय बाद एक बडी राक्षसी हनुमान के सामने आकर बोली, "महीनो से मैं भूखी हू । तेरी ही राह देख रही थी । मेरे मुह के अदर प्रवेश कर जा ।" यह कहकर उसने गुफाद्वार के समान अपना मुह फाड लिया ।

हनुमान बोला, "मैं राम के कार्य से जा रहा हू। मुझे मत रोक।"

राक्षसी ने अपनी हठ न छोडी। हनुमान ने झट एक उपाय सोच लिया। वह अपना शरीर बढाता गया। तदनुसार राक्षसी ने भी अपना मुह बढाया। क्षणभर मे हनुमान ने अपने देह को अणु के परिमाण मे छोटा कर लिया और उस असुर स्त्री के मुह मे प्रवेश करके बाहर निकल आया और बोला, "मा, मैने तुम्हारा कहना मान लिया, अब मुझे जाने दो।"

असल मे वह स्त्री नाग-माता थी। बोली, "अवश्य जाओ। देवताओ के कहने से मैने तुम्हारी परीक्षा ली थी कि तुम अपनी इच्छानुसार अपना रूप बदल सकते हो या नही। मै प्रसन्न हू। तुम जिस कार्य से जा रहे हो, उसमे सफलता पाओगे।"

हनुमान आगे बढता ही गया। अब उसे एक विचित्र अनुभव हुआ। किसी अज्ञात कारण से वह आगे न बढ पाया। आधी मे फसी नाव की तरह उसकी गति रुक गई। उसे पता लगा कि कोई बाहरी शक्ति उसे अपनी ओर खीच रही है। वायु-पुत्र ने चारो ओर दृष्टि दौडाई। नीचे एक विकराल रूप को उसने समुद्र मे देखा। वह राक्षसी हनुमान की छाया को खीचकर निगलने के प्रयत्न मे थी। बोली, "आ जा, भूख के मारे मर रही थी, अब तुझे खाकर मै खुश होऊगी।" तुरत ही उसके पेट मे पहुचकर उसका शरीर चीरता हुआ हनुमान बाहर निकल आया।

इस प्रकार अपने शारीरिक तथा बुद्धि-बल से हनुमान कई विपत्तियो को पार करके लका-द्वीप के समीप आ गया। अब उसे द्वीप का हरियाली, कदली और नारियल के पेडो से भरा प्रदेश साफ दिखाई देने लगा। लका-द्वीप के बाग-बगीचे, नदिया सब उसे दिखाई पडने लगे। इसमे कोई शक न था कि वह प्रदेश बहुत ही समृद्ध था। अब नगर की शोभा भी सामने आई। उसे लगा, मानो वह देवेंद्र की पुरी अमरावती मे आ गया है। वह सोचने लगा, 'जहा मुझे पहुचना था वहा तो आ ही गया। अब राक्षसों की दृष्टि से अपने को बचाकर सीता की खोज मे लगूगा।' यह विचार

करके वायुपुत्र ने अपने विशाल रूप को बदल लिया। बहुत ही सामान्य रूप मे लका के एक पहाड पर वह आकाश से उतर पडा।

: ५६ :

लंका में प्रवेश

बडे उत्साह के साथ हनुमान लका-द्वीप पर उतरा और विचार करने लगा, 'समुद्र पार करके मै यहा पहुच तो गया हू, पर इसी से मेरा काम पूरा नही हो जाता। त्रिकूट पर्वत पर बसी यह लकापुरी अद्भुत मालूम हो रही है। ऐसा लग रहा है, मानो यह आसमान मे लटक रही हो। ऐसी सुदर नगरी की कल्पना भी भला किसे हो सकती है? कितना धन, कितनी दौलत, कितना सौदर्य और रक्षा के कैसे-कैसे प्रबध! अमरावती या भोग-वती इससे बढकर नही हो सकती। मकान और उद्यान, दुर्ग और प्राचीर आदि को देखते हुए साफ दीखता है कि लकेश को जीतना सरल काम नही है। मैंने तो यह समुद्र लाघ लिया, किंतु हमारी वानर-सेना से यह काम कैसे सभव होगा? यदि मान लिया जाय कि सेना पहुच भी गई तो भी इस किले पर आक्रमण किस प्रकार से हो सकेगा? शस्त्रधारी राक्षसो से सुरक्षित लका को साम, दाम, दड, भेद आदि किसी भी तरकीब से जीतना असभव-सा लग रहा है। पर पहले देख लू कि सीता अभी जीवित भी हैं या नही। बाद मे और बातें सोची जा सकती हैं। नगर के अदर किस प्रकार प्रवेश करू? मुझे तो यहा के कोने-कोने मे खोज करनी होगी। कहीं भी कुछ गलती हो गई तो सारा काम बिगड जायगा। राम का काज कैसे बिगडने दिया जा सकता है?

'दिन मे अगर प्रवेश करूगा तो तुरत राक्षस लोग देख लेंगे। रात में ही अदर जाना ठीक होगा। पर किस रूप मे जाना उचित रहेगा? अपने को बहुत ही मामूली और छोटे-से शरीर का बना लूगा, ताकि राक्षसो का

ध्यान ही मेरी ओर न जाय।'

इस प्रकार भली-भाति सोच-विचारकर हनुमान ने अपने शरीर को एक बिल्ली जितना छोटा बना लिया। छोटी आकृति को ही उसने नगर के मकानो, बाग-बगीचो आदि के अदर और बाहर जाने के लिए उपयुक्त समझा। कुछ देर पहले जिस किसी ने महाकाय वायुपुत्र को देखा था, वह अब यदि इस छोटे से बदर के रूप मे उसे देखता तो आश्चर्यचकित ही रह जाता।

सूर्य के अस्त होने पर हनुमान दुर्ग-द्वार की ओर बढा। चादनी रात थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो मारुति की सहायता करने के लिए चद्रमा ने प्रकाश फैला दिया था। हनुमान उत्साह से परिपूर्ण था। अब तक उसने नगर की खूबी दूर से ही देखी थी। चारो ओर ऊची-ऊची और मजबूत दीवारे थी। नगर की लबी-चौडी सडके, ऊचे विशाल भवन, सजावट के तोरण, ध्वजा इत्यादि सोने, चादी और मणियो से चमक रहे थे। समुद्र की ठडी-ठडी सुहावनी हवा चल रही थी। लका तो जैसे वैभव के शिखर पर थी। देवेद्र की अमरावती या कुबेर की अलकापुरी से लका किसी भी प्रकार कम नही दीख पड रही थी। उसे देखकर वायुपुत्र हनुमान को एक ओर विस्मय होता था तो दूसरी ओर चिता होती थी कि इस नगरी पर कैसे आक्रमण किया जायगा?

जब हनुमान इस प्रकार चितामग्न हो रहे थे, उसी समय नगर की रक्षा करनेवाली एक शक्तिशाली राक्षसी ने भयकर रूप से हनुमान को डाटकर रोका और बोली, "अरे बदर, तू कौन है? कहा से आया है? सच-सच बता।"

"मैं एक मामूली बदर हू। इस सुदर नगर को देखने की इच्छा से चला आया हू। घूम-फिरकर वापस चला जाऊगा।" हनुमान ने नम्रता से उत्तर दिया।

पर लकादेवी ने गुस्से मे आकर हनुमान के गाल पर कसकर एक तमाचा लगाया। आजनेय चुप न रह सका। उसने भी राक्षसी के गाल पर

अपनी ताकत आजमा दी। लकादेवी से वह पीडा न सही गई। नीचे गिर पडी और बोली, "किसी ने मुझे बताया था कि जिस दिन तुम एक बदर से मार खाकर नीचे गिरोगी, उसी दिन से लका का पतन होने लगेगा। मालूम होता है कि वह समय आ गया है। अब रावण के अत्याचार भी बढने लगे है। देवो ने जैसा बताया था, मै सोचती हू कि उसी के अनुसार अब लका का विनाश होनेवाला है।"

इतना कहकर लकादेवी एक तरफ हट गई। वानर अब नगर-प्राचीर के ऊपर चढकर नगर के अदर कूद गया। पुराने युद्ध-शास्त्र के अनुसार जब शत्रु किसी नगर मे प्रवेश करते थे, तब सीधे पैर को पहले अदर नही रखते थे। हनुमान ने भी अपने बाए पैर को नगर मे पहली बार रखा और लका मे प्रवेश किया।

राजवीथि पुष्पो से सुसज्जित थी। हनुमान उधर से ही होता हुआ गया। एक छत से दूसरी छत पर कूदता हुआ वह आगे बढने लगा। मकान सब एक-से-एक बढकर सुदर थे। सडके भी बहुत अच्छी थी। सजावट खूब थी। आनद से होनेवाला कोलाहल सुनाई दे रहा था। कही राक्षसो के घरो से वेदाध्ययन का स्वर आ रहा था, कही मत्रो का उच्चारण हो रहा था। सडको पर शस्त्रधारी सैनिकों का पहरा था। वहा धार्मिक वृत्तिवाले लोग भी थे। कइयो की शक्ले बडी डरावनी थी। सिपाही योद्धाओ के हाथो मे बडे विचित्र प्रकार के अस्त्र थे। सबने कवच धारण किये हुए थे। कुछ लोग बहुत सुदर थे, कुछ महाकुरूप। किसी का वर्ण गोरा था तो किसी का एकदम काला, कुछ का गेहुआ। कुछ लोग बहुत ही ऊचे थे, तो कुछ बहुत ही नाटे, कुछ साधारण आकार के।

स्त्रियो मे कुछ बडी रूपवती थी। वे अपने प्रियतमो के साथ आनद मे लीन थी। कइयो का शरीर ऐसा लगता था, मानो तपा हुआ सोना हो। कुछ भवन मे बैठी अपने नायको से बाते कर रही थी। कुछ युवतिया निद्रा-ग्रस्त थी। कुछ तरुणिया मधुर कंठ से गा रही थी, कुछ भाति-भाति के वाद्य बजा रही थी। ऐसी सैकडो नारिया हनुमान की दृष्टि मे आई, किंतु शोक-

मग्ना, राम के ध्यान मे डूबी जानकी कही नही दिखाई दी। इसलिए लका की सुन्दरियो को देखकर हनुमान के मन मे उदासी छा गई।

एक राक्षस के घर मे हनुमान घुमा। देखा कि जानकी कही इधर-उधर न छिपाई गई हो। राजमहलो मे उसे बहुत ही विशाल शस्त्र-शालाए दिखाई दी। वहा जगी हाथी तथा उत्तम जाति के घोडे देखने मे आये। स्त्रियो और बाजे-गाजे से पूर्ण इन महलो को देखने के बाद हनुमान ने पर्वत के समान ऊचा राजा का महल बाहर से देखा। महल के सामने हाथी-घोडे खडे थे। सैनिक चक्कर लगा रहे थे। वहा जैसी सजावट थी वैसी और कही नही थी। हनुमान ने निश्चय किया कि यही रावण का निवास-स्थान तथा अत पुर होगा। वह विशाल भवन लकापुरी के बीच एक जाज्वल्यमान आभूषण की तरह चमक रहा था। हनुमान चुपके-से उस भवन के अदर घुस गया।

भूस्वर्ग के समान उस भवन मे कलापूर्ण चित्रो से मडित कई मडप थे। विहार करने के स्थान थे। राजभवन के उद्यान तो देखते ही बनते थे। यह सब देखकर हनुमान के आश्चर्य की सीमा न रही। फिर सहसा उसे वैदेही का स्मरण हो आया। सोचने लगा कि इन वैभवो से मेरा क्या मतलब ? मुझे तो वैदेही अभी तक कही दिखाई नही दी।

अब वह रावण के महल के विशेष विभागो मे पहुचा। उसे देखकर क्षण-भर के लिए सदेह हुआ कि कही भूल से वह देवलोक मे तो नही आ पहुचा है। वहा तो सोना-चादी, रत्न-मणियो का कोई पार न था। अद्भुत चित्र और कला से परिपूर्ण स्तम्भ, बडे-बडे मडपो को सहारा दिये खडे थे। बीच मे रावण का पुष्पक विमान था। कुबेर को जीतकर रावण ने उस विमान को अपने पास लाकर रखा था। वह विमान वसिष्ठ की कामधेनु की भाति ही शक्तिशाली था।

पुष्पलताओ से भरे उद्यान की तरह रावण का अत पुर लावण्यमयी युवतियो से भरा था। रावण के बल और शक्ति से आश्वस्त होकर वे सब मस्त और सतुष्ट सोई हुई पडी थी। हनुमान सीता की तलाश मे हरेक के को ध्यान से देखता गया। सब-की-सब बडी प्रसन्न दिखाई दे रही

थी। हनुमान ने सोचा कि उनमे से कोई भी सीता नही हो सकती। सीता कभी रावण के वश मे नही आई होगी। उसे यहा पर ढूढने का मेरा प्रयत्न मूर्खतापूर्ण है। वहा से वह एक दूसरे बडे कमरे मे आया। वहा बडे कीमती पलग बिछे थे। कमरे के बीच मे हीरे-मोती, हाथीदात और सोने के काम का एक बहुत ही सुदर मच था। उस पर राक्षसेंद्र रावण मेरु-पर्वत की तरह सोया हुआ था। उसका शरीर बहुत ही गभीर था। बडा सुदर लगता था। हनुमान उसे देखकर एक क्षण को काप गया। हटकर एक ओर को खडा हुआ और ध्यान से उसे देखने लगा। उसके हाथ हाथी की सूड की तरह थे। ऐरावत हाथी के दात, वज्रायुध और विष्णु-चक्र से हुए घावो से उसका वक्षस्थल सुशोभित हो रहा था। उसके शौर्य-भरे रूप से हनुमान भी आकर्षित हुए बिना न रहा।

रावण के आस-पास कई स्त्रिया निद्रा मे पडी थी। वाद्य उनके पास थे। रावण के पलग के पासवाले उसी प्रकार के दूसरे पलग पर सबसे अलग एक बहुत ही लावण्यमयी स्त्री सो रही थी। हनुमान ने उसके चेहरे के उत्तम भावो को देखा। सोचा कि यही सीता होगी। सीता को आखिर ढूढ ही लिया, ऐसा सोचकर वह उछलने लगा। किंतु दूसरे ही क्षण उसने विचार किया, 'मैं कैसा मूर्ख हू। रामवल्लभा सीता रावण के कमरे मे इस तरह की मीठी नीद लेकर कैसे सो सकती है! यह सीता नही। मैने एक क्षण के लिए भी इसे सीता समझा, यह कैसा अनुचित कार्य किया।' उसे बडा दु ख हुआ कि अभी तक सीता क्यो नही मिली! 'राक्षस ने उसे मार तो नही डाला? शायद मेरा यह सोचना बिलकुल व्यर्थ हो।'

अत.पुर की एक भी जगह हनुमान ने बिना देखे न छोडी। शयनकक्ष, भोजनशाला, मद्यपानशाला, नृत्य-नाटक-मडप, आदि सभी जगहो मे उसने देखा। कही भी सीता न थी। उसे दु ख हुआ कि सकोच छोडकर स्त्रियो के कमरे मे घुसने पर भी सीता नही मिली। मद्यपानशाला से बाहर निकलकर वह बगीचे मे आया। वहा के मडपो और लता-गृहो मे भी सीता नही दिखाई दी।

'अब तो मुझे कोई आशा नही रही। एक जगह भी मैंने नही छोडी। सीता का कोई पता नही लग रहा। पर उसे ढूढे बिना वापस कैसे जाऊ ? बस, मै यही प्राण छोड देता हू···पर नही, अधीर होना कायरो का काम है। फिर एक बार ढूढता हू।' इस प्रकार सोचकर हनुमान फिर अपने काम मे लग गया। एक अगुल जगह भी उसने न छोडी। बद किवाडो को खोलकर देखा। वहा अति कुरूपिनी और अति सुदर राक्षस और मानव-स्त्रियो को देखा। सुदर मानव-स्त्रियो को रावण जगह-जगह से उठा लाया था, किंतु जनकसुता नही मिली। हनुमान फिर सोच मे पडा।

'किष्किधा लौटकर लोगो से क्या कहूंगा ? यदि राम को लगा कि सीता को फिर से पाने की आशा नही रही तो उनका क्या हाल होगा ? प्रयत्न मे असफल होकर सुग्रीव के पास पहुचू, उससे अच्छा तो यही है कि यही शेष जीवन बिता दू। उससे अच्छा तो यह है कि आत्महत्या ही क्यो न कर लू ? सपाति ने तो कहा था कि सीता लका मे है। क्या वह झूठ हो सकता है ? या उसके बाद राक्षसों ने उसे मार डाला ? अब मैं क्या करू ?'

मारुति चितासागर मे डूब गया। तभी उसने देखा कि वहां एक अलग-सा बना बडा बाग है जिसके चारो ओर ऊची-ऊची दीवार है। उसमे वह अभी तक नही गया था।

'यह जगह मैंने अब तक नही देखी। यहा पर सीता अवश्य होगी।' हनुमान ने सोचा। उसने राम, लक्ष्मण और सुग्रीव का ध्यान किया और देवताओ को नमस्कार किया।

हनुमान के मन मे एक प्रकार का निश्चय हो गया कि हो-न-हो, उस एकात उपवन मे ही सीता बदी होगी।

इंद्र, यम, वायु, सूर्य, चद्र और मारुतगणो को हनुमान ने याद किया। फिर अशोक वाटिका की दीवार पर चढकर देखा। अदर एक बडा ही मनोहर उपवन उसे दिखाई दिया।

: ६० :

आखिर जानकी मिल गई

वाटिका की चहारदीवारी पर चढे हनुमान को एक असाधारण आनद का अनुभव हुआ। हो सकता है, सीता के स्थान पर पहुच जाने से उसका मन प्रसन्नता से खिल गया हो। अब हनुमान को लगा कि वैदेही उसे अवश्य मिल जायगी।

वसत ऋतु का प्रारभ था। वाटिका के वृक्ष तथा द्रुम-लताए रग-बिरगे फूलो से लदी थी। पुष्पो की महक हवा के साथ चारो ओर फैल रही थी। हनुमान दीवार से एक घने पत्तोवाले पेड पर कूद गया। वजन से वृक्ष हिला। डालो पर बैठे मोर, कोयल आदि पक्षी मधुर कठ से बोल रहे थे। नीचे वृक्षो के आस-पास हिरण खेल रहे थे। पेड के हिलने से उसके फूल झरकर गिरे। हनुमान का शरीर उनसे ढक गया। उपवन के प्राणियो ने जब पुष्पो से ढके बदर के समान एक नवीन आकृति को देखा तो सोचा कि वसत देवता सवेरे-सवेरे उपवन मे सैर करने आ पहुचे है।

पेड पर से हनुमान ने वाटिका के सौदर्य को निरखा। उसे बडा विस्मय हुआ। जगह-जगह कृत्रिम झरने थे। खिले कमलो से पूर्ण तालाब थे, जिनके किनारो पर कारीगरी किये हुए मूल्यवान पत्थर लगे थे। पहाडियो से पानी के झरने गिर रहे थे। झरनो का पानी नदी के रूप मे बह रहा था, जिसके किनारे पक्षी कल्लोल कर रहे थे। पेडो के नीचे सोने के चबूतरे बने हुए थे। पेडो की डालियो मे सोने-चादी की छोटी-छोटी घटिया बधी हुई थी। जब हवा से डालिया हिलती थी, तब घटियो की मधुर ध्वनि सुनाई पडती थी। एक ऊचे घने वृक्ष पर, जिसके नीचे सुनहरा चबूतरा था, हनुमान पत्तो मे अपने शरीर को छिपाकर बैठ गया। सोचने लगा, 'यदि मैथिली जीवित होगी तो यहा पर एकात मे श्रीराम का ध्यान करने के लिए अवश्य आयेगी। मैंने राम-लक्ष्मण के मुह से कई बार सुना है कि सीता को वन-उपवन मे

घूमना बहुत पसद है। इसलिए सीता यहा पर आये बिना नही रह सकती। सवेरे-सवेरे सध्या-वदन करने के लिए भी यहा इस झील-किनारे आ सकती है।' ऐसा सोचते हुए हनुमान ने चारो ओर निगाह दौडाई और नीचे की ओर देखा। 'अरे, यह क्या? वहा तो एक मानुषी बैठी है। उसकी काति से आखें चकाचौध हो जाती है।' उसके शरीर पर एक पुराना पीला वस्त्र था। धुए से आच्छादित वह्नि की भाति उसका वदन दु ख से घिरा हुआ था। वह बार-बार दीर्घ नि श्वास छोडती थी। उपवास के कारण उसकी देह बहुत ही कृश हो गई थी। ऐसा लगता था, मानो शुक्ल-पक्ष की प्रथमा का चद्रमा हो। चारो ओर उसे घेरकर राक्षस-स्त्रिया बैठी थी। अब हनुमान को सदेह न रहा कि यही देवी सीता है।

देवी के कातियुक्त वदन पर शोक की रेखाए थी। अपने झुड से अलग, शिकारियो से पीछा की गई हिरणी की तरह वह डरी हुई दिखाई दे रही थी। काले लबे केश खुले हुए थे। क्लेश और चितायुक्त, चिथडे-जैसे कपडो मे उपवास और दु ख से दुर्बल शरीरवाली उस मानुषी को राक्षसियो के बीच मे देखकर हनुमान को पक्का. भरोसा हो गया कि यही सीता हैं। आभूषण और अलकार के बिना, शोकमग्ना सीता बादलो से ढके चाद की भाति वहा बैठी थीं।

राम की सहायता के विचार से वानरो ने सारे भूमडल मे सीता की खोज की थी। उस कार्य मे आज हनुमान सफल हुआ। उसके सतोष और आनद का ठिकाना न था, किंतु उसकी सारी खुशी देवी की शोकातुर मानसिक अवस्था को देखकर लुप्त हो गई। जैसे-जैसे आजनेय सीता को देखता गया, वह उसे अधिकाधिक सुदर लगने लगी। मारुति सोचने लगा, 'अब मैं समझा कि राम इतने दुखी क्यो है? ऐसी सुदर पत्नी को खोकर कौन शांत रह सकता है? मुझे तो यही आश्चर्य लगता है कि राम अब तक जीवित कैसे है? दोनो की कैसी अद्भुत जोडी है!' हनुमान विरहातुर श्रीराम का स्मरण करने लगा।

उसी समय झील में जैसे राजहस तैरता आ रहा हो, निर्मल आकाश मे

चद्रमा ऊपर चढ़ता हुआ, वायुपुत्र की मदद को आ गया। तरु-पल्लवो मे अपने को छिपाकर हनुमान बैठ रहा। सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। सीता को उसने एक बार और देखा। बीच समुद्र मे आधी से डावाडोल नौका की तरह सकट मे फसी जानकी को देखा। फिर उन्ही की पहरेदार राक्षसियो को देखा। उनकी कुरूपता देखी नही जाती थी। किसी के एक ही आख थी, तो किसी के एक ही कान। किसी के एक भी कान न था, किसी के नाक नदारद। किसी के सिर मे बाल ही न थे तो किसी-किसी के अनेक जटाए लटक रही थी। किसी के बडे-बड़े लटकते उदर थे। किसी के होठ ऊटो के-से थे। कोई कुबडी थी, तो कोई ताड के पेड की तरह लबी थी। किसी-किसी का चेहरा सूअरो का-सा था, तो किसी का शेर, भैस, बकरी और गीदडो-जैसा। सबके हाथो मे तरह-तरह के हथियार थे। उनके बीच मे वैदेही बैठी थी। उनका एकमात्र हथियार उनका शील था। मा सीता को इस प्रकार दीन दशा मे देखकर पवनसुत बडा दुखी हुआ। उसने श्रीराम-लक्ष्मण का ध्यान किया।

अभी पूरी रात नही बीती थी। वेद-घोषो और सुप्रभात के गीतो से लकेश को निद्रा से जगाया गया। उठते ही उसे सीता का ध्यान आया। वह सीधा उपवन की तरफ आया, जहा सीता बदी थी।

उसके साथ उसकी परिजन स्त्रिया भी आई। कोई सुगधित द्रव्य लिये खड़ी थी, कोई चमर झल रही थी, कोई छत्र पकड रही थी। कोई सुगधित तेलवाले दीप हाथ मे लिये खडी थी। रावण साफ-सुथरा सफेद उत्तरीय ओढे हुए था और सुदर आभूषणो से अलकृत था। मन्मथ जैसा रूपवान वह लग रहा था। उसके आगे-पीछे स्त्रिया चली आ रही थी। उनके नूपुरो की रुनझुन हनुमान के कानो मे पडी। उसने देखा कि राक्षसो का राजा सीता के पास चला आ रहा है। अपने शरीर को उसने पत्तो से अच्छी तरह ढंक लिया।

बल, पराक्रम और तेजवाले राक्षसेंद्र को अपनी ओर आते देखकर सीता हवा मे हिलते केले के पत्तो की भाति भय के मारे काप उठी।

: ६१ :

रावण की याचना : सीता का उत्तर

शोकसागर मे निमग्न सीता का एकमात्र आधार पति का सतत स्मरण और धर्म के प्रति उसकी निष्ठा थी। उसी के सहारे किसी तरह सीता के प्राण बचे हुए थे।

रावण सीता के पास पहुचा और उससे बोला, "हे सुदरी, मुझसे क्यो शरमा रही हो ? क्या तुम नही जानती कि मै तुम्हे कितना चाहता हू ? मैं तुम्हारे प्रेम की भीख मागने आया हू। मुझसे डरो मत। तुम जब तक अपने हृदय से मुझे न चाहोगी, मैं तुम्हे हाथ न लगाऊगा। मेरी यह अभिलाषा है कि मैं तुम्हे जितना चाहता हू, उतना ही तुम भी मुझे चाहने लगो। दुखी क्यो होती हो ? तुम्हारे समान रूपवती इस भूमडल मे दूसरी कोई नही। इस तरह आभूषणो का त्याग करके, मलिन वस्त्र धारण करके तथा केशों को बिखरे-उलझे रखकर धरती पर लेटी रहना ठीक नही। अब ये व्रत और उपवास छोड दो। हे नारी-रत्न, अपने सौदर्य और यौवन को यो व्यर्थ न गवाओ। अब तो तुम मेरे घर आ गई हो। तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट हो तो मुझसे सहन न होगा। ये सारी भोगादि की वस्तुए तुम्हारे लिए ही हैं। पूर्ण-चद्र के समान तुम्हारे मुख पर से अपनी दृष्टि को मैं कही और हटा नही पा रहा हू। तुम्हारे शरीर के जिस किसी भाग को देखता हू तो मेरी निगाह वही टिक जाती है, वहा से हट नही पाती। तुम्हारी-जैसी सदरी को यो क्लेश नही करना चाहिए। तुम मुझे अपना पति स्वीकार करो और खूब आराम से रहो। डरो मत। चिंता छोडो। तुम्हे मैं अपनी पटरानी बनाऊगा। मेरा सारा अत पुर तुम्हारे आधीन रहेगा। मेरे तमाम ऐश्वर्यों और राज्य की तुम स्वामिनी बन जाओगी। मैं और सारे लकावासी तुम्हारी सेवा मे तत्पर रहेगे। यह सारा भूमडल तुम्हारा हो जायगा। मेरे शौर्य को देवासुर जानते है। वे सब मुझसे हारे हुए हैं और मेरे सामने सिर झुकाते हैं।

"तुम्हारे लिए उपयुक्त वस्त्र और आभूषण मैं अभी भिजवाता हू। मेरे अत पुर की स्त्रिया तुम्हे सजा देगी। तुम्हे खूब सजी हुई देखना चाहता हूं। सज-धजकर मनचाहा दान-धर्म करो। तुम्हे सब-कुछ करने का अधिकार है। मेरी प्रजा और बधु-बाधव तुम्हारे आश्रय मे रहेगे। जगल मे भटकने-वाले राम को भूल जाओ। अब न उसके पास राज्य है, न धन है, न कोई पद है। उससे तुम्हे क्या सुख मिलनेवाला है। उससे तो राज्यलक्ष्मी और विजयलक्ष्मी दोनो ही रूठ गई है। पता नही, अब वह जिदा भी है या मर गया। उसे फिर से देखने की आशा छोड दो।

"गरुड जैसे साप को जोर से पकड लेता है, वैसे ही तुमने मेरे हृदय को जकड लिया है। उससे मै अपने को छुडा नही पा रहा हू। ऐसे मलिन वस्त्रो मे और आभूषणो के बिना भी तुम इतनी सुन्दर लग रही हो कि मेरा मन अपनी स्त्रियो पर से हट गया है। मेरे अत पुर मे हजारो युवतिया है, किंतु तुम्हे देखने के बाद मुझे वे बिलकुल अच्छी नही लगती है। उन सबसे तुम अपनी सेवा करवाओ, और मेरी रानी बन जाओ। तुम ही बताओ, राम किस प्रकार से मेरी बराबरी कर सकता है। तप मे, बल मे, कीर्ति मे और धन मे मै राम से कही अधिक हूं। भय छोड दो। हम दोनो दुनिया का चक्कर लगायेगे। खूब आराम से रहेगे। समुद्र-तट के वनो मे हम दोनो मस्त होकर विचरेंगे। सीते, मान जाओ, मेरी प्रार्थना ठुकराओ नही।"

इस प्रकार राक्षसेद्र रावण रामवल्लभा सीता के सामने गिडगिडाने लगा।

रावण जब बोलना समाप्त कर चुका तो सीता ने एक तिनका उठाकर अपने और रावण के बीच मे रख लिया। उसी की ओर देखा, तिरस्कारपूर्वक मुसकराते हुए वह बोली, "रावण, मेरे बारे मे बुरे विचार करना छोड़ दो। तुम बडा अधर्म कर रहे हो। अपनी स्त्रियों पर ही मन लगाओ। तुम्हारा कहना मैं कभी नही मानूगी। जानते हो कि मैं किस कुल मे पैदा हुई हू? किस कुल मे मेरा विवाह हुआ है? मेरे सामने ऐसे बुरे विचार प्रकट मत करो। वे कभी सफल नही होगे। अपने मन से इन दुर्विचारो को हटा दो।"

सीता ने उसकी तरफ से मुह फेर लिया और दूसरी तरफ देखने लगी। थोडी देर बाद फिर बोली, "मै दूसरे की पत्नी हू, मैं कभी तुम्हारी पत्नी नही हो सकती। धर्मभ्रष्ट मत हो। अधर्म-मार्ग पर मत चलो। मैंने देखा है कि तुम अपनी पत्नियो की कैसी अच्छी तरह रक्षा कर रहे हो। क्या दूसरे भी इसी तरह अपनी पत्नियो को बचाने की चेष्टा न करेगे ? परस्त्री पर कभी बुरी दृष्टि न डालो। दूसरे की स्त्री को चाहने का अधिकार किसी को भी नही हो सकता। तुम्हारे कई स्त्रिया है, जो तुम्हे खूब चाहती है। उनसे ही सतोष पाओ, अन्यथा अपमान और दु ख के पात्र बनोगे। इसमे कोई शक नही।

"क्या तुम्हारे पास भले और अच्छे उपदेश देनेवाले कोई नही है ? ऐसे बुरे काम मे तुम क्यो लगे ? ऐसा करके तुम अपने को और अपनी प्रजा दोनो को डुबो रहे हो। तुम राजा हो। राजा के लिए अपने मन को अकुश मे रखने की बडी आवश्यकता होती है, नही तो उसका देश, राजधानी, धन-दौलत, सब-कुछ नष्ट हो जाता है। तुम्हारे कारण सारी लका मिट जानेवाली है, इसमे कोई शका नही। अपने ऊपर जो उत्तरदायित्व है, उसे सोचकर मन से बुरे विचारो को हटा लो। प्रजा की रक्षा करो। अपने को भी बचाओ, नही तो जब तुम मरोगे, तुम्हारी प्रजा खुश होकर कहेगी, 'चलो, अच्छा हुआ, दुराचारी राजा मर गया।' तुम्हारा ऐश्वर्य मुझे नही चाहिए। उससे मुझे ललचाने का प्रयत्न छोड दो, उससे कोई लाभ नही। मैंने राम के साथ पाणिग्रहण किया है। उन्हें कभी नही छोडूगी। दूसरे के वश मे कभी न होऊगी। मैं दशरथ-नदन की प्रिय भार्या हू। उन्ही की रहूगी। जैसे सपूर्ण रूप से वेदाध्ययन कर लेनेवाले, व्रती ब्रह्मचारी के लिए ही वेद होता है, वैसे ही मैं राम के आधीन हू और रहूगी। किसी परपुरुष को मैं आख उठाकर भी नही देखूगी।

"मैं तुम्हें सीख देती हू। सुनो, अब भी मौका है। राम से क्षमा माग लो। उनके क्रोध से बचने का प्रयत्न करो। शरण मे आकर मागनेवालो को राम हमेशा अभयदान देते हैं। उसी मे तुम्हारी भलाई है। मैं तो अब भी उनके धनुष की टकार सुन रही हू। उससे तुम बच नही सकोगे। तुम्हारे बगल मे

ही काल खडा है। राम-लक्ष्मण के नामाकित बाण अब शीघ्र ही लका मे गिरकर इस नगर को भस्म कर देनेवाले है। तुम तो जानते ही हो कि जन-स्थान मे राक्षसो का क्या हाल हो गया था। तभी तो डर के मारे छिपकर तुम मुझे उठा लाये। उन दो भाइयो के सामने तुम टिक नही सकते। व्याघ्र के स्थान मे कही कुत्ता खडा हो सकता है ? सूर्य जैसे मिट्टी से पानी को चूस लेता है, राम-लक्ष्मण तुम्हारे प्राणो को उसी प्रकार चूस लेगे। तुम उनसे अपने को कही भी छिपा नही पाओगे। बिजली के गिरने से जैसे पेड जल जाता है, राम के बाण से अपना मरण निश्चय समझो।"

सीता के इन तीखे वचनो से रावण को बडा गुस्सा आया। फिर भी क्रोध को दबाकर वह बोला, "सीते, तुम्हारा पति एक ढोगी तापस है। उस पर तुम्हे इतना गर्व क्यो है ? तुम पर मेरा प्रेम है, इस कारण तुम्हारे कटु वचनो को क्षमा करता हू। तुम्हे मैं अब भी चाहता हू। इसी कारण अपने क्रोध को दबाकर चुप हू, नही तो तुम अब तक जिंदा नही रहती। मैंने तुम्हे जो अवधि दी है, उसमे अब दो ही महीने बाकी है। तब तक अपने विचार बदल लो और दो महीनो के बाद मेरी पत्नी बनकर मेरे अत पुर मे आ जाओ, नही तो मेरी पाकशाला मे तुम्हे ले जाया जायगा। वहां मेरे लिए भोजन बनानेवाले तुम्हारे शरीर का सुस्वादु भोजन तैयार कर देगे।"

मनुष्य का मास राक्षसो की खुराक होती थी इसलिए रावण की यह बात केवल धमकी न थी। उसके घर मे प्रतिदिन जो बात होती थी, उसी की चेतावनी उसने सीता को दी थी।

तब भी सीता डरी नही। रावण से बोली, "तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुम्हे समझानेवाला कोई नही मालूम होता है। राम के दड से तुम बचनेवाले नही हो। जगली हाथी के समान बलशाली राम यहा अवश्य आयेंगे, उनसे तुमने जान-बूझकर दुश्मनी मोल ली है। अपने को कुबेर का भाई बताते हो। अपनी गिनती शूरो मे करते हो। सेना भी तुम्हारी खूब बढी-चढी है। तब मुझे चोरी से उठा लाने का नीच कार्य तुमने क्यो किया ? ऐसा करते हुए तुम्हे शरम नही आई ?"

सीता के इन वचनो से रावण का गुस्सा बहुत बढ गया। लाल-लाल आखो से उसने सीता को देखा। जब उसकी छोटी रानी धान्यमालिनी ने देखा कि रावण का पारा बहुत चढ रहा है तो प्यार से उसका आलिगन करके बोली, "नाथ, आप इस तुच्छ मानुषी के लिए क्यो परेशान हो रहे हैं? इसका भाग्य ही खोटा है, तभी तो यह आपकी बाते मान नही रही है। कीडे-जैसी जरा-सी तो है। छोडिये इसे। चलिये अपने अत पुर मे।"

बडे प्रेम के साथ वहा से वह रावण को अदर ले गई। रावण भी हँसता हुआ उसके साथ चला गया। उसके पैरो के भार से भूमि डोलने लगी। जाते-जाते रावण राक्षसियो को आदेश देता गया कि वे सीता को किसी-न-किसी प्रकार से राजी करके ही माने।

रावण के जाने के बाद सभी राक्षसिया सीता को घेरकर बैठ गईं और उन्हे डराने-धमकाने लगी। रावण के सामने तो सीता डरी न थी, किंतु इन भयकर आकार की राक्षसियो को देखकर भय से काप उठी। एक ने सीता को धमकाया, "रावण को तूने क्या समझ रखा है? वह बडे ऊचे कुल का है। उसके समान वीर दूसरा कोई नही। रावण जब तुझसे प्रेम की माग करता है, तो तू कैसी मूर्ख है, कि उससे इन्कार करती है। वह स्वय ब्रह्मा का प्रपौत्र है, ब्रह्मा का पुत्र पुलस्त्य था। पुलस्त्य का पौत्र रावण है। रावण जैसे साहसी के प्रति उदासीनता न दिखा।"

दूसरी ने भी रावण का गुणगान करके सीता को सलाह दी कि रावण की बात मान ले। तीसरी ने कहा, "राक्षसेंद्र के सामने सारे देवगण डर से कापते रहते हैं। अरी पगली, जब वह चाहता है कि तू उसकी पत्नी बने, तो उससे बच थोड़े ही सकेगी!"

चौथी ने कहा, "अपनी सभी रानियो का तिरस्कार करके रावण तुझे अपनी पटरानी बनाना चाहता है। तुझे वह सबसे अधिक सुदरी समझ रहा है। तो पागल मत बन। 'हा' कह दे।"

यो एक के बाद एक, वे सीता के सामने रावण का गुणगान करती रही। उन्होने कहा, "अगर तू रावण की माग स्वीकार नही करेगी तो

अवश्य ही मार डाली जायगी।" अत मे सब एक साथ बोली, "हमे जो कुछ कहना था, कह दिया, अब तेरी मर्जी। जान-बूझकर मरना हो तो भले मर।"

: ६२ :

'बुद्धिमत्तां वरिष्ठ'

सीता अकेली कैद मे थी। वह बहुत ही साहसी थी। फिर भी कई मास कारावास मे रहने तथा हमेशा डराये-धमकाये जाने से अब वह कुछ हताश-सी हो रही थी। उन्होंने बडी प्रतीक्षा की कि राम-लक्ष्मण उन्हे ढूढते हुए वहा पहुच जायगे, पर न तो राम-लक्ष्मण ही आये, न कोई दूसरा ही वहा ऐसा था, जो उन्हे दो-चार आश्वासन के बोल सुनाकर धीरज दिलाने का प्रयत्न करता। ऐसी स्थिति मे सीता का निराश हो जाना स्वाभाविक था।

राक्षसिया उन्हे कुछ-न-कुछ कहकर सताती ही गई, "क्या अब भी हमारी बात नही मानेगी ? तू तो हद से ज्यादा मूर्ख है। मनुष्य-जाति के लोग ऐसे ही मूर्ख होते है। एक तुच्छ मनुष्य की याद मे ऐसे बडे भाग्य को ठुकरा रही है। रावण के अत.पुर का अधिकार भला किसी ऐसे-वैसे को मिल सकता है! एक निकम्मे दरिद्र आदमी के ध्यान में पडी है। उसे फिर से पाने की तेरी आशा व्यर्थ है। उसे छोड दे। रावण की बात मान जा। उसकी अतुल धन-दौलत का भोग कर।"

राक्षसियो की ये बाते सुनकर सीता बडे जोर से रोने लगी। बोली, "ऐसे पाप-वचन मुझे मत सुनाओ। मैं कभी तुम लोगो की बात नही मानूगी। राम को तुम लोग गरीब और देश से निकाला हुआ बताती हो। यह ठीक है, पर मनुष्य-जाति की स्त्रियां केवल इन्हीं कारणो से पति का त्याग नही कर देती। राक्षसेंद्र एक मानुष-स्त्री को क्यो चाहता है ? यह

अनुचित बात है, असभव है। जैसे सूर्य के साथ-साथ उसकी प्रभा चलती रहती है, वैसे ही मैं भी अपने पति श्रीराम से सदा सलग्न हू। जैसे शची देवेंद्र के साथ और अरुधती वसिष्ठ के साथ सदा रहती है, मै भी सदा राम के ध्यान मे रहूगी।"

राक्षसियो ने सोचा कि इस स्त्री के साथ प्यार से बोलने से कोई लाभ नही। इसे अब डराना चाहिए। एक बोली, "मुझे गर्भ है। मनुष्य-मास खाने की कब से इच्छा हो रही है। मेरा तो इस मानुषी को चीरकर इसका कलेजा चबा जाने को मन कर रहा है।"

दूसरी ने कहा, "चलो, इसका गला घोटकर मार डालती है। महाराज रावण से कह देगी कि वह दु ख के कारण मर गई। रावण इसे भूलकर जरा चैन तो पायेगे।"

तीसरी ने कहा, "इसका कलेजा बहुत ही स्वादिष्ट होगा।"

चौथी ने कहा, "चलो, इसे अभी मार डालती हैं। सब मिलकर इसका मास खायेगी। देखो तो, कौन है उधर? सुनो, यहा आओ। कुछ चटनी और अन्य व्यजन ले आओ। साथ ही शराब का घडा भी लेती आना। इसका मास खाकर फिर खूब शराब पियेगी। फिर देवी निकुभिला के मदिर मे जाकर नाचेंगी और गायेगी।"

राक्षसियो के क्रूर रूप और डरावनी बातो से सीता विलख-बिलखकर रोने लगी। बडी धीरजवाली होने पर भी ऐसी असहाय स्थिति मे अपने को पाकर वह एक बालक की तरह क्रदन करने लगी। तब भी राम का ध्यान उन्होने एक क्षण के लिए भी न छोडा और अपनी बुद्धि को स्थिर रखा।

'राम, तुमने चौदह हजार राक्षसो को जनस्थान मे निर्मूल कर दिया था। मुझे छुडाने अभी तक क्यो नही आये? दडकारण्य मे भयकर राक्षसो को तुम दोनों भाइयो ने मार डाला था। अब क्यो चुप हो? शायद तुम्हे मालूम नही कि मैं कहा पर हू? मालूम होता तो अब तक यहा पहुचे बिना कभी न रहते। गिद्धराज जटायु को रावण ने मार डाला। यदि वह जीवित होते तो अवश्य तुम्हे बता देते कि मुझे रावण उठा ले गया है।

गरीब पक्षी मेरे कारण राक्षस के साथ घोर युद्ध करके मर गया। राम को अब तक पता भी न चला होगा कि मेरा क्या हुआ ?

'किंतु एक-न-एक दिन राम अवश्य आयेगे। यह लका और सारे राक्षस मर-मिटनेवाले है। इस नगरी के घर-घर मे स्त्रिया विधवा होकर रोनेवाली है।'

अपने मन मे इस प्रकार से विचार करती हुई सीता कुछ शात हुईं। तुरत ही उनके मन मे और विचार आने लगे, 'राम शायद मेरे विरह से मर न गये हो। यह भी बिलकुल सभव है, अन्यथा वह इतने दिनो तक चुप कैसे रहते ? राम, तुम बडे भाग्यशाली हो। देवो के साथ रहने चले गये। मैं बडी पापिन हू, जो अभी तक जिदा हू। मेरा हृदय बहुत कठोर है, इसी से अभी तक मरी नही।

'राम ने कही सन्यास तो नही ले लिया ? हो सकता है, दोनो भाइयों ने मुझे याद करना ही छोड दिया हो। पर नही, वीर पुरुष अपने कर्तव्य को पूरा किये बिना सन्यास-जीवन कभी नही ग्रहण करते। राम को अभी तक यह पता नही चला होगा कि मै कहा पर हू। राम का जो मुझ पर प्रेम था, वह कही समाप्त तो नही हो गया ? कहते हैं कि आख के सामने न रहने पर वस्तु का स्मरण भी जाता रहता है।

'पर नही, मेरा यह सोचना ठीक नही। मेरे राम मुझे कभी नही भूलेगे। मैंने क्या पाप किया जो वह मुझे भूल जाय ?

'कही ऐसा तो नही हुआ कि किसी छल-कपट से रावण ने दोनो राज-कुमारो को मरवा डाला हो ?'

जनकनदिनी सीता इस प्रकार तरह-तरह की आशकाए करने लगी। उन्हे अब जीवित रहने मे कोई सार न लगा। शोक का भार सहना अब उन्हें असह्य लगने लगा। उन्होने प्राण-त्याग करने का निश्चय कर लिया। उप-वन के शिशुपा-वृक्ष की डाल पर अपने लबे केशों की फांसी लगाने का निश्चय कर लिया। अपने विषाद से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय उन्हे नहीं दिखाई दिया।

राक्षसियो की समझ मे नही आया कि सीता के मन मे परिवर्तन किस प्रकार लाया जाय। उनमे से कुछ तो रावण के पास यह कहने के लिए चली गई कि उनसे काम नही सध सकता। कुछ वहा टिकी रही और सीता को धमकाती रही।

तब उनमे से त्रिजटा नाम की राक्षसी ने दूसरी अन्य निशाचरियो को डाटकर कहा, "अरी बेवकूफ राक्षसियो, तुम लोग यह क्या कर रही हो ? मुझे तो लगता है कि राक्षस-कुल का नाश जल्दी ही होनेवाला है। आज मैने एक भयानक सपना देखा है, उसे सुन लो।

"मैंने देखा है कि सीता का पति राम सूर्य के समान चमकता हुआ लका मे आ पहुचा है, और रावण को यमलोक पहुचाकर सीता को हाथी पर बिठाकर वापस ले गया है। मैंने अपने सपने मे रावण तथा सारे राक्षस-कुल को मैले-कुचैले कपडे पहने यमदेव द्वारा खीचे जाते भी देखा है।

"अत' अब तुम सीता को सताना छोड दो। यह बडी पतिव्रता है। इसके रोष के बजाय इससे आशीर्वाद की माग करो।"

जब त्रिजटा राक्षसियो को अपने स्वप्न का हाल बता रही थी, सीता को, जो अपने प्राणत्याग करने का सकल्प कर रही थी, अच्छे-अच्छे शकुन दिखाई देने लगे। उनके मगल सूचक अग फडकने लगे।

० ० ०

पेड पर बैठा हुआ हनुमान यह सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा कि अब आगे क्या किया जाय। पाठक कह सकते हैं कि वह लका मे तो पहुच गया था। सीता को भी देख लिया था, तब फिर बहुत सोचने-विचारने की क्या आवश्यकता रही होगी ? किंतु उसका काम जितना हम लोग सोचते है, उतना सरल न था। अब आगे देखें कि हनुमान क्या करता है।

मारुति सोचने लगा, 'सबसे कठिन काम समुद्र पार करने का था। वह तो मैंने कर डाला। सीता को भी ढूढ निकाला। राक्षसो का नगर, उनकी सुरक्षा की व्यवस्था आदि को भी अब मैं जान गया हू। मैंने एक जासूस का काम तो कर डाला। यह सब मैं राम के पास जाकर तुरत बता

सकता हू, किंतु यहा का क्या हाल होगा ? राम-लक्ष्मण वानर-सेना के साथ यहा पहुचे, उससे पहले सीता मर जायगी, तो सारा काम बिगड जायगा। मुझे सीता से मिलकर उनको आश्वासन और धैर्य दिये बिना वापस नही जाना चाहिए। सीता से मिले बिना और उनसे बात किये बिना राम के पास जाऊगा तो राम को भी सतोष नही होगा। तब यह सोचना चाहिए कि सीता से बात कैसे की जाय ?'

आजनेय स्तोत्रमाला मे उसे 'बुद्धिमत्ता वरिष्ठ' कहा गया है, यह बिलकुल ठीक है।

हनुमान सोचने लगा, 'वैदेही से किस भाषा मे बात करू ? कैसा रूप धरकर उनके सामने जाऊ ? मुझे देखकर सीता सदेह कर सकती है कि रावण ही बदर-रूप मे न आ गया हो। वह चिल्ला उठेगी। सोती राक्ष-सिया आवाज सुनकर उठ पडेगी और मुझे देख लेगी। मुझे दुश्मन का दूत जानकर मरवाने के लिए राक्षसो को बुला लायेगी। घोर युद्ध छिड जायगा। तब मै भी चुप न रह सकूगा। बहुतो को मार डालूगा, किंतु उससे सीता को छुडाने के काम मे रुकावट पैदा हो जायगी। मुझे पकडकर ये लोग कैद मे डाल देगे तो राम के पास सदेश कौन ले जायगा ? वैसे मुझे कैद करना आसान नही है, फिर भी मै अधिक घायल हो गया तो शायद लौटने मे समुद्र पार न कर पाऊगा। इसलिए मुझे एक-एक कदम सोच-समझकर उठाना होगा। राम और सुग्रीव मेरे ही भरोसे पर हैं। मुझे जल्दबाजी मे कोई गलती न कर बैठनी चाहिए। सीता के मन मे डर पैदा किये बिना मुझे उनके साथ बात करनी होगी। उनके मन मे यह सदेह न होना चाहिए कि मैं रावण हू या उसका कोई सहायक हू। उसके लिए क्या उपाय सोचा जाय ?

'मैं बहुत ही धीमी आवाज मे, सीता ही सुन सके, ऐसे स्वर से, राम के गुण और उनकी कथा सुनाने लगूगा। उसे सुनकर सीता के मन मे आनद उत्पन्न होगा, वह मुझ पर विश्वास करेगी और तब कार्य सफल होगा।'

यो 'बुद्धिमत्ता वरिष्ठ' हनुमान सोचकर पेड मे छिपे-छिपे ही बहुत धीमी आवाज मे राम-नाम का जप करने लगा।

: ६३ :

सीता को आश्वासन

तरु-पल्लवो के बीच छिपा हुआ हनुमान अपने-आप ही बहुत धीमी आवाज मे, जिसे सिवा सीता के और कोई सुन न सके, रामचद्र के बारे मे कहने लगा, "राजा दशरथ कोशल देश के राजा थे। उनकी चतुरग सेना बहुत बडी थी। पुण्यशील दशरथ सत्य और धर्म की रक्षा मे तत्पर, यशस्वी तथा सभी राजाओ मे अग्रगण्य थे। ऋषियो के समान नियमशील थे। देवेद्र के समान पराक्रमी थे। वह किसी से न द्वेष करते थे, न किसी को उन्होने कभी सताया था। इक्ष्वाकु-कुल-सिंह चक्रवर्ती, सत्यपरायण दशरथ के चार पुत्रो मे सबसे बडे राम है। बुद्धिमान, धृतिमान, धनुर्वेद मे पारगत श्रीराम अयोध्या की प्रजा पर बहुत स्नेह रखते थे। प्रजा भी राम को बहुत चाहती थी। धर्मनिष्ठ राम राजगद्दी के सभी दृष्टि से अधिकारी थे। किंतु उन्हे अपने पिता का वचन पालन करने के लिए अपना राज्य छोड देना पडा और जगल मे वास करना पडा। उनके साथ उनकी पतिव्रता पत्नी और छोटा भाई लक्ष्मण भी थे। वनवास के समय राम ने अनेक क्रूर राक्षसो को हराकर ऋषियो की रक्षा की। खर और दूषण नाम के महाबली राक्षसो का वध कर डाला। उनकी सेना मे से शायद ही कोई बचा होगा। उसका बदला लेने के लिए रावण ने एक राक्षस को माया-मृग के वेश मे उन लोगो के पास भेजा। सीता का मन लुभाया। जब राम और लक्ष्मण दोनो पर्णशाला छोडकर चले गये, तब बलात् सीता को वह उठा ले गया। राम और लक्ष्मण सीता को ढूढते हुए निकले। राम ने सुग्रीव नामक वानरराज से मित्रता की। बालि को हराकर सुग्रीव को राज्य दिलाया। सुग्रीव के

आदेश से हजारो वानर-वीर सारे भूमडल मे सीता को खोजने लगे। वे वानर असाधारण शक्तिवाले, नाना प्रकार के रूप धर सकनेवाले थे। उनमे से एक मै हू। सपाति गिद्ध ने मुझे कुछ बाते बताई थी। उससे यहा के बारे मे जानकारी पाकर, मै शतयोजन विस्तीर्ण समुद्र को लाघकर, यहा पहुचा हूं। श्रीरामचद्र ने देवी के जो रूप और लक्षण मुझे बताये थे, वे सब मै आप मे पा रहा हू।'

इतना कहकर वायुपुत्र चुप हो गये। इन मधुर वचनो को सुनकर देवी सीता विस्मृत हुईं, अति प्रसन्न हुईं, चारो तरफ देखा कि यह कौन बोल रहा है। उन्हे आश्चर्य हुआ। वह जानना चाहती थी कि ऐसी शुद्ध सस्कृत भाषा मे कौन बोल रहा है। वहा कोई मनुष्य दिखाई न दिया। सीता ने एक छोटे-से बदर को पेड की डाली मे छिपा देखा। वानर बडा सुदर था। उसके चेहरे पर बुद्धि का तेज था। हनुमान बाल-सूर्य की तरह तेजयुक्त था। उस पर जब जगदबा सीता की शीतल दृष्टि पडी, तो वह आनद से पुलकित हो उठा।

उस दृश्य की हम भी कल्पना करके कृतार्थ होने का प्रयत्न करे। उससे हमारा हृदय पावन होकर हम भव-भय से मुक्त होगे। क्षीरसागर छोड़कर भगवान नारायण हमारे हृदय मे वास करने के लिए खुशी के साथ आ जायगे। भक्तो का पावन हृदय ही वास्तव मे क्षीरसागर है।

० ० ०

देवी जानकी ने हनुमान को देखा। वह विचार मे पड गई। सोचने लगी, 'मैने जो सुना था, जो देख रही हू, वह सब कही स्वप्न तो नही है। जिस बारे मे सदा सोचती रहती हू, उसी का मैं यह स्वप्न तो नही देखती हू! मेरे प्राणनाथ श्रीराम की बाते ही सदा मेरे मन मे आती रहती है। इसलिए मुझे भ्रम ही हुआ है या कोई मुझे उनकी कथा ही सुना रहा है? इसमे कोई शक नही कि मैंने स्वप्न ही देखा। कहते है कि स्वप्न में बंदर को देखना अच्छा नही होता। बधु-बाधवो की हानि होती है। मेरे राम, तुम कुशल से रहो! लक्ष्मण भैया, तुम अच्छे हो न? मिथिला मे मेरे माता-पिता

सब कुशल से हो। पर नही, यह स्वप्न नही मालूम होता। बदर स्पष्ट दिखाई दे रहा है और मैं सोई भी नही हू। सो जाने पर ही तो स्वप्न की सभावना हो सकती है। यह सचमुच की बात है, स्वप्न नही। हे देवगण, क्या सचमुच यह वानर मेरे राम के पास से आया है? तुम लोग मुझ पर दया करो। ऐसा ही हो कि यह मेरे नाथ का दूत हो। हे वाचस्पति, हे अग्नि, हे स्वयभू, तुम सबको मेरा नमस्कार। मेरी रक्षा करो।'

इधर सीता के दर्शन से प्रफुल्लित हनुमान पेड से नीचे उतर आया। देवी को हाथ जोडकर प्रणाम किया और बोला, "मा, आपका तेजोमय रूप देखकर मुझे शका हो रही है कि आप कोई देवकन्या तो नही है? या आप कोई नागकन्या है? आप चद्रमा से बिछुडी रोहिणी तो नही है? वसिष्ठ से किसी कारण से विलग हुई अरुधती तो नही है? ध्यान से देखने पर तो आप मानवी ही मालूम होती है। अवश्य ही आप एक राजकुमारी है। आप के नयन-कमलो से आसू क्यो निकल रहे है? अत्यत उदास एव दुखी होकर पेड के सहारे आप क्यो खडी है? मुझे अपना परिचय देने की कृपा करे। क्या आप ही राम-वल्लभा सीता हैं, जिनका रावण ने अपहरण किया? क्या मुझे सचमुच ही देवी सीता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है? मुझे बताकर अनुग्रहीत करे।" हनुमान ने नम्रतापूर्वक मधुरता से पूछा।

सीता के हर्ष का ठिकाना न रहा। बोली, "भैया, मैं सीता ही हू। विदेह राजा की पुत्री, राम की सहधर्मिणी। बारह वर्ष मैने अयोध्या मे अपने पति के साथ बडे आराम से बिताये। जब बारह वर्ष बीत गये, तब मेरे स्वसुर सम्राट् दशरथ ने मेरे पति के युवराजाभिषेक की आयोजना की। सब तैयारिया हो चुकी थी, पर राजा की सबसे छोटी रानी ने हठ किया कि राज्य उसके बेटे भरत को दिया जाय और मेरे पति को चौदह वर्ष वनवास की आज्ञा दी जाय। उसने अपनी माग स्वीकार न किये जाने पर आत्म-हत्या कर डालने की धमकी दी। राजा ने कभी उसे दो वर मागने का वचन दे रखा था। इसलिए उन्हे विवश होकर राम को वन भेजना पडा। मेरे पति ने बड़ी प्रसन्नता के साथ पिता की आज्ञा मान ली। वह जब वन

जाने की तैयारी करने लगे तब मैंने कहा कि, 'मै भी आपके साथ चलूगी।' मैं अपने पति से एक क्षण के लिए भी अलग क्यो रहू ? छोटा भाई लक्ष्मण तो मुझसे भी पहले भाई के साथ चलने के लिए तैयार हो चुका था। हम तीनो वन के लिए रवाना हुए। वन मे घूम-फिरकर हम दडकारण्य मे रहने लगे। वहा आराम और शाति से हमारे दिन बीत रहे थे कि रावण ने एक दिन छल-कपट और जोर-जबर्दस्ती से मुझे पर्णशाला से हर लिया और इस अशोक-वाटिका मे कैद मे डाल दिया। उसने मुझे बारह महीने की अवधि दी है। उसमे अब दो महीने ही बाकी रह गये है। बस, समझ लो कि दो महीने से अधिक मेरे जीवित रहने की अब सभावना नही है।" कहते-कहते सीता का गला भर आया।

० ० ०

इस प्रकार एक बार हनुमान के मुह से और दूसरी बार स्वय सीता के मुह से दो छोटे अध्यायो मे पूर्वकथा का वर्णन कवि ने कर दिया है। इसे हम सक्षिप्त रामायण कह सकते है। वायुपुत्र हनुमान और सीता माता के मुख से हमे रामायण सुनने का सौभाग्य कवि दिलाते है। जैसे त्रिविक्रम ने अपने छोटे-छोटे तीन चरणो मे सारी दुनिया को नाप लिया था, और उससे महाबली उद्धार पाया था, उसी प्रकार सारी रामायण की पूर्व-कथा को बहुत ही थोडे श्लोको मे सपुटित करके देवी जानकी ने हनुमान को बताया। हम उसे पढे और अपने हृदय से अहकारादि दुर्गुणो को दूर करके प्रभु की शरण ले।

० ० ०

जब वैदेही ने अपने मुह से हनुमान को बताया कि अब दो महीने से अधिक समय मैं नही जी सकूगी, तो मारुति देवी सीता को ढाढस देने लगे, "पुरुषोत्तम, वीरो मे श्रेष्ठ, सम्राट् के सुपुत्र श्रीराम ने आपको अपना कुशल समाचार भेजा है। आपकी स्थिति का ही सदा विचार करनेवाले दुखी भाई लक्ष्मण ने आपको अपना प्रणाम भेजा है।"

अपने पति और देवर के नाम और उनका सदेश सुनकर सीता का

सारा शरीर पुलकायमान हो उठा। बोली, "मै यह कैसी शातिप्रद बाते सुन रही हू। तभी तो लोग कहते है कि प्राण रहे तब तक आशा नही छोडनी चाहिए। कभी भी आशा सफल हो सकती है। आज मैं समझी कि यह बात बिलकुल सच है।"

हनुमान और सीता दोनो मे, जो आज तक बिलकुल एक-दूसरे से अपरिचित थे, परस्पर स्नेह और सद्भावना पैदा हो गई। हनुमान बहुत ही प्रसन्न था। उसने सोचा कि जानकी के और पास जाकर उसे अच्छी तरह से आश्वासन दू। वह सीता के एकदम निकट जाने लगा, लेकिन सीता को एक बार राक्षसो के माया-रूप का बडा बुरा अनुभव हो चुका था। इसलिए हनुमान को अपने पास आते देखकर वह चौक पडी। उन्हे फिर डर और सदेह होने लगा। अब तक वह पेड के सहारे खडी थी। अब वह दोनो हाथो से अपने चेहरे को ढककर एक ओर बैठ गई। यह देख हनुमान विनय-पूर्वक अजलिबद्ध होकर सामने खडा हो गया।

सीता डरकर बोली, "अब मै समझी, तू रावण है। एक बार सन्यासी के वेश मे आकर मुझे बहकाया। अब दूसरे वेश मे आया है। मैं कहती हू, तेरा भला नही होनेवाला। तू मेरे सामने से हट जा। उपवास और दु ख से मेरा शरीर और मन दोनो बहुत ही दुर्बल अवस्था मे है। मुझे तग करेगा तो तुझे बडा पाप लगेगा। चला जा यहा से!"

सीता यो बोली तो पर जरा सोचने भी लगी, 'यह प्राणी शत्रु-पक्ष का दीखता नही, क्योकि इसे देखकर मेरे मन मे एक प्रकार का वात्सल्य और श्रद्धा का भाव पैदा होता है। शायद इस पर शका करना उचित नही है।' यह सोचकर फिर बोली, "हे वानर, क्या तू सचमुच राम का दूत है? अगर यह सही है तो तेरा मगल हो। राम के बारे मे मुझे और भी बाते सुना। मेरा हृदय शात कर।"

सीता को फिर सदेह होने लगा कि वह कही स्वप्न तो नही देख रही हैं या पागल तो नही हो गई? मन-ही-मन बोली, 'नही, मैं अच्छी तरह देख रही हू, सोचती भी हूं। पागल भी नही दीखती, पर यह वानर शतयोजन

विस्तृत समुद्र पार करके यहा कैसे आया होगा । जरूर झूठ बोलता है । यह रावण ही है।' यो सीता के मन मे विचार आने लगे। उन्होने हनुमान की ओर आख उठाकर नही देखा ।

हनुमान ने देखा कि अब भी सीता के मन मे भय और शका है। यह स्वाभाविक ही था । वह विचार करने लगा कि सीता के मन मे विश्वास लाने के लिए क्या किया जाय। पुन राम की स्तुति करने का हनुमान ने निश्चय किया। उसने देखा था कि राम का वर्णन सुनने से सीता अपना दु ख भूलकर प्रसन्नचित्त हो गई थी। वह फिर श्रीराम की स्तुति करने लगा—

"श्रीराम आदित्य के समान तेजस्वी है। चद्रमा के समान सर्वजनप्रिय है। देवताओ मे कुबेर की तरह, पृथ्वी के राजाओ मे अग्रगण्य समझे जाते है। महाविष्णु के समान यशस्वी और पराक्रमी पुरुष है । वृहस्पति के समान धीमान, सत्यवादी और मृदु वचन बोलनेवाले है। मन्मथ के समान रूपवान है। जहा और जिस पर क्रोध करना उचित है, उस पर वह क्रुद्ध भी होते है। बडे न्यायी पुरुष है। मैं उन्ही श्रीराम का दूत हू। रावण ने माया-मृग द्वारा बहकाकर आपको राम से अलग करवाया । जब आप अकेली पड गई तो वह आपका हरण करके भाग निकला। इस अत्याचार का फल रावण को अवश्य ही मिलनेवाला है। यह सब आप अपनी आखो से देखेगी। राम-लक्ष्मण के बाणो से लकापुरी के जलने मे अब देर नही रही। राक्षस-समूह समूल नष्ट हो जानेवाला है। मैं राम के पास से आया हू। आपका सदेशा श्रीराम को सुनाऊगा। राम की ओर से आपमे विनयपूर्वक मै कुशल-प्रश्न कर रहा हू। लक्ष्मण की ओर से मै आपको प्रणाम कर रहा हू। वानरराज सुग्रीव का प्रतिनिधि बनकर आपको नमस्कार कर रहा हू। राम-लक्ष्मण-सुग्रीव को सदा आपका ध्यान रहता है। मेरा अहोभाग्य है कि आपको मैने जीवित पाया। अब शीघ्र ही राम-लक्ष्मण और वानर-राज सुग्रीव सेना के साथ यहा आयेगे। सुग्रीव का मैं मुख्य मत्री हूं। मेरा नाम हनुमान है। समुद्र को लाघकर मैंने लका मे जो पैर रखा है, बस यही समझ लीजिये कि वह रावण के सिर पर रखा है। देवि, मुझ पर शका

न करे। मै श्रीराम का दूत हू।" इस प्रकार बोलते-बोलते भावावेश के कारण हनुमान की आखे गीली हो गई।

हनुमान की बातो से सीता का डर मिट गया। उनके मन मे अब उत्साह और धैर्य आ गया। बोली, "हे वानर, मैने थोडी देर के लिए तुम्हारे ऊपर अविश्वास किया, उसके लिए मुझे क्षमा करना। बुरी तरह धोखा दिये जाने के कारण मै बहुत ही डरने लगी हू। हे मित्र, तुम्हारा राम से मिलना कैसे हुआ? राजकुमार राम की वानरो से मित्रता किस प्रकार हुई? इसका सारा हाल मुझे विस्तार से बताओ।"

हनुमान ने सीता को राम-लक्ष्मण के गुण-विशेषो का, रूप-लावण्य का विस्तार से वर्णन किया ताकि सीता के मन से शका बिलकुल मिट जाय। राम-सुग्रीव-मैत्री की कहानी भी सुनाई। किस प्रकार उनका पहला परिचय हुआ, कैसे मित्रता बढी, बालि का वध, सुग्रीव का अभिषेक, सीता के आभूषणो का रामचद्र को बताया जाना, उन्हे देखकर राम का शोक-विह्वल होना, वर्षा ऋतु के बाद वानरो द्वारा सीता की खोज, दक्षिण-तट पर अगदादि का निराश होकर प्रायोपवेशन करने का सकल्प, सपाति द्वारा जानकारी प्राप्त होना, अपना समुद्र लाघना, रावण के अन्त पुर मे उनको खोजना आदि सारा हाल सीता को हनुमान ने विस्तार से और अच्छी तरह से सुनाया। यह सब कहने के बाद उसने वैदेही को श्रीराम की दी हुई राम-नामाकित मुद्रिका दी।

अमित आनद के साथ सीता ने उस अगूठी को आखो से लगाकर प्यार किया। अब उनके मन मे हनुमान के प्रति तनिक भी शका न रही। उन्हे पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि यह वानर सचमुच श्रीराम का दूत है। उन्हे बडा पछतावा हुआ कि उन्होने प्रारभ मे क्यो उस पर अविश्वास किया।

हनुमान ने सीता से अपने जन्म, माता-पिता और बल-पराक्रम आदि का वर्णन किया और बोला, "मै अपनी बडाई करने के लिए यह सब नही बता रहा, आपके मन मे हिम्मत और आशा उत्पन्न हो, इसलिए कह रहा हू। अब बहुत शीघ्र ही वानर-सेना के साथ राम-लक्ष्मण यहा आकर रावण का

वध करनेवाले है। बस मेरे वापस पहुचकर राम को खबर देने की ही देरी है।"

इसके बाद हनुमान ने सीता को राम की दिनचर्या का, उनकी विरह-वेदना का बहुत ही करुण वर्णन किया, जिसे सुनकर देवी अपना दु ख भूल गई और श्रीराम की व्यथा से दुखी हो उठी।

६४ :
हनुमान की विदाई

सीता हनुमान से कहने लगी, "प्रिय मारुति, तुमसे सारी बाते सुन लेने पर मुझ हँसना और रोना एक साथ आ रहा है। समझ मे नही आता है कि अब क्या करू। ऐसा मालूम हो रहा है कि मै विष और अमृत दोनो एक साथ पी रही हू। राम मुझे भूल नही गये, मुझे ढूढने मे लगे है, यह सोच्-कर आनद का अनुभव हो रहा है, किंतु उनके दुःख से मेरा मन भी उसी प्रकार रो रहा है।"

अपने मन की बाते सही रूप मे हनुमान को बताकर सीता को कुछ समाधान हुआ। हरेक मनुष्य जीवन मे सुख और दु ख का निरतर अनुभव करता है। सीता बोली, "मित्र, मालूम होता है कि दुनिया मे हर कोई सुख और दु ख के बधन मे कस जाता है। राम, लक्ष्मण और मैं अब इसका अनुभव कर रहे है। बवडर मे झोके खानेवाली नाव की तरह मेरे प्राणनाथ आकुल-व्याकुल हो रहे होगे। हे प्रिय वानर, मेरे स्वामी यहा कब तक आ जायगे ? कब इन सब क्रूर राक्षसो को हरायेगे ? मुझे रावण ने जो समय दिया है, तब तक वह न आ पाये तो क्या होगा ? अब दो ही महीने बाकी रह गए है। रावण के विभीषण नाम का एक भाई है। उसने रावण को बहुतेरा समझाया। मुझे वापस राम के पास छोड आने का सदुपदेश दिया। चेतावनी भी दी कि ऐसा न करने पर सारे राक्षस मारे जायगे। पर उसका

समझाना व्यर्थ हुआ। तुमसे मिलकर अब मेरी अतरात्मा मे साहस का अनुभव हो रहा है। मेरे मन मे किसी प्रकार की भी बुरी कल्पना नही रही। मुझे तो साफ लगता है कि अब रावण के विनाश का समय समीप आ गया है।"

सीता बोलती गई, पर उनकी आखो से आसुओ की झडी रुकती नही थी। हनुमान से यह देखा न गया। वह बोला, "मा जानकी, आप तनिक भी चिता न करे। मै जल्दी ही श्रीराम को यहा लाऊगा। वह बडी भारी सेना के साथ लका मे आयेगे। यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं कहता हू कि अभी मेरी पीठ पर बैठ जाइए। मै बडी आसानी से आपको समुद्र पार करा के राम के पास पहुचा दूगा। उसके लिए पर्याप्त शक्ति मेरे अदर है। जैसे अग्नि इद्र को हवि पहुचाता है, मै आपको ले जाकर श्रीरामचद्र को समर्पित करूगा। हे पुण्यशीले, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दे तो मैं आज ही आपको श्रीराम के पास पहुचा सकता हू। अनुज-सहित श्रीराम के आज ही आप दर्शन कर सकेगी। मेरे बल के बारे मे शका न करे। चाहू तो मैं इस सारी लका को हाथ से उठाकर राम के चरणो मे रख सकता हू। चलिए, मेरे कधो पर बैठ जाइये। मैं अभी आपको ले चलता हू। जैसे रोहिणी अपने कात चद्र के पास पहुच जाती है, उसी प्रकार आप अपने नाथ के पास पहुच जायगी। यह आप स्वय देखेगी।"

हनुमान बडे उत्साह के साथ अपनी बात कहता गया। सीता के विस्मय का पार न रहा। उसने सोचा कि यह नन्हा-सा वानर समुद्र को कैसे लाघ सका होगा। तब सीता के मन मे विश्वास पैदा करने के लिए हनुमान पेड के चबूतरे से, जहा पर वह इतनी देर से खडा था, नीचे उतरा और अपने शरीर को पर्वताकार बढाता गया। सीता उसे देखकर बडी प्रसन्न हुई। बोली, "अब मैने तुम्हारी शक्ति पहचानी। फिर भी मैं सोचती हू कि मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नही रहेगा। रास्ते मे राक्षस तुम्हे रोकेगे। तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेगे। शस्त्रो को तुम्हारे ऊपर फेकेगे। तुम मेरी चिता करने लगोगे। उन राक्षसो से युद्ध करने मे तुम्हारा ध्यान बट जायगा। चाहे कितना भी बल अपने मे हो तो भी युद्ध मे कौन जीतेगा, यह कहना मुश्किल

है। यदि तुम्हे कुछ हो जाय तो मै क्या करूगी। जब तुम राक्षसो के साथ युद्ध कर रहे होगे तब मैं किस प्रकार निश्चित तुम्हारी पीठ पर बैठी रह सकती हू ? मैं डर के मारे समुद्र मे भी गिर सकती हू। इन सब बातो को सोचकर मुझे तो यह ठीक नही लगता कि मै तुम्हारे साथ इसी समय चल पड़ू। तुम चुपके-से मुझे ले चलोगे तो श्रीराम के पराक्रम को कौन देख पायगा ? क्षत्रिय-कुल का गौरव तो इसी मे है कि शत्रु का सामना करके लडे और विजयी हो। रावण मुझे चोरी से ले आया है। मै भी यहा से चोरी से निकल जाऊ, भैया, मुझे यह बात पसद नही आ रही है। तुम राम-लक्ष्मण के पास अकेले ही जाओ। मेरे समाचार सुनाना और उन्हे यहा ले आना। अपनी वानर-सेना साथ मे लाना। रावण के साथ भयकर युद्ध होने दो। मुझे जरा भी शक नही कि हमारा ही पक्ष जीतेगा। पापी राक्षसराज और उसके साथी शीघ्र ही यमलोक पहुचेंगे। मेरे स्वामी के बाण प्रलय-काल के सूर्य के समान राक्षस-समूह को नष्ट करनेवाले है।"

हनुमान सीता की बात मान गया। उसने सीता से पूछा, "मै लौटकर राम को आपका क्या सदेश सुनाऊ ? आप कोई ऐसी निशानी राम के लिए दे, जिससे उनको विश्वास हो कि मै आपसे मिला हू तो अच्छा होगा।"

यह सुनकर सीता को पुरानी बाते याद आ गई और उनके लिए आसुओ को रोकना मुश्किल हो गया।

उन्होने सोचा कि वह हनुमान को कुछ ऐसे संस्मरण सुनायेगी, जिनका पता अब तक केवल राम ही को है। उससे राम को विश्वास होगा कि हनुमान उससे सचमुच मिला। बोली, "सुनो हनुमान, एक बार ऐसा हुआ कि मैं और राम चित्रकूट मे खेल-खेल मे घूम-फिरकर बहुत थक गए थे। नदी-तट पर एक जगह आराम करने बैठे। राम मेरी गोदी मे सिर रखकर सो गए। तब एक कौवा कही से आया और मेरे शरीर पर चोच मारकर सताने लगा। मैं उसे हटाती, पर वह बार-बार आकर मुझे तग करने लगा। मैंने वही पास से एक पत्थर उठाकर उस पर फेका। तब भी वह नही माना। मुझे चोचो से बुरी तरह घायल करता गया। तब राम ने आखे खोली।

पहले तो वह समझ नही पाए कि यह क्या हुआ। मेरी आखो मे आसू देख-कर मुसकराये। उन्होने यही सोचा कि मै रूठी हू, पर जब उन्होने देखा कि मेरा शरीर घायल हुआ है और उसमे से खून टपक रहा है तो मेरे बताने पर बोले कि यह काम साधारण कौवे का नही हो सकता। अवश्य ही वह कौवा कोई असुर होगा। उन्होने उस पर अपना अस्त्र फेका। अस्त्र ने काकासुर का ऐसा पीछा किया, ऐसा पीछा किया कि वह कौवा हताश होकर मेरे नाथ के चरणो मे गिर पडा और गिडगिडाकर प्रार्थना करने लगा कि उसे क्षमा करे। यह सस्मरण तुम राम को मेरी तरफ से सुनाना और उनसे कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र यहा आये और मुझे यहा से मुक्त करे।"

यह कहते-कहते सीता राम को याद करके रोने लगी और बोली, "एक दूसरी घटना और है। एक समय राम और मैं वन मे घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गए। श्रम के कारण माथे से पसीने की बूदे टपकने लगी। उससे मेरा तिलक धुलकर मिट गया। तब राम ने पसीना पोछकर तथा चट्टानो से लाल धातु घिसकर मेरे माथे पर नया तिलक लगा दिया था। उन्हे यह बात स्मरण है या नही, यह पूछना।"

इस प्रकार पुरानी बातो को याद करते-करते सीता की आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। वह फिर बोली, "हे वायुपुत्र, मैं राम को अधिक क्या समझाऊ। उन्हे सब-कुछ मालूम है। वह स्वय सर्वज्ञ है। उनसे बस यही कहना कि सीता ने आपको अपना प्रणाम भेजा है। पास मे लक्ष्मण तो है ही। इस भूमडल मे उसका जैसा भाई दूसरा कौन हो सकता है ? वह अतुल सामर्थ्यवान हे। उसका चेहरा देखकर राम अपने पिता के स्वर्गवास के शोक को भूल सके थे। लक्ष्मण-जैसा निर्भीक कोई नही मिल सकता। बच्चो-जैसे निर्मल हृदयवाला है वह। अपनी मा को छोडकर मुझे ही मा समझकर मेरे साथ वन आ गया था। उससे कहना कि मेरा सकट दूर करे।"

लक्ष्मण के बारे मे बाते करते-करते सीता का गला भर आया। शायद उन्हे याद आ गया होगा कि उन्होने बडी मूर्खता से लक्ष्मण पर भयकर

आरोप लगाए थे।

पर हनुमान ने शातिपूर्वक सीता को समझाया और लक्ष्मण की ओर से आश्वासन दिया। सीता चाहने लगी कि वायुपुत्र अब शीघ्र श्रीराम के पास पहुचे और उसके समाचार उन्हे सुनाए। पर साथ ही हनुमान को विदा करने का भी उनका मन न हुआ। हनुमान ने ही तो उन्हे आत्महत्या करने से बचा लिया था। वह बोली, "हनुमत, यह लो मेरी चूडामणि। मेरी मा ने मुझे विवाह के समय दी थी। महाराज दशरथ ने वात्सल्य के साथ अपने हाथो से यह मुझे पहनाई थी। इसे राम को दिखाना। वह इसे तुरत पहचान लेगे।"

यह कहकर अपनी चूडामणि उन्होने हनुमान के हाथो मे रख दी। उस आभूपण पर देवी सीता की विशेष भावना और प्रीति थी। बडे विनय के साथ हनुमान ने उसे ग्रहण किया। उसे पाकर हनुमान को ऐसा लगा, मानो वह श्रीराम के पास पहुच गया है और बडे उत्साह के साथ उनसे कह रहा है कि मै सीता से मिल आया। उसका मन उस समय किष्किधा पहुच गया। केवल शरीर लका मे था। सीता ने उसको जागृत किया। बोली, "प्रिय हनुमान, राम को भली प्रकार यथायोग्य सलाहे देकर उनको विजय दिलाना तुम्हारा काम है।"

हनुमान देवी से विदा लेकर जाने लगा तो सीता फिर बोली, "हनुमान, दोनो राजकुमारो से कहना कि मैने उन्हे बहुत-बहुत याद किया है। सुग्रीव और उसके सचिवो को मेरा सविनय नमस्कार कहना। उनसे कहना कि श्रीराम को वे हर प्रकार से सहायता दे, जिससे मैं इस शोकसागर से पार हो सकू।"

हनुमान ने उत्तर दिया, "मा, आप बिलकुल निश्चित रहे। राम-लक्ष्मण के यहा आकर आपको वापस ले जाने मे अब बहुत दिन नही है।"

सीता बोली, "मित्र, आज यही-कही तुम ठहर जाओ। एक दिन विश्राम करो। तुम्हे देखकर मेरे गए प्राण लौट आए है। तुम यहा से चले जाओगे तो फिर मुझे ढाढस देनेवाला कौन रहेगा? तुमने तो आसानी से

समुद्र लाघ लिया, किंतु राम-लक्ष्मण से यह कैसे होगा ? तुम क्या सोचते हो ?"

हनुमान ने कहा, "देवि, सुग्रीव के सभी वानर एक-से-एक बढकर चतुर है। मेरे ही समान शक्तिशाली है। कई तो मुझसे भी बढकर हैं। अत आप शका न करे। वे सब राम की सहायता करेंगे। मै तो उन वानरो के सामने अति साधारण हू। इसीलिए मुझे सबने दूत चुना। सबसे बलिष्ठ को दूत नही नियुक्त किया जाता है। आप तो यह जानती ही है। आप बिलकुल चिंता न करे। अपने दोनो कधो पर राम-लक्ष्मण को चढाकर ले आऊगा। यह नगरी अब नष्ट हुई समझ लीजिए। रावण के कुल मे कोई नही बचने वाला है। आपका दु.ख मिटने के दिन आ गए। आपका मगल हो। शीघ्र ही धनुष-बाण लेकर लका के द्वार पर लक्ष्मण के साथ राम को आप देखेंगी। वानरवृ द लका मे अशाति फैला देने वाले है। बस, मेरे वहा पहुचनेभर की देर है।"

देवी को प्रणाम करके हनुमान वहा से चलने लगा।

सीता बोली, "वानर-वीर, राम से कहना कि मैं जीवित हूं। उनके यहा आने का काम जल्दी से कराना। तुम्हारा मगल हो।"

वायुपुत्र आजनेय को, सीता-दुख-हरण हनुमान को हमारा प्रणाम !

: ६५ :

हनुमान का पराक्रम

सीता से विदा लेकर हनुमान बाग की उत्तर दीवार पर बैठकर विचार करने लगा, 'मुझे अब कुछ ऐसा काम करके दिखाना चाहिए, जिससे देवी सीता के मन मे मेरे बल के बारे मे श्रद्धा पैदा हो, रावण तथा उसके सबधी राक्षसो के मन मे आतक छा जाय, जिससे वे सीता को तग करना छोड दें। जैसा आया वैसा ही चुपके से वापस चला जाऊ, यह ठीक नही। रावण

का गर्व उससे कैसे मिटेगा ? राक्षसो के साथ सख्ती को छोड और दूसरा उपाय काम नही आता । दुरात्मा रावण के पास बहुत धन है । उसके कारण जितने राक्षस है, वे सभी अर्थलाभ से खूब खुश है और आपस मे एक है । उनमे आपस मे किसी प्रकार का मन-मुटाव नही दीखता । इस कारण साम, दाम और दड, ये काम नही आयेगे । उनमे भय पैदा करने से ही कुछ हो सकता है । तभी वे सीता के साथ दुर्व्यवहार करने से डरेगे । अत यहा से लौटने से पहले मैं कुछ करके दिखा जाऊ, यही ठीक लगता है ।'

यह सोचकर हनुमान ने अपना रूप खूब बढा लिया और सुदर अशोक-वाटिका का विध्वस करने लगा । वृक्षो को जड से उखाडकर नीचे गिराने लगा । पुष्पलताओ को तोड डाला । पहाडो को समतल कर दिया । जितनी सजावट की चीजे थी, सब नष्ट-भ्रष्ट कर डाली । देखते-देखते सुदर अशोक उपवन शोभाविहीन हो गया । उपवन के पशु-पक्षी डर के मारे भागने लगे । राक्षसियो की नीद उचट गई । कच्ची नीद मे रहने के कारण वे समझ ही नही पाईं कि यह सब हो क्या रहा है ?

यह सब कर चुकने के बाद हनुमान फिर दीवार पर चढ गया । राक्षसियो की निगाह उस पर पडी । हनुमान ने अपने शरीर को और भी बढा लिया । उसे देखकर राक्षसियो के हृदय मे डर का सचार हो गया । वे थर-थर कापने लगी । उनमे से कुछ रावण को खबर देने के लिए दौडी । कुछ राक्षसिया सीता से पूछने लगी, "यह बदर कौन है ? कहा से आया है ? तुम्हे जरूर मालूम होगा । हमे सच-सच बता दो । उसने तुमसे कुछ बाते भी की हैं क्या ?"

सीता ने कहा, "तुम सब बडी मायावी हो । यह तुम लोगो की ही माया हो सकती है । यह तो तुम लोगो मे से ही कोई हो सकता है । मै क्या जानू ?"

हम अब इस चर्चा मे न उतरें कि सीता ने सच कहा या वह झूठ बोली । उन्होने रावण को कई बार चेतावनी दे दी थी कि राम से दुश्मनी करने पर उसके प्रतिफलो के लिए वह तैयार रहे । अब युद्ध छिड गया था । राम का

कार्य बिगडे, ऐसा कोई भी काम सीता नही कर सकती थी।

अशोक-वाटिका से जो राक्षसिया डरकर भाग निकली थी, वे रावण के पास पहुची और बोली, "राजन्, एक भयकर रूप वाला बदर वाटिका मे पहुच गया है। बाग का रूप ही उसने बदल डाला। उसने बडा उपद्रव कर रखा है। हमे उस वानर को देखने मे भी डर लगता है।"

उन राक्षसियो ने बडी चतुराई के साथ यह बात रावण से छिपाई कि वे सब खूब गाढी नीद मे सो गई थी। बोली, "हमने सीता से कई बार पूछा कि 'बदर कहा से आया, तुमसे उसने कुछ कहा क्या ?' किंतु वह भी कुछ ठीक से जवाब नही देती है। महाराज, किसी उपाय से उस बदर को भगा देना चाहिए। वह बदर कोई मामूली नही मालूम पडता। बडा ही भयकर है। इसलिए उसे पकडने के लिए शक्तिशाली सैनिको को भेजे। इस बदर ने सारे बाग का सत्यानाश कर डाला है। किंतु उस शिशुपा-वृक्ष को, जिसके नीचे सीता बैठी है, उसने छुआ तक नही। इसका जरूर ही कोई-न-कोई कारण मालूम होता है। जब उसने अशोक-वाटिका की एक भी चीज साबुत नही छोडी तो उस एक स्थान का क्यो कुछ नही किया ? इसमे अवश्य कुछ-न-कुछ रहस्य है। हमे तो यह साधारण जानवर मालूम नही होता। आपके दुश्मन कुबेर ने अथवा देवेंद्र ने इसे भेजा हो, ऐसा हो सकता है। अथवा कही राम की आज्ञा से ही तो यह नही आया है ? तभी तो सीता के प्रति वह सहानुभूति प्रकट करता-सा दिखाई दे रहा है। हमे तो ऐसा लगता है कि इसे राम ने ही भेजा होगा। आप तुरत अपने वीरो को भिजवाकर वानर को पकडवा ले।"

रावण ने बडे यत्न के साथ अपनी रानियो के लिए अशोक-वाटिका का निर्माण किया था। उसका जो बुरा हाल हुआ, उसका वर्णन सुनकर उसकी मशाल-जैसी लाल-लाल आखो मे से गरम-गरम तेल की बूदो-जैसे आसू टपक पड़े।

तत्काल उसने कई योद्धाओं को, जिनके पास गदा, मूसल, तलवार, शूल आदि शस्त्र थे, हनुमान को मार डालने अथवा संभव हो तो पकड़कर

लाने के लिए भेजा।

रावण द्वारा भेजे गए राक्षसो ने अशोक-वाटिका मे पहुचकर देखा कि एक वानर उपवन के द्वार के ऊपर बैठा हुआ है। उन्हे देखते ही हनुमान ने अपना रूप बढा लिया और नीचे कूद पडा। लबी पूछ को जमीन पर पटक-कर ऐसी गर्जना की कि उससे आठो दिशाए काप उठी। उपवन के बडे द्वार पर लोहे का एक बहुत भारी और मोटा डडा था, जो चटखनी का काम देता था। उसे उखाडकर हनुमान सबके ऊपर प्रहार करने लगा। उस लोहे के डडे की मार से उसने सबका काम तमाम कर डाला और फिर अशोक-वाटिका के शिला-द्वार के ऊपर जा बैठा। बोला, "राम-लक्ष्मण की जय हो! राजा सुग्रीव की जय हो! हे राक्षसो, तुम लोग अब बचने वाले नही। मैं राम, लक्ष्मण और राजा सुग्रीव का दूत हू। तुम लोगो के साथ युद्ध करने आया हू। किसी मे हिम्मत हो तो आ जाओ, लड लो मेरे साथ। मैने मा सीता को नमस्कार करके उनका आशीर्वाद पा लिया है। अब मै तुम लोगो की राजधानी लका को नष्ट करने वाला हू।"

जब रावण ने यह सुना कि उसके सभी किंकर मारे गये तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे विश्वास न हुआ कि कोई ऐसा भी शक्तिशाली हो सकता है, जो उसके उपवन का सत्यानाश करके उसके हाथी-जैसे किंकरो का सहार कर डाले!

अब लडने मे बहादुर प्रहस्त के लडके जाबुमाली को रावण ने हनुमान का दमन करने के लिए भेजा।

जब तक जाबुमाली कवच धारण करके शस्त्रो को लेकर लडने के लिए आया तब तक हनुमान से चुप न रहा गया। वह एक मडप के ऊपर चढ गया। वहा वह दूसरे सूर्य की तरह चमक रहा था। मडप के ऊपर चढकर उसने घोर गर्जना की। उसकी प्रतिध्वनि चारो दिशाओ मे गूज उठी। उससे राक्षसो के कलेजे दहल उठे।

मडप के पहरेदार ने हनुमान को भगाने का प्रयत्न किया, पर हनुमान ने उनको डाट दिया और कहा, "मै कोशल-राजेद्र रामचद्र का दूत हूं।

रामचद्रजी की जय हो ! महाबली लक्ष्मण की जय हो ! वानरेंद्र सुग्रीव की जय हो ! मैं वायु का पुत्र हू। तुम लोगो का खात्मा करने और मा जानकी की सेवा करने यहा आया हू। हजारो रावणो का मैं वध कर सकता हू। बडे-से-बडे पहाड को उठाकर तुम लोगो के ऊपर फेक सकता हूं।"

पहरेदार राक्षस हनुमान को हर प्रकार के हथियारो से मारने लगे। हनुमान ने मडप के एक स्तभ को, जिस पर सोने और रत्नो की कारीगरी की गई थी, उखाड लिया। वह उसे घुमा-घुमाकर अपनी आत्मरक्षा भी करता गया और राक्षसो को मारता भी गया। राक्षसो के शस्त्र जब उस स्तभ से टकराते थे तब उसकी रगड से आग की चिनगारिया निकलती थी। हनुमान ने गरजकर कहा, "हमारी सेना मे मुझसे भी अधिक बली योद्धा है। तुम लोगो के राजा ने नाहक इक्ष्वाकु-कुल के राजा के साथ वैर मोल लिया है। उसका फल यह अवश्य भोगेगा। तुम लोगो मे से एक भी राक्षस अब बचने वाला नही है।"

उसी समय प्रहस्त का लडका जाबुमाली आ पहुचा। उसकी बडी-बडी आखे थी। विकराल दात थे। उसने लाल वस्त्र पहन रखे थे। कानो मे कुडल लटक रहे थे। हाथ मे बडा भारी धनुष था। वक्षस्थल पर बडे-बडे हार थे, कमर मे तलवार लटकी थी। उसके रथ के चलने की आवाज दूर तक सुनाई देती थी। खच्चर उसके रथ को खीच रहे थे। रथ पर से ही जाबुमाली ने हनुमान पर शर-वर्षा शुरू कर दी। शस्त्रो की चोट से मारुति के शरीर से खून की धारा बहने लगी। इससे उसके शरीर की शोभा दुगुनी हुई, पर घायल हो जाने के कारण वायुपुत्र का क्रोध भभक गया। एक बडा भारी पत्थर उठाकर उसने जाबुमाली के रथ पर फेका। एक बडे भारी वृक्ष को उखाडकर और घुमाकर जाबुमाली के ऊपर दे मारा। उसके बाद लोहे के भारी डडे से कभी तो रथ को और कभी जाबुमाली को मार-मारकर उन्हे चूर-चूर कर डाला।

रावण के पास खबर पहुची। वह बोला, "मैं यह क्या सुन रहा हू ? यह कोई असली वानर नही लगता। मेरे पुराने दुश्मन देवो ने एक

नई सृष्टि की मालूम होती है। उसे किसी तरह मेरे सामने पकडकर ले आओ।" इसके बाद उसने बहुत बडी सेना के साथ बडे-बडे योद्धाओ को हनुमान को पकड लाने के लिए भेजा।

सब राक्षस मिलकर एक साथ हनुमान को पकडने का प्रयत्न करने लगे, किंतु वायुपुत्र के दैवी वज्रगात्र का वे कुछ भी न बिगाड सके। जैसे-जैसे वह घायल होता गया, उसका क्रोध और उत्साह भी बढता गया। शरीर को वह स्वेच्छा से बढाता गया। पहाडो और वृक्षो को जमीन से उखाडकर, आकाश मे उछालकर वह राक्षसो के ऊपर फेकता था और रथो पर चढकर उन्हे कुचल डालता था। देखते-देखते सारे राक्षस अपनी सेना-सहित मार डाले गये। कुछ डर के मारे भाग निकले। बीच-बीच मे हनुमान की गरज तथा उसके डाटने की घोर आवाज से लकापुरी के निशाचर काप उठते थे। इस प्रकार सबको हराकर वह फिर द्वार पर आ बैठा।

० ० ०

अपने चुने हुए पाच सेनानायको और राक्षस-योद्धाओ का वध सुनकर अब रावण के मन मे कुछ आतक पैदा हुआ। उसे निश्चय हो गया कि जरूर इसमे देवताओ की कोई चाल है। फिर भी उसने अपना भय व्यक्त नही किया। सबसे हँसी-मजाक से ही बातचीत करता रहा।

दरबार मे जितने राक्षस थे, सबको उसने देखा। उसका पुत्र अक्ष भी वही पर था। अक्ष के चेहरे पर भय की जगह उत्साह था। युद्ध करने के लिए वह आतुर दिखाई दिया। रावण ने अपने पुत्र को ही अब हनुमान से लडने के लिए भेज दिया।

: ६६ :

हनुमान की चालाकी

तरुण अक्षकुमार वीरता मे देवो के समान था। वह रावण की आज्ञा पाकर आठ घोडोवाले, कनकमय रथ पर चढकर हनुमान से लडने चला। कवि वाल्मीकि ने अद्वितीय ढग से इस प्रसग का मनोहर वर्णन किया है। उनका यह युद्ध-वर्णन अथवा प्राकृतिक सौदर्य-वर्णन पढते हुए हमे ऐसा लगता है, मानो हम वह दृश्य स्वय अपनी आखो से देख रहे हो। युद्ध से सबधित दोनो पक्षो की खूबिया मुनि वाल्मीकि अच्छी तरह बता देते है।

जिस रथ पर बैठकर राक्षस-कुमार जा रहा था वह तप के बल से प्राप्त हुआ था और सोने का बना हुआ था। अक्ष ने देखा कि उद्यान के शिला-तोरण के ऊपर हनुमान बडी शाति और निर्भीकता के साथ बैठा हुआ है। अपने वैरी को देखकर रावणकुमार को बडी खुशी हुई। हनुमान कालाग्नि की तरह तेजयुक्त दीख रहा था। अक्ष ने भी अपने अदर खूब शक्ति बढा ली।

युवक अक्ष ने हनुमान पर तीन बडे ही तीव्र बाण छोडे। वे बाण प्रभजनसुत को जाकर लगे। उसके शरीर से खून की धारा बह निकली। हनुमान का मुखमडल उससे और भी कातियुक्त हो गया। अक्ष की शूरता देखकर मारुति भी खुश हुआ।

दोनो के बीच घमासान युद्ध छिड गया। शरो के एक के बाद एक छूटने के कारण हनुमान का शरीर उनमे छिप गया। वर्षाकाल की वर्षा की तरह अक्ष ने पवनसुत के ऊपर बाणो की झडी लगा दी। उन शरो के बीच से हनुमान उछलकर ऊपर की ओर चला जाता था और राजकुमार के ऊपर आक्रमण कर देता था। जैसे वायु से बादल बिखर जाते हैं, अपनी गतिमान हलचलो से अक्ष के बाणो को हनुमान अपने ऊपर नही आने देता था। उन्हें तितर-बितर कर देता था। हनुमान को अक्षकुमार के शौर्य पर बडा विस्मय

हुआ। उसे बहुत दु ख भी हुआ कि ऐसे वीर का वध उसे करना पड रहा है। राक्षसकुमार का बल बढता ही चला जा रहा था। हनुमान ने मन को दृढ करके उसे मार डालने का निश्चय किया।

तीव्र गति से वह उसके रथ पर कूद पडा। रथ के टुकडे-टुकडे हो गये। पहिये दूर जाकर गिरे। आठो घोडो को हनुमान ने मार गिराया। राक्षस-कुमार अब जमीन पर खडा होकर लडने लगा। उसमे भी ऊपर उडने की ताकत थी। सो वह आकाश मे उड गया और हनुमान और अक्ष दोनो आकाश मे जोरो से युद्ध करने लगे। अत मे अक्ष हारा। उसकी हड्डी-पसलिया हनुमान के प्रहारो से चूर-चूर हो गईं। वह नीचे गिर गया और उसके प्राण निकल गये।

रावण ने सुना कि वानर ने अक्ष को भी मार डाला तो पुत्र-शोक से उसका दिल तडपने लगा, किंतु उसने आवेश को रोका। देवेंद्र के समान पराक्रमी अपने पुत्र इंद्रजीत को उसने बुलाया।

"इंद्रजीत, तुम बहुत-से अस्त्रो का प्रयोग करना जानते हो। कई बार देवों को युद्ध मे तुमने हराया है। ब्रह्मा के पास से तुम्हे ब्रह्मास्त्र प्राप्त हुआ है। तुम्हारे सामने कोई खडा नही रह सकता। बुद्धिमान भी हो। तप करने के कारण शक्तिमान भी हो। ऐसा कोई काम नही है जो तुम्हारे लिए असाध्य हो। सदा सोच-समझकर किसी कार्य मे प्रवेश करने का तुम्हारा स्वभाव है। अब तक उस वानर ने मेरे कई सेवको का, जाबुमाली का, पाच सेनानायको का और अब तुम्हारे छोटे भाई अक्ष का काम तमाम कर डाला है। उसे अब तुम हराकर बदला लो। मुझे लगता है कि सैन्य-बल से इस वानर को नही जीत सकते। पास जाकर उसके साथ द्वंद्व करना भी नही हो सकता। किसी प्रकार उसे पकडकर मेरे सामने लाओ। बुद्धि से काम लेना होगा। शस्त्रो से तो काम नही बना। अब तुम्हे अस्त्रो का प्रयोग करना होगा। तुम्हारी विजय हो।"

पिता को प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद लेकर इंद्रजित बड़े उत्साह के साथ अशोक-वाटिका की ओर चला।

उसके रथ को चार विकराल सिह खीच रहे थे । अपनी प्रत्यचा खीच-कर टंकार करता हुआ वह हनुमान के पास पहुचा । वर्षा-काल के बादलो की तरह उसके रथ से आवाज निकली । इद्रजित के कमलपत्राक्षो से विजय-प्रभा निकल रही थी ।

हनुमान इद्रजित को अपनी ओर आते देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ । इद्रजित ने बडे तेज बाणो को निकालकर आक्रमण के लिए तैयार रख लिया था । आकाश मे नाग, यक्ष, सिद्ध आदि हनुमान-इद्रजित के बीच होने-वाले युद्ध को देखने के लिए कौतूहल से जमा हो गये । इद्रजीत को देखने के बाद हनुमान ने अपने महाकाय को और भी पर्वताकार बना लिया । राक्षस-वीर कुछ बोला नही । आते ही चुपचाप उसने हनुमान पर बाण छोडना शुरू कर दिया । देवासुर-युद्ध ही था वह । हनुमान बिजली की गति से आकाश मे ऊपर तथा इधर-उधर हटकर इद्रजित के सभी शरो को व्यर्थ करने लगा । इद्रजित धनुष की प्रत्यचा से टकार निकालता था तो मारुति अपनी गर्जना से दसो दिशाओ को गुजा देता था । दर्शक इस युद्ध को देखकर आश्चर्यचकित रह गये । दोनो योद्धा हर प्रकार से समान शक्तिवाले निकले ।

इद्रजित ने हनुमान के ऊपर बाणो की वर्षा की । अब उसने अनुभव किया कि रावण ने ठीक ही कहा था कि वह वानर शस्त्रो से नही हराया जा सकता, अब इसे ब्रह्मास्त्र से बाधने के सिवा कोई दूसरा उपाय नही है ।

उसने मारुति पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया । मारुति ने अपने को असहाय पाया । उसे यह समझते देर न लगी कि वह पितामह के अस्त्र से बद्ध हो गया ।

ब्रह्मा ने हनुमान को यह वरदान दिया था कि ब्रह्मास्त्र से वह एक मुहूर्त के लिए ही बधन मे रहेगा । यह बात उसे याद थी । इसलिए वह घबराया नही । सोचा कि चलो, यह अच्छा अवसर है । देखे ये लोग क्या करते है । इनके भेदो को भी थोडा-बहुत समझ लूगा । यह सोचकर प्रसन्नता से ब्रह्मास्त्र के बधन मे वह चुपचाप पडा रहा । पितामह से चिरजीव-व्रत उसे प्राप्त था ही, इसलिए उसे उस महास्त्र से प्राणभय नही था ।

सभी राक्षस, जो डर के मारे दूर खडे थे, हनुमान को निश्चल देखकर अब हिम्मत करके पास आये और उसे घेरकर खडे होकर तरह-तरह के अपशब्द कहने लगे, इद्रजित की स्तुति करने लगे तथा नाचने-कूदने लगे। बोले, "इस बदर को टुकडे-टुकडे करके खा जायगे। अभी इसे खीचकर रावण के पास ले चलते है।" किसी ने कहा, "यह ढोग भी कर सकता है। एकदम पलटकर यह हमे मार डाल सकता है। इस कारण पहले इसे रस्से से खूब कसकर बाध देना चाहिए।"

उसी क्षण उन लोगो ने मोटे-मोटे रस्से लाकर हनुमान को कस दिया। इद्रजित को कुछ बोलने या करने का अवकाश ही नही दिया। खूब शोर मचाने लगे कि हमने दुष्ट वानर को कैद कर लिया।

इद्रजित दुखी हुआ। उसे ब्रह्मास्त्र की महिमा के बारे मे सब मालूम था। ब्रह्मास्त्र यदि बाहर की अपवित्र वस्तुओ के सपर्क मे आ जाय तो वह अपनी दैवी शक्ति खो देता है। उसे लगा कि अब ब्रह्मास्त्र की शक्ति क्षीण हो जायगी और हनुमान बधनमुक्त हो जायगा।

मारुति चालाक निकला। यद्यपि वह पहचान गया कि उसे फिर से उसकी स्वाभाविक शक्ति मिल गई है, फिर भी वह निश्चल ही पडा रहा। चाहता था कि राक्षस उसे रावण के पास ले चले। उसने रावण से बात करने का यह अच्छा मौका समझा।

: ६७ :

लंका-दहन

हनुमान जान-बूझकर राक्षसो का अपमान सहन करता गया। राक्षस उसे घसीटकर रावण की सभा मे ले गये। रावण को देखते ही हनुमान के मन मे सीता के प्रति किये गये दुर्व्यहार का स्मरण ताजा हो उठा। वह बहुत उत्तेजित हो गया। दिव्य माल्यावर तथा दिव्य आभूषण और मणिमय

मुकुट धारण करके रावण सिहासन पर बैठा था। काले पहाड की तरह उसका शरीर सभी राज-लक्षणो से पूर्ण था। उसके आभूषणो मे जडे हुए हीरे-माणिको की काति से मडप प्रकाशमान हो रहा था।

हनुमान के मन मे विचार आया कि यह वैभवशाली राजा यदि सन्मार्गी होता तो कितना अच्छा होता ! तब इसके पास से धन-लक्ष्मी और राज्य लक्ष्मी कभी न हटती ! आह ! कैसा रूपवान है ! कैसा बली है ! देवेंद्र से भी बढ-चढकर दीखता है। अपने कठिन तप से प्राप्त असाधारण वरदानो के द्वारा यह मूर्ख घमड मे आकर सारी सपत्ति नष्ट कर देनेवाला है !

जब हनुमान इस प्रकार विचारमग्न था, तभी रावण ने अपने मत्रियो से पूछा, "कौन है यह दुष्ट ? कहा से आया है ? पूछो कि किसने इसे यहा भेजा है ? इससे कहो कि मुझे विस्तार से सब-कुछ ठीक-ठीक बताये।"

रावण से आज्ञा पाकर मत्री प्रहस्त ने हनुमान से कहा, "हे वानर, डरो मत। सच-सच सब-कुछ बता दोगे तो तुम्हे क्षमा मिल जायगी। तुम्हें यहा पर इद्र ने भेजा है या कुबेर ने ? या तुम और किसी तीसरे व्यक्ति के अनुचर हो ? तुमने यह वानर का वेश क्यो बना रखा है ? हमे सही बात बतानी होगी।"

प्रहस्त ने हनुमान से अच्छी तरह से पूछा, पर हनुमान ने उसे जवाब न दिया। सीधे रावण से ही कहने लगा, "मुझे यहा पर न इद्र ने भेजा है, न कुबेर ने। मैं सचमुच ही वानर हू। राक्षसेंद्र रावण को देखने की मेरी इच्छा हुई। उसी उद्देश्य से मैंने अशोक-वाटिका का विध्वस किया। आपके कर्म-चारियो ने मुझे मार डालने की चेष्टा की। आत्मरक्षा करने के लिए मुझे उन लोगो का वध करना पडा। मैं वानरो के राजा सुग्रीव का भेजा हुआ दूत हू। हे राक्षसेंद्र, सुग्रीव ने मैत्री-भाव से आपका कुशल पुछवाया है। अयोध्यापति श्री रामचद्र और सुग्रीव के बीच मे बधुत्व का सबध स्थापित हुआ है। सुग्रीव के कहने से राम ने बालि को मार डाला है। सुग्रीव ने फिर से राजपद प्राप्त कर लिया है। पितृवाक्य का पालन करते हुए श्रीराम

दडकारण्य मे निवास करते थे। तभी वहा से उनकी पत्नी को कोई उठाकर ले गया। उसे ढूढते-ढूढते वे हमारे प्रदेश मे आये। राम ने सुग्रीव से मित्रता करके उनकी सहायता मागी। सुग्रीव ने सारे भूमडल मे सीता की खोज कराने के निमित्त वानरो को भेजा। उसी कार्य से मै लका मे आ पहुचा। पुण्य-शीला वैदेही सीता का दर्शन यहा मैंने कर लिया। आप राक्षसो के राजा है। वानरो के राजा सुग्रीव का मैं दूत हू। सुग्रीव की ओर से तथा सम्राट् दशरथ के पुत्र राम की ओर से मेरा यह नम्र निवेदन है कि देवी सीता को उठा ले आकर आपने ठीक नही किया। आप तो समझते ही होगे कि आपसे यह धर्म-विरुद्ध काम हुआ है। इससे आपकी तथा आपके कुलकी क्षति हो जायगी। राम से आपकी क्यो शत्रुता हो ? अब भी अवसर है। देवी सीता को राम के पास वापस छोड आए और श्रीराम से क्षमा माग ले। सीता को आप अपना काल ही समझे। विष को अमृत न माने। बुद्धिमान लोग धर्म-विरुद्ध कामो मे फसकर विनाश की ओर नही जाया करते। परस्त्री की इच्छा करना बडा भारी पाप है। आपका किया हुआ सारा सत्कर्म इस पाप से व्यर्थ हो जायगा। गलती तो आपने कर डाली। उससे मुक्त होने का यही एक मार्ग है कि प्रभु रामचद्र से क्षमा-याचना करे। राम से वैर करना आपके लिए बहुत बुरा होगा। मेरी बात मान लीजिये। आपको जो अति दुर्लभ वर प्राप्त है वे राम के सामने निष्प्रयोजन सिद्ध होगे। सुग्रीव आपके-जैसा ही एक राजा है। मैं उसका दूत हू। आपके कल्याण के लिए मैने आपसे ये बाते कही है।"

धैर्य के अवतार हनुमान ने साफ-साफ, पर अति मधुर ढग से रावण को उपर्युक्त बातें कही, किंतु रावण के कानो मे विष-जैसी लगी। रावण का क्रोध अपनी सीमा पर पहुच गया। रोष के साथ उसने आदेश दिया, "इसे मार कर खत्म कर डालो।"

विभीषण भी सभा मे उपस्थित था। उसने रावण को समझाया कि दूत की हत्या नही की जाती। यह राजधर्म के विरुद्ध है। आप दूत को अपग कर सकते है, चाबुक से मार सकते है, किंतु उसके प्राण नही ले सकते।

रावण ने पूछा, "जिसने हमारी इतनी क्षति कर डाली है, उसे मार डालने मे क्या दोष है ?"

विभीपण ने फिर समझाया, "इसने जो कुछ भी किया अपने स्वामी के कहने से किया है, अपने लिए या स्वय निर्णय करके नही किया है। हमारे साथ जो लडना चाहते है, उन्होने इसे अपना साधन बनाया है। जो कोई मालिक हो, उन्हे दड दीजिये। यदि यह वानर हमारी कैद मे रहे तो इसके मालिक इसे ढूढते हुए आयेगे ही। तब आप उन्हे भली प्रकार दड दे सकते है। इसे वापस जाने दे तो भी हमारा कोई नुकसान नही होगा। इसके स्वामी हमारे साथ लडने के लिए अवश्य आयेगे। तब हम उन्हे बुरी तरह हरा सकते है। इसे जान से मार देने से कोई लाभ नही, उल्टे हम बदनाम होगे।"

रावण को विभीषण की बात ठीक लगी। बोला, "बदरो के शरीर की सबसे प्रधान वस्तु उनकी पूछ होती है। सो इसकी पूछ जला दी जाय और उसके बाद इसे यहा से भगा दिया जाय।"

राजा की आज्ञा पाकर उसके नौकरो ने ढेर-के-ढेर पुराने कपडो को तेल मे भिगोकर हनुमान की बढती हुई पूछ मे लपेटा। उस पर खूब तेल गिराया और आग लगा दी। आग जोरो से भभक उठी। हनुमान अब भी रस्से मे बधा हुआ था। उसे पकडकर लोग लकापुरी की गलियो मे खीचकर ले गये। राक्षस-प्रजा वानर को देखने के लिए घर से बाहर दौड आई। स्त्रिया और बच्चे चिढाने लगे।

इधर सीता के पास भी राक्षसिया खबर लेकर दौडी। बोली, "तुम्हे पता चला कि नही ? उस वानर का, जो तुमसे बातचीत करने आया था, बुरा हाल हो गया है। रावण की आज्ञा से उसकी पूछ जलाई जा रही है।" राक्षसिया बडी खुश थी।

सीता को चिता हो गई। उन्होने तुरत अग्नि प्रज्वलित की और उससे प्रार्थना करने लगी, "हे अग्निदेव, मुझमे यदि कोई भी पुण्य-कर्म हुए हो, यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊ, तो हनुमान के शरीर को तुम जलाओ नही।"

उधर हनुमान ने अपने पर होने वाले अनाचारो का कोई विरोध नही

किया। नगर की गलियो मे राक्षस उसे ले गये। हनुमान को इस बहाने नगर के एक-एक कोने का अच्छी तरह निरीक्षण करने का मौका मिल गया। किले के अदर के रहस्यो को भी वह जान गया। वह सोचने लगा कि इस प्रकार सब-कुछ अच्छी तरह देख लेने से मेरे स्वामी का काम बन जायगा।

सहसा हनुमान का ध्यान अपनी पूछ की ओर गया। क्या ही आश्चर्य की बात थी! आग की लपटे ऊपर की ओर उठ रही थी, किंतु हनुमान को अग्नि का स्पर्श एकदम शीतल लगा। उसकी पूछ को गरमी लग ही नही रही थी, जलने की तो बात ही दूर। हनुमान के मन मे विचार आया कि पचभूत भी इस समय श्रीराम की सहायता करना चाहते है। तभी तो अग्नि का स्पर्श मेरे लिए शीतल हो गया है। बीच समुद्र मे से पर्वत ऊपर उठकर मेरा अतिथि-सत्कार जो करने लगा था। सभव है, अग्नि देवता भी अपने मित्र, मेरे पिता वायु के प्रति प्रेम के कारण मेरा अनिष्ट न कर रहे हो। इन राक्षसो ने तो मेरी पूछ जलाने की पूरी-पूरी कोशिश की। अब मैं उसका ठीक-ठीक बदला लूगा।

तुरत हनुमान ने अपने शरीर को बहुत छोटा बना लिया और बधन मे से बडी आसानी से बाहर निकल आया। उसके बाद फिर पहले जैसा शरीर बढा लिया। उसकी पूछ को आग की गरमी नही लग रही थी, किंतु उसमे से आग की बडी-बडी लपटे निकल रही थी। अपनी जलती हुई पूछ के साथ हनुमान लपककर एक बडे महल की छत पर जा बैठा। वहा से एक बडे-से खभे को उखाड लिया और उसे घुमाकर सबको डराने लगा। उसके बाद एक महल से दूसरे महल पर छलाग मारता हुआ वह चारो ओर घूमने लगा और इस प्रकार उसने सभी मकानो मे आग लगा दी। थोडी देर मे वायु भी जोर से चलने लगी। बस, फिर क्या था! सारे नगर मे चारो ओर आग की लपटे निकलने लगी। लोग घर के बाहर चीखते-चिल्लाते निकल गये। स्त्रिया और बच्चे रोने लगे। चारो ओर हाहाकार मच गया। "यह बदर नही, स्वय कालदेव है। अग्निदेवता है।" यो चिल्लाते हुए वे सब इधर-उधर दौडकर अपने-अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करने लगे।

हनुमान को अपने ऊपर किये गये अनाचार का इस प्रकार बदला ले लेने से कुछ सतोष हुआ। त्रिकूट पर्वत के एक ऊचे स्थान पर वह पहुच गया और वहा से जलती हुई लका को देखने लगा। थोडी देर के बाद उसने समुद्र मे डुबकी लगाई और अपनी पूछ की अग्नि-ज्वाला को बुझा डाला।

० ० ०

त्रिकूट पर्वत पर अकेले खडे हनुमान को एकाएक विचार आया, 'मैंने भी यह कैसी मूर्खता की! क्रोध मे आकर मैने विवेक बिलकुल भुला दिया। कितना भी बल हो, चतुराई हो, धन-सपत्ति हो, पर जब तक कोई क्रोध को दबाना नही जानता, सब-कुछ व्यर्थ है। मैंने जो सारी नगरी मे आग लगाई वह अशोक-वाटिका मे भी अवश्य ही फैली होगी। देवी सीता भी अब तक राख हो गई होगी। मेरे-जैसा मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है! राक्षसो पर मैने जो क्रोध दिखाया उससे अब तक देवी सीता भी भस्म हो गई होगी। इससे बुरी और लज्जा की बात मेरे लिए क्या हो सकती है! अब मैं किसी को मुह दिखाने लायक न रहा। मैं यही पर मर जाऊ इसके अलावा मेरे लिए दूसरा कोई रास्ता नही है।'

तभी हनुमान के कानो मे आकाश मे यक्षो की बातचीत सुनाई दी। वे आपस मे कह रहे थे, "कैसी आश्चर्य की बात है! जय हो हनुमान की! जहा पर सीता कैद है, उस जगह को छोडकर बाकी सारी लका जल रही है!"

यह सुनकर हनुमान की जान-मे-जान आई। उसे तब स्मरण आया कि उसकी पूछ भी जली नही थी। 'शायद सीता के आशीर्वाद से ही अग्नि-देवता मेरे लिए शीतल रहे हो। महा पतिव्रता देवी को अग्निदेव भला कैसे हानि पहुचा सकते थे! उन्होने भी मैनाक पर्वत की तरह श्रीराम के कार्य मे सहायता दी है।' यो विचार करके हनुमान वहा से अशोक-वाटिका की ओर चला।

शिशुपा-वृक्ष के नीचे जनकसुता बैठी थी। दौडकर हनुमान जानकी के

पास पहुचा और उनके चरण छूकर प्रणाम किया और बोला, "मा, आप ठीक है न ? आप कल्पना नही कर सकेगी कि यह देखकर मै कितना खुश हू कि आपको आग से कोई हानि नही पहुची। आपकी अपनी शक्ति से यह हुआ। अब मुझे श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दे।"

जानकी ने उत्तर दिया,"हे हनुमान, तुम सच्चे वीर हो। ऐसा कौनसा कार्य है जो तुमसे नही हो सकता ! तुम्हारी सहायता लेकर मेरे राम यहा शीघ्र आयगे और रावण को हराकर मुझे वापस ले जायगे, इसमे अब मुझे जरा भी शक नही रहा। यह काम तुम अकेले भी कर सकते हो, आज मैने यह देख लिया।"

हनुमान बोला, "मा, सुग्रीव की सेना करोडो की सख्या मे है। उसे लेकर श्रीरामचद्र यहा पर जल्दी ही आयगे। रावण और उसके दुष्ट साथी सब मरनेवाले है। आप बिलकुल निश्चित रहे। आपका मगल हो। मुझे अब विदा दीजिये।"

सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर हनुमान अरिष्ट नामक पर्वत पर चढकर वहा से आकाश मे वापस उडा। वापसी मे भी मैनाक ने समुद्र से ऊपर उठकर वायुपुत्र का स्वागत किया। हनुमान ने उस पर प्रेम से हाथ फेरा, पर वहा रुका नही। जैसे धनुष से तीर चल पडता है, वह सीधे चलता ही गया। महेद्र पर्वत का शिखर दिखाई देने लगा तो हनुमान समझ गया कि वह समुद्र के दूसरे किनारे पर आ गया है। उसने बडे जोर से गर्जना की। वहा ठहरे हुए वानर राह देख ही रहे थे। गरुड के समान आसमान मे हनुमान को देखकर सभी वानर चिल्लाने लगे, "आ गया ! वह आ गया !" इससे पहले तक वानरो को हनुमान के बारे मे बडी चिंता थी। प्रयत्न की असफलता के विचार से उनकी आखो से आसू बह रहे थे, किंतु हनुमान को कुशलपूर्वक प्रसन्न-मुद्रा मे देखकर सब-के-सब खुशी के मारे उछलने लगे।

सामने के पहाडो पर, वृक्षो पर, सब जगह वानर-वृद कतार बाधे

खडे थे। उन्हे देखकर हनुमान को बहुत हर्ष हुआ। वह महेंद्र पर्वत पर उतरा। वानरो ने उसका बडा ही भव्य स्वागत किया।

: ६८ :

वानरों का उल्लास

हनुमान के सकुशल वापस पहुच जाने पर सभी वानर बडे आनदित हुए। सब दौडकर महेद्र पर्वत के ऊपर हनुमान से मिलने और उसका स्वागत करने पहुच गये। वृद्ध जाबुवान बडे प्रेम से हनुमान से मिला। उसने कहा, "हनुमान, हमे अपनी यात्रा का सारा हाल बताओ। हमे बडा आनद मिलेगा। तुम देवी सीता से कैसे मिले ? वहा क्या-क्या हुआ ? वह कैसी हैं? उनकी मानसिक स्थिति कैसी है? उस सबका वर्णन करो। रावण उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करता है ? हे प्रिय, हमे विस्तार से सब-कुछ बताओ। तभी हम कुछ निर्णय कर पायेगे कि आगे क्या करना चाहिए।"

हनुमान ने सीता का ध्यान किया, मन-ही-मन नमस्कार किया और फिर अपने अनुभव सुनाने लगा—

"आप लोगो ने मुझे महेद्र पर्वत के ऊपर से तो उडते देखा ही था। फिर मै समुद्र को लाघता गया। आगे चलकर बीच रास्ते मे समुद्र के भीतर से एक पहाड निकल पडा। वह मेरे सामने ऊपर तक बढता हुआ आ पहुचा। मैंने उसे रुकावट समझकर तोड डालना चाहा। वह मैनाक पर्वत था। मैंने उस पर अपनी पूछ पटकी। पर्वत ने उस प्रहार को विनय से स्वीकार किया और बोला, 'मै तुम्हारा मित्र हू। तुम्हारे पिता ने मेरा उपकार किया था। उसे मैं कभी नही भूल सकता। मुझे देवेद्र के वज्रायुध से तुम्हारे पिता वायु ने बचाया था। तब से समुद्र के भीतर छिपकर बचा हुआ हू। पहले जमाने मे पर्वतो के पख होते थे। उस कारण वे आकाश मे इधर-उधर उड़ा करते थे। उससे लोगो मे बडा आतक फैल गया था। उसे

दूर करने के लिए देवेंद्र ने पर्वतो के परो को काट दिया था। तुम्हारे पिता की सहायता से मैं बच गया। तुम बहुत बड़े काम के लिए जा रहे हो। कुछ देर ठहर जाओ। थोडा विश्राम करके फिर चले जाना।' मैंने उसके प्रति उसके स्नेह के लिए कृतज्ञता प्रकट की और उससे कह दिया कि मैं कही रुक नही सकता। फिर आगे बढ गया।"

इस प्रकार हनुमान ने समुद्र को लाघते समय जो-जो घटनाए हुईं, उनका विस्तार से वर्णन किया। फिर लका मे प्रविष्ट होने, सीता को नगर के कोने-कोने मे, रावण के प्रासाद मे ढूढने, अशोक-वाटिका मे सीता के मिलने, रावण की मिन्नते और सीता द्वारा उसका तिरस्कार, रावण द्वारा सीता को धमकाये जाने, सीता की आत्महत्या करने की चेष्टा करने, सीता के साथ अपनी बातचीत, आदि का सारा विवरण हनुमान ने वानरो को विस्तार से सुनाया।

सीता ने जो सदेश भेजा, उसका वर्णन करते हुए हनुमान की आख गीली हो आई। अशोक-वाटिका का उसने किस प्रकार नाश किया, उसका हाल सुनाया। राक्षसो के वध के बारे मे बाते बताईं। इद्रजित का अपने ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग तथा रावण के सम्मुख उपस्थित किये जाने और अत मे लका-दहन आदि के विवरण उपस्थित किये।

ऐसे स्थानो मे वाल्मीकि-रामायण मे एक विशेषता यह है कि पुरानी घटनाओ का वर्णन अलग-अलग पात्रो के मुह से हम बार-बार सुनते है। दोहराने के समय एक भी बात छूटती नही, फिर भी उसे पढकर हम ऊबते नही। आजकल के लोगो मे एक ही चीज को बार-बार पढने की सहिष्णुता अथवा रुचि कम है, इसलिए हम उन बातो को सक्षेप मे ही कहेगे।

दक्षिण भारत मे सकटो से मुक्त होने तथा कार्यसिद्धि के लिए वाल्मीकि रामायण के सुदर-काड का पारायण किया जाता है। हनुमान के मुह से समुद्र के लाघने से लेकर आगे की सभी घटनाओ का वर्णन इस अध्याय मे हम सुनते है। इसे सक्षिप्त सुदर-काड समझकर इस अध्याय का पारायण किया जा सकता है।

सारी बाते बताकर अत मे हनुमान ने कहा,"हमारा खोज का काम बहुत सफल हुआ। माता सीता की महिमा से सब-कुछ हो गया। सीता मा का जब-जब स्मरण करता हू तो उनके शील का बडा गहरा प्रभाव पडता है। मेरे हाथ अपने-आप उनको नमस्कार करने लग जाते है। रावण का भी तपोबल बहुत बडा है, नही तो वह कभी का नष्ट हो गया होता। वैसे सीता चाहती तो उसे एक क्षण मे अपनी कोप-दृष्टि से जला डालती। किंतु वह यह काम स्वय नही करना चाहती, श्रीरामचद्रजी द्वारा ही कराना चाहती है। तभी चुप है। अब आप लोग क्या सलाह देते है? क्या हम सब यही से लका चले चले और राक्षसो को हराकर हम लोग ही सीता को छुडाकर ले आये? आप लोग यह न सोचे कि यह काम हमसे न हो सकेगा। मै अकेला ही राक्षसो को मार सकता हू। तब जाबुवान और अगद से भला कौन-सा काम अशक्य हो सकता है? पनस, मैंद, द्विविद आदि हमारे योद्धा सब-कुछ कर सकते है। रावण को भी ये मारकर और विजयी होकर लौट सकते है। इन्हे पितामह से दुर्लभ वर प्राप्त है। हमारी सेना मे वीरो की कोई कमी नही। रावण को मैं खूब धमकी दे आया हू।

"माता सीता दुष्ट रावण की कैद मे शिशुपा-वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। उनका मुखमडल बादलो से आच्छादित चद्र के समान कभी साफ दीखता है, कभी दुख से आवृत्त हो जाता है। वह सदा इसी प्रतीक्षा और आशा मे है कि राम अभी आये जाते है। वह सदा राम के ही ध्यान मे खोई रहती है। राक्षसिया उन्हे किस प्रकार तग करती हैं, यह मैंने अपनी आंखो से देखा है। हिरणी की भाति वैदेही उनके बीच भयभीत रहती हैं। मैंने सीता माता को सान्त्वना दी है। बारबार कह आया हूं कि राम-लक्ष्मण अवश्य आयेंगे, रावण का वध करके उन्हे बदीवास से छुडाकर ले जायंगे। इसलिए आप लोग सोचकर निर्णय करे कि हमे आगे क्या करना चाहिए।"

अगद हनुमान की बात सुनकर बडे उत्साह मे आ गया। गुस्से से उत्तेजित हो उठा। बोला, "मै अकेला ही रावण को मारकर सीता को

छुडा सकता हू । हम तो इतने अधिक है। फिर चिता किस बात की ? हमने काफी समय निकाल दिया । अब खाली हाथ राम के पास क्यो चले ? चलिये, सब-के-सब लका पर धावा बोल दे और रावण तथा उसके कुल के सारे लोगो को हराकर किष्किधा लौटे ।"

बूढा जाबुवान युवराज अगद की बाते चुपचाप सुनता रहा। फिर धीरे-से बोला, "मेरे प्यारे राजकुमार, तुम्हारा विचार ठीक नही। हमे श्रीराम और लक्ष्मण को सारी बाते पहले बता देनी चाहिए। बाद मे वे जैसा चाहेगे, वैसा करेगे । यही उचित होगा ।"

हनुमान और अगद दोनो बुद्धिमान जाबुवान की बात मान गये । दूसरे वानर भी इससे सहमत हुए। सब ने वहा से निकलकर आकाश-मार्ग से तेजी से किष्किधा की ओर प्रस्थान किया ।

वहा से चलकर वानर-वृ द राजा सुग्रीव के उद्यान मधुवन के समीप उतरे। कार्य मे सफल होकर अपने राज्य मे पहुचने के कारण वे खुशी से पागल हो रहे थे। मधुवन के अदर घुस गये। वहा उद्यान के रक्षक दधि-मुख की आज्ञा के बिना, उसके रोकने की भी परवाह न करके, मनमाने ढग से फल तोडकर खाने लगे। शहद के छत्तो से शहद निकालकर पीने लगे। जब रक्षक रोकने आये तो उन्हे मारकर भगा दिया। रक्षक दधिमुख वानरो के उत्पात से बहुत तग आ गया। रोते-रोते सुग्रीव के पास पहुचा और बोला, "हे राजा, हमारे सुदर मधुवन का सत्यानाश हो रहा है। यहा से दक्षिण की ओर सीताजी की खोज मे जो वानर गये थे, वे सब-के-सब वापस आ गये है। उन्होने मधुवन मे घुसकर बाग का भारी नुकसान कर डाला है। उनके उत्पातो का वर्णन करना कठिन है। मेरा कहना बिलकुल नही मान रहे है। मार-पीट करके मेरा बुरा हाल कर दिया। शहद पी-पीकर बेसुध पडे है। सारे पेड तथा बेले टूटी पडी है। आप इन उद्दड वानरो को उचित दड दे।"

सुग्रीव समझ गया कि हनुमान, जाबुवान और अगद कार्य मे सफलता प्राप्त करके लौटे है। उसी विजय के नशे मे उन्होने इस प्रकार से उद्दड

व्यवहार का प्रदर्शन किया है । उसने लक्ष्मण से भी यही बात कही ।

राजा सुग्रीव ने दधिमुख से कहा, "अब शीघ्र ही उन सबको यहा आने के लिए कहो ।"

दधिमुख तेजी से मधुवन पहुचा और नशे मे चूर वानरो को राजा की आज्ञा सुनाई ।

: ६९ :

हनुमान ने सब हाल सुनाया

वानरो की बेफिक्री का सुग्रीव ने जो अनुमान लगाया था उससे श्रीराम बहुत खुश हुए । राम, लक्ष्मण और सुग्रीव आतुरता के साथ वानरो से समाचार सुनने की प्रतीक्षा करने लगे । इतने मे ही बडे शोरगुल के साथ वानरवृ द वहा आ पहुचा । हनुमान सबके आगे था । अगद और अन्य वानर पीछे थे । सब राजा सुग्रीव के पास पहुचे । हनुमान जानता था कि राम सबसे पहले यही सुनना चाहेगे कि सीता मिली या नही । इसलिए रामचद्रजी को प्रणाम करते ही उसने कहा, "सीता मिल गई ।" फिर तुरत ही बोला, "सीता जीवित है, और मैं उनसे मिल आया हू ।"

यह सुनते ही राम, लक्ष्मण और सुग्रीव हनुमान से लिपट गये ।

राम से अब रहा न गया । बोले, "मुझे जल्दी से बताओ । सीता कहा है, कैसी है ? उसने क्या कुछ कहा है ?"

सब वानरो ने हनुमान से कहा कि तुम्ही श्रीरामचद्र को सारा हाल सुनाओ । हनुमान ने दक्षिण की ओर मुडकर वैदेही का स्मरण करके उन्हे प्रणाम किया । फिर अपना अनुभव सुनाने लगा ।

हनुमान से हम कई चीजे सीख सकते है । वह ऐसा काम करके आया था, जिसे दूसरा कोई नही कर सका था, फिर भी वह विनय का अवतार था । अपने राजा सुग्रीव के सामने, जब तक युवराज अगद और वयोवृद्ध

जाबुवान ने उससे बोलने का अनुरोध नही किया, उसने अपने प्रतापो के बारे मे एक शब्द भी मुह से नही निकाला। महापुरुषा के इस स्वभाव को वाल्मीकि बताना भूले नही।

एक और भी बात थी। उस समय हनुमान सीता के ध्यान मे तन्मय हो गया था। उस समय मा पर की उसकी भक्ति, प्रभु पर की भक्ति से भी अधिक हो गई थी। परमात्मा को मा समझकर पुकारनेवाले सभी भक्तो का यही हाल हो जाता है।

हनुमान ने सुनाया, "सौ योजन लबे समुद्र को लाघकर मै लकापुरी पहुचा। अत पुर के साथ लगे हुए उपवन मे कारावास मे रखी गई देवी सीता को मैने देखा। जानकीजी सतत श्रीराम का ध्यान करती हुई, राम का ही नाम जपती हुई, किसी तरह प्राण धारण किये हुए बैठी थी। अत्यत कुरूपिणी राक्षसिया उन्हे घेरे हुए थी। जानकी के केश बिखरे थे। नीचे पडे रहने के कारण उनका शरीर और उनके कपडे धूल से भरे थे। शीत-काल के कमल-तडाग की तरह शोभा से रहित थे। राक्षसियो ने उन्हे बहुत ही डरा दिया था। उससे बचने के लिए सीता आत्महत्या करने को तैयार हो गई थी। तब मैने आपके गुणो को गाकर उनका ध्यान आकर्षित किया। बातचीत करके उनके मन मे विश्वास बैठाया। मुझे सीता ने पहले कभी नही देखा था, इसलिए मेरी बातो पर भरोसा करना उनके लिए आसान नही था। आपकी बाते सुनकर उनके मन को बहुत ही आनद पहुचा। उन्होने आपके लिए अपनी चूडामणि दी है, और दो सस्मरण सुनाने के लिए कहा है। एक बार जब एक असुर कौवे ने उन्हे तग किया था तो उससे आपको बहुत दु ख पहुचा था। यह बात याद दिलाने को कहा है। दूसरे, उनके माथे की बिंदी जब पसीने से मिट गई थी तब आपने लाल पत्थर घिसकर अपने हाथो से उनके बिंदी लगाई थी, यह भी आपको याद कराने को कहा है। वानरराज को स्नेह-स्मरण भेजा है। वह इसी प्रतीक्षा मे है कि हम सब कब वहा पहुचे और रावण का वध करके उन्हें वापस लाये।" इस तरह सारी कथा सुनाकर हनुमान ने

श्रीरामचद्रजी के हाथो मे देवी सीता की दी हुई चूडामणि रख दी।

चूडामणि हाथ मे लेकर श्रीरामचद्र थोडी देर तक अवाक् रह गये। कुछ क्षणो के बाद उस आभूषण को हृदय से लगाकर जोर से रो पडे। फिर बोले, "हे वीर, हे वायुपुत्र हनुमान, मैंने भी तुम्हारी ही तरह अब सीता को देख लिया। मेरे मित्र, मुझे फिर सारी बाते सुनाओ। सीता ने क्या-कुछ कहा, मुझे विस्तार से दुबारा सुनाओ।"

हनुमान ने दुबारा रामचद्रजी को सीता की हरेक बात मधुर ढग से बताई, जिससे राम का मन द्रवित हो गया। हनुमान ने कहा, "सीता कहती थी कि राम, जिन्होने हजारो राक्षसो को मार डाला है, अभी तक यहा क्यो नही आये ? मेरी विपदाए उन्हे मालूम है कि नही ? अभी तक उन्होने रावण को मार डालने के लिए लक्ष्मण को क्यो नही भेजा ? मेरी उपेक्षा क्यो कर रहे है ? मैने कोई गलती की है क्या ? इस प्रकार सीता कह रही थी। तब मैने उन्हे आश्वासन दिया। बताया कि आप दिन-रात उन्ही के ध्यान मे रहते है। एक क्षण के लिए भी भूले नही। अवर्णनीय दु:ख मे डूबे है। मेरा सदेशा पहुचते ही आप और लक्ष्मण विलब किये बिना लका पहुच जायेगे। लका भस्मीभूत होनेवाली है। राक्षस-कुल का एक भी व्यक्ति बचने वाला नही है। अयोध्या आप सब एक साथ खुशी से लौटेंगे। मैंने देवी से कहा कि मुझे कोई स्मरण का चिह्न दे, जिससे श्रीरामचद्रजी को विश्वास हो जाय कि मैं आपसे मिला। तब उन्होने अपने केशो मे से यह चूडामणि निकालकर दी। इसे मैं भावना के साथ लेकर वापस चलने लगा तो वैदेही ने कहा, 'हनुमान ! वीर राजकुमार राम और लक्ष्मण तथा राजा सुग्रीव से मेरी कुशल कहना। उनके मत्रियो को मेरा अभिवादन कहना। श्रीराम को मेरे पास आने का रास्ता बता देना। मेरी आशा तुम पर ही केद्रित है। तुम्हारा मगल हो। तुम सुख से वापस पहुचो।' हे प्रभु, आप दुखी न हो। अब काम मे मन लगाए। सीता ने चिंता व्यक्त करते हुए मुझसे पूछा था कि राम-लक्ष्मण मनुष्य हैं। विशाल सागर को वे कैसे पार करेगे ? वानरो की सेना भी यह काम कैसे कर पायगी ? तब मैंने उन्हे साहस दिलाया।

कहा कि मै सुग्रीव का दूत हू । वानरो मे कई ऐसे है, जिनके सामने मै बहुत तुच्छ हू । वानरो के पराक्रमो पर जरा भी शका न करे। वे सारे भूमडल का एक बार भी धरती पर पैर रखे बिना चक्कर लगाने मे समर्थ है । चाहे तो वे श्रीराम और लक्ष्मण को कधे पर बिठाकर ला सकते है। मै स्वय यह काम कर सकता हू। चिंता बिलकुल न करे । राम को धनुप-बाण के साथ आप शीघ्र ही देखेगी । मेरी बातो से मा जानकी शात हुई ।"

: ७० :

लंका की ओर कूच

राम विचार करने लगे, 'हनुमान ने मेरे लिए जो किया वह और कौन कर सकता था ? उसके द्वारा किये गये कामो की कल्पना करना भी दूसरो की शक्ति से बाहर है। इसके लिए मैं किस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करू ?' उनकी आखो से आनदाश्रु निकल पडे। मारुति को उन्होने हृदय से लगा लिया।

राम सोचने लगे कि अब आगे के काम किस ढग से शुरू किये जाय। कुछ देर सोचने के बाद सुग्रीव से बोले, "सुग्रीव, हनुमान ने तो कई चमत्कार कर दिखाये । राक्षसो से सुरक्षित लका मे प्रवेश करके वह सीता से मिलकर, उसे आश्वासन दे आया। जब सीता आत्महत्या करने जा रही थी तो उसके प्राण बचाये। सीता के कुशल-समाचार सुनाकर मुझे भी बचाया। किंतु अब समस्या यह है कि हम समुद्र को किस प्रकार पार करेगे ? तुम्हारी सेना उस पार कैसे पहुचेगी ? हमारे बिना वहा पहुचे रावण की नगरी तथा उसकी सेना पर आक्रमण कैसे सभव हो सकता है ? इसका उपाय क्या है ? मुझे अब यही चिंता सताने लगी है। हनुमान की कार्यसिद्धि से जो खुशी हुई थी, वह अब इस चिंता से कम होने लगी है।"

यह सुनकर सुग्रीव राम को धीरज देने लगा। बोला, "आर्य श्रीराम,

इस प्रकार निराश होना आपको शोभा नही देता। आपको किस बात का डर है ? मेरे ये वानर-योद्धा खडे है। आपके लिए ये अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार है। ये खुशी-खुशी अपने प्राण तक दे देगे। इन्हे मैं खूब जानता-पहचानता हू। आप चिता करना बिलकुल छोड दे। चिता से धैर्य नष्ट होता है। आपको तथा भाई लक्ष्मण को लका मे पहुचाना मेरा काम है। इसमे किसी भी प्रकार आप शका न करे। शत्रु को मारकर आप सीता को अवश्य छुडाकर लायेगे। मुझे तो इसमे जरा भी शका नही मालूम देती। हनुमान ने जब लकापुरी देख ली है तो यही समझ लीजिये कि रावण का किला टूट ही गया। आप शोक और चिता एकदम छोड दें। शोक वीर पुरुषो का महा रिपु है। फिर आप तो सर्वज्ञ है। मै भला आपको क्या समझाऊ ? मैं आपका पूरी तरह साथ दूगा। मेरे सैनिक आपकी आज्ञा मे तत्पर रहेगे। धनुष लेकर आप जब लडने के लिए खडे हो जायगे तो आपके सामने कौन टिक सकेगा ? फिर शोक करना तो कायरो का काम है। आप शोक को मन से हटा दीजिये और क्षत्रियोचित रोष मन मे लाइये। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण है। कुछ ऐसा उपाय सोचिये, जिससे हम समुद्र को पार कर सकें। हमारे वानरो मे कई असाधारण शक्तिवाले है। उन्हे काम मे लाइये। मेरे मन मे तो बडे ही उत्साह का अनुभव हो रहा है। यह अच्छा शकुन हैं। मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हू कि हमारी विजय अवश्य होगी।"

सुग्रीव की इस प्रकार की धैर्य दिलानेवाली बाते सुनकर राम को बडा अच्छा लगा। उन्होने हनुमान से लका, रावण के राजमहल और किले आदि के बारे मे विस्तार से जानकारी प्राप्त की। हनुमान ने श्रीराम को बताया, "रावण के राज्य मे अन्न और धन की तनिक भी कमी नही है। उसे प्रजा खूब चाहती है। रावण का सैन्य-बल भी बहुत अधिक है। महल और किले अत्यत सुरक्षित है। कई प्रकार के यत्र और तत्रो से राक्षस लोग किले और राजमहल की रक्षा कर रहे हैं। किले के चारो ओर गहरे पानी की खाइया है। उस पर आने-जाने के लिए खुलने और बद होनेवाले लकडी के पुल है। समुद्र-तट की बडे ध्यान से रक्षा की जाती है। शत्रुओ के जहाज

वहा किसी प्रकार भी नही पहुच सकते। त्रिकूट पर्वत, लकापुरी और नगर के दुर्ग के पास तक कोई फटक भी नही सकता। सेना का अपना निजी बल भी असाधारण है, परतु यह सब होते हुए भी हमारी वानर-सेना रावण की सेना को हरा सकती है। हमारे वीर अगद, द्विविद, मैद, जाबुवान, पनस, नल और नील के होते हुए हम क्यो किसी से डरे? हमारी सेना की गिनती नही की जा सकती। जमीन को छुए बिना ही हम समुद्र के उस पार पहुच सकते है। लका द्वीप के पहाड और जगलो की हमे कोई परवाह नही। हम युद्ध मे अवश्य विजयी होगे। शुभ मुहूर्त मे हम सबको निकल पडना चाहिए।"

० ० ०

उत्तरा फाल्गुनी के मध्याह्न का शुभ मुहूर्त। वानर-सेना ने दक्षिण की ओर कूच कर दिया। चलते हुए अच्छे शकुन होने लगे। श्रीराम और सुग्रीव आपस मे बाते करते हुए चलने लगे, "यदि सीता को पता लग जाय कि हम यहा से निकल पडे है तो उसे कितनी खुशी होगी! उसे कितना धीरज मिलेगा!" राम ने सुग्रीव से कहा।

रास्ता जाननेवाले वानर आगे-आगे चले। चलते हुए वे देखते जाते थे कि कही पेडो की आड मे दुश्मन तो छिपकर नही बैठे है। वे ऐसे मार्ग से गये, जहा इतनी बडी सेना को खाने-पीने की पूरी सुविधा मिलती रहे। सेना बडी तेजी से जगलो और पर्वतो को पार करके आगे बढती गई। उन्होने राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर बिठा लिया।

वानरो मे असाधारण उत्साह था। वे जोर-से चिल्लाते, गाते, गरजते, खेलते, मस्ती से आगे बढते चले जा रहे थे। आपस मे प्रतिस्पर्धा की बातें करते जाते थे, "रावण को मैं मारूगा!" दूसरा कहता, "नही, मै मारूगा!" राम को उनकी इन बातो से बडा प्रोत्साहन मिलता था। नील और कुमुद आगे-आगे मार्ग देखते और बताते चल रहे थे। आगे-पीछे रक्षक दल चल रहा था। मध्य मे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि थे।

श्रीराम ने वानरों को कडा आदेश दिया था कि रास्ते मे आनेवाले

नगरो और गावो आदि को किसी प्रकार हानि न पहुचाई जाय। वानर-सेना के शोर से आठो दिशाए गूज उठी। उनके पैरो से उठी धूल आसमान मे छा गई।

इस प्रकार चलते-चलते सारी सेना दक्षिण समुद्र-तट के महेद्र पर्वत पर पहुच गई। श्रीराम ने पर्वत के ऊपर से समुद्र का निरीक्षण किया। उन्होने सुग्रीव से कहा, "अब हमे यह सोचना है कि समुद्र को किस प्रकार लाघा जाय। इस बीच हमारी सेना यहा के वनो मे अच्छी तरह डेरा डाल सकती है।"

सुग्रीव ने अपने सेनानायको को उसी प्रकार की आज्ञा दे दी।

समुद्र-तट के वन मे वानर-सेना ने पडाव डाला। पहरेदार बडे ध्यान से देखते रहे कि कही शत्रु-पक्ष के लोग छिपकर उनके हाल-चाल न देख रहे हो और उनके मार्ग मे कोई रुकावट न पैदा कर रहे हो। राम ने लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ सैनिको की सारी व्यवस्था स्वय देखी और बडे सतुष्ट हुए कि सब सैनिक आराम से ठहरे है। जब सब विश्राम करने चले गये तो एकात मे राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, कहते है कि कैसा भी दु ख हो, समय बीतने पर वह हल्का हो जाता है, किंतु सीता के वियोग का दु ख बिलकुल कम नही हो रहा है।

"बार-बार यही विचार मन मे आता रहता है कि वैदेही रावण के फदे मे फसकर असहाय होकर 'हे राम, हे लक्ष्मण' पुकार रही होगी। हम उसे क्यो उसी क्षण बचा नही पाये? उसके दु ख को सोचकर मेरा शोक इस समुद्र के समान ही उमड रहा है। विषपान से जैसे शरीर का प्रत्येक अग जलने लगता है, उसी प्रकार मेरा सारा शरीर जल रहा है। राजा जनक की कन्या, सम्राट् दशरथ की पुत्रवधू, मेरी प्रियतमा, राक्षसियो के बीच सताई जा रही है! मेरे मन से ये विचार दूर ही नही हो पाते।"

लक्ष्मण बडे भाई को बडे प्रेम और आदर से आश्वासन देने लगे, "भैया, घबराओ नही। अब तो थोडे ही दिन बाकी है। रावण का वध करके हम सब शीघ्र ही अयोध्या वापस लौटनेवाले है। अयोध्या मे देवकन्या की तरह भाभी प्रवेश करेगी। आप मन मे धैर्य लाइये। चिता छोड दीजिये।"

: ७१ :

लंका में मंत्रणाएं

अब हम रावण के पास चलते है। महाकवियो मे कई विशेषताए होती है। उनमे एक यह भी है कि वे कथा के पात्रो मे खलनायक का वर्णन करते हुए उसकी बुरी बातो के साथ-साथ उसके स्वभाव की अच्छी बातो का भी बडी रोचकता से विस्तृत वर्णन करते है।

लोगो के मन मे सात्विक भावना पैदा करने के लिए कविजन राजस तथा तामस स्वभावो को बडी खूबी के साथ काम मे लाते है। साधारण लोगो मे इन दो गुणो का प्रभाव अधिक रहता है। इस कारण उन्हे राजस, तामस-प्रधान पात्रो के प्रति विशेष सहानुभूति होती है। निम्न कोटि के स्वभाववालो के बारे मे कुछ कहने की क्या आवश्यकता है? वे तो तमोगुण-प्रधान पात्रो को अपने भाई-बधु समझने लग जाते है और सात्विक-गुण-प्रधान कथानायक को एक कल्पित व्यक्ति समझकर उसे दूर ही रहने देते है।

मिल्टन अग्रेजी भाषा के एक महान् कवि हो गये है। ईसाई धर्म-पुराण 'पैरेडाइज लास्ट' उन्ही की कृति है। उस ग्रथ की दुनिया मे बडी प्रसिद्धि है। उसमें भगवान का, भगवान के मानस-पुत्र प्रभु ईसा का और देवताओ का वर्णन अवश्य है, किंतु उस ग्रथ का मुख्य पात्र शैतान है, जो भगवान के साथ लडता है और ससार मे पाप और मरण का कारण होता है। शैतान से मिल्टन ने बडे रोचक ढग से काम लिया है। इसी प्रकार प्रसिद्ध नाटक-कार शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मरचेट ऑफ वेनिस' मे लोभी बनिये शायलाक की मनोदशा का बडा ही आकर्षक वर्णन किया है। बुरे पात्रो के अवगुणो के साथ-साथ उनकी चालाकी, धीरज और बुद्धि का भी सुदर परिचय कवि हमे देते रहते है। रामायण महाग्रथ मे भी इसी प्रकार वाल्मीकि ने रावण तथा कुभकर्ण की अच्छाइयो पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। अच्छे भोजन मे सभी प्रकार की रुचियो मे कुछ कडुआ भी शामिल होना

आवश्यक समझा जाता है। काव्यो के पात्रो मे इसी प्रकार मनुष्य-स्वभाव के विभिन्न रूप दिखाये जाते है।

हनुमान ने लका मे जो पराक्रम दिखाया था, उससे रावण को पहली बार कुछ लज्जित होना पडा। उसके मन मे कुछ आतक का अनुभव होने लगा। अपने मत्रियो को उसने बुलाया और सबने मिलकर मत्रणा की।

रावण की वाणी से उसका गर्व कुछ चूर हुआ लगता था। वह बोला, "हमने आज तक किसी बाहरी व्यक्ति को अपने नगर के अदर घुसने नही देखा था। एक बदर ने वह काम कर लिया। कारागार मे रखी गई सीता से भी वह मिल गया, और हमारी नगरी मे आग लगाकर काफी नुकसान कर गया। हमारे बहादुर समझे जाने वाले अनेक वीर राक्षसो का उसने वध कर डाला। हमारी प्रजा को डर से कपा दिया। अब वह यही तक थोडे ही रुकने वाला है? वह जरूर कुछ-न-कुछ और उपद्रव करेगा। इसलिए अब हमे अत्यत सावधान हो जाना चाहिए। आगे हमे क्या करना होगा, यह भी सोच लेना चाहिए।

"राजा होने पर भी मै आप लोगो की सलाह के बिना कोई कदम उठा नही सकता। इसीलिए मैने यह सभा बुलाई है। राम अब हमारा दुश्मन है। उसे दबाने के लिए क्या किया जाय, यह आप लोग सोच-विचार करके मुझे बताये। किसी भी राजा को केवल अपनी बुद्धि और होशियारी पर ही भरोसा नही कर लेना चाहिए। अपने हितचिंतक मत्रियो से सलाह लेकर उसे चलना चाहिए। मत्रियो को चाहिए कि नीतिशास्त्र की पूर्ण जानकारी रखें, घृतिवान् हो और साहस के साथ राजा को समय-समय पर सलाह देते रहे। अनिश्चित बुद्धिवाले और अस्पष्ट बोलने वाले मत्री निकम्मे होते है।

"हमारे सामने अब एक गभीर समस्या है। राम बडा पराक्रमी है। उसकी सेना भी असाधारण शक्तिशाली है। वे लोग हमारे द्वीप पर अवश्य आक्रमण करेगे। वैसे हमारा दुर्ग भी बहुत दुर्गम है, किंतु इससे ही सतुष्ट होकर हम चुप नही बैठ सकते। नगर की सुरक्षा और फौज की ताकत

बढाने की ओर अब हमे विशेष ध्यान देना चाहिए । उसके लिए हमे क्या-क्या करना चाहिए, यह आप लोग भली प्रकार सोच ले और मुझे बताये।"

राक्षसेद्र के सभी सचिव एकमत होकर बोले, "हे राजन्, आप वृथा चिंता करते है। सारे ब्रह्माड मे हमारे जोड की फौज है भी ? कौन दुश्मन है जो हमारे किले तक आने की हिम्मत कर सके ? आपके बल से कौन अपरिचित है ? क्या आपने एक बार भोगवती नगरी पर हमला करके नागराज को नही हराया था ? कुबेर को हराकर, उसके यक्षो को बुरी तरह से मारकर, उसके पुष्पक विमान और लका नगरी को आपने नही जीत लिया था ? दानवराज भी आपसे डर गया था और आपसे मित्रता करके अपनी अनुपम सुदरी कन्या मन्दोदरी की शादी आपसे कर दी थी। पाताल के कितने ही राजाओ पर आपने विजय प्राप्त की है। वरुण के पुत्रो तथा यम ने आपसे गिडगिडाकर अभयदान मागा था। इस राम को भला हम क्या समझेगे ? अकेला राजकुमार इद्रजित राम और उसकी सारी वानर-सेना को हराने के लिए काफी है। क्या आप भूल गये कि राजकुमार ने एक बार देवेंद्र को ही कैद कर लिया था। आप इद्रजित को बुलाकर कहे कि वह जाय और राम और उसकी सेना को नष्ट कर दे।"

इस प्रकार रावण के मत्रियो ने अपने राजा के सामने उसका गुणगान किया।

महाशूरवीर, बादल के समान काला प्रहस्त बोला, "हे राजा, देव, दानव और गधर्वो को आपने पराजित किया। इस तुच्छ मनुष्य राम से आप क्यो घबरा रहे है ? हम लोगो की असावधानी से वह वानर किसी प्रकार यहा पहुच गया था। उसने हमारी असावधानी का लाभ अवश्य उठाया और कुछ उत्पात भी किये, पर अब हम वैसा थोडे ही होने देगे ! एक बार उसे फिर यहा आने दीजिये और देखिये कि मै क्या करता हू। वानर-जाति के एक भी वानर को जिंदा नही छोडूगा। एक बार गलती हो गई तो क्या हमेशा ही ऐसा होता रहेगा? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं उन्हे हटाकर आता हू।"

दुर्मुख बोला, "उस बदर ने हम सबका अपमान किया है। हम उसे

नही छोडेगे । मै अभी जाकर उन सबको खत्म करके आ सकता हू । आपकी आज्ञाभर की देर है ।"

हाथ मे भयकर मूसल लिए वज्रदष्ट्र खडा हुआ और बोला, "यह रहा मेरा मूसल । इस पर दुश्मनो का मास और खून सदा चिपका रहता है । मै इसे कभी साफ नही करता । आप नाहक बदरो की चर्चा कर रहे है । हमारे दुश्मन असल मे राम और लक्ष्मण हैं । यदि राजा की आज्ञा हो तो मै पहले उन दोनो भाइयो की हत्या करके, बाद मे वानर-सेना को मारकर लौट आऊगा ।"

वज्रदष्ट्र आगे बोला, "मै एक निवेदन करना चाहता हू । कुछ राक्षसो को मनुष्य के वेश मे राम के पास भेजा जाय । हम उससे कहेगे कि भरत ने हमे तुम्हारे पास भेजा है । वह तुम्हारी मदद के लिए बडी भारी सेना भेज रहा है । इस झूठे भरोसे मे आकर राम से गफलत हो जायगी । तब हम सब आकाश से उन पर टूट पडेगे और सबको मार डालेगे ।"

कुभकर्ण का लडका निकुभ, जो अब तक चुप था, बोला, "आप सब यही रहे । मैं अकेला जाकर शत्रुओ को हराकर लौटता हू ।"*

इस प्रकार रावण के मत्री हाथ ऊचा उठा-उठाकर रावण की स्तुति करते और अपनी-अपनी बहादुरी की डीग मारते गये ।

रावण के भाई विभीषण ने सबको चुप किया और अपने-अपने आसनो पर बैठ जाने को कहा । फिर बोला, "क्या आप लोगो को धर्म की बाते बिलकुल नही सोचनी चाहिए ? भैया, इन लोगो की बाते कानो को मीठी लगने पर भी वास्तव मे आपके लिए अहितकारी है । धर्म के विरुद्ध काम करने से हमेशा दु ख मिलता है । इनके कहने के अनुसार बुरी युक्ति से हम राम से युद्ध छेड देते है तो उसके परिणामस्वरूप लका का नामोनिशान नही रहेगा और हम भी मर-मिटेगे ।

"क्या यह ठीक था कि आप सीता को चुराकर ले आये ? वह निश्चय ही पाप-कर्म था । उस पाप से मुक्त होने के लिए हम क्यो न कोई कदम उठाये ? राम ने कौन-सा अन्याय किया ? दडकारण्य मे यदि उसने राक्षसो

को मारा तो वह आत्मरक्षा के लिए था। हमारे लोग उसका पीछा नही छोडते थे। हमने उसे शाति से कहा रहने दिया ? उसे मारने के लिए जो जाते थे उन्हे वह मारता था। राम की पत्नी को चुराने के लिए हमारे पास कोई कारण या बहाना नही है। राम से हमे बदला लेना था तो उससे हम लडे क्यो नही ? चोरी से उसकी पत्नी को क्यो ले आये ?

"गलती जब हमारी है तब उसे दड देने के लिए कुछ करना नीति-विरुद्ध है। हमे पहले पता लगाना चाहिए कि राम की शक्ति कितनी है, उसमे कौन-सी विशेषताए है। उसकी सेना के बारे मे भी हम अनभिज्ञ है। हमने देखा कि हनुमान कितना अद्भुत वीर है। हममे कितनी भी ताकत क्यो न हो, तो भी हमे दुश्मन की ताकत के बारे मे अदाज कर लेना चाहिए। सधि करने मे लाभ हो सकता है या नही, यह भी देखना चाहिए। मै तो कहता हू कि सीता को राम के पास वापस पहुचा दीजिये। राम हमारे ऊपर आक्रमण करे, उससे पहले यह काम हो जाना चाहिए। भाई रावण, मै आपके हित के लिए ही कह रहा हू। आप मुझ पर क्रोध न करे। हमसे भूले हुई है। उन्हे क्यो न ठीक कर ले ?"

दूसरे मत्रियो के प्रोत्साहन से रावण खुश था। विभीषण की बातो से कुछ चितित हो गया। वह तुरत कुछ निर्णय न कर पाया। उसने सभा को दूसरे दिन तक के लिए स्थगित कर दिया और अपने महल की ओर चला गया।

: ७२ :

रावण की अशांति

रावण का सदा हित चाहने वाला विभीषण दूसरे दिन सुबह उठते ही अपने भाई रावण के पास गया। उसने खूब सोच-विचार कर लिया था और किसी प्रकार से भी अपने भाई के विचारों मे परिवर्तन लाकर उसे

बचाने का निश्चय कर लिया था।

रावण का राजमहल सदा की भाति सुशोभित था। मूल्यवान वस्तुओ से सुमज्जित और मगल-चिह्नो से अकित राजभवन मे पूजा-विधिया हो रही थी। जगह-जगह पर सेविकाए राजा के शस्त्रादि उसे देने के लिए हाथ मे लिए खडी थी। राक्षस-ब्राह्मण वेदो का पाठ कर रहे थे। वाद्य-वृ दो के साथ गायक लोग प्रभाती गा रहे थे। ऐसे वातावरण मे चिताकुल विभीषण ने महल मे प्रवेश किया।

राजा को उसने हाथ जोडकर नमस्कार किया। रावण ने अपने प्रधान मत्री के अतिरिक्त अन्य सबको अलग चले जाने को कहा और अपने छोटे भाई से बोला, "कहो, क्या बात है ?"

विभीषण बोला, "भैया, अपने स्वार्थ के लिए मैं आपसे कुछ नही कह रहा हू। आपकी भलाई के लिए ही कह रहा हू। मेरे कहने मे यदि कोई त्रुटि हो तो क्षमा करे। मेरी बात पर ध्यान दे।

"जब से आप यहा सीता को ले आये हैं, अपशकुन-ही-अपशकुन दिखाई दे रहे है। होमाग्नि ठीक तरह से प्रज्वलित नही हो रही। मत्रोच्चार के साथ ढग से आहुति डालने पर भी अग्नि नही जलती। पूजा-स्थलो मे साप पाये जाते है। नैवेद्यो मे चीटिया आ रही है। गायो के थनो मे दूध सूख गया है। हाथी, ऊट, घोडे तथा खच्चर बीमार-से हो गये हैं। खुराक ठीक तरह से नही ले रहे है। चिकित्साए निष्फल हो रही है। कौवे प्रासादो पर बैठकर विचित्र प्रकार की आवाजे कर रहे है। चीलो के मडराने से ज्योतिषी चिंतित हो रहे हैं। लोमडिया असमय ही चिल्ला रही है। जगली जानवर नगर मे प्रवेश कर रहे है। ये सभी चिह्न अशुभ-सूचक है। हमे इन अपशकुनो की उपेक्षा नही करनी चाहिए। मैं तो यही कहता हूं कि सीता को आप वापस छोड आइये। जब से वह यहा आई है, तभी से ये अपशकुन दिखाई देने लगे हैं। आप अन्य लोगो से भी पूछ सकते है कि मैं जो कुछ कह रहा हू वह सच है या झूठ। यदि आप मेरी बातो से सहमत नही हो तो भी मुझ पर नाराज न हो। मैं फिर आपसे अनुरोध करना चाहता हू कि

सीता को लौटा आइये। इसी मे हम सबका कल्याण है!"

रावण ने कहा, "नही, यह कभी नहीं हो सकता! सीता को लौटाने की बात मेरे सामने मत कहो। राम को मै अजेय नही समझता। न मुझे किसी बात का डर ही मालूम होता है। तुम अब जा सकते हो।"

इतना कहकर विभीषण को उसने वापस भेज दिया।

यद्यपि रावण ने अपना हठ नही छोडा, फिर भी सीता की दृढता और अपने प्रिय भाई विभीषण के असहयोग से रावण के मन की शाति भग हो चुकी थी। किंतु इस अशाति को उसने अपने मन ही मे रखा। दूसरे दिन उसने फिर मत्रि-परिषद् बुलाई। काम-वासना तथा क्रोध के कारण वह चित्त को स्वस्थ और स्थिर न रख सका। इस बात का अनुभव रावण ने स्वय किया। इसीलिए मत्रियो से वह बार-बार सलाह लेता गया, उससे उसे कुछ शाति का अनुभव हुआ।

अपने सोने के रथ पर बैठकर राजवीथि से होता हुआ रावण सभा मे जाने लगा। अत्युत्तम घोडे रथ को खीच रहे थे। खड्ग और कवचादि से सुसज्जित चित्त को लुभाने वाले वस्त्र धारण किये उसके अगरक्षक रथ के आगे-पीछे चल रहे थे। कुछ सैनिक भयकर शस्त्रो के साथ हाथी और घोडो पर चढकर राजा के साथ-साथ जा रहे थे। शख और भेरी की ध्वनि गूज रही थी। राजवीथि पर जब रावण इस प्रकार शान से जाने लगा तो दोनो ओर पक्तिबद्ध लोग खडे हो गये और उसका जय-जयकार करने लगे। जय-घोष से दिशाए गूज उठी। रावण ने मत्रणा-परिषद् मे प्रवेश किया।

सभा-मडप बडा विशाल था। उसके स्तभ सोने और चादी के थे। नीचे बहुमूल्य कालीन बिछे थे। मयासुर की अद्भुत शिल्प-कला का वहा प्रदर्शन हो रहा था। अपने रत्न-जडित सिंहासन पर रावण बैठ गया। सैकडो राक्षस सभा की पहरेदारी कर रहे थे। रावण की आज्ञा से हजारो राक्षस परिषद् मे आये थे। सब यथोचित आसनो पर बैठ गये। पुरोहित और धार्मिक लोग भी काफी सख्या मे आ गये थे।

विभीषण, शुक्र और प्रहस्त राजा को नमस्कार करके अपने-अपने

आसनो पर बैठ गये। रावण के कई कर्मचारियो ने, जो कार्यों मे बडे ही निपुण, राजभक्त तथा वीर थे, सभा मे भाग लिया।

धूप का सुगधित धुआ मडप मे फैल रहा था। परिषद् के लिए एकत्र लोग आपस मे बात नही कर पा रहे थे। बडी शाति थी। प्रकाड विद्वान्, शूरवीर और बली लोगो से भरी हुई वह परिषद् देवेंद्र की सभा के समान अत्यत गभीर थी।

रावण सदा ही अपनी प्रजा का कल्याण चाहने वाला था। फिर भी वासना के आवेग मे आकर उसने अपनी सहजता खो डाली थी। अहकार और काम के वश मे आकर उसकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो चुकी थी। उसने परिषद् मे इकट्ठे राक्षसो को सबोधित करके कहा, "मेरे मित्रो, आप लोग सभी समझदार है। कैसी भी समस्या हो, अपने बुद्धि-चातुर्य से हल कर सकते है। हमेशा आप लोगो की सलाह से मुझे लाभ ही हुआ है। अब भी इसी कारण से आपकी मदद चाहता हू। आप सभी जानते हैं कि मैं सीता को दडकारण्य से उठा लाया हू। मै आप सबके सामने यह स्वीकार करता हू कि मैं सीता के पीछे पागल हूं। किसी भी कारण से उसे मैं लौटा नही सकता, न उसके प्रति अपने मन की भावना को बदल सकता हू।

"अभी तक सीता ने मेरा कहना नही माना है। इस आशा को लेकर कि 'राम आयगा और मुझे छुडायेगा' वह मेरे प्रति तिरस्कार दिखा रही है। मैने उसे लाख समझाया कि राम कभी नही आयेगा, मुझे स्वीकार कर, पर वह मानती ही नही है। उसने मुझसे एक साल की अवधि मागी है! वह मैंने स्वीकार कर ली है। मेरी इच्छा अभी पूरी नही हो पाई। मुझसे यह कभी न होगा कि सीता को लौटाऊ और राम से क्षमा-याचना करू। आज तक मैंने या आप लोगो ने किसी प्राणी से हार नही खाई है। एक वानर किसी उपाय से समुद्र लाघकर यहा पहुच गया था। यहा बहुत ही उत्पात मचाकर वह सही-सलामत लौट भी गया। किंतु मैं नहीं समझता कि राम, लक्ष्मण और दूसरे वानर यहा आ सकेंगे। यदि मान लिया जाय कि वे यहा पहुच जाते हैं तो भी हमे डरना नही चाहिए। आप लोगो का क्या विचार है? मैंने मालूम

किया है कि राम, लक्ष्मण और वानरो की सेना सामने के समुद्र-तट पर पहुच गई है। उन्हे मार डालने का मुझे कोई उपाय बताइये।

"मैं पहले ही यह परिषद् बुलाना चाहता था। किंतु कुभकर्ण के जगने के लिए ठहर गया था।"

इस प्रकार कामाध रावण ने अपनी प्रजा के सामने असत्य-मिश्रित वक्तव्य दिया, क्योकि सीता ने उससे समय की अवधि नही मागी थी। राक्षसो के सामने वह एकदम हार मानने को तैयार न था, इसीलिए उसने बात कुछ बदल कर रखी थी।

: ७३ :

विभीषण का लंका-त्याग

उस परिषद् मे रावण का छोटा भाई कुभकर्ण भी था। रावण जब बोल चुका तो कुभकर्ण खडा हुआ और बोला, "महाराज, मुझे आपकी दलील ठीक नही लग रही। आपका व्यवहार नीतिशास्त्रज्ञ का-सा नही है। यदि राम और लक्ष्मण से आपका विरोध था और आपको अपनी शक्ति पर भरोसा था तो आपने प्रारभ मे ही उन्हे क्यो नही हरा दिया? उन्हे हराने के बाद सीता को ले आते तो शायद आपके पराक्रम से प्रभावित होकर सीता आपकी बात मान जाती। किंतु आपने वैसा नही किया। बिना किसी से पूछे-ताछे मूर्खता कर बैठे। अन्याय करके बुरी तरह आफत मे फसे है। उसमे से बाहर निकलने के लिए हमारे सुझाव चाहते है। भला यह किसी राजा को शोभा देता है!"

कुभकर्ण ने निर्भय होकर साफ-साफ कह तो दिया, किंतु तभी उसकी दृष्टि अपने बडे भाई के चिंता से मुरझाये हुए चेहरे पर पडी। कुभकर्ण का रावण के प्रति अत्यधिक भ्रातृ-स्नेह था। उससे रावण की चिंता न देखी गई। उसी क्षण कुभकर्ण ने निश्चय कर लिया कि कुछ भी

हो, वह रावण का पक्ष लेगा। उसने यह भी देखा कि रावण किसी के कहने-सुनने से अपनी बात बदलनेवाला नही है। राम के अतुल शौर्य के बारे मे भी उसने सुन रखा था। धनुर्विद्या मे राम का नाम बहुत प्रख्यात था। रावण के दुर्लभ वरदान मे एक बात की कमी थी। वर मे यह बात शामिल न थी कि रावण मनुष्य के द्वारा न मारा जा सकेगा। यह सब जानते हुए भी कुभकर्ण ने अब रावण को औरो की तरह ही धैर्य दिलाना ठीक समझा। उसने धीरज न खोने को कहा। बोला, "भैया, आपने गलती तो कर डाली। जो पहले करना चाहिए था, वह बाद मे कर रहे हैं। फिर भी मैं आपके साथ हू। आप घबराइये नही। राम के बाणो की मार मुझ पर अवश्य होगी, पर उसकी कोई चिता नही। उसे मारकर, उसका खून चूसकर, मै आपको जिताऊगा। अब आगे जो कुछ करना चाहे, सो निश्चित होकर शुरू कर दे।"

कुभकर्ण ने शुरू मे रावण का विरोध किया, बाद मे उसको प्रोत्साहित किया, इसलिए टीकाकार उसे म दमतिवाला, आधी नीद मे से उठने के कारण उल्टी-सीधी बाते करनेवाला समझते है। कितु यह गलत है। शाप के कारण छ महीने सोये रहने पर भी एक बार जग जाने पर उसकी बुद्धि काफी तेज रहती थी। पहले उसने रावण को अपने विचार बतलाये। बाद मे कैसी भी अवस्था मे अपने भाई का पक्ष न छोडने का निश्चय किया। वह कुटुब-धर्म को पालनेवाला प्यारा भाई था।

रावण के सलाहकारो मे प्रधान व्यक्ति प्रहस्त था। वह रावण के बल से अच्छी तरह परिचित था। उसने भी रावण को खूब प्रोत्साहन दिया। कहा कि बिलकुल चिता न करे। तीनो लोको मे आपको कोई नही हरा सकता। रावण खुश हो गया। बोला, "मैंने कुबेर को लडाई मे जीता है। उसे भगाकर उसकी लकापुरी मैंने अपनी बना ली है। देखें मेरे सामने कौन लडने की हिम्मत रखता है।"

परिषद् मे जय-जयकार का स्वर गूज उठा।

केवल विभीषण ने जयघोष मे भाग नही लिया। उसने सोचा कि रावण मुझ पर भले ही क्रोध प्रकट करे, मेरा धर्म उसको सही मार्ग बताने का है।

उसे मरने से बचाना ही मेरा कर्तव्य है। वह उठा और बोलने लगा, "सीता को विषैली नागिन के समान खतरनाक समझे। उसे वापस छोड आइये, अन्यथा हम सब मारे जानेवाले है।"

उसने राम के युद्ध-चातुर्य, वीरता और साहस का वर्णन किया। कहने लगा, "अब भी सीता को लौटा दे तो राम से सधि हो सकती है। राक्षस मौत से बच जायगे।"

इद्रजित को विभीषण की बाते तनिक भी अच्छी न लगी। अपने चाचा की कायरतापूर्ण बाते उससे न सही गईं। बोला, "चाचाजी, यह आप क्या कह रहे है? मुझे तो आपकी बातो से बडी लज्जा आ रही है। क्या हमारी शक्ति! कैसा हमारा कुल! पुलस्त्य-कुल मे उत्पन्न कोई व्यक्ति ऐसी कायरतापूर्ण बात करे और राक्षस-महापरिषद् के लोग उसे चुपचाप सुनते रहे! मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है। मेरे चाचा बहुत नीचे की ओर चले गये है। हम कभी उनकी बात न मानेगे। दो नीच मनुष्यो से कोई इस प्रकार डर जाता है! इद्र और असख्य देवगणो का हमने क्या हाल किया था? सारे लोग हमारे नाम से कापते है और चाचा विभीषण ऐसी बाते कहते हैं! उनकी इन बातो से मैं तो बहुत ही शर्मिदा हो गया हू।"

विभीषण ने उत्तर दिया, "वत्स, तुम अभी बच्चे हो। तुम्हे अनुभव नही है। राजा के लडके होने पर भी अपने विचारो के कारण बाप के शत्रु बन रहे हो। हे मत्रिगण, आप लोग राजा को बहुत बुरी सलाह दे रहे है। आप लोगो के प्रोत्साहन से रावण मरण की ओर जा रहा है। भैया रावण, अब भी मेरी बात मान जाइये। जानकी को मान-मर्यादा के साथ राम के पास छोड आइये। जो अपराध हुआ उसके लिए रामचद्र से क्षमा माग लीजिये। हम सबके बचने के लिए अब यही एक मार्ग है।"

रावण की सहिष्णुता समाप्त हो गई। क्रोध से वह आगबबूला हो उठा। बोला, "चुप! अपना छोटा भाई समझकर अब तक तेरी बाते सुनता रहा, नही तो कभी का तू मरकर यहा लोट गया होता। छोटा भाई भी कभी-कभी शत्रु बन जाता है। ईर्ष्या के वश होकर भाई भाई की दुर्गति

कर डालता है। इसके कई उदाहरण है। आप लोग हाथियो की कहानी जानते ही है, जिसमे जगली हाथी कहता है कि हम आग से नही डरते, शिकारियो के तीखे भालो से हमे डर नही, हमारे गले को फासी के समान खीचनेवाली जजीरो से भी हम नही घबराते, किंतु अपनी ही जाति के दुष्ट प्राणियो से डरते हैं, जो शिकारियो से मिलकर हमे फसा देते है। यह बात बिलकुल सच है कि सुख के समय हमारे बधु हमारे साथ मौज करते है, पर आफत के समय एकदम साथ छोड जाते है। फूल मे जब तक मधु भरा रहता है, मधुमक्खी उसके साथ चिपकी रहती है। मधु के समाप्त होते ही वहा से हट जाती है। उसी प्रकार यह विभीषण इस सकट के समय मे मुझे सहायता देने से इन्कार कर रहा है। और कोई होता, तो इसके लिए बहुत बुरी सजा भोगता। नीच, अब बकना वद कर!"

रावण ने सबके सामने इस प्रकार विभीषण को डाटा और उसका अपमान किया।

विभीषण से यह अपमान न सहा गया। बोला, "भैया, आप मुझसे बडे हैं, इसलिए कुछ भी कह सकते हैं। मेरे बडे भाई होने पर भी आप अधर्मी है। मेरा आपने सबके सामने अपमान किया है। मैं आपके काम मे कभी सहयोग नही दूगा। मुझे लगता है कि आप काल के पाश से खिचे जा रहे है। मेरी हितकर बाते आपके कानो को पसद नही आई। इन मत्रियो की गलत सलाह आपको पसद आ रही है। मैं नही चाहता था कि राम के बाणो के आप शिकार बने, इसलिए मैने मधि की बात सुझाई। आप मुझ पर काफी क्रुद्ध है। मुझे अपना दुश्मन बताते हैं। आपका मगल हो। आप खुश रहे। मैंने सोचा था कि आपको सकट से बचाऊ। उसका आपने यह अर्थ लगाया कि मैं आपसे ईर्ष्या कर रहा हूं। विनाश-काल मे अच्छी बाते भी मन को नही भाती। मैं यहा से अभी निकल जाता हू। आपके साथ अब मेरा कोई सबध नही रहा।"

विभीषण वहा से निकल गया। उसे साफ मालूम हो गया कि रावण अब उसे लका मे रहने नही देगा। अपना सब-कुछ त्यागकर वह आकाश-

मार्ग से रामचद्र के पास पहुच गया। रावण के साथ उसका तीव्र मतभेद हो गया था। इस कारण लका मे वह नही टिका।

: ७४ :
वानरों की आशंकाएं

कई बार जब हम धर्म-सकट मे फस जाते है, तो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसमे से निकलने का रास्ता ढूढते है।

रावण अपनी मानहानि नही चाहता था। पाप करने के लिए भी आदमी मन को दृढ करता है। किंतु पाप को स्वीकार कर क्षमा मागने के लिए उससे भी अधिक मानसिक धैर्य की आवश्यकता होती है। रावण को अपने किये पर पछतावा व्यक्त करने का साहस न हुआ। क्षमा मागना उसके स्वभाव के विरुद्ध था।

किसी व्यक्ति से जब बुरा कार्य हो जाता है तो उसके बधु-बाधव भी धर्म-सकट मे पड जाते है। सोचते है, 'मैने आज तक इसका नमक खाया है, अब इसका विरोध मुझसे नही किया जायगा। मेरे भाई ने जो किया सो उचित तो नही था, किंतु मैं अब उसका साथ थोडे ही छोड सकता हू।' भिन्न मत वाले कहेगे कि मित्र को तो उसकी गलती समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। उस कार्य मे मित्र की अप्रियता, क्रोध, अपमान सब-कुछ सहन करना पडे, तो भी उसकी परवाह न करके उसे सुधारने का यत्न करना चाहिए। किसी भी हालत मे हमे धर्म-विरुद्ध आचरण नही करना चाहिए।

रामायण मे कुभकर्ण और विभीषण के द्वारा हमे इन दो प्रकार के स्वभावो के उदाहरण मिलते है।

रावण के हजार मनाने पर भी, न्यायी विभीषण सीता-अपहरण मे अपने भाई की सहायता नही करता है। यदि विभीषण ने रावण की

सहायता की होती तो हम कभी उसकी प्रशसा न करते ।

उसने रावण को बहुत समझाया कि उसने बुरा काम किया है, जो हुआ सो हो गया, अब भी सीता को लौटा दिया जाय। पर रावण ने उसकी बात पर ध्यान देने से साफ इन्कार कर दिया । ऐसी स्थिति मे धर्म और सदाचार-प्रिय विभीषण के लिए रावण को त्यागने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नही रहा था । हमे विभीषण पर दोषारोपण नही करना चाहिए। हमारे दिल मे कुकर्मो के प्रति सहानुभूति हो तभी विभीषण के कार्य मे हम चूक देख सकते है ।

कुभकर्ण ने भी रावण को समझाने का प्रयत्न किया, पर उसमे वह सफल नही हुआ । अत मे लाचार होकर अपने बधु रावण के कार्य मे उसने प्राण-त्याग किया । मारीच ने भी यही किया था । इन दोनो के त्याग के प्रति हमारा मान अवश्य है, किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह सर्वथा न्यायपूर्ण था । आजकल लोगो को धर्म-विरुद्ध बाते अच्छी लगने लगती हैं, इसलिए इसके बारे मे कुछ विस्तार से कहना पड रहा है ।

पाप करनेवाले व्यक्ति को यह मालूम होना चाहिए कि उसके पाप मे उसके इष्टमित्र साथ नही देगे । पाप करेगे तो उनको खोना पडेगा । यदि ऐसा न हो, अपने कुकर्मो से उन्हे अपने बधु-बाधवो के व्यवहार मे कोई भेद दिखाई न दे तो वे कभी पाप-कर्म करने से सकोच नही करेगे । बुरे आवेग ही व्यक्ति को पाप की ओर खीचते है । उसमे प्रियजनो का समर्थन मिल जाय तब तो उससे बचना असभव ही हो जाता है । इस बात को ध्यान मे रखकर हम विभीषण को 'द्रोही' बतानेवालो से अपने को अलग रखें । विभीषण जानता था कि उस पर 'कुल-द्रोह' का आरोप लगेगा । फिर भी धर्म पर अटूट श्रद्धा रखकर उसने सकटो का सामना किया । रावण को छोडकर वह शत्रु-पक्ष मे पहुच तो गया, किंतु वहा भी उसके लिए स्थिति बहुत अनुकूल न थी । अब देखते हैं कि वहा क्या-क्या हुआ ।

० ० ०

समुद्र-तट पर खडे वानर-सेनापतियो ने देखा कि आकाश मे कुछ

चमक-सा रहा है। ऐसा लगता था, मानो मेरु-पर्वत विशाल सुनहरा मुकुट धारण किये आकाश मे खडा हो। बिजली चमकती है, फिर विलीन हो जाती है, किंतु यह प्रकाश जो वानरो ने देखा, स्थिर-सा दिखाई दिया। वानरो ने ध्यान से निरीक्षण किया। पाच महाकाय राक्षस आकाश मे मडरा रहे थे। सुग्रीव ने भी स्वय यह दृश्य देखा। वह बोला, "देखो हमे नष्ट करने के लिए ये राक्षस लका से आये दीखते है।"

यह सुनते ही वानर-वीर पेड और भारी-भारी पत्थरो को हाथ मे लेकर राक्षसो पर प्रहार करने के लिए तैयार हो गये। कहने लगे, "राजन्, आप हमे आज्ञा दीजिये। अभी इन राक्षसो का हम खात्मा किये देते है।" उन लोगो का शोर राक्षसो ने भी सुना। किंतु विभीषण रच मात्र भी नही घबराया। उसका मन निष्कपट था। इसलिए हिम्मत के साथ बडे गभीर स्वर मे बोला, "मैं राक्षसो के राजा दुष्ट रावण का छोटा भाई हूं। वीर जटायु को जिसने निर्दयता से मार डाला था, जो बलात् सीता को उठा लाया था, उस रावण का मै भाई हूं। मैंने रावण को बहुत समझाया कि यह भारी अत्याचार है, सीता को राम के पास वापस पहुचा दो। बार-बार मैने उससे अनुरोध किया, किंतु रावण ने मेरी बात न मानी। भरी सभा मे एक तुच्छ नौकर की तरह मेरी निदा की और अन्य प्रकार से मुझे अपमानित किया। मैंने उसके पाप-कर्म मे सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया और अपना घरबार, धन-सम्पत्ति सब-कुछ त्यागकर श्रीराम की शरण मे आया हू। यह बात आप लोग सीतापति श्रीराम को बताने की कृपा करे।"

सुग्रीव तुरत राम के पास वह सदेश लेकर गया और बोला, "श्रीराम, रावण का भाई विभीषण चार राक्षसो के साथ समुद्र के तट पर पहुच गया है। कहता है कि वह आपका शरणार्थी होकर आया है। अभी तक तो आकाश मे ही वे मडरा रहे है। नीचे नही उतरे है। आप समझदार है। जल्दी मे किसी की बात पर विश्वास न कर ले। ये राक्षस बहुत चालाक होते हैं। मुझे तो लगता है कि ये रावण के कहने से हमारे पास आये हैं। हमारे अदर कलह तथा फूट पैदा करने के लिए रावण ने इन्हे भेजा होगा।

यह भी हो सकता है कि समय पाकर हमारे प्रधान वानरो की हत्या करने के लिए ये आये हो। यह बात हमे कभी नही भूलनी चाहिए कि यह विभीषण हमारे परम वैरी रावण का सगा भाई है। राक्षसो पर कभी विश्वास नही किया जा सकता।

"मुझे तो यही लग रहा है कि रावण का यह नया षड्यन्त्र है। इन राक्षसो को मार ही डालना चाहिए। अपने बीच इन्हे जगह देने से अनर्थ हो सकता है।"

राम से इस प्रकार निवेदन करके सुग्रीव उत्तर की प्रतीक्षा मे खडा रहा।

राम ने सुग्रीव की बाते ध्यान से सुनी और हनुमान आदि वानरो से वह बोले, "नीतिशास्त्र जाननेवाले राजा सुग्रीव ने जो-कुछ कहा है, आप सब ने सुना ही होगा। रावण का सगा भाई आया हुआ है। आप लोगो की राय इस विषय मे क्या है? ऐसे विषय पर सबके विचार मालूम करने के बाद ही कुछ निर्णय किया जा सकता है। आप लोग अपने-अपने विचार बिना सकोच के व्यक्त करे।"

सबने अपने-अपने मत प्रकट किये।

युवराज अगद ने कहा, "विभीषण शत्रु-पक्ष से आया है। वह स्वय आया है, या रावण के कहने से, यह बताना कठिन है, पर इसकी माग का तिरस्कार करना उचित नही होगा। किंतु कुछ भी जाच किये बिना इसे अपने मे ले लेना खतरनाक हो सकता है। हमे इस विषय पर बिना जल्दी किये सोच-समझकर निर्णय करना चाहिए। पहले इसके हाव-भाव देखें, यदि इसका व्यवहार पसद न आया तो इसे भगा देगे। अच्छा लगा तो रख लेगे।"

शरभ बोला, "अपने बीच मे आने देकर बाद मे परीक्षा लेना, मुझे तो ठीक नही लगता। वह कठिन भी होगा और खतरनाक भी। पहले से ही हम गुप्तचरो से पता लगवाये कि विभीषण की क्या वृत्ति है, बाद मे सोचे कि उसे अपने साथ मिलाया जाय या नही।"

जाबुवान बोला, "राक्षस लोग बडे चालाक होते है। उनकी परीक्षा करके उनके भेदो को समझना आसान काम नही। हम तो अभी समुद्र के इधर ही है, तभी विभीषण को इतनी जल्दी क्यो पड गई! रावण हमारा सदा का दुश्मन है। उसके भाई की बातो को हम सत्य कैसे मान सकते है? मुझे तो लगता है कि इसे अपने पक्ष मे लेना ठीक नही होगा।"

मैद बोला, "यह हमारे पास अपने-आप पहुचा है। केवल सदेह के कारण इसकी माग को ठुकराना ठीक नही। पर्याप्त सावधानी और युक्ति के साथ हम विभीषण की परीक्षा ले सकते है। हमे यह पता करना चाहिए कि इसने सचमुच रावण का पक्ष छोड दिया है क्या? हमारे कुछ चतुर वानर यह काम बडी आसानी से कर लेगे।"

सब-कुछ सुन लेने के बाद रामचद्र ने बुद्धि के भडार हनुमान की ओर देखा।

: ७५ :

शरणागत की रक्षा

हनुमान समझ गया कि श्रीराम उसका भी मत सुनना चाहते है। मृदु वाणी से वह बोला, "प्रभो, आप हमसे क्यो अभिप्राय मागते है? बृहस्पति भी आपसे अधिक समझदार नही हो सकता। अभी हमारे मित्रो ने जो कहा, उससे मै सहमत नही हू। मैं तो सोचता हूं कि विभीषण को अपने पक्ष मे शामिल करने मे कोई डर नही। यदि वह हमारा अहित करना चाहता तो छिपकर आता, इस प्रकार खुल्लमखुल्ला न आता। हमारे गुप्तचरो को इसमे क्या भेद मिलनेवाला है?

"हमारे मित्र कहते है कि शत्रु-पक्ष से जो इस प्रकार अचानक हमारे पास आ जाता है, उस पर विश्वास कैसे किया जाय? ठीक है। किंतु यदि कोई अपने भाई के दुर्गुणो को देखकर उसे चाहना छोड दे तो उसमे आश्चर्य

की क्या बात है ? आपकी महिमा से विभीषण प्रभावित हो तो उसमे कौन आश्चर्य है ? परिस्थितियो को देखते हुए मुझे विभीषण पर किसी प्रकार की भी शका नही होती है ।

"कुछ लोग ऐसा विचार करते है कि विभीषण को अपने पक्ष मे लिया जाय या नही, इसका निर्णय हम तभी कर सकेगे जब हम विभीषण की परीक्षा लेकर उसके उत्तरो से सतुष्ट हो जाते है। मुझे यह बात ठीक नहीं लगती है, क्योकि जब कोई व्यक्ति जान लेता है कि उसकी बातो पर हम शका कर रहे है तब उसका व्यवहार अस्वाभाविक हो जाता है। डर के कारण उसका स्वभाव कुछ विकृत भी हो जाता है। मैने विभीषण को देखा। उसके चेहरे के भावो से तो वह जो कुछ कहता है, उसे सत्य मानने को मै तैयार हूं। उसके भोले चेहरे पर कपट के कोई चिह्न नही दीखते। अतर के बुरे भावो को, विशेषकर कपट को, छिपाना बहुत कठिन होता है।

"मै तो यही सोचता हू कि विभीषण और उसके भाई लकेश रावण मे भारी मतभेद हो गया है। विभीषण का लका मे रहना दुष्कर हो गया है और इस कारण वह आपका आश्रय चाहता है। उसे यह भी पता है कि रावण आपसे हार जानेवाला है। उसने यह भी सुना होगा कि आपने बालि का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया। रावण के बाद यदि विभीषण लका का आधिपत्य चाहता हो तो उसमे भी कोई अनुचित बात नही है, न आश्चर्य करने की आवश्यकता है। मै तो कहता हू कि उसे हम अपना लें।

"अपनी अल्पबुद्धि मे जो बात सूझी, वह मैंने आपको बता दी। आप जो निर्णय करे वह हम सबके लिए मान्य होगा।"

इस प्रकार वानरो ने विभीषण के बारे मे भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये।

० ० ०

कुभकर्ण ने सामान्य धर्म का पालन किया। लोगो को उसको समझने मे कोई कठिनाई नही हो सकती। किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह असाधारण था। इसीलिए लोग उसे दोषी ठहराते है। विभीषण की अतरात्मा रावण की नीति को मानने को तैयार नही हुई। उसने जो

मानसिक सघर्ष का अनुभव किया होगा, उसकी कल्पना करना दूसरो के लिए सभव नही। इसी कारण से कुछ वानर विभीषण को शका की दृष्टि से देखने लगे, जैसे हममे से भी कुछ विभीषण को दोषयुक्त समझते है।

० ० ०

रामचद्र ने प्रमुख वानरो की बाते ध्यान से सुनी। उन्हे हनुमान की राय पसद आई। शरणागतो की रक्षा करना राम अपना धर्म मानते थे। हनुमान की बातो से राम के मन मे शाति हुई। अपने मत से सहमत होने वाले को देखकर सात्विक स्वभाववालो को आनद का अनुभव होता ही है।

राम बोले, "आप सब मेरे मित्र है। मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न करे। मुझे अपना मित्र समझकर जब कोई मेरे पास आश्रय मागने आता है, मेरे ऊपर सपूर्ण श्रद्धा रखता है, तो उसे मै कैसे धकेल दू ? मेरा धर्म आश्रितो की रक्षा करना है। शरणागतो मे कुछ दोष भी हो तो भी उनकी रक्षा करना मै अपना धर्म मानता हू।"

राम की बातो से सुग्रीव को समाधान नही हुआ। वह बोला, "हो सकता है कि विभीपण बहुत अच्छा हो। किंतु उसने सकट के समय अपने भाई को त्यागा है। ऐसा व्यक्ति भविष्य मे हमारे साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार कर सकता है। हम उस पर विश्वास नही कर सकते।"

वाल्मीकि कहते है कि उस समय श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर जरा मुसकराये। उन्हे सुग्रीव के अपनी स्वय की बातो के भूल जाने पर कुछ हँसी आ गई थी। वह बोले, "राजा लोगो को अपने निकट के लोगो पर सदा सदेह होता रहता है। ऐसे राजा लोग भी है, जो अपने भाई-भतीजो पर शका नही रखते, किंतु उनकी सख्या थोडी ही होती है। रावण को जब विभीषण पर सदेह, द्वेष और क्रोध हुआ तो उसने भरी सभा मे उसका अपमान किया। उस पर यह आरोप लगाया कि वह रावण से द्वेष करता है। जान-बूझकर अपमान करना चाहता है। तब विभीषण समझ गया कि उसके लिए लका मे रहना हितकर नही ' । वह डर गया और इस कारण हमारे आश्रय मे आया है। यदि मान लिया जाय

कि उसे रावण के बाद राज्याधिकार पाने की इच्छा है तो भी उसमे असाधारण बात कौन-सी है ? क्योकि अब उसे विश्वास हो गया है कि रावण का हारकर मरना निश्चित है। हे लक्ष्मण, दुनियाभर मे भरत-जैसा त्यागी, दृढ सकल्पी दूसरा कोई हो नही सकता।"

इतना कहकर राम थोडी देर के लिए भरत के ध्यान मे लीन हो गये। फिर बोले, "मेरे जैसा भाग्यवान और कौन हो सकता है ? भरत जैसा भाई और किसका हो सकता है ? मेरे वियोग से दु खी होकर पिता ने प्राण छोड दिये। ऐसे प्यार करनेवाले पिता हमारे थे। हे सुग्रीव, तुम लोगो के जैसे मित्र भी किसे प्राप्त है ?"

राम कुछ देर तक भावुकता के वशीभूत रहे। फिर बोले, "मुझे यह दलील ठीक नही लगती है कि जैसे विभीषण ने रावण को त्याग दिया, उसी प्रकार मौके पर हमारा भी त्याग कर देगा। हम विभीषण से कौन-सी ऐसी विशेष अपेक्षा रख रहे है ? हमे उसके राज्य का मोह थोडे ही है ? हम रावण को जीतेगे तभी तो लका का राज्य विभीषण को मिल सकता है।

"फिर विभीषण चाहे कैसी भी प्रकृति का हो, वह हमारी शरण मे आया है। अत उसे अभयदान देना मेरा धर्म है। यह मेरा स्वभावगत गुण है। उससे यदि मेरा नुकसान भी हो रहा होगा तो भी मैं उसकी परवाह न करके विभीषण की रक्षा करू गा। धर्म की रक्षा करना मेरा प्रथम कर्तव्य है। विभीषण मेरा क्या बिगाड सकता है ? शरणागत की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। यदि रावण स्वय भी मेरी शरण मे आता तो मैं उसकी परीक्षा लिये बिना ही उसे आश्रय दे देता। जब यह बात है तो विभीषण का तिरस्कार क्यो किया जाय ?"

रामचद्र की बातें सुनकर सुग्रीव बोला, "राम, अब मेरी शका दूर हो गई। विभीषण भी आज से जैसे हम हैं, उसी प्रकार का एक प्रिय मित्र बनकर रहेगा। मैं अभी उसे बुला लाता हू।"

० ० ०

वैष्णव सप्रदाय के भक्त श्रीमद्रामायण मे राक्षस विभीषण की इस शरणागति को बडा महत्त्व देते है। वैष्णव सप्रदाय का सबसे प्रधान सिद्धात यही है कि चाहे कैसा भी अधम हो, प्रभु की शरण मे जाय तो उसके लिए मुक्ति सभव है। सभी पाप प्रभु के चरणो के सामने जलकर नष्ट हो जाते है। विभीषण की शरणागति वाले अध्याय को वैष्णव सज्जन एक धर्मशास्त्र जैसा ही महत्त्व देते है। हर प्रकार से जो निराश्रित है, उसके लिए एकमात्र आश्रय-स्थान प्रभु के चरण है।

केवल वैष्णव सप्रदाय मे नही, सभी सप्रदायो मे, सभी धर्मो मे, यही बोध मिलता है कि हमे कभी निराश होने की आवश्यकता नही। हमारी पुकार सुनने के लिए प्रभु सर्वदा तत्पर रहता है। '**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।**' यह भगवान ने अर्जुन के लिए कहा था, किंतु समस्त मानव-जाति के लिए समय-समय पर, स्थान-स्थान पर, अभयदान मिला है।

वाल्मीकि-रामायण के इस अध्याय से हमे दो चीजे सीखने को मिल रही है। शत्रु-पक्ष से अलग होकर हमारे बीच कोई आ जाय तो क्या-क्या बाते सोचने की होती है, यह राजनीति का पाठ हमे सुग्रीव आदि वानरो के मुख से मिल जाता है। सुसस्कार और सच्चरित्र व्यक्तियो को हनुमान तथा श्रीरामचद्र के मुखो से धर्म की बाते सीखने को मिल जाती है। आश्रयदाता राम कहते है, "यदि रावण भी मेरे पास आये तो मै उसका तिरस्कार नहीं करूगा।"

यह वाक्य हम सभी के लिए अमृत-तुल्य है।

: ७६ :

सेतु-बंध

इस बीच रावण ने एक नादानी का काम किया। उसने शुक नाम के एक गुप्तचर को सुग्रीव के पास भिजवाकर उसके मन को बिगाडने का प्रयत्न किया। शुक आकाश-मार्ग से आया और सुग्रीव से मिला। बोला, "लकेश रावण ने मुझे आपके पास प्रेमपूर्वक भेजा है। आप भी रावण के समान ही राजा है। राम तो राजा नही है। राजा होने से पहले ही वह राज्य से भगा दिया गया है। उससे मित्रता करके आपको क्या लाभ मिलने वाला है? किंतु यदि आप रावण से शत्रुता करेंगे तो बहुत दु ख पायेगे। रावण को अपना बडा भाई समझकर उससे मित्रता का सबध क्यो नही कर लेते? राम की पत्नी को रावण उठा लाये तो उससे आपका क्या बिगड गया? मैं इसलिए आपको सलाह देता हू कि आप वृथा इस झगडे मे न पडे और अपनी सेना के साथ किष्किधापुरी लौट जाय।"

रावण ने इस प्रकार आपस मे फूट डालने का प्रयत्न किया।

सुग्रीव ने गुप्तचर को उत्तर दिया, "हे नीच, अपने राजा से जाकर कह दे कि वह न मेरा भाई है, न बधु। वह एक दुरात्मा है। राम मेरा परम मित्र है। राम का शत्रु मेरा भी शत्रु है। राक्षस-कुल का जीवन तो अब खत्म होने वाला है। राम से बिना कारण दुश्मनी मोल लेकर रावण कही भी छिपकर अपने को बचा नही पायेगा। अपने स्वामी को मेरा यह सदेश सुना देना। तुम्हे भी यहा से जल्दी चला जाना चाहिए।"

सुग्रीव की यह बात सभी वानर सुन रहे थे। वे शुक के ऊपर टूट पडे और उसे सताने लगे। राम ने उन लोगो को ऐसा करने से रोका। यह हाल देख शुक फौरन ही वापस लका चला गया।

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण और सुग्रीव ने विभीषण को लका का राजा घोषित कर दिया। सागर के जल से उसका अभिषेक किया।

विभीषण ने भी राम के साथ सदा मैत्री की प्रतिज्ञा की। राम ने भी शपथ ली कि रावण को मारकर ही अयोध्या लौटेगे ।

अब लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव तीनो मिलकर सोचने लगे कि समुद्र को कैसे लाघा जाय। सबने यह निश्चय किया कि पहले समुद्रराज से सहायता मागी जाय। जब राम के पास जाकर उन्होने यह विचार बताया तो राम ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। समुद्र-तट पर दर्भ फैलाकर शास्त्रीय ढग से राम ने सागरराज की उपासना करते हुए उपवास प्रारभ किया। पूरे तीन दिन और तीन रात तक बिना कुछ खाये-पिये राम ने सागरराज की उपासना की, पर सागर ने राम की प्रार्थना न सुनी। वह चुप रहा। तब राम ने सोचा कि समुद्र यो नही मान रहा है तो अब अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करना पडेगा। उन्होने लक्ष्मण से धनुष और विशेष प्रकार के शक्तिवाले बाण लाने के लिए कहा ।

रामचद्र समुद्र पर बाण-प्रयोग करने लगे तो सारी धरती कापने लगी। समुद्र का पानी जोरो से ऊपर-नीचे होने लगा। सागरराज से स्थिति सभाली नही गई। तब मेरु पर्वत पर उदित सूर्य-सा कातिमान् समुद्र श्रीराम के सामने आया। राम को उसने नमस्कार किया और बोला, "हे रामचद्र, आप शात होइये। मेरी बात सुनिये। मैं नियति के विरुद्ध कैसे चल सकता हू ? अपने भीतर मैंने असख्य जीवधारियो को आश्रय दिया हुआ है। अपना रूप छोड दू तो उनका क्या हाल होगा ? बडी-बडी लहरो के साथ रहना मेरा प्रकृतिजात धर्म और गुण है। उसके कारण किसी के लिए भी मुझे पार करना दुष्कर होता है। अपने पानी को मैं सुखा नही सकता। पर मैं आपकी सहायता अवश्य करूगा। आपकी आज्ञा मे रहनेवाले इन वानरो द्वारा लका तक मुझ पर एक लबा पुल बनवाइये। जल्दी ही आप शिलाओ तथा वृक्षो की सहायता से पुल के निर्माण मे जुट जाइये। मैं उस पुल को टिकाये रखूगा। मेरी लहरें उसे नही गिरायेंगी। मैं जानता हूं कि आपकी वानर-सेना मे नल नामक

वानर विश्वकर्मा का पुत्र है। पुल का निर्माण वह बडी चतुराई से करा सकता है। उसे यह काम सौपिये। आपकी विजय हो!"

सागरराज के वचनो से रामचद्र बहुत ही प्रसन्न हुए।

राम की आज्ञा पाकर वानर सेतुबध के निर्माण मे लग गये। लाखो वानरो ने इस काम मे भाग लिया। चारो ओर वानरो के काम मे जुट जाने से कोलाहल होने लगा। पाच ही दिनो मे देखते-देखते एक अद्भुत पुल का निर्माण करके वानरो ने चमत्कार कर दिखाया।

वाल्मीकि ने इस सेतुबध का बडे विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के बडे-बडे बांधो के बारे मे जैसी बाते सुनते है, उसी ढग का वर्णन कवि वाल्मीकि ने भी किया है। वानर घने जगलो मे से हजारो-लाखो विशाल वृक्षो को उखाड-उखाडकर लाये। अधिक बलशाली वानर पहाडियो को ही उठा लाये। नल निर्माण-कार्य मे अति कुशल तो था ही। उसके निरीक्षण और आदेश से वानर काम करने लगे। वे पहाडियो को समुद्र मे डालते गये, ऊपर पेडो को रखते गये, उसके ऊपर पत्तो को फैलाकर समतल मार्ग बनाते गये। उनके दबाव से उठ-उठकर लहरे आसमान को छूने लगी। पर काम करते समय जो शोरगुल होता था, उससे समुद्र की आवाज सुनाई नही देती थी।

सागरराज की भी इसमे पूरी सहायता थी। आकाश मे नक्षत्र-वीथि के समान महार्णव पर एक अति अद्भुत नये पुल का निर्माण देखते-देखते हो गया। देव-गधर्वों को भी उसे देखकर बडा विस्मय हुआ। वे पुष्पवृष्टि करने लगे और 'श्रीराम विजयी भव' का घोष करने लगे। ऋषियो ने राम को आशीर्वाद दिया।

अब सारी राम-सेना समुद्र पार करने को आगे बढी। हनुमान ने राम को अपने कधे पर बिठा लिया। लक्ष्मण को अगद ने अपने कधे पर बिठाया। वानरो की गति असामान्य थी। सारी सेना देखते-देखते समुद्र पार करके सागर के दूसरे किनारे पर पहुच गई।

यहा पर एक वेदात-तत्व का हमे दर्शन मिलता है। कोदडपाणी राम

के सम्मुख अजलिबद्ध हाथो से सागरराज निवेदन करता है, "प्रिय राघव, पृथ्वी, वायु, आकाश, पानी और अग्नि ये जो पचभूत है, अपनी-अपनी प्रकृति का अवलबन करके विद्यमान है। अनादि काल से यह धर्म चला आ रहा है। काम, लोभ अथवा भय के कारण मै अपनी प्रकृति को नही बदल सकता। मेरा यह पानी सूखकर पत्थर बन जाय, अथवा मेरी गहराई बिलकुल कम हो जाय, और तुम लोग पैदल ही मुझे पार कर लो, यह मेरे लिए सभव नही।"

सागरराज के इस कथन के द्वारा हमे इस तत्व का दर्शन मिलता है कि प्रकृति और ईश्वर का सबध अनादि काल से है। प्रकृति, कर्म, जीव तथा जड वस्तुए ईश्वर से सृजित होकर अपनी-अपनी नियति के अनुसार चलती चली आ रही है। प्रकृति ही ईश्वर का निरूपण करती है। प्रकृति-विरुद्ध बातो से ईश्वर का अस्तित्व नही बताया जाता। हिंदू-शास्त्रो मे यही कहा गया है कि प्रकृति, कार्य-कारण का न्याय, पचभूतो का काम यह सब ईश्वर से सकल्पित होकर अपने-आप चलता रहता है। श्रीमद्‌भगवद् गीता के नवे अध्याय मे भी भगवान् बताते है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते ॥

: ७७ :

लंका पर चढ़ाई और रावण को संदेश

राक्षस माल्यवान ने रावण को बहुत समझाया। उसने कहा, "हे रावण, तुम्हारे भाग्य के दिन अब समाप्त हुए। तुम्हारे दुष्कर्मो के परिणाम से तुम्हारा तेज कम हो गया। तुम अपने वरदानो की शक्ति पर अब भरोसा छोड दो और राम से सधि कर लो। तुम जरा बाहर आकर देखो तो सही कि राम के साथ कितनी भारी सेना आई है। मनुष्यो मे तो राम-लक्ष्मण

ही है, किंतु उनके साथ अगणित वानर और रीछ है। सेतु को देखकर तो मेरे आश्चर्य की सीमा नही रही। मुझे तो यही लग रहा है कि महाविष्णु स्वय मनुष्य के शरीर मे आये है।"

बूढे माल्यवान की बात रावण को तनिक भी अच्छी न लगी। बोला, "तुम्हारे वचन मेरे कानो को नही सुहाते। तुम भी शत्रु-पक्ष मे मिल गये क्या ? मनुष्य-जाति बडी दुर्बल होती है। राज्य से निकाले हुए एक तुच्छ आदमी से आप सब व्यर्थ घबरा रहे है। बदर और रीछो के बल पर भरोसा रखकर एक आदमी मेरे साथ लडने आया है ! और उसे देखकर आप सब राक्षस डर गये ! मुझे आप सबको देखकर बडी लज्जा आ रही है।

"आप लोगो के मन मे मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई दीखती है, नही तो सब-के-सब ऐसी निरर्थक बाते क्यो करते ! मैं राम के सामने अपना सिर कभी नही झुकाऊगा। युद्ध मे मर जाना पडे तो खुशी से मर जाऊगा, किंतु राम से समझौते की माग मैं कभी नही करूगा।"

माल्यवान को रावण के उत्तर से दु ख हुआ। बोला, "देखो रावण, सोच-समझकर ही कदम उठाना। तुम्हारी जय हो !"

यो कहकर वह वापस लौट आया। माल्यवान रावण का नाना लगता था।

रावण ने अपने सेनापतियो को अलग-अलग स्थानो के लिए नियुक्त किया। उन्हे अलग-अलग काम सौपे। उसने नगर के पूर्वी-द्वार पर प्रहस्त को खडा किया, दक्षिण-द्वार की रक्षा के लिए महापार्श्व और महोदर को भेजा, युवराज इद्रजित् को पश्चिम-द्वार की रक्षा मे नियुक्त किया। उत्तर-द्वार का दायित्व स्वय अपने हाथो मे लिया। महापराक्रमी विरूपाक्ष को नगर के अदर का सेनानायक बनाया।

इस तरह नगर-रक्षा के लिए रक्षको की नियुक्ति हो जाने पर उसके मन मे कुछ धैर्य का अनुभव हुआ। अब उसे लगा कि वह युद्ध मे नही हारेगा। परतु उसका विनाश होने ही वाला था। इसलिए लोगो की चेतावनी का

उसके कानो मे असर नही हुआ। वह अपने-आपको धोखे मे डालता गया और उसके सचिव उसे उल्टे प्रोत्साहित करते गये।

उधर राम, सुग्रीव और लक्ष्मण भी युद्ध की तैयारी करने लगे। रावण के प्रबधो के बारे मे गुप्तचरो द्वारा जो-कुछ जानकारी मिली, उसे विभीषण ने राम को बताया। विभीषण बोला, "सख्या मे, बल मे और वीरता मे रावण ने कुबेर की सेना से भी बडी सेना इकट्ठी कर ली है। फिर भी श्रीराम अवश्य उस पर विजय प्राप्त करेंगे।"

रामचद्र ने भी अपनी सेना का विभाजन किया। नील को पूर्व दिशा मे प्रहस्त से लडने के लिए नियुक्त किया गया, दक्षिण मे अगद को महापार्श्व और महोदर के साथ जूझने का आदेश दिया। पश्चिम मे इद्रजित् का सामना करने का भार हनुमान को सौपा और रावण के साथ लडने का दायित्व अपने और लक्ष्मण के ऊपर डाला। सुग्रीव, जाबुवान और विभीषण को उन्होने अपने साथ रखा। इस प्रकार अपनी सेना का बटवारा राम ने किया।

रामचद्र ने लका मे पहली रात सुवेल पर्वत पर अपनी सेना के साथ बिताई। दूसरे दिन सूर्योदय से कुछ पहले ही सब जग गये। वहा से सभी ने लका के सौंदर्य को देखा। त्रिकूट पर्वत के ऊपर निर्मित लकापुरी आसमान से एक झुमके के समान लटकती हुई-सी दिखाई देती थी। पक्तिबद्ध राक्षस सैनिक किले की रक्षा मे खडे थे। उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो किले के चारो ओर एक दूसरी ही दीवार खडी कर दी गई है।

राम ने लका के ऊचे-ऊचे महलो को देखा। नगर के वैभव को देखा। उन्हे बडा दुख हुआ कि रावण के अन्याय से और उसकी मूर्खता से यह सब नष्ट हो जायगा। रावण स्वय तो मरने ही वाला है, पर अपने साथ सभी राक्षसो को मौत के मुह मे घसीटकर ले जा रहा है।

राम ने अपने सैनिको को चेतावनी देते हुए कहा, "आप लोग अत्यत सावधानी से रहे। राक्षस बडे मायावी होते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण करेंगे। हमारी सेना के वानर अपने-अपने निजी रूप मे ही रहे।

विभीषण और उसके चारो मित्र मेरे साथ मनुष्य-रूप मे रहेगे। मै नही सोचता कि रावण और उसके साथी कभी मनुष्य-रूप मे आयेगे। उसमे वे अपने गौरव की हानि समझेगे। उन्होने मनुष्य-जाति को अति तुच्छ समझ रखा है। हमे बहुत ही सतर्क होकर रहना होगा। जिन्हे मारना चाहिए, उन्हे ही हम मारेगे। जिनकी सहायता करनी होगी, उनकी सहायता करेगे।"

इस प्रकार श्रीराम ने अपने सैनिको को समझाया।

सेना के साथ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सुवेल पर्वत से उतरकर लका के पार्श्व मे स्थित वन मे गये। असख्य प्राणियो को अदर आते देखकर वन के पशु-पक्षी इधर-उधर भागने लगे। पर्वत के ऊपर से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लका की विशेषता राम ने देखी थी। अब नीचे से दुर्ग का भव्य रूप और नगर की शोभा स्पष्ट दिखाई देने लगी। उसे देखकर रामचद्र को बडा विस्मय हुआ। राक्षसो की युद्ध की भूख, सैन्य-शक्ति, युद्ध-प्रणाली, दुर्गद्वार तथा शस्त्र और यत्रो को देखकर वानरो के मन मे लडने के उत्साह मे बडी वृद्धि हुई।

रावण अपने परिजनो के साथ लाल वस्त्र धारण किये एक दिव्य आसन पर बैठा हुआ था। इद्र के हाथी ऐरावत के दातो से उसका वक्षस्थल घायल हुआ था। उस घाव का चिह्न उसकी छाती को सुशोभित कर रहा था। तभी वहा अचानक सुग्रीव आकाश से धडाम से कूद पडा और रावण की ओर एकदम लपककर उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे गिरा दिया तथा उसके गाल पर एक जोर की चपत लगाकर बोला, "हे रावण, अब तुम बुरी तरह फस गये हो। देखो, मैं सुग्रीव हूं—राम का मित्र और सेवक।"

देखते-देखते रावण और सुग्रीव दोनो मे मल्लयुद्ध प्रारभ हो गया। दोनो उस विद्या मे पारगत थे। दोनो को अनेक दाव आते थे। रावण को सुग्रीव ने बहुत परेशान किया। तब रावण अपनी माया का प्रयोग करने लगा। सुग्रीव वहा से भागकर एक ही छलाग मे राम के पास पहुच गया।

सूर्य-पुत्र सुग्रीवके इस प्रकार रावण को तग करके सकुशल वापस आ

जाने पर वानरो मे हर्ष का ठिकाना न रहा। युद्ध मे घायल हो जाने के कारण सुग्रीव के शरीर से खून बह रहा था।

राम ने वानरराज से कहा, "हे सुग्रीव, तुम्हारा साहस तथा शौर्य देखकर हम सब बडे ही विस्मित और प्रसन्न है। फिर भी बिना किसी से पूछे और सलाह लिए रावण से तुम्हारा भिड जाना उचित न था। तुम्हे यह न भूलना चाहिए कि तुम एक राजा हो। राजा को बिना सोचे आपत्ति के कार्य मे नही उतरना चाहिए ।"

सुग्रीव मान गया। उसने कहा, "श्रीराम, आपका कहना ठीक है। आपसे बिना पूछे मुझे कोई काम नही करना चाहिए। किंतु रावण को देखकर मैं आपे से बाहर हो गया था। उसने सीता पर जो अन्याय किया, उसका स्मरण हो आने से मैं अपने क्रोध को न सभाल सका।"

राम से आदेश पाकर वानर-सेना ने लका को चारो ओर से घेर लिया। उसके बाद रामचद्र ने अगद को बुलाकर कहा, "अगद, तुम रावण के पास मेरे दूत बनकर जाओ। उसको समझाओ कि राम दुर्गद्वार पर युद्ध के लिए खडे है। देवताओं से वरदान पाकर और उस कारण घमडी होकर वह जो अत्याचार करता आया है, उसका अब अत होनेवाला है। दुनिया, जो उसके कुकर्मो से कापती रही, अब उसके पजो से मुक्त होनेवाली है। अब वह बाहर निकलकर मेरे साथ युद्ध करे। युद्ध मे प्राण देकर अपने पापो का प्रायश्चित्त करे। यदि वह मरना नही चाहता तो सीता को मेरे पास भेज दे। मुझसे क्षमा माग ले। मैं उसे अवश्य ही बिना मारे छोड दूगा। अपने घमड से रावण ने लोगो पर बडे अत्याचार किये है। इसलिए किसी भी हालत मे वह राजा बने रहने के योग्य नही रहा है। धर्मात्मा विभीषण ही राजा होने योग्य है। अब से वही लका का राजा है। उसे यदि यह बात स्वीकार न हो तो मेरे साथ लडने के लिए आ जाय। आने से पहले अपने क्रिया-कर्म भी वह करवा ले। लकापुरी से अतिम बार विदा लेकर आए। यह सब तुम मेरी ओर से रावण से कहना।"

राम के वचनो से उत्साहित होकर अगद राम का दूत बनकर रावण

के पास पहुचा । रावण अपने मन्त्रियों से घिरा हुआ एक ऊचे सिंहासन पर बैठा था ।

अगद ने उससे कहा, "रावण, तुमने बालि का नाम तो सुना ही होगा । मै बालि का पुत्र और राम का दूत हू । तुम अब अपने पापो से छूटनेवाले हो । राम से लडते-लडते वीरो की गति पाओगे । राम और उनकी सेना दुर्ग के द्वार पर तुम्हारे साथ युद्ध की प्रतीक्षा मे खडी है । युद्ध मे प्राण देकर तुम सपूर्ण प्रायश्चित्त कर सकते हो । यदि अपनी प्राण-रक्षा की तुम्हारी इच्छा है तो श्रीराम से क्षमा-याचना करो । उनकी शरण मे जाओ । यदि यह बात तुम्हे प्रिय न हो तो युद्ध करने के लिए निकल पडो । अपने प्रिय-जनो से सदा के लिए विदा लेकर ही निकलना, और हा, अपनी उत्तर-क्रियाए भी पहले से ही करा लेना, क्योकि तुम्हारे कुल मे कोई भी बचने-वाला नही है । लका को भी एक बार जी भरकर देख लेना ।"

अगद के वचनो से रावण का क्रोध चरम सीमा पर पहुच गया । उसने अपने किकरो से कहा, "पकड लो इस दुष्ट को और मार डालो इसे इसी क्षण !"

दो लबे-चौडे राक्षस अगद को पकडने दौडे । अगद ने उनसे अपने को पलभर मे छुडा लिया और ऊपर की ओर उछला । मडप की छत को अपनी लातो से तोड डाला और वही से बाहर निकलकर श्रीराम के पास वापस चला आया ।

: ७८ :

जानकी की प्रसन्नता

पहाड पर से अगणित वानर-सेना नीचे उतरी । वानरो की चाल से वहा की धरती हिलने लगी । नगर के पास के वन मे वानर-सेना ने आराम से रात बिताई । उधर राक्षस भी जोरो से युद्ध का घोष करने लगे । शखो,

भेरियो तथा दुदुभियो की ध्वनि चारो ओर गूजने लगी। उनसे वानरो का उत्साह खूब बढने लगा। रामचद्र स्वय सेना की व्यवस्था करते जाते थे। साथ ही लकापुरी की शोभा से विस्मित भी होते जाते थे। लक्ष्मण से कहने लगे, "लक्ष्मण, देखो तो सही, कितनी सुदर नगरी है!"

जैसे ही लका पर उनकी दृष्टि गई, उनका ध्यान अशोक-वाटिका मे जा पहुचा, जहा पर देवी सीता कारावास मे निवास करती थी। राम सोचने लगे, 'अब तक तो वैदेही के कानो मे अवश्य ही यह समाचार पहुच गया होगा कि मै वानर और भालुओ की भारी सेना के साथ उसे छुडाने आ गया हू। अब उसकी चिता मिटी होगी। मेरी सीता का मन अब प्रसन्न हुआ होगा।' किंतु वह कुछ बोले नही। चुपचाप काम मे लग गये।

उधर राक्षस शुक रावण के पास पहुचा और बोला, "आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने काम किया था, किंतु उसका कोई फल नही निकला। मै बुरी तरह से पीटा गया। राम, जिसने विराध, कबध आदि राक्षसो को खेल-खेल मे मार डाला था, अब यहा सुग्रीव की सेना के साथ आया हुआ है। उसने नगर के बाहर डेरा डाल दिया है। ऐसी भारी सेना मैने कभी नही देखी। राजन्, अब आपका क्या विचार है? अब भी समय है। खूब सोच-समझकर ही युद्ध मे उतरे।" यो कहकर शुक ने धीरे से रावण से कहा, "सीता को अब भी लौटा दिया जाय तो हम सब आराम से रह सकेंगे।"

यह सुनकर रावण की आखे लाल हो गई। बोला, "क्या कहा तूने? खबरदार, जो मेरे सामने सीता को लौटाने की बात कही! देव, दानव, गधर्व, यक्षो मे कोई भी मेरे सामने आने का साहस नही कर सकता। इद्र और यम को भी मै भस्म कर सकता हू। दो मनुष्य और बदर और रीछो से मै डरता नही। तुम सब देखोगे कि उनमे से एक भी प्राणी बचने वाला नही।"

रावण ने सचमुच यही माना था कि उसके सामने से राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बुरी तरह से हारकर भागनेवाले है। आज तक ऐसी कल्पना भी कोई नही कर सकता था कि रावण भी किसी से हार मानेगा।

रावण ने अपने दो मत्रियो को बुलाकर कहा, "मैं सुन रहा हू कि समुद्र पर दुश्मनो ने पुल बाधा है । मुझे विश्वास तो नही होता, फिर भी आप वहा जाय और मालूम करे कि यह बात कहा तक सच है। शत्रुओ की ताकत भी देख आए और मुझे विस्तार से बताए।"

दोनो मत्री वानर का रूप धारण करके सुग्रीव की सेना मे घुस गये। घूम-फिरकर सारी बाते मालूम करने लगे। विभीषण ने इन दोनो राक्षसो को पहचान लिया। उन्हे पकडकर रामचद्र के सामने ले गया। इससे राक्षस डर गये। गिडगिडाकर बोले, "प्रभो, हमारी कोई गलती नही। राजा की आज्ञा थी, इसलिए हम आ गये, हमे आप मारे नही।"

राम ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि इन्हे हमारी सेना को अच्छी तरह से देखने दो। इन्हे मारो-पीटो मत। राम ने राक्षसो से कहा, "रावण से तुम दोनो जाकर कहो कि जिस बल के आधार पर वह सीता को उठा लाया था, उसी बल की अब परीक्षा होगी। राम के बाणो के लिए वह तैयार रहे।"

राम की बाते सुनकर स्वभाव के अनुसार दोनो राक्षसो के मुह से अपने आप "आपकी जय हो !" निकल पडा। इससे वानरो ने मन मे सोचा कि यह तो बडा अच्छा सगुन हुआ है।

दोनो राक्षस रावण के पास गये। हाथ जोडकर बोले, "हे रावण, विभीषण ने हमे पहचान लिया। हमें राम के सामने खडा कर दिया। किंतु राम ने हमारे साथ कुछ नही किया। हमे छोड दिया। हमने यही देखा कि राम की सहायता करने के लिए सुग्रीव और विभीषण दृढ सकल्प हैं। इनकी सेना तो हमे अजेय लगती है। राम को पहली बार हमने देखा। हम आप के सामने क्या कहे ? हमे तो ऐसा लगा कि वह अकेला ही हम सबको जीत सकता है। हम आपसे फिर निवेदन करना चाहते है कि इस युद्ध मे उतरना महामूर्खता है। सीता को वापस पहुचाकर आराम से क्यो न रहा जाय ? आप जरा इस बात को फिर सोच ले।"

रावण ने डाटकर कहा, "अरे कायरो, क्या बक रहे हो ? राम ही क्या, यदि सारी दुनिया भी मेरे विरुद्ध खडी हो जाय तो भी मैं उससे डरने

वाला नही। मुझे कोई नही जीत सकता।"

इसके बाद स्वय रावण ने प्रासाद के ऊपर चढकर शत्रु की सेना को देखा। मत्रियो के साथ उसने लबी-चौडी बाते की। जो अभी-अभी शत्रु-सैन्य देखकर आये थे उन राक्षसो से उसने मालूम किया कि वानरो मे मुख्य कौन-कौन है।

उन राक्षसो ने रावण को सारी बाते बताई। कौन-कौन वानर दुनिया के किन-किन भागो से आये है, उनकी कितनी शक्ति है, सेना मे कितने रीछ है, वे सब रामचद्र पर कितनी भक्ति और कितना प्रेम रखते है, सब मे कैसी एकता है, इन सारी बातो का विस्तृत वर्णन मत्री सारण ने रावण के आगे किया। एक ऊचे प्रासाद पर खडे सब शत्रु-पक्ष के सैनिको को देख रहे थे। राक्षसो ने रावण को बताया, "वह देखिये, वही राम है। उसके पास जो खडा है, वह लक्ष्मण है। वीरो मे वीर, नीति और युद्ध दोनो शास्त्रो को भली प्रकार जानने वाला है। राम के लिए लक्ष्मण को दूसरा ही प्राण समझना चाहिए। वह राम का दाहिना हाथ है। उन दोनो के पास जो खडा है, वह सुग्रीव है। उसके गले मे उसके भाई का दिया हुआ इद्र का हार झूम रहा है। सुग्रीव के पास आपका भाई विभीषण खडा है। इन सबको जीतना आसान नही है।"

अपने मत्रियो के मुख से शत्रुओ की प्रशसा रावण को अच्छी न लगी। उसका क्रोध बढा। बुद्धिमान राजा अपना हित चाहनेवाले राजदूत और मत्रियो पर कभी गुस्सा नही करता, किंतु रावण की बुद्धि अब भ्रष्ट हो चुकी थी। मत्रियो का कहना उसे बहुत ही अप्रिय लगा।

उसने अपने मन मे भली-भाति विचार किया। उसे एक विचित्र उपाय सूझा। उसने सोचा कि यदि सीता किसी प्रकार से उसके वश मे आ जाय तो राम का बडा अपमान होगा और उससे राम का दिल टूट जायगा। निराश होकर वह वापस चला जायगा। अब सीता को किसी युक्ति से राजी कर लेना चाहिए। तुरत उसने एक राक्षस को बुलाया और कहा, "हे विद्यु-ज्जिह्वा, तुम मंत्र-तत्र अच्छी तरह जानते हो। मेरे लिए एक काम करो।

मैं अभी सीता के पास जा रहा हू। तुम्हे वहा आने के लिए बुला भेजूगा। तब तुम राम का-सा एक सिर बनाकर ले आना।"

रावण वहा से अशोक-वाटिका मे पहुचा। जानकी को उसने तरह-तरह की बातो से फुसलाने का प्रयत्न किया। बोला, "सीते, राम मर गया। मेरे वीर समुद्र पार करके वानरो के पास पहुचे। सारे वानर, तुम्हारा पति राम और तुम्हारा देवर लक्ष्मण सब सोये हुए थे। सोते हुए उन सबका उन्होने वध कर डाला। बचे हुए वानर भाग गये। मेरे सैनिक राम का कटा हुआ सिर लाये है। अभी तुम्हे दिखाता हू। अब क्यो हठ करती हो? मेरी बात मान जाओ। आज ही मेरी पटरानी बन जाओ।" रावण ने एक राक्षसी को विद्युज्जिह्वा को बुला लाने के लिए भेजा।

राक्षस विद्युज्जिह्वा राम के सिर को लेकर आ पहुचा। सीता के सामने रख दिया। सीता एकदम चौकी। सिर देखने मे बिलकुल राम के जैसा ही था। अपनी दुर्गति पर वैदेही बडे जोर से विलाप करने लगी।

इस बीच राम की सेना लका के बिलकुल समीप पहुच गई थी। मन्त्रि-गण रावण से उसी क्षण मिलना चाहते थे। रावण को जल्दी से दरबार मे जाना पडा।

रावण नाना प्रकार के मन्त्र-तन्त्र करता-कराता था। किंतु जब तक वह स्वय उस स्थल पर उपस्थित रहता था तब तक ही वे मन्त्र सफल होते थे। इसलिए जैसे ही रावण वहा से हटा, वह झूठा सिर पिघल गया। उसमे से धुआ-सा निकला और वह लुप्त हो गया।

विभीषण की पत्नी सरमा सीता के पास थी। उसने सीता को सारी बाते बता दी। बोली, "राम को किसी ने नही मारा। राम सकुशल है। बडी भारी सेना के साथ वह यहा पर पहुच गये हैं। एक अद्भुत सेतु का निर्माण करके उसके ऊपर से सभी वानर इस पार आ गये हैं। सारे राक्षस उनसे भयभीत हो गये है। रावण तुम्हे धोखा देना चाहता है।"

सरमा ने सीता को और भी बहुत-सी बाते बताई, "रावण के लगभग सभी मन्त्रियो ने उससे कहा है कि तुम्हे राम के पास लौटा दिया जाय। पर

रावण ने उनके हितोपदेशो पर बिलकुल ध्यान नही दिया। उसने उन सबसे कह दिया कि युद्ध मे खुशी से मरूगा, किंतु सीता को लौटाकर राम के साथ कभी सधि न करूगा। इसलिए, हे देवि, अब भय छोड दो। तुम्हारे पति शीघ्र ही रावण को मारकर तुम्हे यहा से मुक्त करेगे।"

यह जानकर कि श्रीराम लका पहुच गये है सीता बहुत ही प्रसन्न हुई। उसी समय वानर-सेना के युद्धघोष से दिशाए कपित हुईं। सीता पुलकित हुई। साथ ही राक्षसो के दिल भय के मारे धडकने लगे।

: ७६ :

नागपाश से चिंता और मुक्ति

रावण के सैनिको मे से कुछ लोग उसके पास दौडे आये और कहने लगे कि लकापुरी वानर-सेना-रूपी सागर से घिर गई है। क्रोधोन्मत्त होकर रावण ने प्रासाद के ऊपर से देखा कि बात सच है। नगर के बाहर चारो ओर वानर-ही-वानर दिखाई दे रहे थे। वृक्ष और शिलाओ को लेकर वे युद्ध के लिए तैयार खडे थे। रावण सोच मे पडा कि इन्हे किस प्रकार हराया जाय।

रामचद्र भी उसी समय राक्षसो से सुरक्षित लका को दुर्ग के बाहर से देख रहे थे। जब उन्हे यह विचार आया कि इसी किले के भीतर जानकी दीनावस्था मे है तो उन्हे बडा रोष हुआ। वानर-वीरो को राम ने आज्ञा दी, "आगे बढो, दुर्ग पर आक्रमण करो और राक्षसो को मार डालो। तनिक भी शिथिलता न दिखाओ।"

वानरो ने एक साथ घोष किया, "महाराज सुग्रीव की जय! श्री राम-लक्ष्मण की जय! हम राक्षसो को हरायेगे!" इतना कहकर वे दुर्ग की दीवारो पर विशाल शिलाओ और वृक्षो से प्रहार करने लगे। दीवारे टूटने लगी।

रावण ने जब यह देखा तो उसने भी वानरो के नाश के लिए एक

बडी सेना किले के बाहर भेज दी। राक्षसो के युद्ध के बाजे बजने लगे। 'रावण की जय हो!' की प्रतिध्वनि चारो ओर सुनाई देने लगी। राक्षसो के पास हर प्रकार के शस्त्र थे। दुर्ग से बाहर निकलकर राक्षस-सेना वानर-सेना के साथ भिड गई।

वानरो के हथियार तो पहाडो की शिलाए, बडे-बडे पेड, उनके नुकीले दात और नखादि ही थे। उनकी मुष्टिकाए और लाते भी बडी भयानक थी। दोनो ओर से भीषण युद्ध होने लगा। दोनो पक्षो के हजारो सैनिक ढेर हो गये। सारी भूमि रुधिर की कीचड से और कटे हुए अगो और मास मे ढक गई।

इसके अतिरिक्त जगह-जगह पर द्व द्व-युद्ध होते रहे। अगद और इद्र-जित् आपस मे भिड गये। उन्हे देखकर ऐसा लगता था, मानो रुद्र और यम आपस मे लड रहे है। प्रजघ नाम का राक्षस और विभीषण का मत्री सपाती आपस मे युद्ध करने लगे। जाबुमाली और हनुमान, नील तथा निकुभ, लक्ष्मण और विरुपाक्ष के बीच मे अलग-अलग द्वद्व हुए। इसी प्रकार कई विरोधी जोडिया थी। दो स्थानो मे, सुदर-काड मे और यहा, जाबुमाली के साथ हनुमान के युद्ध का उल्लेख है। सभव है, एक ही नाम के दो राक्षस रहे हो।

इद्रजित् का रथ टूट गया, उसके घोडे मारे गये। अगद भी इद्रजित् के शरो से बुरी तरह घायल हो गया। जाबुमाली ने हनुमान पर अपनी गदा से जोर का प्रहार किया, हनुमान ने जाबुमाली के रथ को नष्ट कर डाला। राक्षस लोग राम पर भी शर-वर्षा करते आते थे। राम ने अपने बाणो से कई राक्षसो को मार गिराया।

विद्युन्माली ने सुषेण पर कई तीर चलाये। एक बहुत बड़ी शिला फेककर सुषेण ने विद्युन्माली का रथ तोड डाला। रथ से नीचे कूदकर विद्युन्माली सुषेण पर अपनी गदा चलाने लगा। एक विशाल शिला से सुषेण ने विद्युन्माली को कुचलकर मार डाला। इस प्रकार सारे दिन युद्ध चलता रहा, और रात होने पर भी निशाचरो ने लडना नही छोडा। रात का युद्ध

बहुत ही भयकर रहा। खून की नदी बहने लगी। दोनो पक्षो के हजारो सैनिक मारे गये। अगद ने इद्रजित् पर आक्रमण किया। उसका रथ टूट गया। सारथी मारा गया। वानरो ने अगद का साहस देखकर जोरो का जयघोष किया और उसे खूब प्रोत्साहित किया। रथ से नीचे खडे हुए इद्रजित् को बडा गुस्सा आया। अब वह कौशल को काम मे लाया।

मत्र के प्रभाव से इद्रजित् अदृश्य हो गया। इस प्रकार छिपकर उसने राम-लक्ष्मण पर तरह-तरह के बाण चलाये। उन्हे लहू-लुहान कर डाला। वानर-सेना के कई वानरो ने इद्रजित् को ढूढ निकालने का प्रयत्न किया, किंतु वे असफल रहे। मत्र की शक्ति से इद्रजित् अदृश्य था। उसकी शर-वर्षा चलती रही।

अत मे इद्रजित् ने राम और लक्ष्मण पर महाशक्तिवाले विषैले नाग-बाण चलाये। उससे राम और लक्ष्मण निश्चल होकर भूमि पर गिर पडे। उनकी समझ मे न आया कि यह क्या हो रहा है। पहले राम नागपाशो से कसे गये। उनके शरीर मे सर्प के डसने जैसी पीडा होने लगी। वह बेसुध होकर अपने धनुष के दड के साथ नीचे गिर गये। लक्ष्मण ने जब राम की यह दीनावस्था देखी तो वह तडपने लगा। नागपाश से वह भी आहत था। दूसरे ही क्षण वह भी बेहोश होकर शरो से भरी जमीन पर गिर पडा। वानरो ने देखा कि दोनो राजकुमार नीले पड गये है तो उनमे हाहाकार मच गया। वे जोर से चीत्कार करने लगे।

इद्रजित् की खुशी का पार न था। उसने अपने साथी सैनिको को बडी शाबाशी दी। थका हुआ तो था ही, अपने पिता रावण को अपनी विजय की सूचना देने की भी उसे जल्दी थी, युद्धस्थल मे ही वह रावण के पास पहुचा और बोला, "पिता, राम-लक्ष्मण नाग-वाणो के विष से बेहोश होकर नीचे गिर गये। अब उन्हे कोई बचा नही सकता। मै आपका काम पूरा करके आया हू।"

रावण ने बडे आनंद से पुत्र को छाती से लगा लिया।

राक्षसो ने सोच लिया कि राम-लक्ष्मण मर गये। उनके अट्टहासो से दिशाए गूज उठी।

सारे वानर बुरी तरह घायल हो गये थे। राम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख करके उनके मन से जीत की आशा जाती रही। सुग्रीव किंकर्तव्य-विमूढ हो गया। तब विभीषण ने स्थिति सभाली। वह सुग्रीव से बोला, "इस प्रकार हताश हो जाना ठीक नही। राम-लक्ष्मण का चेहरा देखिये। चिंता करने की कोई बात नही। आप लोग धीरज रखे। दोनो राजकुमार थोडी ही देर मे उठ खडे होगे।" यो धीरज बधाकर विभीषण ने वानर-सेना मे फिर से उत्साह पैदा किया। विभीषण ने देखा कि वानर-सेना तितर-बितर हो गई है। उसने सेना को फिर से एकत्र करके अपने-अपने स्थानो पर युद्ध के लिए खडे रहने को कहा।

रावण ने लका मे घोषित कर दिया कि राम-लक्ष्मण का इद्रजित् के हाथ से वध हो गया। राक्षसियो को बुलाकर कहा कि वे फौरन सीता के पास जाय और कहे कि दोनो राजकुमार युद्धक्षेत्र मे मारे गये है। वानर-सेना मे अब कोई नही बचा। रावण ने यह भी कहा, "तुम लोग सीता को पुष्पक विमान मे ले जाकर उसे युद्धक्षेत्र दिखा देना, जिससे उसका घमड चूर हो जाय। तब उसकी समझ मे आयगा कि उसके लिए अब मेरे सिवा कोई दूसरा आश्रयदाता नही रहा।"

राक्षसियो ने वैसा ही किया। जानकी ने ऊपर विमान से युद्धक्षेत्र देखा कि राम और लक्ष्मण निश्चल भूमि पर पडे है। उनके शस्त्र अलग पडे है। सीता का सारा धैर्य समाप्त हो गया। वह करुण विलाप करने लगी, "हाय, यह क्या हो गया! सारे ज्योतिषी, जो मेरा भविष्य बताते थे, झूठे निकले! किसी ने आज तक यह नही कहा था कि मैं एक दिन विधवा हो जाऊगी। सबने बताया था कि मेरे पुत्र होगे। मैं पटरानी बनूगी। उनकी सारी बातें झूठी निकली। कौशल्या माता यह समाचार कैसे सुनेंगी! वह इसी आशा मे जीवित हैं कि 'राम वापस आयगा। उसे मैं देखूगी।'

राम, तुम्हारे दिव्य अस्त्रो का क्या हुआ ? क्या वे सब बेकार निकले ? मैं अब क्या करू ?"

तभी त्रिजटा नाम की राक्षसी, जो सीता के साथ विमान मे थी, बोली, "प्यारी सीता, घबराती क्यो हो ? तुम्हारे पति और देवर अभी मरे नही है। उनके मुख देखो। मुझे वे निर्जीव नही दिखाई देते। मायावी अस्त्रो के कारण उनकी यह दशा हुई है। थोडी ही देर मे दोनो राजकुमार जग पडेगे। वानर सेना को देखो। सब अपने-अपने स्थानो पर खडे है। इससे पता चलता है कि राम अभी मरे नही।"

त्रिजटा के इन अमृत-वचनो से सीता की जान-मे-जान आई। वह विमान से राक्षसियो के साथ अशोक-वाटिका वापस पहुची। वहा पहुचकर वह चिंता के मारे दुखी होकर रोती रही।

नागपाश की शक्ति धीरे-धीरे कम होती गई। राम के शरीर मे कई घाव हो गये थे। फिर भी अपनी आत्मशक्ति के बल से वह फिर होश मे आने लगे। उन्होने देखा कि लक्ष्मण मे अभी तक चेतना-शक्ति नही आई है। राम ने सोचा कि लक्ष्मण मर गये। उनके मुख से एक करुण चीख निकल पडी। रोने लगे, "अब मैं युद्ध जीत कर क्या करूगा ? मेरे लक्ष्मण, तुम्हे मैं क्यो अपने साथ यहा घसीट लाया ? तुम्हारे बिना मैं किस मुह से वापस लौटूगा ? मैं जब कभी उदास होता था, कितने प्यार से तुम मुझको आश्वासन देते थे ! अब चुप क्यो हो गये ? मेरे प्राणप्रिय हे लक्ष्मण, तुम्हारे बिना मैं जी नही सकता। तुम्हारे-जैसा वीर कौन है ? दुनिया मे तुम्हारे-जैसा भाई दुर्लभ है। सैकडो हाथवाले कार्तवीर्यार्जुन की तरह अपने दो ही हाथो से तुम राक्षसो से लडे थे। तुम कैसे मरे ? मुझसे यह सहन नही होगा। मै हार गया। मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा। विभीषण को मैने जो वचन दिया था, वह पूरा नही हो पाया। हे वानर-राज सुग्रीव, अपनी सेना के साथ तुम किष्किधा को लौट जाओ। तुम लोगो ने मेरे लिए बहुत त्याग किया, कष्ट उठाये। उसके लिए कृतज्ञता

प्रकट करता हू। अब मै सोचता हू कि आप लोगो के यहाँ रहने से कोई लाभ नही। मै यही प्राण छोड दूगा।"

उसी समय अपनी गदा लेकर विभीषण वहा आ पहुचा। रग मे एकदम काले विभीषण को देखकर वानर डर गये कि इद्रजित् ही फिर से आ गया। वे भागने लगे। लेकिन जब उन्होने ठीक से देखा कि वह विभीषण है तो कुछ निश्चित हुए।

वानरो को इस प्रकार कायर होते देखकर सुग्रीव को चिता हुई। उसने अगद से पूछा, "मेरे वीर वानरो को यह क्या हो गया है? वे क्यो इस तरह डरे हुए है?"

अगद ने कहा, "राम-लक्ष्मण को युद्ध मे मारा गया समझकर वानरो मे अब धैर्य नही रहा।"

बाद मे सुग्रीव को पता चला कि वानरो ने विभीषण को इद्रजित् समझ लिया था और भागने लगे थे।

जाबुवान ने वानरो को समझाया। उससे वानरो मे कुछ शाति हुई।

राम और लक्ष्मण दोनो के सारे शरीर मे तीर लगे थे। विभीषण ने जब यह देखा तो वह आवेग मे आकर रोने लगा। सुग्रीव ने विभीषण को ढाढस बधाया। उसने अपने मामा सुषेण से कहा, "तुम राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर उठाकर किष्किधा ले चलो। मैं रावण का वध करके वैदेही को ले आऊगा।"

सुषेण बोला, "दोनो राजकुमार बहुत घायल हो गये है। उनके घाव ठीक करने के लिए कई औषधियो की आवश्यकता है। वे कहा से मिल सकती है, इसका पता हमारे हनुमान तथा अन्य कुछ वानरो को है। आप हनुमान को भेजकर औषधिया मगाइये।"

जब सुषेण इस प्रकार कह रहा था, तभी समुद्र विचलित हुआ, आधी-सी आई। सबने देखा कि पक्षिराज गरुड उडता हुआ उनकी तरफ आ रहा था। गरुड को देखते ही राम-लक्ष्मण के शरीर मे चिपके हुए सारे सर्प-बाण एकदम लुप्त हो गये। एक भी न टिका।

गरुड ने दोनो राजकुमारो के शरीर को प्यार से स्पर्श किया। राम-लक्ष्मण उसी क्षण एकदम स्वस्थ हो गये। उनकी खोई हुई शक्ति फिर से आ गई। दोनो राजकुमार पहले से भी अधिक शक्ति का अनुभव करने लगे। सुग्रीवादि वानरो की खुशी का ठिकाना न रहा।

राम ने गरुड से पूछा, "आप कौन है ? यह परम उपकार आपने कैसे किया ?"

गरुड ने उत्तर दिया, "मै आपका बहुत पुराना मित्र हू। साथी हू। आपका मगल हो। जब युद्ध जीतकर लौटोगे तब मै विस्तार से बताऊगा कि मै कौन हू।"

श्रीहरि का वाहन गरुड इतना कहकर वहा से चल दिया।

राम और लक्ष्मण को इस प्रकार फिर से खडे देखकर सारी वानर-सेना मे नये प्राण का सचार हो गया। वे दुगुने उत्साह के साथ लका के दुर्ग पर आक्रमण करने लगे।

: ८० :

रावण लज्जित हुआ

रावण ने समझ लिया था कि राम और लक्ष्मण दोनो मारे गये। सो वह निश्चित होकर महल के अदर विश्राम कर रहा था। उसने जब सहसा वानरो का कोलाहल सुना तो उसे आश्चर्य होने लगा। पास मे बैठे मत्रियो से उसने पूछा, "मुझे आश्चर्य हो रहा है, इन वानरो की इस खुशी का क्या कारण हो सकता है ? राम-लक्ष्मण तो बुरी तरह से घायल होकर विषैले नागपाश मे बद्ध एव मूर्च्छित थे। मैं सोचता था कि अब तक वे मर गये होगे। ऐसी विषम परिस्थिति मे वानर खुशी से क्यो चिल्ला रहे है ? अवश्य ही कोई नई बात हुई होगी। आप सब मालूम करके बताये।"

राक्षसो ने दुर्ग की दीवारो पर खडे होकर देखा और रावण के पास

वापस दौडे आये। डरते-डरते बोले, "महाराज, सुग्रीव के नेतृत्व मे वानर-सेना दुर्ग पर आक्रमण कर रही है। राम-लक्ष्मण दोनो पूर्ण स्वस्थ होकर खडे है। हाथी जैसे अपनी रस्सियो को तोडकर बधन से निकल आते हैं, उसी प्रकार राम और लक्ष्मण अपने शरीर पर लिपटे नागबाणो को हटा कर बडी भारी सेना के साथ हमला कर रहे है। जवान सिंह के समान निर्भय युद्वक्षेत्र मे घूम रहे है। युवराज इद्रजित् के अमूल्य नागपाश व्यर्थ हो गये।"

यह सुनकर रावण का चेहरा कातिहीन हो गया। बोला, "आज तक मैंने किसी प्राणी को इस नागबाण के लग जाने पर जीवित नही देखा। यदि ये बाण भी व्यर्थ गये तो हमारा काम बहुत ही कठिन हो गया है।"

रावण को राम की शक्ति पर बहुत ही क्रोध आया। तुरत धूम्राक्ष नामक राक्षस को बुलाकर उसने कहा, "हे धूम्राक्ष, तुम्हारे रहते मुझे किस बात की चिंता हो सकती है? मदद के लिए बहुत-से राक्षसो के साथ निकल पडो और राम-लक्ष्मण का वध करके लौटो।"

धूम्राक्ष ने रावण के इस आदेश को अपना गौरव समझा। कई राक्षसो को लेकर वह नगरी से बाहर आया। वहा हनुमान के नेतृत्व मे वानर-सेना आक्रमण कर रही थी। धूम्राक्ष ने उनका सामना किया। दोनो पक्षों के काफी सैनिक मारे गये। घमासान युद्ध हुआ। अत मे धूम्राक्ष मारुति के हाथों मारा गया। बचे हुए राक्षस युद्धक्षेत्र से भागकर लका मे चले गये। राक्षस सेना मे मृतको की सख्या बहुत भारी थी।

रावण ने जब यह सुना तो उसका आश्चर्य और भी बढा। उसके मुह से शब्द नही निकल रहे थे। होठ काप रहे थे। उसने वज्रदष्ट्र से कहा, "हे वीरश्रेष्ठ, अब विलब न करो। अभी निकल पडो। इन दुष्टो की हत्या करना तुम्हारा पहला काम है।"

वज्रदष्ट्र ने रावण की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और उससे विदा लेकर वह युद्धक्षेत्र मे आया। दुर्ग के दक्षिण-द्वार से वह बडी भारी सेना को साथ लेकर निकला। वहा अगद का आक्रमण हो रहा था।

वज्रदष्ट्र के आधिपत्य मे निशाचरो ने जोरो से युद्ध किया। असख्य वानर इस युद्ध मे मारे गये, तो भी वानरो का उत्साह कम न हुआ। अपने आयुध वृक्ष और गिरि-शिखरो से उन्होने सैकडो राक्षसो को मार गिराया। दोनो ओर के सैनिको मे बडा रोष था। अत मे अगद और वज्रदष्ट्र दोनो के बीच भयकर द्व द्व होने लगा। काफी समय तक युद्ध चला। आखिर मे बालि-पुत्र अगद के हाथो वज्रदष्ट्र मारा गया। वानरो ने अगद को घेरकर जोरो की गर्जना की।

अब रावण ने क्रूर राक्षस अकपन को बुला भेजा। कहा, "अपने योद्धाओ मे से अच्छे-से-अच्छो को चुनकर अपने साथ ले जाओ। सुग्रीव और राम को किसी भी उपाय से मारकर ही लौटना। तुम्हारी शूरता पर मुझे भरोसा है।"

प्रहस्त ने अकपन के साथ बहुत ही शूरवीर राक्षसो को भेजा। अकपन युद्ध मे सचमुच कभी कपित नही होता था। बडा चतुर योद्धा था। बडी भारी फौज के साथ नाना प्रकार के शस्त्र लेकर वह युद्ध के लिए चल पडा। उस समय बडे अपशकुन होने लगे। अकपन और उसकी फौज ने उनकी कोई परवाह न की। राक्षस के सिंहनाद से सागर भी विचलित होने लगा।

भयकर युद्ध हुआ। खून की नदी बहने लगी। लाल धूल आसमान मे छा गई। अधकार हो गया। दोनो पक्षो के अनगिनत लोग मरे। अकपन के साथ वानर कुमुद, नल, मैंद और द्विविद लडे। अकपन की असाधारण शूरता देखकर सब चकित हो गये।

वानर हारने लगे। भाग निकलनेवाले ही थे कि तभी वहा हनुमान आ पहुचा। अकपन की शरवर्षा की हनुमान ने परवाह न की। एक बहुत ही भारी शिला लेकर हनुमान ने घुमाकर राक्षस के ऊपर फेंकी। किंतु राक्षस के बाणो से वह चूर-चूर हो गई। हनुमान ने अपने शरीर को बहुत ही बढा लिया। उसके तेज से सबकी आखे चकाचौंध होने लगी। उसने एक बहुत ही बडे पेड को घुमाकर राक्षस की ओर लक्ष्य करके फेंका। अकपन इस बार बचा नही। वृक्ष के तीव्र प्रहार से वही ढेर हो गया। उसकी सेना डर

के मारे दुर्ग की ओर भाग खडी हुई। वह भागते-भागते पीछे की ओर देखती जाती थी कि हनुमान उनका पीछा तो नही कर रहा है। इस युद्ध मे काफी राक्षस मारे गये। वानरो ने जय-जयकार करके हनुमान की सराहना की।

अकपन की मृत्यु का समाचार पाकर रावण का चेहरा कुम्हला गया। राम के प्रति उसका क्रोध बढता ही जाता था। उसने फिर से एक बार नगर की सुरक्षा का निरीक्षण किया। सुरक्षा की व्यवस्थाए देखकर रावण के मन मे कुछ शाति हुई। मुख्य सेनानायक प्रहस्त से उसने बाते की। बोला, "हमारा लक्ष्य तब तक पूरा नही हो सकता जब तक हम इन वानरो के आक्रमण को पूरी तरह से दबा नही देते। मैं, कुभकर्ण, तुम, इद्रजित् और निकुभ, पाचो मे से एक को अब युद्धक्षेत्र मे जाना होगा। वानरो मे जो मुख्य है, उन्हे पहले मार डालना चाहिए। तभी हमारा काम बनेगा। इन जगली वानरो से हमे डरना नही चाहिए। इन्हे युद्ध की कला थोडे ही आती है! हथियारो को तो इन वानरो ने देखा भी कहा होगा? हम राक्षसो को चाहिए कि अपनी डरावनी गर्जना से ही इन बदरो को भगा दें।"

प्रहस्त ने रावण की बातें सुनी। विनय से उत्तर देने लगा, "हे राजा, मैंने जो सोचा था वही हो रहा है। हम सबने आपसे कहा था कि उत्तम मार्ग तो सीता को राम के पास लौटा देना है, पर आप नही माने। मैंने आपका नमक खाया है। अपना तन, मन, धन और परिवार आप पर न्योछावर कर देने के लिए तैयार हूं। मै अभी अपनी सेना के साथ लडाई के मैदान मे पहुचता हू।"

सेनापति प्रहस्त की आज्ञा से एक बडी भारी सेना तैयार हुई। निकलने से पहले प्रहस्त ने हवन, ग्रह-शाति, ब्राह्मण-पूजा आदि विधिया कराई। सुगधित धुआ सब जगह फैल गया। युद्ध की भेरी बजी। सेनापति प्रहस्त रणक्षेत्र मे जाने लगा। उस समय भी कई अपशकुन हुए। प्रहस्त ने उनकी ओर ध्यान नही दिया और न हिम्मत हारी। अपनी सेना-सहित पूर्व-द्वार से वह रणक्षेत्र मे पहुचा। जब वानरों ने यह देखा तो वे भी लडने के लिए तैयार हो गए।

जलते दीपक पर जैसे पतगे दौड-दौडकर जाते है, राक्षस सैनिक प्रहस्त के सेनाधिपत्य मे वानरो के बीच बडे उत्साह से घुस पडे। बडी निर्दयता से लडाई शुरू हो गई।

राम ने विभीषण से पूछा, "यह जो भारी सेना लेकर आ रहा है कौन है?"

विभीषण ने उत्तर दिया, "यही प्रहस्त है, रावण का सुप्रसिद्ध सेनाधिपति। रावण की समूची सेना का एक-तिहाई भाग इसके अधीन है।"

राक्षसो के पास तो हर प्रकार के शस्त्र थे। पर वानर किसी प्रकार से कम न निकले। उधर हथियारो की वर्षा हुई तो इधर पहाड-जैसे पत्थर और पेड आसमान मे फेके जाते थे। मल्लयुद्ध भी होने लगा। दोनो पक्षो मे मृतको की सख्या बहुत बढती गई।

प्रहस्त की सेना के मुख्य वीर नरातक, महानाद और कुभहनु को द्विविद, दुर्मुख और जाबुवान ने मार डाला। प्रहस्त और नील बडे भयकर रूप मे लडने लगे। प्रहस्त एक भारी लोहे के मूसल से नील को मारने चला, किंतु उससे पहले ही नील के शिला-प्रहार से महासेनापति प्रहस्त का वध हो गया। राक्षस सैनिक तुरत भागने लगे। नील ने राम के पास पहुचकर नमस्कार किया और प्रहस्त के मारे जाने का समाचार सुनाया। दोनो राजकुमारो ने नील की बडी सराहना की।

० ० ०

रामायण तथा महाभारत इन दोनो ग्रथो मे युद्ध का वर्णन एक ही समान लबा और कुछ अनाकर्षक भी हो गया है। यथाशक्ति मैने इस वर्णन को सक्षिप्त रूप दिया है, किंतु इसका अर्थ यह नही कि युद्ध बहुत जल्दी समाप्त हो गया। हथियार खूब टकराये। घायलो का भीषण हाहाकार हुआ। असख्य लोग मरे और खून की नदिया बही।

० ० ०

युद्धक्षेत्र से जो राक्षस भाग निकले थे, उन्होने रावण को बताया कि अग्निपुत्र नील ने प्रहस्त का वध कर डाला। रावण को विश्वास नही हुआ।

बोला, "देवेंद्र और उसकी सेना को मेरे सेनापति प्रहस्त ने हराया था। क्या यह बात सच है कि वीरो मे वीर प्रहस्त मारा गया ? अब मै कैसे शात रहूगा ? इन राम-लक्ष्मण तथा उनकी वानर-सेना को अब मैं जीवित न छोड़ूगा।"

अब रावण स्वय रथारूढ हो गया। जगमगाते सोने के रथ पर उसे जाते हुए देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो रुद्रदेव भूतगणो के साथ जा रहे है। रावण दुर्ग के बाहर युद्धक्षेत्र मे आया। रावण ने राम की सेना को देखा। वानर-सेना का शोर समुद्र की लहरो की आवाज से कम न था।

राक्षस-वीर वानरो से भिड गये। वानर तो इसकी प्रतीक्षा मे ही थे। राक्षसो की विभिन्न शक्तियो के बारे मे विभीषण ने राम को बताया। बोला, "वह देखो, वहा रथ पर बाल-सूर्य की तरह रावण का लडका इद्र-जित् खडा है। उसके पास ही दशकध रावण अपने रथ मे खडा है।"

राम ने रावण को देखा। रावण के वज्रकाय शरीर से राम बडे प्रभावित हुए। सोचने लगे कि इसमे कोई शक नही कि यह राक्षस अतुल्य पराक्रमी है, किंतु साथ-ही-साथ महादुष्ट भी है। अब इसे मारने का अवसर आ गया है।

रावण के हाथो कई वानर मरे। नील ने कुछ देर रावण से लडाई की। उसे काफी हैरान किया। अत मे रावण के आग्नेयास्त्र से बेहोश होकर वह गिर पडा। हनुमान ने रावण के साथ बहुत देर तक मुष्टियुद्ध किया। रावण पर उसका विशेष असर नही हुआ। कई वानर मरे। फिर लक्ष्मण आये। रावण के साथ उन्होने भी बहुत युद्ध किया। वह भी बेहोश होकर गिर पडे। उसी समय हनुमान ने आकर लक्ष्मण को युद्धक्षेत्र से हटा लिया। राम ने स्वय हनुमान के कधे पर चढकर रावण के साथ भीषण युद्ध किया। उससे रावण बहुत घायल हो गया। उसका मुकुट नीचे गिर गया, रथ टूट गया। उसका धनुष हाथ से अलग होकर गिर पडा। वह किंकर्तव्यविमूढ होकर गिर पडा।

तब राम रावण से बोले, "हे रावण, आज मैं तुम्हे छोडे देता हू।

तुमने अच्छी तरह युद्ध किया। आज घर लौटो। आज की रात आराम करो। कल फिर तैयार होकर आना ।"

रावण बडा लज्जित हुआ और नीचे की ओर सिर झुकाये वापस लकापुरी मे चला गया।

: ८१ :
कुंभकर्ण को जगाया गया

जब युद्धभूमि मे रावण का मुकुट टूटकर गिर पडा और लज्जा के कारण सिर झुकाये उसे वापस लौटना पडा तो उसे देखकर देवतागण बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हे लगा कि उनके बरसो के दु ख और क्लेश का शीघ्र ही अत होनेवाला है।

रावण बडी मनोव्यथा के साथ अपने किले मे आया। वहा शाति के साथ विचार करके मन को स्थिर किया और अपने किंकरो को कुभकर्ण को नीद से जगाने की आज्ञा दी।

एक पुराने शाप के कारण कुभकर्ण जब कभी सोता था तो महीनो सोया करता था। इस बार उसकी नीद को शुरू हुए कुछ ही दिन हुए थे। रावण ने सोचा कि उसको जगाने का काम कठिन न होगा। उसने अपने मत्रियो से कहा, "किसी प्रकार भाई कुभकर्ण को जगाना चाहिए। उसे सब बाते बताकर युद्ध के लिए तैयार रहने को कहो।

"मुझे लगता है मेरा तपोबल अब काम नही कर रहा है। ऋषियो ने जो कहा था वह शायद सच निकलेगा। दुर्ग की रक्षा चारो ओर से खूब सावधानी से की जाय। कुभकर्ण अभी-अभी ही सोया है। उसकी नीद वैसे तो महीनो की होती है, पर चूकि वह अभी-अभी सोया है, इसलिए उसे जगाने मे कठिनाई नही होगी। जल्दी ही जग जायगा। उसके सामने हमारे वैरी नही टिक सकते। यदि वह उठ जाय तो मैं निश्चित हो जाऊगा।

सोते रहने के कारण उसे इस बात का खयाल ही नही है कि मैं कितना व्याकुल हू ।"

रावण की आज्ञा पाते ही राक्षस लोग कुभकर्ण के महल मे घुस पडे। कुभकर्ण को सोते से उठने के बाद असाधारण भूख लग आया करती थी। इसलिए ढेर-का-ढेर खाना उसके लिए तैयार किया गया। शख, भेरी आदि बाजो को उसके कानो के पास खूब जोर से बजाया गया। कई राक्षस उसके शरीर पर मुष्टियो से प्रहार करने लगे। उन लोगो की उसे चिल्ला-चिल्लाकर जगाने की आवाज दूर-दूर तक सुनाई देने लगी। पशु-पक्षी उससे घबराये। डर के मारे वे भी जोर-जोर से आवाजे करने लगे।

कुभकर्ण की शाप-निद्रा तब भी भग न हुई। राक्षस अब उस पर चढ कर नाचने-कूदने लगे। लाठियो से जोर-जोर से मारने लगे। तब भी वह न जगा। राक्षसो ने उस पर हाथियो को चलाया। तब जाकर कुभकर्ण ने आखे खोली। अपने ऊपर से सबको बडी आसानी से नीचे गिराकर उसने अगडाई ली। इस प्रकार असमय मे ही निद्रा के टूट जाने से उसे सब पर बडा क्रोध आया। ऐसा क्यो किया गया, उसकी समझ मे नही आया। भूख लगने के कारण सामने रखे ढेर-के-ढेर अन्न और मास पर अच्छी तरह से हाथ साफ किया। बडे-बडे घडो मे शराब और कच्चा खून भरा था, उसे पी गया। जब उसकी भूख-प्यास कुछ कम हुई तो उसका क्रोध भी कुछ शात हुआ। राक्षसो को अब उसके पास जाकर बात करने की हिम्मत हुई। यूपाक्ष रावण का एक मत्री था। उसने कुभकर्ण को हाथ जोडकर नमस्कार किया और बोला, "स्वामिन्, हम लोग सुग्रीव और राम की सेना के द्वारा बुरी तरह पीटे गए है। सीता के कारण घोर युद्ध हो गया है। राम-लक्ष्मण ने और बडे-बडे वानरो ने हममे से कइयो का वध कर डाला है। ऐसे लडने वालो को हमने आज तक देखा नही। लकापुरी चारो ओर से वानर-सेना से घिरी हुई है। रावण स्वय बुरी तरह से हार खाकर युद्धभूमि से लौटा है। वह मुश्किल मे जीवित लौट पाया है।"

रावण के अपमान की बात कुभकर्ण से सुनी न गई। क्रोधावेश मे आकर उठ खडा हुआ। बोला, "इसी क्षण मै सारे दुश्मनो को मार डालूगा। राम-लक्ष्मण का खून पीऊगा। उसके बाद ही भैया रावण से मिलूगा।"

कुभकर्ण के जागृत हो जाने से रावण के मत्री बहुत खुश हुए। उन्होने कहा, "आपका कहना ठीक है, फिर भी एक बार राजा से मिलकर ही युद्ध मे जाइये। सभव है, राजा आपको कुछ सलाह देना चाहता हो।"

कुभकर्ण मान गया। उसने मुह धोया। अपने बल की वृद्धि की। फिर यमराज की तरह अपनी चाल से भूमि को हिलाता हुआ रावण के दरबार मे पहुचा। राजमार्ग से होता हुआ जब वह जाने लगा तो राक्षस उसकी जय-जयकार करने लगे। उन्होने उस पर पुष्पवृष्टि की।

कुभकर्ण रावण के दरबार मे पहुचकर उसके सामने जा खडा हुआ। उसे देखकर रावण अपने आसन से कूदकर उतरा और छोटे भाई को बडे प्यार से आलिंगन किया।

कुभकर्ण ने पूछा, "भैया, क्या आज्ञा है? मुझे किस कारण से आपने जगाया है? आपकी चिंता का कारण जानना चाहता हूं। आपका जो कोई दुश्मन हो, उसे अभी खतम करके आता हू।"

रावण ने उत्तर दिया, "प्यारे भाई, अब तो बात बहुत बढ गई है। तुम सो गये थे, इसलिए तुम्हे पता नही चला। राम के कारण मै बडा परेशान हो गया हू। सारी लका को वानरो ने घेर लिया है। हमारे बडे-बडे वीर उनका सामना करते हुए काम आ गये। राम समुद्र पर बहुत लबे सेतु का निर्माण करके, बडी भारी सेना के साथ लडने आ गया है। मेरा अब तक की लडाई मे काफी धन खर्च हो गया। सेना भी बहुत घट गई है। अब तुम्ही बिगडी स्थिति को सभाल सकते हो। मेरा भरोसा अब तुम्हारे ही ऊपर है। तुमने अनेक बार देवो को युद्ध मे बुरी तरह से हराया है। मेरे ऊपर तुम जो प्रेम रखते हो, उसे मैं अच्छी तरह जानता हू। वीरता मे तुम्हारे समान और कौन हो सकता है। अभी युद्धभूमि मे पहुच जाओ। शत्रु-सेना को निर्मूल करके मुझे और लका को बचाओ।"

कुभकर्ण को रावण की बाते सुनकर हँसी आई। शुरू मे रावण को चिंतित और पीडित देखकर उसे भी बहुत दु:ख हुआ था। शत्रु पर उसे क्रोध भी आया था। अब कुभकर्ण की नीद पूरी तरह से खुल गई थी। पुरानी बाते साफ-साफ याद आने लगी। वह हँसा और बोला—

"भैया, मै आपको कुछ बताना चाहता हू। मेरी उद्दडता को क्षमा करे। पहले आपने भारी परिषद् बुलाई थी। उसमे हम सबने अपना-अपना विचार बताया था। हमने आपसे जो कहा था, वही बात हो गई। हमने आपकी भलाई के लिए चेतावनी दी थी, पर आपने उसकी अवहेलना कर दी। सीताहरण न्याय-विरुद्ध था। उसी का फल अब आपको भोगना पड रहा है। किसी काम मे हाथ डालने से पहले फलाफल के बारे मे सोच लेना चाहिए। हाथ डाल देने पर फिर पछताने से क्या लाभ हो सकता है! यह तो मूर्खता की निशानी है। सीता को पाने की इच्छा जब हुई तो आपको राम-लक्ष्मण को मारकर बाद मे उसे लाना चाहिए था। आपने तो उल्टा काम कर डाला। आपको ठीक उपदेश दिया गया, पर उस पर आपने ध्यान नही दिया। अपनी इच्छानुसार चलना, किसी से सलाह लिये बिना कदम उठाना एक राजा के लिए सर्वथा अनुचित है। राजा को इतना अवश्य समझना चाहिए कि कौन उसका भला चाहता है, कौन उसके प्रति उदासीन है।"

कुभकर्ण के इस राजनीति के उपदेश से रावण कुछ नाराज हुआ, किंतु चूँकि वह सकट मे फसा था, क्रोध को रोककर बोला, "भैया, अब इन बातो को छोडो। इनसे अब क्या फायदा हो सकता है? जो हो गया, सो हो गया। अब मै तुम्हारी सहायता चाहता हू। न्यायपूर्वक या अन्यायपूर्वक, विवेकपूर्ण अथवा अविवेकपूर्ण, घमड के कारण अथवा मूर्खता के कारण, हमसे जो कुछ हो गया, वह तो अब बदल नही सकता। अब हम सकट मे फस गये है। इसमे से छूटने के लिए क्या किया जाय, यही सवाल है। ऐसी परिस्थिति मे तुम्हे चाहिए कि अपनी बुद्धि और वीरता से मेरी मदद करो। सच्चा मित्र वही है, जो ऐसी परिस्थिति मे सहायता करता है। यदि तुम मुझे सचमुच चाहते हो तो इस समय मेरी सहायता करो। तुम्हारी वीरता को मै अच्छी

तरह जानता हू। तुम्हारी शक्ति को पहचानता हू। मै बहुत ही परेशान हो गया हू। मुझे ऐसे समय मे तुम कैसे छोड सकते हो ?"

कुभकर्ण बोला, "अब आप चिता छोड दीजिये। मैं अभी उन सभी लोगो को, जो आपके दु ख के कारण है, मारकर लौटता हू। मै आपका छोटा भाई हू। हमेशा आप ही का साथ दूगा। बस, समझ लीजिये कि राम और लक्ष्मण खतम हुए। राम का कटा हुआ सिर थोडी देर मे आपके सम्मुख रख दूगा। आप चिता छोड दे। सुग्रीव के शरीर से एक झरने के समान खून बह निकलनेवाला है। मुझे मारे बिना कोई शत्रु आपके पास नही आ सकेगा। और मुझे मारने की शक्ति है किसमे ?"

जैसे-जैसे कुभकर्ण इस प्रकार बोलता गया, उसका दर्प भी बढता गया। उसने रावण से कहा, "चाहे कैसा भी शत्रु हो, मै उसका वध कर डालूगा। यमराज से भी मैं डरनेवाला नही। सूर्य हो अथवा अग्नि, उसका मै सामना करूगा, सबको चबाकर खा जाऊगा। अच्छा, मैं चला।"

यो कहकर कुभकर्ण रणक्षेत्र की ओर जाने लगा।

नीद से जगने पर पहले उसकी समझ मे ही कुछ नही आया था। वह क्रोध से भरा हुआ था। बाद मे खा-पीकर और रावण से बाते होने पर उसकी बुद्धि जरा ठिकाने आई। तभी उसने रावण को नीति की बाते समझाईं। उसके बाद अपने प्रिय भाई को जब आफत मे फसे देखा, तो हर हालत मे सहायता करने का उसने निश्चय कर लिया।

कुभकर्ण के आश्वासन पर रावण भी बहुत खुश हुआ। उसने सोचा, ऐसा प्यारा, ऐसा शूर और कौन हो सकता है ? उसकी चिता दूर हो गई। उसे पूरा भरोसा था कि कुभकर्ण को कोई नही हरा सकता।

कुभकर्ण त्रिशूल लेकर अकेला ही युद्धभूमि मे जाने लगा। रावण ने उसे रोककर कहा, "नही, अपने साथ सेना अवश्य ले जाओ।"

यो कहकर लकेश ने भाई कुभकर्ण को बहुत-से आभूषण पहनाये। उसके गले मे फूलो का हार डाला, वीर राक्षसो की बडी सेना उसके साथ भेजी और आशीर्वाद दिया, "अब जाओ, मेरे प्रिय भाई, और जाकर शत्रुओ

का सहार करके जय-ध्वनियो के साथ विजयी होकर रणभूमि से लौटो।"

कुभकर्ण ने रावण की प्रदक्षिणा की और उसे नमस्कार किया। भाई से विदा लेकर सर्वाभरण-भूषित कुभकर्ण त्रिविक्रम की तरह शूलायुध लेकर युद्धभूमि की ओर चल पडा। उसके पीछे-पीछे राक्षस-सेना आई। राज-वीथि पर राक्षसगण उस पर फूल बिखेरते जाते थे। जलते हुए ज्वालामुखी के समान कुभकर्ण आगे बढा। दुर्ग की दीवारो को आसानी से लाघते हुए यमराज के समान उसे देखकर वानरो का धैर्य छूटने लगा। उनमे आतक छा गया। वे इधर-उधर छिपने और भागने लगे। वानरो के नेताओ ने बडे प्रयास से उन्हे एकत्र किया। युवराज अगद ने वानरो को धीरज और साहस बधाया।

: ८२ :

चोट पर चोट

अगद के बार-बार समझाने और धैर्य दिलाने पर सारे वानर फिर से एकत्र होकर कुभकर्ण के ऊपर आक्रमण करने लगे। पत्थर और वृक्षो की उस पर वर्षा करने लगे। पर कुभकर्ण पर उनका क्या असर होता था! हँसते-हँसते वह वानरो का नाश करने लगा। कुभकर्ण के शौर्य और क्रूरता के सामने वानर टिक नही पाये। बार-बार अगद ने भागते हुए वानरो को रोका। कभी समुद्र के सेतु पर, कभी आकाश मे और कभी जगलो मे जा-जाकर वानर छिपने लगे, पर अगद सबको वापस ले आता था। द्विविद, हनुमान, नील, वृषभ और शरभ आदि सारे वानरो ने एक साथ मिलकर कुभकर्ण पर प्रहार किया, पर कुभकर्ण को वे हिला तक न सके। वह वानर-वीरो को बुरी तरह से घायल करके नीचे गिराने लगा। वानर-सेना की भयकर क्षति हो गई। अगद बेहोश हो गया। सुग्रीव भी सुधिहीन होकर नीचे गिर पडा। अचेतन अवस्था मे ही कुभकर्ण सुग्रीव को अपने हाथो से उठाकर लकापुरी के अदर ले

जाने लगा। राक्षस-सेना मे आनद का सागर उमड पडा। कुभकर्ण अपने भाई रावण को सुग्रीव का शव पुरस्कार मे देने के लिए उसे घसीटता हुआ तेजी से जाने लगा। वह उसे कभी खीचता तो कभी कधो पर उठाकर लका-पुरी के राजमार्ग से रावण के महल की ओर बढा। राक्षस विजयी कुभकर्ण पर पुष्पवृष्टि करने लगे। चदन और सुगधि की सामग्रियो की वर्षा करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीता। इतने मे सुग्रीव धीरे-धीरे होश मे आने लगा। सोचने लगा, 'यह क्या हो रहा है ? मै कहा पर हू ?' पूरी तरह से जागृत होने पर स्थिति उसकी समझ मे आ गई। वह एकदम लपका और अपने तीक्ष्ण दातो से कुभकर्ण के कानो और नाक को बुरी तरह से काट-कर घायल कर दिया। अपने नुकीले नाखूनो से राक्षस के शरीर को जगह-जगह से नोचने लगा। कुभकर्ण इस पीडा को सहन न कर पाया। उसने सुग्रीव को जमीन पर पटककर पैरो से कुचल डालना चाहा। जैसे ही कुभकर्ण ने सुग्रीव को नीचे पटका वह वानरेद्र आकाश मे उछलकर चला गया और रामचद्र के पास पहुच गया।

हनुमान जानता था कि सुग्रीव किसी-न-किसी उपाय से वापस आ पहुचेगा। उसने वानर सैनिको को यत्न से स्थिर रखा और युद्ध के लिए उन्हे फिर से तैयार किया।

कुभकर्ण के कटे हुए कानो और नाक से खून की धारा बहने लगी। सध्याकाल के बादल के समान उसका शरीर रक्तवर्ण का हो गया। अपमान के कारण उसका क्रोध बढ गया। भारी लोहे का मूसल लेकर वह दुबारा साक्षात् यमदेव के समान युद्धभूमि मे पहुच गया।

कुभकर्ण का सामना करना किसी से न बना। वह कभी वानरो को मार गिराता तो कभी उन्हे खा जाता। वानरो ने मिलकर राक्षस के शरीर को चीरने-फाडने का प्रयत्न तो किया, पर किसी से कुछ बना नही। जैसे मक्खियो को हम हाथ से हटा देते है, वैसे ही वह बदरो को धकेल देता था। लक्ष्मण की उसने परवाह न की। वह राम की तरफ दौडा।

राम ने कुभकर्ण के साथ काफी देर युद्ध किया। रामचद्र का बाण

कुभकर्ण का कुछ भी बिगाड न कर सका। वही बाण, जिसने सात साल-वृक्षो को एक साथ भेद दिया था, बालि की वज्रोपम छाती को चीर गया था, अब निकम्मा हो गया। दूसरे तीक्ष्ण बाणो से राम ने कुभकर्ण के हाथ-पैरो को धड से अलग कर दिया। फिर भी कुभकर्ण ने लडना बंद न किया। हाथ और पैरो के बिना ही वह युद्धभूमि मे इधर-उधर घूमकर वानरो को मुह से निगलता गया। तब राम ने एक बहुत ही शक्तिशाली बाण से कुभकर्ण का सिर छेद दिया। राक्षस का कटा हुआ सिर उस बाण के वेग के कारण उडकर एक उडते हुए ज्वालामुखी-पर्वत के समान लका-पुरी के अदर जा गिरा।

रावण के पास राक्षस खबर ले गये। बोले, "हे राजा, कुभकर्ण युद्ध मे मारा गया। अद्वितीय पराक्रम के साथ लडा। उसने असख्य वानरों की हत्या कर डाली। राम और लक्ष्मण को उसने बेहाल कर दिया। वही वीर युद्धभूमि मे काम आ गया। आपके भाई के कटे अग कुछ समुद्र मे जा पडे है और कुछ दुर्ग-द्वार को रोककर पडे हैं। सिर उडकर नगर के अदर पडा हुआ है।"

यह सुनकर राक्षसेद्र रावण को ऐसा लगा मानो उसकी देह से प्राण ही उड गये। वह बेहोश होकर गिर पडा। कुछ देर बाद उसे होश आया। करुण विलाप करने लगा, "हाय, मेरे प्यारे कुभकर्ण, हे अतुल्य पराक्रमी, मुझे छोडकर कहा चला गया? अब मैं क्या करूगा? मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे हाथो को ही किसी ने काट डाला है। तुम तो सदा अजेय थे। तुम्हे राम ने कैसे मारा होगा? मै देख रहा हू कि आकाश मे देवतागण खुशिया मना रहे है, वानर नाच रहे है। अब मुझे यह राज्य नही चाहिए। मेरे प्यारे भाई, तुम्हारे बाद अब मुझे जीने की इच्छा नही रही। जिसने तुम्हारा वध किया, उसके मैं टुकडे-टुकडे करके ही छोडूगा। राम को मारे बिना न रहूगा।"

फिर शोकाकुल होकर रोने लगा, "हाय, मैंने विभीषण की बात क्यो नही मान ली?"

रावण के पुत्र उसे आश्वासन देने लगे। बोले, "अब आप रोना-धोना बद करे। दैन्यता छोडे। आपके पास पितामह ब्रह्मा का दिया हुआ कवच है। बाण है। आपको असाधारण शक्तिया प्राप्त है। आपको तनिक भी चिता नही करनी चाहिए।"

त्रिशिर नाम का रावण का पुत्र युद्ध के लिए निकल पडा। उसके साथ अन्य कई बलिष्ठ राक्षस भी चले। सबमे बडा उत्साह था। सब-के-सब रथो मे और घोडो और हाथियो पर बैठकर रणभूमि मे गये।

घोर युद्ध हुआ। अश्वारूढ होकर नरातक ने अपने भाले से कई वानरो को मारा। जब वह सुग्रीव को लक्ष्य करके दौड रहा था, अगद ने उसे और उसके घोडे को मार गिराया।

हनुमान ने इसी प्रकार त्रिशिर को समाप्त किया। नील ने महोदर का वध किया। लक्ष्मण के छोडे गये अस्त्र से अतिकाय के प्राण-पखेरू उड गये।

ये चारो राक्षस-वीर कोई सामान्य वीर न थे। चारो कालातक के समान घोर युद्ध करके कई वानरो को मारकर तब मरे थे।

अतिकाय के मरने की खबर पाकर रावण का दिल टूट गया। सोचने लगा, 'मैं यह क्या सुन रहा हू? पर्वतो के समान शरीरवाले, समुद्र के समान धैर्यवाले, मेरे सभी वीर एक के बाद एक मरते चले जा रहे है। जिन्होने कभी हार का नाम भी न सुना था, वे इन मनुष्यो और वानरो से पराजित हो गये है। इस राम का रहस्य मेरी समझ मे नही आ रहा है। मेरे पुत्र के नागपाश से भी वह बिना मरे बच गया! इसमे अवश्य ही कोई-न-कोई भेद मालूम होता है। मुझे तो लगता है कि कही यह साक्षात् नारायण तो नही है?'

रावण के मन मे यो विचार आने लगे। उसे अब विजय की आशा नही रही। क्रोध, दुख तथा दीनता का एक साथ अनुभव करता हुआ वह अत पुर मे पहुचा।

बडे भारी हृदय के साथ उसने फिर से नगर की सुरक्षा की व्यवस्था

की, विशेषकर अशोक-वाटिका मे कोई घुस न सके, ऐसा उसने प्रबध किया। उसके बाद दुखी होकर वह महल के भीतर चला गया।

: ८३ :

इंद्रजित् का अंत

"पिताजी, मेरे जीते-जी आपको कोई चिंता नही करनी चाहिए। आप बेफिक्र रहे। मै अभी रणक्षेत्र मे जा रहा हू।" इस प्रकार बाप से विदा लेकर इद्रजित् दुबारा युद्धभूमि मे पहुचा।

उसने सहस्त्रो वानरो को मार गिराया। वानर हक्के-बक्के रह गये। इद्रजित् ने राम-लक्ष्मण पर भी ब्रह्मास्त्र चला दिया। उस अस्त्र के प्रभाव से दोनो राजकुमार बेहोश होकर धरती पर गिर गये। रावण को यह खुशी की खबर देने के लिए इद्रजित् राजमहल की ओर चला। विभीषण वानरो के नेताओ को ढूढकर उनके पास पहुचा। उन्हे धैर्य देने लगा। वानर सारे अधमरे बेहाल पडे थे। जाबुवान ने, जो स्वय घायल हो गया था, वानरो के पास धीरे-धीरे आकर पूछा, "हनुमान कहा है? वह जीवित है न?" यह सुनते ही मारुति झट वहा आ पहुचा और नमस्कार करके बोला, "जाबुवान, आपने मुझे बुलाया है क्या? मै यहा हू।"

जाबुवान बोला, "बेटा हनुमान, अभी उत्तर दिशा मे तुम्हे जाना है। समुद्र को फिर से लाघकर उत्तर दिशा मे हिमगिरि जाओ। वहा ऋषभ-पर्वत और कैलास-पर्वत के बीच औषधि-पर्वत है। उसके शिखर पर अद्भुत शक्तिवाले चार पौधे हैं। उन पौधो को ले आओ। उन्ही के प्रयोग से राम, लक्ष्मण और वानरो के ये घाव ठीक हो सकते हैं। विलब मत करो। जाओ। यह काम तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नही कर सकता।"

हनुमान उसी क्षण वहा से उत्तर की ओर आकाश-मार्ग से निकल पडा। उक्त पर्वत पर जाकर वह उतरा। उसके लिए पौधो को पहचानना बडा

कठिन था। वह समूचे पर्वत को ही उठा लाया और वापस लका आ पहुचा।

पर्वत को हाथ मे लिये हनुमान जैसे ही राम, लक्ष्मण और वानरो के निकट आने लगा, वैसे ही उन चमत्कारी औषधियो के प्रभाव से सबके शरीर मे फसे शर अपने आप निकल-निकलकर बाहर गिरने लगे और सभी घाव भर गये। सबको पूर्णतया आराम हो गया और सब-के-सब उठकर खडे हो गये।

सुग्रीव ने राम से सलाह करके कुछ चुने हुए वानरो को बलात् लका के अदर प्रवेश करके नगर मे आग लगा देने की आज्ञा दी।

उस आज्ञा के अनुसार वानर-वीर जलती हुई मशाले ले-लेकर लका के अदर घुस गये। पहरेदार राक्षसो को वानरो ने मार डाला और लकापुरी के सभी ऊचे-ऊचे प्रासादो मे आग लगा दी। उससे नगर के धन तथा सौदर्य की अपार हानि हुई।

कवि वाल्मीकि ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के युद्धो मे नगर और नागरिको का जो हाल हो जाता है, उसी प्रकार की स्थिति उस समय हुई होगी, यह इससे मालूम होता है।

रावण ने जलती हुई लकापुरी को देखा। क्रोध से उसका हृदय भी जलने लगा। वानरो को रोकने और दबाने के लिए उसने कुभकर्ण के दोनो पुत्र कुभ और निकुभ को भेजा। घोर युद्ध हुआ। कुभ को सुग्रीव ने और निकुभ को हनुमान ने मार गिराया।

खर का लडका महाराक्षस राम से सीधे लडने लगा। राम ने उस पर आग्नेय अस्त्र चला दिया। महाराक्षस भस्मीभूत हो गया।

इस प्रकार अगणित राक्षस मारे गये। रावण ने इद्रजित् को रण मे भेजा। इद्रजित् ने एक राक्षसी यज्ञ किया। उसके बल से अपने को अदृश्य बनाकर वह युद्ध करने लगा। उसने अपनी माया के बल से एक झूठ-मूठ की सीता को वानरो के सामने खडा करके सबके देखते उसे मार डाला। वानर धोखे मे आ गये। उन्होने सोचा, 'सीता को तो इद्रजित् ने मार डाला, अब लडने से क्या लाभ ?' उन्होने जाकर राम को यह खबर

सुनाई। इस बीच इद्रजित् एक और आसुरी यज्ञ-विधि करने मे लग गया। राम-लक्ष्मण अथवा वानरो को इसका पता भी न लगा। राम-लक्ष्मण ने जब सुना कि सीता वानरो के मामने मारी गई है तो वे दोनो बेहोश हो गये। विभीषण को जब यह सारा हाल मालूम हुआ तो वह सबको समझाने लगा, "हे वानरो, आप लोग बुरी तरह से बहकावे मे आ गये है। रावण कभी सीता की हत्या नही करेगा। यह सब इद्रजित् का मायाजाल है। अब वह और शक्तिया पाने के लिए दूसरा यज्ञ कर रहा है। उसे रोकने का प्रयत्न करो। यदि वह इस यज्ञ मे सफल हो जायगा तो उसे जीतना असभव हो जायगा। लक्ष्मण को उठाइये, वह अभी जाकर इद्रजित् के इस यज्ञ को रोके।"

यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को इद्रजित् की यज्ञभूमि पर भेजा। लक्ष्मण के साथ कई वानर गये। विभीषण भी गया। यज्ञभूमि पर ही भीषण लडाई हुई। हनुमान के कधे पर खडे होकर लक्ष्मण ने इद्रजित् पर शर-वर्षा की। इसके कारण यज्ञ मे बाधा हो गई। इद्रजित् और लक्ष्मण दोनो धनुर्विद्या मे निपुण थे। दोनो का द्वद्व देखते ही बनता था। अत मे लक्ष्मण ने इद्रजित् के रथ को तोडकर उसे नीचे गिरा दिया। दोनो अब भूमि पर खड़े आपस मे युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने राम का ध्यान करके मत्रोच्चार के साथ इद्रास्त्र चला दिया। उस प्रबल अचूक अस्त्र की शक्ति से इद्रजित् का सिर कटकर धरती पर गिर पडा। रावण-पुत्र इद्रजित् का इस प्रकार अत हुआ। उसके वध से प्रफुल्लित होकर देव-गधर्वो ने पुष्प-वृष्टि की।

अति पराक्रमी इद्रजित् को मारकर लक्ष्मण राम के पास जाने लगा। वह स्वय भी बहुत ही घायल हो गया था। उससे चला भी नही जाता था। हनुमान और जाबुवान के ऊपर भार देकर उनके सहारे वह राम के पास पहुचा। राम के पास इद्रजित् के वध की खबर पहुच गई थी। राम उठकर दौडे आये और लक्ष्मण को गले से लगा लिया। अपने अक मे बिठाकर लक्ष्मण के शरीर पर स्नेह से हाथ फेरा और बोले, "अब राक्षस-कुल बच नही

सकता। तुमने जो काम किया वह और किसी से नही हो सकता था। रावण का सबसे बडा सहारा इद्रजित् था। उसे खोकर अब लकेश कुछ न कर सकेगा। विभीषण, हनुमान और तुम, तीनो के कारण मै सीता को फिर से पाऊगा। लक्ष्मण, आज की तुम्हारी विजय बडी अद्भुत है। उससे मै फूला नही समा रहा हू। जिसने देवेद्र को जीता था, उसे तुमने जीत लिया।"

राक्षस लोग रावण के पास दौडकर गये और बोले, "हे राजा, बुरी खबर है। आपका पुत्र वीर इद्रजित् स्वर्ग पहुच गया। आपके भाई विभीषण की सहायता से लक्ष्मण ने इद्रजित् को मार डाला।"

जलती हुई मशाल से गिरने वाले गरम-गरम तेल की बूदो के समान रावण की लाल-लाल आखो से आसू टपक पडे। अग्नि-ज्वाला की तरह गरम श्वास उसके मुह और नासिका से निकल पडा। पुत्र-शोक से वह पागल-सा हो गया। बोला, "हे मेरे वत्स, हे अनुपम वीर, महेद्र को जीतने वाले शूर, तुम्हे यम ने जीत लिया क्या? नही, मैं रोऊगा नही, मेरे प्यारे पुत्र, तुम तो वीरगति को प्राप्त हुए हो।"

एक क्षण के लिए उसने रोना रोका, पर फिर से उसका दुख उमड पडा। वह चिल्लाकर रो पडा। "हाय, मेरे लाल! तू मुझे और अपनी मा मदोदरी को छोडकर सचमुच चला गया क्या? तेरी प्यारी पत्नी को मै किस प्रकार से समझाऊगा?"

कुछ देर विलाप करने के बाद रावण का रोष फिर बढ चला। वह बोला, "इन सब दुखो का कारण सीता है। उसे ही मार डालना चाहिए। इद्रजित् ने झूठ-मूठ की सीता को मारा था। मैं सच्ची सीता को ही मार डालूगा।"

यह कहकर तलवार को घुमाता हुआ वह अशोक-वाटिका की ओर जाने लगा। कई राक्षसो को इससे बडी खुशी हुई। किंतु रावण के मत्रियो मे सुपार्श्व नाम के राक्षस ने रावण को रोका और समझाया, "हे रावण, तुम यह मत भूल जाओ कि तुम कौन हो? तुम्हारे-जैसे वीर को एक असहाय स्त्री को मारकर क्या मिलनेवाला है? केवल अपकीर्ति पाओगे। तुम्हारे

समान बलिष्ठ दूसरा कोई नही। अपना क्रोध राम पर उतारो। उसे मार कर सीता को अधिकार से प्राप्त करो। आज चतुर्दशी है। कल अमावस्या है। अपनी पूरी शक्ति लगाकर राम से लडो। उसे मारकर सीता को जीत लो। पितामह के दिये हुए कवच को धारण करो और जाकर राम से युद्ध करो।"

सुपार्श्व की बाते रावण को ठीक लगी। वह मान गया और अपने महल को वापस लौट आया।

लकेश बडी देर तक सिहासन पर बैठा-बैठा चितामग्न सोचता रहा। फिर उसने अपने सेनानायको को बुलाकर कहा, "पहले आप सब-के-सब जाकर एक साथ अकेले राम पर आक्रमण करे। यदि आप लोगों से राम को मारना सभव न हुआ, तो मै स्वय आ पहुचूगा।"

सारी राक्षस-सेना रथ, गज, तुरगो पर चढकर युद्ध के लिए निकल पडी।

वानर शिलाओ, वृक्षो, दातो और नाखूनो से राक्षसो पर चोट करने लगे। राक्षसो ने भी बडी निर्दयता के साथ वानरो को मारा। एक राक्षस को कई वानर एक साथ मिलकर मारने लगे। राक्षसो ने उससे भी अधिक जोर से प्रत्याक्रमण किया। हजारो वानर मारे गये।

अब राम भी युद्धक्षेत्र मे आगे आकर खडे हो गये। राम के धनुष से निकले बाण राक्षसो के प्राण हरने लगे। अग्नि-ज्वाला के समान वे राक्षस-समूह को जला देते थे। शरो को ही राक्षस देख पाते थे। राम का चेहरा उन बाणो के बीच से देखना मुश्किल था। राक्षस् एक के बाद एक मरते गये। साथ ही उनके हाथी और घोडे भी मारे जाने लगे। राक्षसो मे अब टिके रहने का साहस न रहा। रणक्षेत्र मे जितने बचे थे, सब भाग निकले। देव, गधर्वों ने राम के ऊपर फूलो की वर्षा की और उनका जय-जयकार किया। लकापुरी मे राक्षस-स्त्रियो का करुण क्रदन मच गया। वे रोती थी और एक ही बात कहती थी, "इस मूर्ख राजा रावण के कारण ही हमारा सर्वनाश हो रहा है।"

: ८४ :

रावण-वध

लकापुरी के घर-घर मे से स्त्रियो का क्रदन सुनाई देने लगा।

इद्रजित् के मारे जाने के बाद रावण के हृदय मे शोक, अपमान, क्रोध आदि आवेगो ने भयकर रूप धारण कर लिया। अब रावण की एकमात्र इच्छा किसी तरह भी राम को मारकर उसकी सारी सेना को कुचलकर बदला लेने की थी। अपने वरदानो के कारण उसे जो असाधारण शक्तिया प्राप्त थी, उनके बल पर राम को जीत लेने की आशा रावण ने अब भी नही छोडी थी। बडी हिम्मत के साथ आठ घोडो वाले, विविध शस्त्रो से सज्जित सोने के अपने रथ मे चढकर वह युद्धभूमि मे गया। अन्य राक्षस भी अपने-अपने रथो मे चढकर उसके साथ चल पडे। रथो की तेज गति के कारण भूमि हिलने लगी।

जिस घडी रावण युद्धभूमि के लिए निकला, पक्षी अमगल-सूचक बोली बोलने लगे। सूर्य का प्रकाश धीमा हो गया। रावण ने इन अपशकुनो की कोई परवाह नही की। वह सीधे नगर के उत्तरी फाटक से होकर बाहर निकल आया। विरुपाक्ष, महोदर, महापार्श्व आदि राक्षस-वीर रावण के पीछे अपने-अपने रथो मे चले।

ये सभी वीर सुग्रीव और अगद के द्वारा लडते हुए मारे गये। लक्ष्मण ने रावण के साथ युद्ध किया। रावण राजकुमारो के बाणो को आसानी से हटाता गया। लक्ष्मण की ओर ध्यान न देकर वह सीधे राम के सामने आकर खडा हो गया। राम के ऊपर उसने प्रारंभ मे साधारण बाणो को चलाया। उन्हे विफल होते देखकर और भी अधिक शक्तिशाली बाणो का प्रयोग किया। उन्हे भी राम ने रोक लिया। काफी देर तक इस प्रकार युद्ध चलता रहा।

रावण के नाराच बाण रामचद्र के माथे पर लगते जाते थे, किंतु उनसे

दशरथ-नदन पर कोई असर नही होता था। उसी प्रकार राम के धनुष से जो तीर निकलते थे, वे रावण के दैवी कवच को भेद नही पाते थे। राम के चलाये गये अस्त्रो को भी रावण बडी दक्षता से अपने बाणो से रोक लेता था।

इस बार राम-रावण का यह युद्ध बडे विचित्र प्रकार का था। दोनो मत्र-शक्तिवाले अद्‌भुत अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। वे दोनो एक-दूसरे की सामर्थ्य को, शक्तिशाली शस्त्रो को देखकर विस्मित थे। उनके प्रबल अस्त्रो से अग्नि की-सी ज्वालाए निकल पडती थी। आकाश मे कई सूर्यों का-सा प्रकाश हो जाता था। राम ने अपने बाणो से रावण के समस्त अंगो को छेद दिया। फिर भी युद्ध का अत नही हुआ।

अब लक्ष्मण और विभीषण भी राम के साथ रावण पर प्रहार करने लगे। अपने छोटे भाई विभीषण को अपने विरुद्ध युद्ध करते देख रावण का क्रोध उमड पडा। उसने विभीषण पर एक शक्तिशाली आयुध फेका। लक्ष्मण ने उसे समय पर अपने बाणो से रोक दिया। रावण के आयुध के दो टुकडे हो गये। रगड से अग्नि-ज्वाला निकालता हुआ रावण का टूटा आयुध धरती पर गिर पडा। तत्काल एक दूसरे अस्त्र का रावण ने प्रयोग किया। लक्ष्मण ने उसे भी रोका। तत्पश्चात् रावण ने सीधे लक्ष्मण पर ही यह कहते हुए कि 'अब तू मरा' एक शस्त्र फेका। लक्ष्मण मरा तो नही, किंतु उस शस्त्र के प्रहार से बेहोश होकर नीचे गिर गया।

राम का ध्यान रावण पर ही था। लक्ष्मण को उन्होने देखा नही। राक्षसेद्र पर वह बाण और अनेक प्रकार के अस्त्र चलाते गये। युद्ध जारी रहा। वानरो ने देख लिया कि लक्ष्मण मरणासन्न है। वे बहुत चिंताकुल होकर सोचने लगे कि अब क्या किया जाय। हिमालय की औषधियो के अतिरिक्त अन्य उपायो से लक्ष्मण बच नही सकता था। मारुति के अतिरिक्त और किससे बार-बार समुद्र का लाघना हो सकता था ? मारुति को दुबारा औषधि लाने का काम सौपा गया। आजनेय ने तनिक भी हिचकिचाहट न की। दूसरी बार वह उत्तर दिशा मे हिमगिरि तक बडी तेजी से पहुचा। इस बार भी औषधि-विशेष को पहचान न सकने के कारण पहाड़-के-पहाड

को ही उठा लाया, चिकित्सा जानने वाले वानरो ने दिव्य औषधियो के प्रयोग से लक्ष्मण के प्राणो को बचा लिया। वह एकदम स्वस्थ होकर फिर रो युद्ध मे सम्मिलित हो गया। इस बीच देवेद्र ने राम के लिए अपना रथ, सारथी मातलि के साथ, भेजा।

देवेद्र के सारथी ने राम को प्रणाम करके कहा, "हे दाशरथे, रावण देवगण का भी शत्रु है। हम सब उसका बध चाहते है। देवेद्र ने आपके लिए अपना यह रथ भेजा है। मै उनका सारथी हू। आप इस रथ पर चढकर रावण के साथ लडे।"

राम दिव्य रथ को प्रणाम करके उस पर चढ गये।

दोनो योद्धा अब रथारूढ थे। खूब लडे। रावण शरीर और मन से थककर बेहोश होने लगा। उसके सारथी ने जब यह देखा तो रथ को धीरे से युद्धभूमि के बाहर निकाल ले गया।

थोडी ही देर मे उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। आखे खोलकर उसने अपने सारथी से डाटकर पूछा, "क्यो, क्या बात हुई ? मुझे युद्धभूमि के बाहर क्यो निकाल लाये ? ले चलो वापस!"

रावण फिर राम के सम्मुख खडा हो गया और घोर युद्ध फिर से चालू हो गया।

अस्त्र प्रत्यास्त्र चलने लगे। ऐसा चमत्कार न किसी ने देखा था, न सुना था। दोनो पक्ष के सैनिक आश्चर्य-चकित होकर लडना छोड राम-रावण का युद्ध देखने लगे।

मातलि ने धीरे से राम से कहा, "हे राम, रावण का अत समय आ गया है। विलब करने से क्या लाभ ? अपना ब्रह्मास्त्र क्यो नही चला देते ?"

अब तक अनेक बार राम ने अपने शक्तिवाले अस्त्र-शस्त्रो से रावण के दसो सिरो को काट डाला था। किंतु वे फिर उगते जाते थे। मातलि के कहने पर राम ने दिव्य ब्रह्मास्त्र को मत्रोच्चार करके विधिवत् रावण के ऊपर चला दिया।

प्रचड ब्रह्मास्त्र अग्नि-ज्वालाए निकालता हुआ सीधा रावण के पास

पहुचा और उसके शक्ति-कवच को भेदकर वक्षस्थल मे घुस गया। लकेश के हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पडा। अब तक जो अजेय माना गया था, वही राक्षसेद्र धरती पर निष्प्राण होकर गिर पडा।

देवो ने दुदुभि बजाई। आकाश से पुष्प-वर्षा हुई। रथारूढ राम पुष्पो के ढेर से ढक गये। लक्ष्मण, विभीषण, जाबुवान आदि राम को घेरकर जयघोष करने लगे। सब-के-सब आनदसागर मे मग्न हो गये।

विभीषण की दृष्टि रावण के मृत शरीर पर गई। उस समय उसका भ्रातृ-स्नेह उमड पडा। वह अपना वैर भूल गया। युद्ध भूल गया। जो घटनाए घटी थी, सब भूल गया। शोकातुर होकर विलाप करने लगा, "हे वीर, मेरे भाई, तुम्हारा यह क्या हो गया? तुमने कैसे-कैसे साहस के काम किये थे! तुम कितने विद्वान् थे! अब किस प्रकार निर्जीव होकर तुम धरती पर पडे हो?

"वीर, विक्रान्त विख्यात विनीत नयकोविद !
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि !"

यद्यपि विभीषण ने स्वय रावण को हराने के लिए राम की सहायता की थी, तो भी अपने भाई का मृत शरीर देखकर वह शोकाकुल हो गया। कहने लगा, "यह मै क्या देख रहा हू? भैया, तुम इस प्रकार हाथ फैलाये कैसे पडे हो? तुम्हे मैने कितनी बार समझाया था! तुमने मेरी एक न सुनी। दर्प मे फूले मत्रियो की कुमत्रणा से तुम्हारा यह हाल हुआ! हे राक्षसेद्र, शूरो मे शूर, मेरे भैया, तुम्हारी भी मृत्यु हो गई क्या?"

राम विभीषण को आश्वासन देने लगे। बोले, "विभीषण, धीरज रखो। तुम्हारे भाई ने एक महान वीर की भाति युद्ध किया। मरने से पहले अपने असाधारण शौर्य का सपूर्ण प्रदर्शन करके वह गया है। वह अवश्य ही ऊचा पद पायेगा। जय-पराजय की परवाह न करके युद्ध मे कूद कर आखिरी दम तक लडना वीरो का लक्षण है। अब आगे के कामो पर ध्यान दो। प्राण जब छूट जाते हैं, तब कोई किसी का वैरी नही रहता। अब रावण की उत्तर-क्रिया करनी है। तुम उसके छोटे भाई हो। तुम्हारे

ऊपर यह जिम्मेदारी है। तुम मेरे मित्र हो। रावण तुम्हारा भाई है, तो मेरे भी भाई के समान ही है। मै भी उसके कर्म कर सकता हूं। चलो, अब इन कामो की ओर ध्यान दो।"

रावण के अत पुर से उसकी स्त्रिया आई। सबके पीछे शोक की प्रतिमा के समान, रावण की प्राणप्रिया अतिसुदरी पटरानी मदोदरी थी। आकर उसने अपने पति को देखा। उसके मुह से एक करुण चीत्कार निकली और वह अपने पति की देह के साथ लिपट गई।

"मेरे देव, तुम जब क्रुद्ध होते थे, तो देवेंद्र भी तुम्हारे सामने खडा नही रहता था। देवर्षि तथा गधर्व तुम्हारे डर से आठो दिशाओ मे जाकर छिप जाते थे। एक मनुष्य ने तुम्हे कैसे मार डाला ? तुम चुप कैसे हो ? इसका भेद मेरी समझ मे नही आ रहा है। मेरे प्राणनाथ, मैंने तुम्हे कितना समझाया था कि राम एक साधारण मनुष्य नही मालूम होता है। महाविष्णु का कोई रूप मालूम होता है। जनस्थान मे जब उसने अकेले ही खर-दूषणादि राक्षसो को मार डाला था, तभी मुझे यह सदेह हो गया था। तुम्हे बताया भी था। इस लका मे जब उस वानर ने प्रवेश किया था तभी मैं समझ गई थी कि हमारा विनाश होनेवाला है। महापतिव्रता सीता पर तुमने क्यो बुरी निगाह डाली ? उसी का यह भयानक परिणाम हो गया। सीता से मै किस बात मे कम थी ! यह बात क्यो तुम्हारी समझ मे नही आई ? तुमने अपनी बुद्धि क्यो खो दी थी ? विभीषण को देखो। वह सभी सौभाग्य पानेवाला है और तुम यो निर्जीव पडे हो। मेरे नाथ, मृत्यु को तो सीता के रूप मे तुम अपने घर ले ही आये थे। मेरा तो सर्वनाश हो गया। राम और सीता परस्पर मिल गये और मै तुमसे बिछुड गई। हाय, मैं क्या करू ! मैं तो इसी अभिमान मे थी कि मेरा पति रावण है। इद्रजित् मेरा पुत्र है। पर मेरा गर्व चूर हो गया। अब मैं विधवा हो गई ! यह क्यो हुआ ? तुम्हारी यह दिव्य देह खून की कीचड मे कैसे लथपथ पडी है ? मुझसे एक शब्द तो बोलो।"

इस प्रकार विलाप करते-करते मदोदरी रावण के शरीर पर बेहोश होकर गिर पडी।

: ८५ :

शुभ समाप्ति

युद्ध समाप्त हो गया। रामचद्र के आदेश से विभीषण लका का राजा घोषित किया गया। बडे ठाट-बाट से उसका राज्याभिषेक किया गया। दशरथ-नदन तो अब भी नगर से बाहर ही वास करते थे। अभिषेक-विधि के पश्चात् विभीषण ने राम के पास आकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

राम ने हनुमान से कहा, "राजा विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका मे सीता को सब समाचार सुना आओ।"

तुरत हनुमान वहा से चल पडा। विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका मे सीता माता के पास पहुचा। उन्हे सारा वृत्तात सुनाया। परम आनद के कारण देवी के मुह से एक शब्द भी न निकल पाया। हनुमान ने विनीत भाव से पूछा, "मा, आप कुछ बोल नही रही है ?"

जानकी बोली, "हे तात, मेरा गला भरा हुआ है। शब्द निकल नही रहे है। किस प्रकार मैं तुम्हे धन्यवाद दू ? तुम्हारे समान मित्र दूसरा कौन हो सकता है ? तुम्हारे जैसा विवेकी, वीर, मनोबलवाला, धैर्यवान तथा विनयशील व्यक्ति मैंने आज तक नही देखा।"

वैदेही की आखो से अविरल अश्रुधारा बहती गई। तब हनुमान की दृष्टि उन निशाचरियो पर पडी, जो कारावास के समय सीता को बहुत तंग कर चुकी थी। उन्होने सीता से कहा, "मा, आप मुझे आज्ञा दे तो अभी इन क्रूर राक्षसियो को मार डालू!"

महाप्राज्ञा जनकनदिनी देवी सीता ने कहा, "नही वत्स, इनका कुछ न करो। इस संसार मे भूले सभी से हो जाती है।"

माता के इस वचन को भक्त लोग अमृतोपम समझते आये है । हमारे सभी पापो को दयामयी मा क्षमा कर सकती है । यदि हम सच्चे हृदय से देवी की शरण मे जाय तो बडे-से-बडे पाप से भी हम मुक्त हो सकते है । यही हमारे शास्त्रो मे कहा गया है । सीता हनुमान से बोली, "हे मारुति, आखिर इन राक्षसियो ने अपने स्वामी की ही आज्ञा का तो पालन किया । इसमे इनका क्या दोष हो सकता है ? दुष्ट रावण तो मारा गया । इन्हे कोई दड देने की आवश्यकता नही ।"

हनुमान ने देवी मे पूछा, "मा, राम के पास क्या सदेशा लेकर जाऊ ?"

सीता बोली, "बस, इतना ही कहना कि उनके दर्शन के लिए तरस रही हू ।"

हनुमान रामचद्र के पास पहुचा । उसने राम को सीताजी का सदेशा सुनाया । मालूम नही क्यो, राम का चेहरा कुछ बदला । उनकी आखें सजल हो आईं । थोडी देर कुछ भी न बोले । विचारमग्न हो गये । फिर हनुमान को प्रभु ने आज्ञा दी,"अच्छी बात है, सीता स्नानादि करके स्वच्छ हो जाय और वस्त्राभूषण पहने । उसके बाद उसे मेरे पास ले आओ ।"

सीता को जब रामचद्र का यह सदेशा सुनाया गया तो वह बोली, "क्यो ? मैं तो जैसी हू, उसी रूप मे अपने नाथ के पास जाना चाहती हू ।"

विभीषण ने उन्हे समझाया, "नही, मा, प्रभु जैसा कहते हैं, वही होना चाहिए । आप उनकी आज्ञा को न टाले ।"

सीता मान गई । नहा-धोकर वस्त्र और आभूषणो से अलकृत होकर राम के पास जाने के लिए पालकी पर बैठ गई ।

राम ने, जो अपने विचारो मे लीन बैठे थे, सुना कि सीता आ रही है तो जागृत हुए । उनका हृदय धडकने लगा । उनके मन मे नाना प्रकार के आवेग उमड पडे । रोष, विषाद, हर्ष आदि तीनो मिश्रित होकर बडी लहरो की तरह उनकी बुद्धि से टकराने लगे ।

सारे वानरो ने जब सुना कि सीता माता आ रही है, तो उनके दर्शनो

के लिए वे पालकी की ओर एक साथ दौडे। पालकी के चारो ओर बडी भीड लग गई। शोर मचने लगा। वानर-नायको ने बडी कठिनाई से उन्हे समझाया, भीड को हटाया और शाति कराई। राम ने वानर-नेताओ से कहा, "इन्हे क्यो रोकते हो ? ये मेरे मित्र है। इन्ही की सहायता से तो मैंने यह युद्ध जीता है। ये सब यही रहे। इन्हे मत हटाओ। सीता पैदल ही यहा आए। सीता को इन्हे देखकर आनद होगा।"

वानरो तथा लक्ष्मण को रामचद्र के व्यवहार मे कुछ विचित्रता लगी। उनकी समझ मे कुछ नही आ रहा था।

देवी पालकी से उतर पडी। नीचा सिर किये सीधे अपने स्वामी के पास पहुची। उन्होने केवल इतना ही कहा, "आर्यपुत्र !" आगे उनसे कुछ बोला न गया और फूट-फूटकर रोने लगी।

"शत्रु मारा गया। तुम्हे मैंने कारागृह से मुक्त कर दिया। मेरा क्षत्रिय-धर्म पूरा हुआ। मैने जो प्रण किया था, वह भी पूर्ण हुआ।" राम बोले।

उनके वाक्यो का अर्थ स्पष्ट किसी की भी समझ मे नही आ रहा था। उनके मुखमडल का रग कुछ गहरा हो गया। दशरथ-नदन के मुह से ये कटु वचन निकले, "मैंने तुम्हारे कारण यह भयकर युद्ध नही किया। मैने तो अपना कर्तव्य पूरा किया। तुम्हे पाकर मुझे अब खुशी नही हो रही है। लोकापवाद के धुए से तुम छाई हुई हो। बोलो, अब तुम क्या कहना और करना चाहती हो ? मेरे साथ अब तुम्हारा रहना अशक्य है। अपने किसी सबधी अथवा मित्र की रक्षा मे मै तुम्हे सौंप सकता हू। पराये घर मे बहुत समय तुम रह चुकी हो। ऐसी स्थिति मे तुम्हे स्वीकार करना मेरे लिए उचित नही। तुम क्या कहती हो ?"

सीता ने राम की ओर देखा। उनकी आखो मे अब दीनता नही थी। आखो से आग की चिनगारिया निकल रही थी। बोली, "राम, तुम्हारे मुह से ऐसी बातें सुनने की मुझे आशा न थी। तुम्हारे वचनो से मेरे हृदय के टुकडे-टुकडे हो गये। एक सामान्य आदमी के समान तुम बोल पडे। क्या तुम नही जानते कि राक्षस मुझे जबरदस्ती उठा लाया था ? क्रोध के

कारण तुम्हारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई लगती है! मेरे नाथ, क्या यह भूल गये कि मै किस कुल की हूं? याद रखो, मेरे पिता राजा जनक है! उनके पास मै बडी हुई हू। उनसे मैंने धर्म सीखा है। लक्ष्मण, जल्दी से अग्नि जलाओ!"

लक्ष्मण को इस समय राम पर असह्य क्रोध आ रहा था। सीता ने जब आदेश दिया कि आग जलाओ तो लक्ष्मण ने राम की ओर देखा।

राम के मुख पर तनाव के ढीले पडने का चिह्न दिखाई नही दिया। उन्होने लक्ष्मण को मना नही किया।

सीता के आग्रह से लक्ष्मण ने अग्नि प्रज्वलित की। सीता ने किसी की भी ओर नही देखा। भूमि पर दृष्टि किये अपने पति की प्रदक्षिणा की। उनको नमस्कार किया और बोली, "हे देवतागण, तुमको मेरा नमस्कार। हे महर्षिगण, आप सबको नमस्कार। हे अग्निदेव, तुम्हे तो मेरी पवित्रता पर सदेह नही है न! तुम मुझे आश्रय दो।"

इतना कहकर वैदेही अग्नि-ज्वाला मे प्रवेश कर गई।

स्वर्ग के सारे देवता वहा इकट्ठे हो गये। ब्रह्मा ने राम से कहा, "हे नारायण, हे प्रभो, रावण का सहार करने के लिए आपने पृथ्वी पर अवतार लिया था। देवी सीता तो साक्षात् जगदबा है, महालक्ष्मी है।"

श्रीराम ने ब्रह्मदेव से कहा, "मैं तो इतना ही जानता हू कि मैं राजा दशरथ का पुत्र राम हू। मै कौन हू, कहा से आया, यह आप ही बता सकते है।"

तभी वहा एक चमत्कार हुआ। अग्निदेव सशरीर वहा आये और सब प्रकार के वस्त्र और आभूषणो से विभूषित देवी सीता को राम के हाथो मे समर्पित कर दिया।

राम ने अब सीता को बडे प्यार से दोनो हाथो से स्वीकार किया, अपने पास बिठाया और बोले, "प्रिये! मैं तुम्हे भली-भाति पहचानता हू। तुम्हारी पवित्रता पर मैंने एक क्षण के लिए भी सदेह नही किया। साधारण जनता के मन मे कोई शका न रह जाय, इसी हेतु मैने यह परीक्षा

ली। लोकापवाद को दूर करने के विचार से मैंने तुम्हे कटु वचन सुनाकर दुखी किया। तुम परीक्षा मे सफल होकर पार निकल गई हो।"

तभी स्वर्ग से राजा दशरथ भी वहा पर उतर आये। उन्होने राम को अपने अक मे भरकर प्यार किया। दशरथ सीता से कहने लगे, "बेटी, मेरे पुत्र को क्षमा करो। धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से उसने तुम्हारे ऊपर क्रोध किया। तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे।"

देवेंद्र ने भी वरदान दिया। जितने वानर युद्ध मे काम आ गये थे, वे सब-के-सब पुनर्जीवन पा गये।

० ० ०

इस प्रकार देवी सीता, जिनका वनवास के समय अकेली छोडी जाने पर राक्षस द्वारा चोरी से अपहरण किया गया था, राम को फिर से प्राप्त हुई। उनके दु ख का अत हुआ। प्रभु ने समुद्र पार करके दुष्ट राक्षस का सहार किया। सीता फिर से अपने पति के पास पहुच गई। सीता, राम, लक्ष्मण पुष्पक विमान मे बैठे। विभीषण और सारे वानर भी विमान मे साथ ही बैठ गये। बिमान अयोध्या की ओर चल पडा।

विमान मे बैठकर गगन-मार्ग से जाते हुए श्रीराम सीता को बताते जाते थे, "प्रिये, मैं और लक्ष्मण तुम्हे ढूढते-ढूढते यहा आये थे। वह देखो, उस वन मे हम दोनो भाई बहुत घूमे थे। यह अद्भुत सेतु नल ने मेरे लिए बाधा। कैसे चमत्कार का काम है! अब यह किष्किधापुरी आ गई। यही पर मैंने हनुमान और सुग्रीव से मित्रता की।"

इस प्रकार जाते हुए सब-के-सब भरद्वाज के आश्रम मे उतरे और वही से राजा गुह और भरत को प्रत्यागमन का शुभ सदेशा भिजवाया।

अयोध्यापुरी मे आनद का सागर उमड पडा। लोग उसमे अपार हर्ष से गोते लगाने लगे। राम-लक्ष्मण-सीता चौदह वर्ष के बाद घर लौट आये।

० ० ०

राम और भरत का मिलाप हो गया। मथरा और कैकेयी दोनो ने भरत के सुख के लिए जो-जो सोचा था, उसका कोई प्रयोजन सिद्ध न

हुआ। आज राम से पुन मिलकर भरत को जो आनद मिला, उसकी तुलना किससे हो सकती है? राम के चरणो मे गिरकर भरत ने जो आनद पाया, वह कौन-से मुकुट से, कौन-से सिहासन से, मिल सकता था ? राम-भक्ति के कारण भरत की महिमा आज तक दुनिया मे व्याप्त है। भक्त लोग भरत को राम से कम नही समझते, बल्कि कही-कही उन्हे भगवान् से भी ऊचा स्थान देते है।

राम के पुनरागमन की प्रतीक्षा मे, भरत ने चौदह वर्ष तक, राम-पादुकाओ को सिहासन पर रखकर राज्य-भार सभाला था। निर्लिप्त तापस भरत ने अब राम को सिहासन पर बिठाकर अपने तप की सिद्धि प्राप्त कर ली।

पति के साथ सिहासन पर विराजमान देवी सीता ने अपने गले से मुक्ताहार निकालकर हनुमान को उपहार-स्वरूप दिया। हनुमान के गले मे वात्सल्य के साथ वह हार पहनाकर मा मुसकराई। हनुमान को अब किस बात की कमी हो सकती थी!

दशरथ-नदन श्रीराम ने उसके बाद देवी सीता-सहित सैकडो बरसो तक राज्य किया। उनके राज्य मे कोई दुखी न था, कोई रोगी न था, कोई अल्पायु मे मृत्यु को प्राप्त नही हुआ। लोग धर्मनिष्ठ थे। पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण थी।

: ८६ :

उपसंहार

वाल्मीकि के मुह से गाई गई राम-कथा को मैने सक्षेप मे कह दिया। मैं लिखता ही गया। कुछ हिसाब नही लगाया था। आज विजयादशमी के दिन कथा समाप्त होती है। जो इस पवित्र कथा को भक्ति-श्रद्धा के साथ पढेगे अथवा सुनेगे वे सभी दु ख और पापो से मुक्त होगे।

ज्ञान के सागर आदिगुरु शकराचार्य ने बताया है कि यदि हम दशरथ के राम का ध्यान करे, उसकी वदना करे, उसकी दिव्य मूर्ति को अपने हृदय के अदर स्थापित करे तो हमारे सारे पाप दूर हो जायगे ।

रामावतार के बाद भगवान ने एक बार फिर बहुत ही सुलभ ग्वाले के रूप मे जन्म लिया । बाल-गोपाल ने ग्वालो के साथ अनेक खेल दिखाये । फिर अर्जुन के लिए सारथी बने । पार्थ के लिए ज्ञानोपदेश किया । अत मे बोले—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच. ॥

प्रभु का यह उपदेश हम सबके कल्याण के लिए पार्थ को दिया गया था ।

• • • • •

मुनि वाल्मीकि की गाई हुई कथा को अपनी भाषा मे लिखने का यह काम आज समाप्त हो गया । सभव है, इसका प्रारभ करना मेरी धृष्टता थी, किंतु यह काम करते हुए मुझे आनद-ही-आनद प्राप्त हुआ । आज ऐसा लग रहा है कि एक मधुर स्वप्न समाप्त हो गया और मेरी आखे खुल गईं । अयोध्यापुरी को छोडते हुए राम दुखी नही हुए, किंतु सीता के वियोग से वह विह्वल हो गये ।

बहुत ऊची पदवी और दायित्वो से मुक्त होने पर मैंने यह नही सोचा था कि अब क्या करूगा, किंतु आज दशरथ-नदन की कहानी के समाप्त होने पर एक विचित्र शून्यता का अनुभव कर रहा हू ।

काम करना भार है, ऐसा कोई न समझे । सत्कार्य करना ही जीवन का सार है, रहस्य है । प्रतिफल का लोभ बुरा होता है, पर कर्म का त्याग जीवन को असह्य बना देता है ।

॥ सियावर रामचंद्र की जय ॥

लेखक की अन्य कृति

महाभारत कथा

"महाभारत का आख्यान एक अद्भुत रचना है, जिसमे मानव-जीवन के दुख-दर्द का सार आ गया है···हमारे देश मे कोई भी ऐसा व्यक्ति नही होगा, जो महाभारत से परिचित न हो।

"अपने जीवन मे मुझसे जो सबसे बडी सेवा बन सकी है, वह हे महाभारत को कथाओ के रूप मे लिख देना।"

... .

"इन कहानियो को पढने से पाठक ऐसा अनुभव करता है कि ये वास्तविक कथाए है और मननीय है। कथाए मनोवैज्ञानिक ढग पर लिखी गई है।"

—'आजकल', दिल्ली

... ...

"प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि इस ग्रथ से ज्ञान, क्षमता और आत्मशक्ति प्राप्त करे।"

—'सरिता', नई दिल्ली

... .

"विद्वान् लेखक ने बडी चतुराई से महाभारत के विशाल ग्रथ को सरल गद्य मे छोटी कहानियो का रूप देकर भारत की अनमोल सास्कृतिक सम्पत्ति को युग के अनुरूप बना दिया है।"

—'हिमालय', पटना

... ...

"पुस्तक प्रत्येक गृहपत्नी के पढने योग्य है, जिससे वह अपने बालक-बालिकाओं को सरल ढग से महाभारत की कथाओ को सुना और समझा सके।"

—'विश्ववाणी', इलाहाबाद

१०७ अध्याय : ४९४ पृष्ठ

मूल्य केवल छह रुपये

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली